इग्नू
जन–जन का विश्वविद्यालय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
जेंडर एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ

एम.डब्ल्यू.जी.-011
अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

खण्ड 1	**महिलाओं के कार्य को संकल्पनाबद्ध करना**	7
इकाई 1	कार्य को परिभाषित करना	9
इकाई 2	उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य	28
इकाई 3	विभाजन	47
इकाई 4	महिलाओं के कार्य का प्राक्कलन करना	63
खण्ड 2	**स्त्रियों के कार्य के संदर्भ में इतिहास-लेखन संबंधी मुद्दे एवं विमर्श**	**73**
इकाई 1	अंतर्राष्ट्रीय विमर्श	75
इकाई 2	भारतीय विमर्श-I	89
इकाई 3	भारतीय विमर्श-II	110
इकाई 4	लामबंदी और प्रतिरोध	124
खण्ड 3	**सहभागिता**	**141**
इकाई 1	सहभागिता से संबंधित मुद्दे	143
इकाई 2	अवस्थितियाँ	163
इकाई 3	प्रक्षेत्र	187
इकाई 4	व्यवसाय	197
खण्ड 4	**प्रवासन**	**219**
इकाई 1	प्रवासन के सिद्धान्त और प्रारूप वर्गीकरण	221
इकाई 2	प्रवासन, विषमता और सामाजिक परिवर्तन	239
इकाई 3	प्रवासन एवं तस्करी हेतु सुभेद्यता	255
इकाई 4	प्रवासन और विकास	271
खण्ड 5	**विधायन, सामाजिक संरक्षण एवं नीतियाँ**	**287**
इकाई 1	ढाँचे और उपागम	289
इकाई 2	महत्वपूर्ण कानून और ऐतिहासिक निर्णय	311
इकाई 3	कल्याणकारी सहायता एवं सामाजिक संरक्षण के उपाय	343
इकाई 4	नियोजन एवं सामाजिक नीति में महिलाएँ	372
खण्ड 6	**महिलाएँ और भूमण्डलीकरण**	**395**
इकाई 1	भूमण्डलीकरण और आर्थिक परिवर्तन	397
इकाई 2	श्रम का नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन	416
इकाई 3	स्त्रीकरण और हाशियाकरण के प्रश्न	442

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

कार्यक्रम डिजाइन और पाठ्यक्रम विकास

बाह्य सदस्य

प्रो. मेरी जॉन
महिला एवं विकास अध्ययन केन्द्र
नई दिल्ली

डॉ. उमा चक्रवर्ती
नई दिल्ली

प्रो. समिता सेन
जादवपुर विश्वविद्यालय
कोलकाता

प्रो. मालाश्री लाल
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. विभूति पटेल
एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय, मुम्बई

प्रो. पूनम धवन
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

डॉ. चित्रा जोशी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुश्री सी. पी. सुजाया
जीओआई, नई दिल्ली

डॉ. रेनू अद्दलखा
महिला एवं विकास अध्ययन
केन्द्र, नई दिल्ली

एसओजीडीएस संकाय

प्रो. सविता सिंह
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. अनु अनेजा
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. अन्नू जे. थामस
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. नीलिमा श्रीवास्तव
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. हिमाद्रि रॉय
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. स्मिता पाटिल
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. सुनीता ढल
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. जी. उमा
इग्नू, नई दिल्ली

कार्यक्रम संयोजक : डब्ल्यूजीएस में एमए : प्रो. अनु अनेजा और प्रो. नीलिमा श्रीवास्तव
पाठ्यक्रम संयोजक : प्रो. नीलिमा श्रीवास्तव

योगदानकर्ता

खण्ड-1 :
नीलिमा श्रीवास्तव
रजिनी आर. मेनन
हर्षदा राठौड़
मोन्दिरा दत्ता

खण्ड-2 :
यूथिका मिश्रा
नन्दिता मोण्डल
नीलिमा श्रीवास्तव
सुनीता ढल

खण्ड-3 :
हर्षदा राठौड़
मोन्दिरा दत्ता
तृप्ति शाह

खण्ड-4 :
मोन्दिरा दत्ता

खण्ड-5 :
सौम्या उमा
अमृता पटेल

खण्ड-6 :
विभूति पटेल
तृप्ति शाह

सम्पादक
अन्तर्वस्तु सम्पादन
प्रो. विभूति पटेल
सभी खण्ड

भाषा सम्पादन
नीलिमा श्रीवास्तव (खण्ड 1 और 5)
सविता सिंह (खण्ड 2 और 6)
शुभांगी वैद्य (खण्ड 3 और 4)

आन्तरिक (इन-हाउस) सम्पादन
नीलिमा श्रीवास्तव (खण्ड 1,2,3,5 और 6)
सुनीता ढल (खण्ड 4)

इकाई रूपान्तरण
हिमानी बलहारा की सहायता से नीलिमा श्रीवास्तव (खण्ड 1,2,3,5 और 6)
सुनीता ढल (खण्ड 4)

भाषा रूपान्तरण
अनुवादक
श्री प्रांजल धर
पुनरीक्षण
नीलिमा श्रीवास्तव

आभार

कुलपति इग्नू
निदेशक, एसओजीडीएस और प्रशासनिक एवं अकादमिक सहयोग के लिए एसओजीडीएस के संकाय-सदस्य।
एसटीआरआईडीई संकाय, फॉर्मेट सम्पादन के साथ-साथ महत्वपूर्ण सहायता के लिए।

घोषणा : इस स्व-शिक्षण पाठ्यक्रम सामग्री में मुद्रित और वेब-आधारित संसाधनों से ग्रहण की गई सामग्रियों और चित्रों का उपयोग केवल शैक्षिक उद्देश्यों के लिए ही किया जा रहा है, न कि किसी वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए।

सामग्री निर्माण दल

श्री राजीव गिरधर
असिस्टेंट रजिस्ट्रार (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री बाबूलाला रेवाडिया
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2020

© इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ़ या किसी अन्य रूप में, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित और अधिक सूचना मैदान गढ़ी, नई दिल्ली स्थित विश्वविद्यालय के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की ओर से रजिस्ट्रार, एमपीडीडी, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

विश्वविद्यालय के प्राधिकारी : वाइस चांसलर, प्रो वाइस चांसलर, एसओजीडीएस एवं रजिस्ट्रार, एमपीडीडी

टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर्स, सी-206, ए.एफ़.ई.-II ओखला, नई दिल्ली द्वारा लेज़र टाइपसेट।

मुद्रक :

पाठ्यक्रम परिचय

प्रिय शिक्षार्थीगण,

आप स्नातकोत्तर के अन्तिम पायदान तक पहुँच चुके हैं। एमडब्ल्यूजी-002, खण्ड 4, इकाई 4 में हमने महिलाओं के संदर्भ में एक संस्था के रूप में कार्य का अध्ययन किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि 'कार्य' का क्षेत्र बहुत अधिक जेंडरीकृत है तथा महिलाओं के लिए अनुकूल नहीं है। आप जानते हैं कि सभी महिलाएँ कार्य करती हैं और वे हमेशा कार्य करती रही हैं। इसलिए, समान न्याय, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों के लिए शताब्दियों से जारी संघर्ष के बावजूद अभी भी महिलाएँ श्रमिकों की एक श्रेणी के रूप में किस प्रकार हाशियाकृत, दमित और भेदभावग्रस्त हो गयी हैं। इसलिए 'महिलाओं और कार्य' के मुद्दे पर, सिर्फ एक ही इकाई समर्पित करने से नहीं वरन् आगे बढ़कर, और अधिक जानकारी देने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। एमडब्ल्यूजी-011, 'अर्थव्यवस्था में महिलाएँ' पाठ्यक्रम कार्यक्रम का विकास करने वाली टीम की सशक्त सिफारिशों का परिणाम है ताकि भारतीय परिदृश्य में महिला श्रमिकों के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को शिक्षार्थियों के समक्ष स्पष्ट रूप से रखा जा सके। यद्यपि चर्चा को रेखांकित या पूर्ण करने के लिए जहाँ अन्तरसम्बन्धों के निर्माण की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को जोड़ा गया है लेकिन पाठ्यक्रम मुख्य रूप से भारतीय आर्थिक प्रणाली के संदर्भ में महिलाओं की दशा पर केन्द्रित है।

यह पाठ्यक्रम छह खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय महिलाओं के अन्तरफलक (इण्टरफेस) के नए अभिलक्षणों से आपको परिचित कराएगा। आइए, अब इन छह खण्डों में से प्रत्येक के अध्ययन के उद्देश्यों पर एक दृष्टि डालें।

प्रथम खण्ड, महिलाओं के कार्य को संकल्पनाबद्ध करना, आपको 'कार्य' की संकल्पना से उस रूप में परिचित कराता है, जिस रूप में इसे विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा समझा और संकल्पनाबद्ध किया जाता है। यह खण्ड 'उत्पादक' और 'पुनरुत्पादक' कार्य तथा नारीवादियों के दृष्टिकोण और महिलाओं के लिए कार्य के इन दो क्षेत्रों को अलग-अलग करने की राजनीति पर केन्द्रित बहसों की समझ को निर्मित करता है। इस खण्ड में ऐसी इकाइयाँ शामिल हैं जो कार्य के विभाजन के मुद्दे को उद्घाटित करती हैं तथा इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि किस प्रकार महिलाओं के कार्य को या तो अल्प-प्रगणित किया जाता है या फिर यह कार्य अदृश्य ही रह जाता है।

दूसरा खण्ड, महिलाओं के कार्य से जुड़े ऐतिहासिक मुद्दों और बहसों पर केन्द्रित है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह खण्ड अंतर्राष्ट्रीय और भारतीय दोनों दृष्टिकोणों से महिलाओं के कार्य को देखने की ऐतिहासिकता पर चर्चा करता है। यह इकाई शताब्दियों से विभिन्न देशों में अपने कार्य की दशाओं में परिवर्तन लाने तथा आर्थिक अधिकारों को सशक्त करने के लिए महिलाओं द्वारा लामबन्दी, संगठन और प्रतिरोध से जुड़े प्रयासों पर केन्द्रित है।

तीसरा खण्ड, सहभागिता, भुगतानयुक्त अर्थव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता से, विभिन्न अवस्थितियों, क्षेत्रों और व्यवसायों में उनके प्रतिनिधित्व और उनकी उपस्थिति से सम्बन्धित मुद्दों की जांच करता है।

खण्ड चार महिलाओं के सम्बन्ध में प्रव्रजन के मुद्दों को दर्शाता करता है। यहाँ, संकल्पनाओं और सिद्धान्त के साथ-साथ आपके समझ की भावभूमि निर्मित होती है। प्रव्रजन के सिद्धान्तों और अध्ययन (typologies) से प्रारम्भ करके आप यह भी जानेंगे कि प्रव्रजन किस प्रकार

सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है और असमानताओं को उत्पन्न करता है। खण्ड का समापन इस चर्चा के साथ होता है कि प्रव्रजन और विकास की ताकतें एक-दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

खण्ड पाँच, विधायन, सामाजिक संरक्षण और नीतियाँ, आपको सामाजिक संरक्षण के लिए राज्य की प्रतिबद्धता से और भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान के संज्ञान को सुनिश्चित करने में व्याप्त अवरोधों से परिचित कराएगा। आप सामाजिक संरक्षण की रूपरेखाओं (Frameworks) और उपागमों (Approaches) के बारे में पढ़ेंगे और इसके बाद आप महिला श्रमिकों के लिए बनाए गए महत्वपूर्ण विधायी उपायों का अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात आप कुछ ऐसे ऐतिहासिक निर्णयों के बारे में पढ़ेंगे जिन्होंने महिलाओं के रोज़गार का चेहरा ही बदल दिया। कल्याण और सामाजिक सुरक्षा उपायों पर एक इकाई प्रस्तुत की गयी है तथा अन्तिम इकाई आपको सामाजिक नीति में नियोजन और बजटीय निर्धारण में महिला घटक से परिचित कराएगी।

विकासशील देशों में भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के जेंडर आयामों का अब विस्तृत संज्ञान लिया जा रहा है और विकसित हो रहा साहित्य इस मुद्दे के संकल्पनात्मक और आनुभविक दोनों पहलुओं को उद्घाटित कर रहा है। इसलिए, अन्तिम खण्ड महिलाओं और भूमण्डलीकरण पर केन्द्रित है।

भूमण्डलीकरण को पूँजी संचय की एक ऐसी पुनर्गठित प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जिसमें पुरुषों की तुलना में महिलाओं की भर्ती वरीयतापूर्वक इसलिए की जाती है क्योंकि महिलाओं की श्रमदर और लचीली होती है तथा उनसे यह उम्मीद नहीं की जाती कि वे कोई सामूहिक प्रतिरोध करेंगी।

औद्योगिक श्रमबल में महिलाओं की सहभागिता बढ़ने के प्रमाण मौजूद हैं। विशेषतौर पर, निर्यात-सम्बन्धी उद्योगों में महिलाएँ निचले स्तरों पर, कम भुगतान वाले कार्यों में संकेन्द्रित हैं तथा वे ऐसे कार्यों में लगी हैं जहाँ आय-अर्जन में महत्वपूर्ण जेंडर विभेद बने हुए हैं। खण्ड छह की इकाइयाँ श्रम के स्त्रीकरण की प्रक्रिया की जटिलता को उद्घाटित करती हैं और यह दर्शाने के लिए कुछ मर्मभेदी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि महिलाओं की परिवार में अधीनस्थ स्थिति और कार्यस्थल पर गौण प्रस्थिति - दोनों - की जड़ें पूँजीवाद के उस प्राथमिक उद्देश्य में निहित हैं जिसके तहत अबाधित संचय को सुनिश्चित करने के लिए लाभ को अधिकतम बनाया जाता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के पश्चात अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान तथा भूमण्डलीकृत, उदारीकृत और भारत की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में महिलाओं की अदृश्यता, उनके हाशियाकरण और दमन के बारे में आपकी समझ और विद्वता बहुत मजबूत और स्पष्ट हो जाएगी।

मुझे आशा है कि इस कार्यक्रम के द्वारा उपलब्ध कराए गए सहभागितापूर्ण शिक्षण का आपने आनन्द लिया होगा, इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप जेंडर मुद्दों के प्रति अधिक जागरूक हो पाएंगे और आपकी एक आलोचनात्मक समझ विकसित हो जाएगी तथा आप एक जेंडर संवेदी व्यक्ति के रूप में विकसित हो जाएंगे।

आपके सुखद भविष्य की कामनाओं के साथ,

नीलिमा श्रीवास्तव
पाठ्यक्रम संयोजक (एमडब्ल्यूजी-011)

खण्ड

1

महिलाओं के कार्य को संकल्पनाबद्ध करना

इकाई 1
कार्य को परिभाषित करना 9

इकाई 2
उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य 28

इकाई 3
विभाजन 47

इकाई 4
महिलाओं के कार्य का प्राक्कलन करना 63

इकाई 1 कार्य को परिभाषित करना

संरचना **नीलिमा श्रीवास्तव**

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 कार्य की संकल्पना

1.4 जेंडर भूमिकाएँ : श्रम का जेंडर विभाजन

1.5 महिलाओं द्वारा निष्पादित कार्य के प्रकार

1.6 महिलाओं के कार्य का प्रगणन

1.7 महिलाओं के कार्य की दृश्यता का महत्व

1.8 नारीवादी बहसें

1.9 कार्य को पुनःपरिभाषित करना

1.10 सारांश

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1.12 संदर्भ

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

'अर्थव्यवस्था में महिलाएँ' पाठ्यक्रम की इस पहली इकाई में आप समग्रता में समझेंगे कि सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों की कौन-कौन सी चीजें महिलाओं के लिए कार्य के अन्तर्गत आती हैं तथा महिलाओं के जीवन में इन दोनों क्षेत्रों का अन्तरफलक (इण्टरफेस) किस प्रकार घटित होता है। प्रारम्भ में आप यह पढ़ेंगे कि अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा 'कार्य' की संकल्पना को किस प्रकार परिभाषित किया गया है तथा लेखा की भारतीय प्रणाली में कार्य की परिभाषाएँ क्या रही हैं, अपनी वर्तमान समझ तक पहुँचने में यह संकल्पना किन-किन तरीकों के परिवर्तनों से गुजरी है। अगला अनुभाग समाज में महिलाओं द्वारा निष्पादित कार्य के पहलुओं पर केन्द्रित है, किस तरह इस कार्य को हमेशा कम मूल्य दिया जाता रहा है, किस तरह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में यह कार्य अल्प-प्रगणित बना रहा है और यहाँ तक कि महिलाएँ स्वयं इसे अल्प-प्रगणित कार्य के रूप में देखती हैं। इकाई के अन्तिम अनुभाग में आप इस बारे में पढ़ेंगे कि महिलाओं द्वारा किए गए कार्य के लिए यह आवश्यक क्यों है कि महिलाओं के सन्दर्भ में कार्य की पूरी संकल्पना को पुनःपरिभाषित करके उसे विधिवत मूल्य प्रदान किया जाए और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उसे दृश्यमान बनाया जाए। इकाई महिलाओं और कार्य के मुद्दे पर नारीवादी बहसों पर भी चर्चा करती है।

आइए, इस इकाई को पढ़ने के उद्देश्यों पर एक दृष्टि डालें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप निम्नलिखित को समझ सकेंगे :

- कार्य की संकल्पना और उसके अर्थ की व्याख्या;

- घर और कार्यस्थल पर महिलाएँ जिस कार्य का निष्पादन करती हैं, उस कार्य के प्रकार का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- महिलाओं के कार्य के अल्प-प्रगणन के निहितार्थों पर चर्चा कर सकेंगे।

1.3 कार्य की संकल्पना

महिलाओं का जीवन अपरिहार्य रूप से उनके घर-परिवार से संबंधित होता है। दो आयाम हैं, जिनके दायरे में वे कार्य करती हैं – घर और घर के बाहर। इसलिए, महिलाओं के कार्य को वृहत्तर सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं से अलग-थलग करके नहीं समझा जा सकता क्योंकि घर और अर्थव्यवस्थाएँ इन्हीं वृहत्तर संरचनाओं के भीतर स्थित होती हैं।

सबसे पहले हमें यह परिभाषित करना चाहिए कि 'कार्य' के अन्तर्गत क्या-क्या आता है। क्या इसके अन्तर्गत केवल वे गतिविधियाँ ही आती हैं जो घर के बाहर की जाती हैं, और जिनके लिए भुगतान किया जाता है, और वे जो 'आर्थिक गतिविधि' के दायरे के भीतर आती हैं?

बॉक्स सं. 1.1

कार्य रूपों में जब कोई व्यक्ति जेंडर परिप्रेक्ष्य से निगाह डालता है तो इसकी बुनियादी परिभाषा पर वाद-विवाद की सम्भावना खड़ी हो जाती है कि किन-किन चीजों को 'जेंडर कार्य' में शामिल किया जाए। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि कार्य का क्षेत्र कोई ऐसा 'जेंडर उदासीन' क्षेत्र नहीं है जहाँ सिर्फ योग्यताओं, कौशलों और निष्पादन के आधार पर किसी व्यवसाय/पेशे में किसी व्यक्ति के प्रविष्ट होने या आगे बढ़ने का निर्धारण होता है। किसी व्यक्ति द्वारा उपलब्ध विकल्पों में से किसी विकल्प का चुनाव करने में, मज़दूरी अर्जित करने में और अवसरों का लाभ उठाने में या ऊर्ध्वाधर गतिशीलता में जेंडर एक वैध निर्धारक कारक होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का आंकलन है कि महिलाओं की जनसंख्या विश्वभर की जनसंख्या की आधी है, वे विश्व के सम्पूर्ण कार्य का दो-तिहाई हिस्सा निष्पादित करती हैं, संसार की आय का दसवाँ हिस्सा अर्जित करती हैं और विश्व की सम्पत्ति के सौवें हिस्से का स्वामित्व उनके पास है। संयुक्त राष्ट्र संघ के ये आँकड़े महिलाओं के कार्य और उनके मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में इस जेंडर असमानता को बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं कि यह कार्य व्यापक रूप से अल्प-प्रगणित है।

बॉक्स सं. 1.2

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के आँकड़ों के अनुसार, भारत में पन्द्रह वर्ष और उससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों के लिए श्रमबल में सहभागिता का प्रतिशत सन् 2011 में 55.6 प्रति था, जबकि यह ब्राजील में 69.9 प्रतिशत और चीन में 74.1 प्रतिशत था। उसी वर्ष जनसंख्या में श्रमिकों (पन्द्रह वर्ष और उससे अधिक आयु वाले) का अनुपात भारत में 53.6 प्रतिशत था, जबकि ब्राजील में यह 64.8 प्रतिशत तथा चीन में 70.9 प्रतिशत था। (शॉ, 2013, पृ. 25)

आइए, अद्यतन उपलब्ध आंकलनों (एनएसएसओ, 68वाँ दौर, 2011–12) के अनुसार भारतीय श्रमबल की स्थिति का विश्लेषण करें :

- सन् 2011–12 में भारतीय जनसंख्या का 36.4 प्रतिशत श्रमबल में सक्रिय था, अर्थात्, या तो यह श्रमबल कार्यरत था या यूपीएस के अनुसार कार्य की तलाश कर रहा था।

- कुल जनसंख्या का 35.4 प्रतिशत नियोजित था और 2.7 प्रतिशत बेरोज़गार था।
- रोज़गार की बात करें तो, भारतीय श्रमिकों का 50 प्रतिशत स्वरोज़गार में था, 20 प्रतिशत नियमित मज़दूरी या वेतन पर रोज़गार में था और 29 प्रतिशत आकस्मिक मज़दूरी में था।
- श्रमबल में सहभागिता के दृष्टिकोण से देखें तो, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिलाओं की तुलना में पुरुषों का अनुपात बहुत अधिक ऊँचा था।
- इसके अतिरिक्त, श्रमबल में ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता सन् 2011-12 में उस स्तर तक नीचे गिर गयी थी, जिस स्तर पर यह सन् 2004-05 और 2009-10 में गिरी थी। ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता 2004-05 में वृद्धि के बाद बुरी तरह नीचे गिर गयी। 2004-05 में शहरी महिलाओं की सहभागिता में भी वृद्धि हुई थी लेकिन यह भी 2009-10 में नीचे गिर गयी और इसके बाद 2011-12 में इसमें हल्की-सी वृद्धि हुई लेकिन यह वृद्धि उतनी अधिक नहीं थी जितनी 2004-05 में थी।
- आमतौर पर, श्रमबल में महिलाओं की सहभागिता कम रही है और यह नीचे ही गिर रही है। श्रमबल में महिलाओं की सहभागिता में इस गिरावट को, खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में हो रही गिरावट को 'विस्त्रीकरण (डिफेमिनाइजेशन)' कहा गया है (अब्राहम 2013)। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में न तो द्वितीय क्षेत्र और न ही तृतीय क्षेत्र के रोज़गार में महिला श्रमिकों के अनुपात में कोई उल्लेखनीय वृद्धि हुई। खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में यह रोज़गार महिलाओं की सहभागिता के कम होते जाने की प्रवृत्ति के अनुसार ही है।
- पिछले लगभग एक दशक के दौरान समस्त श्रमिकों में शहरी महिला श्रमिकों का अनुपात द्वितीय और तृतीय क्षेत्रों में बढ़ा है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमबल छोड़ने वाली महिलाओं की संख्या की तुलना में यह बढ़त बहुत कम है। (शॉ, 2013)

आइए, निम्नलिखित अनुच्छेद में कुछ ऐसे तरीकों पर चिन्तन करें जिनके माध्यम से 'कार्य' और 'श्रमिक' को विभिन्न भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों द्वारा परिभाषित किया गया है।

रोज़गार के सम्बन्ध में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) ने 1990 के दशक से राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण करना शुरू किया। इससे पहले देश में रोज़गार सम्बन्धी आँकड़ों का प्राथमिक स्रोत जनगणना ही था।

सन् 1951 की जनगणना में आय के आधार पर 'श्रमिक' को इन रूपों में वर्गीकृत किया – 'स्वावलम्बी लोग'(Self supporting persons), जिनकी आय रखरखाव के लिए पर्याप्त थी तथा 'अर्जन करने वाले आश्रित लोग' (Earning dependents), जिनकी आय 'रखरखाव के लिए पर्याप्त नहीं' थी।

सन् 1961 की जनगणना में श्रमिक की परिभाषा को बदल दिया गया और इसे कार्य की अवधि पर आधारित कर दिया गया, चाहे यह कार्य पारिश्रमिक के साथ किया गया हो या उसके बिना। मौसमी कृषि और घरेलू औद्योगिक श्रमिकों के लिए कामकाज के मौसम के अधिकांश हिस्से के दौरान 'कार्य की इस अवधि' को एक घण्टे प्रतिदिन से अधिक का माना गया। 'अन्य श्रमिकों' के लिए रोज़गार की अवधि का मानक यह था कि किन्हीं 15 दिनों की अवधि में व्यक्ति को पारिश्रमिक सहित रोज़गार मिला हुआ हो।

सन् 1971 की जनगणना में 'श्रमिक' को किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया जिसकी मुख्य गतिविधि उत्पादक कार्य में सहभागिता करना हो। ऐसे सभी लोगों को 'गैर-श्रमिकों' (non-workers) के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया, जिनकी मुख्य गतिविधि घरेलू कामकाज थी, चाहे वे लोग उत्पादक कार्यों में ही क्यों न संलग्न हों। 1981 की जनगणना से 'सीमान्त श्रमिकों' के पारिश्रमिक को भी दर्ज किया जाने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्य/श्रमिक की परिभाषा में परिवर्तन कर देने से देश का कार्य परिदृश्य परिवर्तित होता रहा। 1961 की जनगणना में महिला श्रमिकों की संख्या अधिक थी जो 1971 की जनगणना में घट गयी क्योंकि कार्य की परिभाषा से जुड़े संकल्पनात्मक पूर्वाग्रह के कारण इन्हें दर्ज नहीं किया गया। इसमें बिना भुगतान वाले पारिवारिक श्रम को श्रमिकों के रूप में शामिल ही नहीं किया गया था। 1981 की जनगणना में फिर परिवर्तन किया गया ताकि सीमान्त महिला श्रमिकों की बड़ी और परिवर्तनशील संख्या को डब्ल्यूपीआर (WPR) में शामिल किया जा सके। (मजूमदार और नीता, 2011)।

'कार्य' को किसी भी आर्थिक उत्पादक गतिविधि में सहभागिता के रूप में परिभाषित किया गया है, चाहे इसके लिए नकद या किसी अन्य तरह की कोई क्षतिपूर्ति/मज़दूरी मिलती हो या न मिलती हो। यह सहभागिता भौतिक या मानसिक प्रकृति की हो सकती है। उपरोक्त तरीके के किसी 'कार्य' में संलग्न किसी व्यक्ति को 'श्रमिक' के रूप में श्रेणीबद्ध किया जाता है। मुख्यतः महिलाओं द्वारा किए गए कार्य ही इस कार्य के दायरे में आते हैं; जैसे – बिना किसी भुगतान के खेतों में किए जाने वाले कार्य, घर परिवार के कार्य, फसलें उगाना, दुग्ध उत्पादन, चाहे यह उत्पादन परिवार की खपत के लिए किया गया हो या किसी अंशकालिक तरीके से किया गया हो। कार्य में कार्य की प्रभावी देखरेख और कार्य को दिशा देना भी शामिल है। (एमजीएसई-009, पुस्तक 1, इकाई 2)।

भारत की जनगणना 'श्रमिकों' को मुख्य श्रमिकों, सीमान्त श्रमिकों, कृषकों, कृषि श्रमिकों, घरेलू औद्योगिक श्रमिकों और अन्य श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत करती है। इन श्रेणियों को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया गया है -

मुख्य श्रमिक (Main Workers) : वे लोग जिन्होंने प्रगणन की तारीख (इसे सन्दर्भ अवधि कहा जाता है) से पहले वाले वर्ष के अधिकांश हिस्से (छह मास या अधिक) में कार्य किया था।

सीमान्त श्रमिक (Marginal Workers) : ऐसे लोगों को सीमान्त श्रमिक कहा जाता है, जिन्होंने सन्दर्भ अवधि में छह मास से कम समय के लिए कार्य किया।

कृषक (Cultivators) : 'कृषक' की श्रेणी में, मज़दूरी या नकद अथवा किसी अन्य रूप में भुगतान के लिए, ऐसी भूमि पर खेती करने वाले व्यक्ति आते हैं जो भूमि सरकार, निजी संस्थाओं या जमींदारों के स्वामित्व में हो। किसी व्यक्ति के इस श्रेणी में आने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति ऐसी फसलों के बारे में खेत जोतने, बुआई, फसल-कटाई या फसल के काटने के बाद की जाने वाली गतिविधियों में सम्मिलित हो, जो बागानी कृषि से जुड़ी फसलें नहीं हैं।

कृषि श्रमिक (Agriculture Labour) : किसी दूसरे व्यक्ति की ज़मीन पर मज़दूरी या नकद अथवा किसी अन्य रूप में भुगतान के लिए कार्य करने वाला व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति साझेदारी के आधार पर काम कर सकता है तथा कृषि से जुड़े जोखिमों में ऐसे व्यक्ति की कोई साझेदारी नहीं होती है। इस श्रेणी में आने वाले व्यक्ति को उस भूमि के पट्टे या स्वामित्व आदि के बारे में कोई अधिकार नहीं प्राप्त होते, जिस पर वह कार्य करता/करती है।

घरेलू औद्योगिक श्रमिक (Household Industry Worker) : वह श्रमिक जो, शहरी क्षेत्रों में या गाँव के भीतर, घर पर तथा परिवार के निवास-स्थल पर घर के अहाते की सीमा में स्थित किसी उद्योग में कार्य कर रहा है। यह उद्योग ऐसा होना चाहिए जिसे भारतीय कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कारखाने के पैमाने पर न चलाया जा रहा हो।

अन्य श्रमिक (Other Workers) : ऐसे सभी श्रमिक जो पिछले एक वर्ष के दौरान किसी न किसी आर्थिक गतिविधि में संलग्न रहे हैं लेकिन जो उपरोक्त वर्णित किसी भी श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आते हैं, उन्हें 'अन्य श्रमिक' कहा जाता है। अन्य श्रमिकों की श्रेणी में आने वाले ये लोग सरकारी सेवक, निगम कर्मचारी, अध्यापक, कारखाना श्रमिक, बागान श्रमिक हो सकते हैं या व्यापार/वाणिज्य/व्यवसाय में संलग्न हो सकते हैं अथवा खनन, निर्माण, राजनीतिक या सामाजिक कार्य में संलग्न हो सकते हैं।

बॉक्स सं. 1.3

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के कार्य और योगदान की चर्चा होने के पहले भारत में महिलाओं ने एक नियोजित अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान पर विमर्श किया था। सन् 1939-40 में कांग्रेस पार्टी ने एक राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया था और महिलाओं के मुद्दों पर सलाह देने के लिए इस समिति के एक अंग के रूप में एक उप-समिति का गठन किया गया था। लक्ष्मीबाई रजवाड़े इस समिति की अध्यक्ष और मृदुला साराभाई सदस्य-सचिव थीं। इस उप-समिति द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन में यह उल्लेख किया गया था कि किसी महिला श्रमिक का अपनी आय पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए; महिलाओं द्वारा रात में कार्य करने पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए क्योंकि इस मामले में केवल महिलाओं को ही रात में कार्य करने से रोका जाता था, बल्कि खतरनाक प्रकृति के व्यवसायों में उनके कार्य करने के मुद्दों को सम्बोधित किया जाना चाहिए; परिवार को एक आर्थिक इकाई के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि ऐसा करके कमाने वाली महिलाओं को द्वितीयक भूमिका का ही दर्जा मिल पाता है। इस उप-समिति का सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान यह सुझाव देता था कि घरेलू कामकाज के आर्थिक मूल्य का संज्ञान लिया जाना चाहिए तथा महिलाओं को वे सभी सुविधाएँ और अधिकार मिलने चाहिए जो घरेलू कार्य करने वाले श्रमिकों को प्राप्त होते हैं। इस दस्तावेज को दुर्भाग्य से वह महत्व नहीं मिल सका जो इसे मिलना चाहिए था। (कृष्णराज, 2000)।

आइए, इस पर निगाह डालें कि राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षणों को सम्पन्न करते समय एनएसएसओ भारतीय कार्यबल को किस प्रकार श्रेणीकृत करता है।

एनएसएसओ श्रमिकों को रोज़गार और/अथवा गतिविधि की परिस्थिति की तीन श्रेणियों में श्रेणीबद्ध करता है। ये हैं – (1) स्वरोज़गार (Self Employed), (2) नियमित वेतन पाने वाले और (3) आकस्मिक श्रमिक।

महिला कार्यबल का उच्च अनुपात सदैव 'स्वरोज़गार' की श्रेणी में घनीभूत पाया गया है। स्वरोज़गार की श्रेणी के भीतर तीन उपश्रेणियाँ हैं, जिनके नाम हैं – 'अपने दम पर कार्य करने वाले श्रमिक (own account worker)', 'नियोजक' और वे लोग जो घरेलू उद्यमों में 'सहायकों' की तरह काम करते हैं और जिन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता है।

'अपने दम पर कार्य करने वाले श्रमिक (own account worker)' की एनएसएसओ द्वारा दी गयी परिभाषा में श्रमिकों की एक पूरी श्रेणी शामिल है, विशेषतौर पर वे महिलाएँ जो घर पर काम करते हुए 'टुकड़ों-टुकड़ों में मज़दूरी करने' (Piecemeal worker) वाले कार्य में

संलग्न हैं। इसलिए कार्य की इस श्रेणी के स्वरोज़गार की प्रस्थिति के अनुसार, यह नाम मिथ्या प्रतीत होता है क्योंकि ये श्रमिक और कुछ उद्योगों/व्यापारों या किसी अन्य प्रकार के नियोजकों के लिए काम करने वाले श्रमिक टुकड़ों में काम करने के आधार पर मज़दूरी पाते हैं। (मजूमदार और नीता, 2011)।

एनएसएसओ रोज़गार और बेरोज़गारी पर किए गए सर्वेक्षण (ईयूएस) के अपने 68वें दौर के प्रतिवेदन में श्रमिकों की चार श्रेणियों को प्रस्तुत करता है : सामान्यतः मुख्य प्रस्थिति (यूपीएस), सामान्यतः मुख्य आनुषंगिक प्रस्थिति (यूजुअल प्रिंसिपल सब्सिडियरी स्टेटस, यूपीएसएस), अद्यतन साप्ताहिक प्रस्थिति (करेण्ट वीकली स्टेटस, सीडब्ल्यूएस) और अद्यतन दैनिक प्रस्थिति (करेण्ट डेली स्टेटस, सीडीएस)। (कृष्णामूर्ति और रवीन्द्रन, 2008, पृ. 6-9)।

- **सामान्यतः मुख्य प्रस्थिति (यूपीएस) :** श्रमबल को सामान्यतः मुख्य गतिविधि प्रस्थिति (यूपीएस) के माध्यम से प्रचलित तरीके से मापा जाता है जो एक वर्ष की सन्दर्भ अवधि के दौरान किसी व्यक्ति के कार्य को प्रतिबिम्बित करता है। एक व्यक्ति को श्रमबल से सम्बन्धित व्यक्ति के रूप में तब वर्गीकृत किया जाता है यदि वह सर्वेक्षण से पूर्व के 365 दिनों के दौरान अधिकांश दिनों तक या तो कार्यरत रहा/रही है या कार्य को खोजता/खोजती रहा/रही है। यदि श्रमबल में शामिल बने रहने की अवधि श्रमबल से बाहर बने रहने की अवधि के बराबर है तो प्राथमिकता श्रमबल में सहभागिता को प्रदान की जाती है। अपने मापन में यूपीएस श्रमबल से उन सभी लोगों को बाहर कर देता है जो कुल मिलाकर छह मास से कम अवधि के लिए नियोजित और/अथवा बेरोज़गार रहे हैं। इस प्रकार, जो लोग रुक-रुककर कार्य करते हैं, चाहे घरेलू फर्म या उद्यम में स्वयं कार्य की प्रकृति के कारणवश वे ऐसा करते हों या फिर आर्थिक बाध्यताओं अथवा किसी कारणवश वे ऐसा करते हों, वे लोग श्रमबल में तब तक सम्मिलित नहीं हो पाते जब तक कार्य और बेरोज़गारी के उनके कुल दिनों की गणना सन्दर्भ वर्ष के आधे से अधिक नहीं हो जाती।

- **सामान्यतः मुख्य आनुषंगिक प्रस्थिति (यूपीएसएस) :** सामान्यतः मुख्य और आनुषंगिक प्रस्थिति (यूपीएसएस) श्रेणी को इसलिए प्रस्तावित किया गया था ताकि यूपीएस संकल्पना को विस्तृत बनाया जा सके। इसके माध्यम से ऐसे लोगों को भी श्रमबल में शामिल कर लिया गया जो 'अधिक समय तक श्रम' वाले मापदण्ड के आधार पर श्रमबल से बाहर हो जाया करते थे जबकि वर्ष के कुछ हिस्से के दौरान उन्हें सामान्य आधार पर नियोजन हासिल रहा करता था।

  एनएसएसओ के 61वें दौर के सर्वेक्षण में ऐसे सभी लोगों को आनुषंगिक प्रस्थिति वाले श्रमिक माना गया जो या तो बेरोज़गार थे या श्रमबल से बाहर थे लेकिन जिन्होंने सन्दर्भ वर्ष के दौरान कम से कम 30 दिनों तक कार्य किया था। इस प्रकार, यूपीएसएस एक मिश्रित (संकर) संकल्पना है जिसमें 'अधिक समय तक' वाले मापदण्ड के साथ-साथ कार्य की प्रस्थिति को भी सम्मिलित किया जाता है।

- **अद्यतन साप्ताहिक प्रस्थिति (सीडब्ल्यूएस) :** अद्यतन साप्ताहिक प्रस्थिति (सीडब्ल्यूएस) की संकल्पना भारत में सन् 1970 से पूर्व भी श्रम सर्वेक्षणों में प्रयुक्त की जाती रही है, जब दन्तेवाला समिति की सिफारिशें उपलब्ध हुईं थीं। ऐसा मुख्यतः इसलिए किया गया था क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) जैसे अभिकरण अंतर्राष्ट्रीय तुलनाओं हेतु रोज़गार और बेरोज़गारी की दरों के प्राक्कलन के लिए साप्ताहिक सन्दर्भ अवधि का प्रयोग किया करते थे। सीडब्ल्यूएस के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को श्रमबल में शामिल तब माना जाता है जब उसने सर्वेक्षण की तारीख से एक सप्ताह पूर्व की

सन्दर्भ अवधि में कम से कम एक घण्टे तक या तो कार्य किया हो या फिर उसने काम खोजा हो और/अथवा कार्य करने के लिए, कम से कम, उपलब्ध तो रहा ही हो।

सीडब्ल्यूएस के तहत किया जाने वाला वर्गीकरण पिछले सात दिनों के दौरान किसी व्यक्ति की प्रस्थिति पर आधारित है। 'कार्यरत' को 'कार्यरत नहीं, किन्तु कार्य को खोजने वाले या कार्य के लिए उपलब्ध' पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त, 'कार्यरत' और 'कार्यरत नहीं, किन्तु कार्य को खोजने वाले या कार्य के लिए उपलब्ध', इन दोनों को 'न तो कार्यरत और न ही कार्य के लिए उपलब्ध' पर प्राथमिकता दी जाती है। सीडब्ल्यूएस का लाभ यह है कि इसमें सात दिनों की अपेक्षाकृत एक छोटी-सी सन्दर्भ अवधि का प्रयोग किया जाता है और यहाँ व्यतिक्रमों के तुलनात्मक रूप से कम होने की उम्मीद की जाती है। इसके अतिरिक्त, मौसमी प्रतिमानों (पैटर्न्स) की पहचान करने के लिए किए जाने वाले उप-दौरों (sub-rounds) द्वारा किए जाने वाले सरल वर्गीकरण और विश्लेषण की सुविधा भी यहाँ उपलब्ध रहती है। सीडब्ल्यूएस का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि इसमें बहुत ही कम कार्य करने वाले लोगों को, यहाँ तक कि सन्दर्भ सप्ताह के दौरान मात्र एक घण्टा कार्य करने वाले लोगों को भी कार्यबल और श्रमबल में शामिल लोगों के रूप में वर्गीकृत कर दिया जाता है।

- **अद्यतन दैनिक प्रस्थिति (सीडीएस)** : दन्तेवाला समिति ने कार्य की गहनता के अध्ययन हेतु अद्यतन दैनिक प्रस्थिति (सीडीएस) दरों के उपयोग को प्रस्तावित किया था। इनकी गणना सन्दर्भ सप्ताह के 14 अर्द्ध-दिवसों के लिए दर्ज किए जाने वाले रोज़गार और बेरोज़गारी की सूचनाओं के आधार पर की जाती है। सात दिनों के दौरान रोज़गार प्रस्थितियों को आधी या पूरी गहनताओं में दर्ज किया जाता है। एक घण्टे से अधिक किन्तु चार घण्टों से कम को 'आधी गहनता' तथा चार घण्टों या चार घण्टों से अधिक को 'पूर्ण गहनता' माना जाता है।

  इस दृष्टिकोण का एक लाभ यह है कि यह पूर्ण सूचना पर आधारित है; यह समय की उपयोगिता को अपने भीतर समाहित करता है; और श्रमबल को श्रमबल से बाहर पर प्राथमिकता प्रदान नहीं करता। यहाँ सीमान्त मामलों को छोड़कर, कार्य को बेरोज़गारी पर प्राथमिकता नहीं दी जाती। इसकी एक कमी यह है कि यह व्यक्ति-दिवसों से सम्बन्धित है, व्यक्तियों से नहीं।

आइए, अब इस बारे में चर्चा करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) 'कार्य' को किस रूप में देखता है। आईएलओ ने 'सभ्य (Decent) कार्य' की संकल्पना का विकास किया है। सभ्य कार्य में लोगों के कामकाजी जीवन की आकांक्षाएँ शामिल होती हैं।

सभ्य कार्य को आईएलओ द्वारा परिभाषित तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा स्वीकृत किया गया है, जिसका तात्पर्य है स्वतन्त्रता, न्यायसंगतता, सुरक्षा और मानवीय गरिमा की दशाओं में महिलाओं और पुरुषों द्वारा किए जाने वाले उत्पादक कार्य।

सभ्य कार्य में ऐसे कार्य करने के अवसर शामिल हैं जो उत्पादक हो और उचित आय दिलाता हो; कार्यस्थल पर सुरक्षा तथा श्रमिकों और उनके परिवारों को सामाजिक संरक्षण उपलब्ध कराता हो; व्यक्तिगत विकास के लिए बेहतर सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता हो तथा सामाजिक एकीकरण को प्रोत्साहित करता हो; लोगों को यह स्वतन्त्रता देता हो कि वे अपनी चिन्ताओं को अभिव्यक्त कर सकें, संगठित हो सकें और अपने जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों में सहभागिता कर सकें; तथा सबके लिए समान अवसरों और समान

महिलाओं के कार्य को संकल्पनाबद्ध करना

व्यवहार की गारण्टी देता हो। 'सभ्य कार्य का एजेण्डा' एक संतुलित और एकीकृत कार्यक्रम मूलक दृष्टिकोण है ताकि भूमण्डलीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, उपक्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर सभी के लिए पूर्ण और उत्पादक रोज़गार तथा सभ्य कार्य के लक्ष्य को पूरा किया जा सके। इसके चार स्तम्भ हैं, जिनके नाम हैं :

- रोज़गार सृजन और उद्यमों का विकास;
- सामाजिक संरक्षण;
- कार्य के सम्बन्ध में मानक और अधिकार;
- प्रशासन (गवर्नेंस) और सामाजिक संवाद

(**स्रोत** : आईएलओ एफएओ टूलकिट फ़ॉर मेनस्ट्रीमिंग एम्प्लॉयमेण्ट एण्ड डीसेण्ट वर्क)

विश्वभर में महिलाएँ घरों, कारखानों, खेतों, जंगलों, खानों और कार्यालयों में भुगतान वाले, अल्प-भुगतान वाले और बिना भुगतान वाले कार्य करती रही हैं। भोजन पकाने, साफ-सफाई और देखभाल करने के अतिरिक्त महिलाओं की एक विशाल संख्या ईंधन, चारा और जल एकत्रित करने, पशुपालन, घरेलू पेड़-पौधों की देखभाल करने और मुर्गीपालन जैसे कार्यों को भी निष्पादित करती है। ये सारी गतिविधियाँ पारिवारिक संसाधनों को बढ़ाती हैं। यदि महिलाएँ इन कार्यों को न करें तो इन वस्तुओं/सेवाओं को खरीदना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, महिलाएँ बच्चे भी पैदा करती हैं और इस प्रकार अर्थव्यवस्था के लिए भविष्य हेतु श्रमशक्ति उपलब्ध कराती हैं। (पटेल, 2014)।

बॉक्स सं. 1.4

भारत, सरकार के शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के एक संकल्प द्वारा महिलाओं की परिस्थिति पर 22 सितम्बर 1971 सीएसडब्ल्यूआई (CSWI) समिति का गठन किया गया था। तत्कालीन केन्द्रीय समाज कल्याण मन्त्री डॉ. फूलरेणु गुहा इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति का गठन भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति में आए उन परिवर्तनों की समीक्षा करने के लिए किया गया था जिन परिवर्तनों की उम्मीद संवैधानिक समानता, सरकारी नीतियों और सामाजिक सुधारों के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद की गयी थी। इस समिति की नियुक्ति उस समय की गयी थी जब विकास को लेकर मोहभंग बढ़ता जा रहा था और लगातार विभिन्न देशों में महिलाओं के आन्दोलनों द्वारा इसे प्रश्नांकित किया जा रहा था। इन आन्दोलनों के दबावों के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा (1967) द्वारा महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन पर घोषणा स्वीकार करनी पड़ी। इसके पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ का एक निर्णय आया जिसमें अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष (1975) के दौरान सदस्य देशों से अपने-अपने यहाँ महिलाओं की प्रस्थिति को लेकर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अनुरोध किया गया था।

01 जनवरी, 1975 को शिक्षा एवं समाज कल्याण मन्त्री के सम्मुख "समता की ओर" (Towards Equality Report) नामक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया तथा इसे 18 फरवरी, 1975 को संसद के सामने प्रस्तावित किया गया। समिति के निष्कर्षों पर दीर्घकालीन चर्चा के उपरान्त भारतीय संसद ने सर्वसम्मति से एक संकल्प स्वीकार किया तथा भारतीय महिलाओं द्वारा लगातार झेली जा रही निर्योग्यताओं और भेदभाव को समाप्त करने के लिए सरकार को इस सम्बन्ध में प्राधिकृत किया कि वह व्यापक विधायी और प्रशासनिक उपायों के सम्बन्ध में निर्णय ले सके। अनेक मामलों में यह प्रतिवेदन मील

का पत्थर था और इसका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं के विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हुए बहुत सारी युक्तियों की शुरुआत की गयी। प्रतिवेदन के पश्चात जो प्रमुख नीतिगत पहलें प्रारम्भ की गयीं, उनमें शामिल थीं – समाज कल्याण मन्त्रालय के अन्तर्गत महिला कल्याण और विकास विभाग का गठन, महिलाओं के लिए एक राष्ट्रीय कार्ययोजना का निर्धारण तथा महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण विधायनों को लागू करना। लेकिन इन सबसे परे, सीएसडब्ल्यूआई के प्रतिवेदन का प्रमुख प्रभाव महिलाओं की भूमिका और प्रस्थिति के सम्बन्ध में सरकार, महिला संगठनों, अकादमिक लोगों, जनसंचार माध्यमों और संबंधित व्यक्तियों की समझ पर पड़ा।

इस इकाई के पिछले कुछ अनुभागों को पढ़कर आपने जो कुछ सीखा है, अब उसके मूल्यांकन का समय है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) जनगणना, एनएसएसओ और आईएलओ कार्य को किस प्रकार परिभाषित करते हैं?

2) निम्नलिखित के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखिए :

   i) मुख्य, सीमान्त और अन्य श्रमिक

   ii) यूपीएस, यूपीएसएस, सीडब्ल्यूएस और सीडीएस

आइए, अब इस सम्बन्ध में पढ़ें कि पितृसत्तात्मक समाज में श्रम के जेंडर विभाजन ने महिला श्रमिकों की प्रस्थिति और दशा को किस प्रकार प्रभावित किया है।

1.4 जेंडर भूमिकाएँ : श्रम का जेंडर विभाजन

अलग-अलग समाज और संस्कृतियाँ, पुरुषों और महिलाओं को अलग-अलग भूमिकाएँ और दायित्व सौंपते हैं। वर्तमान समय में, हालाँकि विकसित राष्ट्रों में, पुरुषों और महिलाओं को सौंपी जाने वाली अलग-अलग भूमिकाओं और दायित्वों के बीच की सीमा रेखा बहुत पतली और धुँधली हो रही है। लेकिन, जो राष्ट्र इतने विकसित नहीं हैं और विकासशील हैं, वहाँ पुरुषों के पास अधिक दृश्यमान और पहचानी जाने वाली भूमिकाएँ होती हैं क्योंकि महिलाओं की तुलना में पुरुषों की सम्बद्धता उत्पादक और भुगतान वाले कार्यों से अधिक गहरी होती है। महिलाएँ अधिकांशतः ऐसे कार्यों में संलग्न रहती हैं जो दिखाई नहीं देते और इसलिए इन कार्यों का आर्थिक रूप से लेखा-जोखा नहीं लिया जाता।

पुरुषों की भूमिकाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में अत्याधिक होती हैं जबकि महिलाओं की भूमिकाएँ उन्हें पीछे करके घर-परिवार के निजी क्षेत्र में स्थान देती हैं।

हालाँकि परिवार मानव संसाधनों के उत्पादन का केन्द्र है। यह परिवार ही है, जिसके भीतर मानव संसाधनों को प्राथमिक रूप से उत्पादित किया जाता है और उनका रखरखाव किया जाता है। कुल मिलाकर, परिवार के भीतर मनुष्यों का उत्पादन 'निजी रूप से' किया जाता है। इसके अतिरिक्त, उत्पादन में महिलाएँ एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। जीव-वैज्ञानिक कारणों से, प्रजनन का भार महिला पर ही पड़ता है। और, घरेलू श्रम के जेंडर-अनुसार जेंडर विभाजन के कारण मानव संसाधनों का रखरखाव भी महिलाओं का ही प्रमुख दायित्व बन जाता है।

महिलाएँ कार्य करती हैं और उन्होंने हमेशा कार्य किया है। हालाँकि कार्य के बारे में वृहत्तर और सामान्य समझ, जो कार्य को श्रम-बाज़ार से और प्रगणन से जोड़ती है, वह समझ महिलाओं को भी और समाज में उनके योगदान दोनों को बाहर ही रखती है – 'कार्य' के अन्तर्गत जो चीजें शामिल होती हैं, उन चीजों का संकल्पनाबद्धीकरण महिलाओं द्वारा किए गए कार्य के मूल्य और कीमत को निर्धारित करता है। महिलाओं के कार्य से सम्बन्धित मुद्दे महिलाओं की गतिविधियों से दोनों स्तरों घर के भीतर भी और घर के बाहर भी पर जुड़े हुए हैं। हालाँकि अनेक मुद्दे घरों के भीतर स्थापित कर दी गयी संरचनाओं से उत्पन्न होते हैं। इसलिए घर में महिलाओं की उस भूमिका के विश्लेषण से प्रारम्भ करना महत्वपूर्ण हो जाता है जो बहुत सूक्ष्मतापूर्वक भेदभावों को आकार प्रदान करती है। घर के श्रम बाज़ार में महिलाओं को इन भेदभावों का सामना करना पड़ता है।

पितृसत्ता की विचारधारा श्रम के लैंगिक विभाजन (Sexual division) को निर्धारित करती है। इसके अन्तर्गत महिलाओं के मुख्य दायित्व के रूप में उन्हें घर-परिवार के सभी सदस्यों – पुरुषों, बच्चों, वृद्धजनों और बीमार लोगों – की देखभाल करने का दायित्व सौंपा जाता है। किसी विस्तृत परिवार में पदसोपान या श्रेणी के आधार पर परिवार के प्रत्येक सदस्य को एक अलग कार्य प्रस्थिति प्रदान की जाती है और इसी के अनुसार उस सदस्य को कार्य का भार सौंपा जाता है। विस्तृत परिवारों में स्वयं महिलाओं के बीच भी श्रेणी के आधार से अलग-अलग महिला को अलग-अलग स्थान प्रदान किया जाता है। स्थान प्रदान करने की यह प्रक्रिया उस प्रक्रिया से भिन्न होती है जिसके अन्तर्गत सिर्फ पुरुषों की दुनिया में अलग-अलग पुरुषों को या सभी सदस्यों (पुरुषों और महिलाओं को मिलाकर) को समाज व परिवार में अलग-अलग स्थान प्रदान किया जाता है। महिलाएँ घर से बाहर निकलकर कामकाज करने के लिए भौगोलिक रूप से कितनी दूर तक जाएँगी, इसका निर्धारण जाति, वर्ग, नृजातीयता, उम्र और धर्म के आधार पर किया जाता है।

आइए, अब इसका अध्ययन करते हैं कि महिलाएँ किस तरीके के कार्य निष्पादित करती हैं और किस तरह इन्हें श्रेणीकृत किया जाता है।

1.5 महिलाओं द्वारा निष्पादित कार्य के प्रकार

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही तरीकों से महिलाओं ने राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास में सदैव अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रत्यक्ष तरीके से देखें तो महिलाओं ने घरों से बाहर कार्य करके और अप्रत्यक्ष तरीके से देखें तो श्रम की आपूर्ति और उसका रखरखाव करके महिलाओं ने ऐसा किया है। लेकिन विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के राष्ट्रों में महिलाएँ संचयी असमानता से ग्रस्त रही हैं। यह असमानता समाज में महिलाओं की प्रस्थिति को विनियमित करने वाले भेदभावमूलक सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक व्यवहारों का परिणाम होती है।

महिलाएँ आमतौर पर घर-परिवार के जो दैनिक कार्य करती हैं, उनके कारण परिवार में किसी आय का अर्जन नहीं होता। इन कार्यों को महिलाओं की स्वाभाविक भूमिका के रूप में माना जाता है। ये कार्य महिलाओं की पुनरुत्पादक भूमिकाओं और सामुदायिक संसाधनों के प्रबन्धन की भूमिकाओं से सम्बन्धित होते हैं। चूँकि ये भूमिकाएँ आर्थिक रूप से उत्पादक नहीं होतीं, इसलिए न तो इनका संज्ञान लिया जाता है और न ही इन्हें कोई मूल्य प्रदान किया जाता है। कई समाजों में ऐसा भी है कि महिलाएँ उत्पादक कार्य तो करती हैं लेकिन फिर भी इसके लिए उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता क्योंकि इन कार्यों को घर-परिवार के दायरे तक ही सीमित मान लिया जाता है। इसलिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं के योगदानों को लेखे में शामिल करने लायक नहीं समझा जाता और ये कार्य अदृश्य बने रह जाते हैं।

महिलाओं द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है :

- उत्पादक/अनुत्पादक कार्य
- दृश्य/अदृश्य कार्य
- भुगतान वाले/बिना भुगतान वाले कार्य
- आर्थिक/सामाजिक रूप से उत्पादक कार्य

बिना भुगतान वाले कार्य को उस कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। यह दो श्रेणियों का हो सकता है ;

- बिना भुगतान वाले ऐसे कार्य जो संयुक्त राष्ट्र की राष्ट्रीय लेखा प्रणाली (एसएनए) की उत्पादन परिसीमा के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसे कार्य जो राष्ट्रीय आय के लेखे के दायरे में आच्छादित किए जाते हैं। इसे 'बिना भुगतान वाले एसएनए कार्य' के रूप में भी सन्दर्भित किया जाता है। इसमें जीवन-निर्वाह के लिए किया जाने वाला उत्पादन, पारिवारिक उद्यम में नियोजित परिवार के सदस्यों द्वारा किए जाने वाले बिना भुगतान वाले कार्य तथा ईंधन और चारा एकत्रित करने जैसे अनेक कार्य शामिल होते हैं।

- बिना भुगतान वाले ऐसे कार्य जो उत्पादन परिसीमा से तो बाहर रहते हैं किन्तु सामान्य उत्पादन परिसीमा के दायरे में आते हैं। इन्हें 'बिना भुगतान वाले गैर-एसएनए कार्य' के रूप में सन्दर्भित किया जाता है। इसमें घर का प्रबन्धन, देखभाल सम्बन्धी गतिविधियाँ और बिना भुगतान वाली सामुदायिक सेवाएँ सम्मिलित होती हैं।

बॉक्स सं. 1.5

कार्रवाई के लिए बीजिंग मंच, संयुक्त राष्ट्र-एसएनए 1993, मानव विकास रिपोर्ट 1995 और कुछ अन्य वैश्विक दस्तावेजों ने 'कार्य के सभी प्रकारों' पर आँकड़े एकत्रित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इसमें पारिश्रमिक वाले और बिना पारिश्रमिक वाले तथा एसएनए और गैर-एसएनए कार्य शामिल हैं। इन आँकड़ों को एकत्रित और आच्छादित करने के लिए उपरोक्त दस्तावेजों में समय के उपयोग से जुड़े सर्वेक्षण को प्रस्तुत किया गया है।

इन आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए भारत सरकार ने छह राज्यों को आच्छादित करते हुए अपना प्रथम राष्ट्रीय समय उपयोग सर्वेक्षण 1998-99 में कराया था। इन छह राज्यों के लिए बिना भुगतान वाले गैर-एसएनए कार्य का मूल्यांकन भी किया गया था।

नारीवादी विद्वान यह सवाल उठाते हैं कि घरेलू कामकाज में महिलाओं की संलग्नता दमनकारी है क्योंकि इसका कोई भुगतान नहीं किया जाता और भुगतान न किए जाने के कारण यह कामकाज अदृश्य बना रह जाता है। लेकिन घरेलू श्रम पर बहस 'कार्य' और 'स्वभाव' के बीच सीमारेखा खींचने पर टिकी हुई है क्योंकि बच्चे पालना, घर की देखरेख करना, बच्चों को पढ़ाना आदि ऐसी भूमिकाएँ और गतिविधियाँ हैं कि इन्हें जब किसी महिला द्वारा निष्पादित किया जाता है तब यह कह दिया जाता है कि यह तो महिलाओं की 'पालन-पोषण करने वाली भूमिकाओं' के अन्तर्गत आता है, न कि 'कार्य' के अन्तर्गत। चूँकि गैर-बाज़ार गतिविधि में 'कार्य' को 'गैर-कार्य (non work)' से या 'आवश्यक' सामाजिक श्रम को 'गैर-आवश्यक' सामाजिक श्रम से अलग करने का कोई स्पष्ट मापदण्ड नहीं है इसलिए यहाँ एक मनमाना तत्व शामिल हो जाता है जिसके कारण पुरुषों और महिलाओं के बीच जेंडरीकृत सौदेबाजियों पर निष्पक्षता के मानकों को लागू करना कठिन हो जाता है तथा कार्य 'मज़दूरीयुक्त' और 'मज़दूरीहीन' के बीच विभाजित बना रहता है। (बैरेट, 1980, सी. एफ. एमजीएसई-009, पुस्तिका-1, पृष्ठ-39)।

गतिविधि :

छिपे हुए (hidden) कार्य जिन्हें महिलाओं द्वारा निष्पादित किया जाता है लेकिन आमतौर पर इन्हें कार्य नहीं माना जाता के उदाहरणों के बारे में लिखिए।

आइए, अब इस विषय का अध्ययन करें कि महिलाओं द्वारा निष्पादित किए जाने वाले अनेक कार्य किस तरह लेखे-जोखे से बाहर बने रहते हैं या जिन्हें कैसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रगणित ही नहीं किया जाता।

1.6 महिलाओं के कार्य का प्रगणन

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा सन् 2008 के एक आंकलन के अनुसार आर्थिक रूप से सक्रिय प्रत्येक एक सौ पुरुषों पर आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाएँ सिर्फ 66.9 ही हैं। इससे भी आगे बढ़कर यह प्रतिवेदन इंगित करता है कि विश्वभर में महिलाओं द्वारा निष्पादित किए गए कार्य का अधिकांश हिस्सा (घरेलू कार्यों के अलावा) ऐसा है जो परिवार की आय में प्रत्यक्ष रूप से योगदान नहीं देता।

बॉक्स सं. 1.6

> आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं का अनुपात यूरोप और विकसित विश्व में सर्वाधिक है, जहाँ पर प्रत्येक एक सौ पुरुषों के सापेक्ष कार्यशील महिलाओं की संख्या 82 है। उत्तरी अफ्रीका और मध्य पूर्व निम्नतम अनुपातों को प्रस्तुत करते हैं जहाँ प्रत्येक एक सौ पुरुषों के सापेक्ष कार्यशील महिलाओं की संख्या क्रमशः 35 और 39 है (राइले, 2012, पृष्ठ-370)

यह देखा गया है कि श्रम का जेंडर विभाजन घर के भीतर तो एक बुनियादी अभिलक्षण था ही, घर के बाहर बाज़ार तक भी यह अभिलक्षण विस्तृत और व्याप्त था। रोज़गार के लिए महिलाएँ जब बाज़ार में जाती हैं तो उन्हें तीन तरीकों के भेदभाव का सामना करना पड़ता है :

- जो कार्य पुरुष करते हैं, उन्हीं कार्यों को करने के लिए आय में अन्तर;
- कुछ ऐसी नौकरियों में अत्यधिक भीड़ का एकत्रण, जिन्हें महिलाओं के अनुकूल माना जाता है; और
- कर्मचारियों के रूप में महिलाओं को रखने के विरुद्ध नियोजकों के सहज पूर्वाग्रह।

भारत में, सबसे पहले एक अध्ययन के माध्यम से घर का कार्य एक समस्या के रूप में सामने आया। इस अध्ययन ने उस **'दोहरे बोझ'** की तरफ ध्यान आकृष्ट किया था जिसका सामना महिलाओं को घर के कार्य में और बाज़ार सम्बन्धी कार्य में करना पड़ता है। वृद्ध, विकलांग और बीमार लोगों की देखभाल भी घर-परिवार में महिलाओं की ही जिम्मेदारी होती है। बाज़ार द्वारा संचालित की जाने वाली ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में, जिनमें सामाजिक सुरक्षा बहुत ही कम होती है या होती ही नहीं, **'देखभाल सम्बन्धी अर्थव्यवस्था'** (care economy) में महिलाओं का यह योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। देखभाल सम्बन्धी अर्थव्यवस्था और बाज़ार अर्थव्यवस्था के बीच के सम्पर्क की कड़ी अदृश्य हो जाती है, चूँकि इसका संज्ञान नहीं लिया जाता, इसलिए यह कड़ी महिलाओं के कार्य के योगदान को छिपा लेती है।

अनुभव के आधार पर यह जानने के प्रयत्न किए गए कि महिलाओं के कार्य वास्तविक रूप से हैं क्या और किस प्रकार ये कार्य अर्थव्यवस्था में योगदान देते हैं। आँकड़ों, आँकड़े एकत्रित करने की प्रक्रियाओं और आँकड़ों की प्रस्तुति के बीच के अन्तराल महिलाओं के कार्य को पूरक और द्वितीयक कार्य के रूप में देखने के प्रति पुरुषों के छिपे हुए पूर्वाग्रह को प्रतिबिम्बित करते हैं। सन् 1976-77 के अपने अग्रणी कार्य में देवकी जैन और मालिनी चन्द ने आँकड़े एकत्रित करने की प्रक्रियाओं में श्रमिकों के पारिश्रमिक के लिए घरेलू कार्य के निहितार्थों पर चर्चा की थी। महिलाओं के घरेलू कार्य को सुनिश्चित करने के लिए **'सूक्ष्म समय उपयोग'** (micro time care) अध्ययन भी कराए गए थे।

पहले के अनुभागों में आप पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर रोज़गार सम्बन्धी आँकड़ों के दो प्रमुख स्रोत हैं – प्रत्येक दस वर्ष पर कराया जाने वाला जनगणना सर्वेक्षण तथा राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएस)। समय के साथ-साथ, 'श्रमिकों' की गणना के लिए परिभाषाओं, सन्दर्भ अवधियों और प्रक्रियाओं में परिवर्तन आया है। इसलिए, महिलाओं के सम्बन्ध में रोज़गार की दर आँकड़े एकत्रित करने की परिभाषा और विधि के लिए अत्यधिक संवेदनशील पायी गयी है।

अल्प-प्रगणन का मुख्य कारण उस विचारधारा में अवस्थित रहा है जो 'पुरुष' को कमाने वाले सदस्य और 'परिवार का मुखिया' मानती है। इसका निहितार्थ यह है कि महिलाओं का कार्य द्वितीयक और पूरक है। इस संदर्भ में विशिष्ट रूप से, अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका की तरफ ध्यान आकृष्ट किया गया है। अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका के बारे में इस पाठ्यक्रम के खण्ड 3 की इकाइयों में आप और भी विस्तार से पढ़ेंगे।

बॉक्स सं. 1.7

जनगणना और एनएसएस के दौर एक ही श्रमबल को चित्रित नहीं करते क्योंकि 'कार्य' और 'श्रमिक' के लिए ये दोनों परिभाषाओं के अलग-अलग समुच्चयों का प्रयोग करते हैं।

एनएसएस और जनगणना द्वारा प्रस्तुत किए गए आंकलनों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाए गए हैं और सन्देह व्यक्त किए गए हैं। यह कहा जाता है कि अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिलाओं की संख्या को समग्र रूप से बहुत ही कम आँका गया है।

महिलाओं के श्रम के सम्बन्ध में सूचना के आधार को मजबूत बनाने की प्रक्रिया फिलहाल पूर्णता से बहुत दूर है। अनेक तरीके के स्रोतों के कारण, योजना बनाने और आँकड़ों को एकत्रित करने के प्रयासों की डिजाइन बनाने के स्तर पर लिए गए निर्णयों के कारण, तथा इसके साथ ही प्रसंस्करण, सारणीयन और प्रगणन के स्तर पर लिए गए निर्णयों के कारण भी अन्तराल उत्पन्न हो जाते हैं। जनगणना समस्त जनसंख्या का रेखाचित्र (प्रोफाइल) उपलब्ध कराती है जबकि एनएसएसओ विशाल नमूनों पर व्यापक आँकड़ों का समुच्चय उपलब्ध कराता है।

आइए, अब इस सम्बन्ध में पढ़ें कि महिलाओं के कार्य को अधिक दृश्यमान बनाना क्यों महत्वपूर्ण है। लेकिन आगे पढ़ने से पहले, पिछले दो अनुभागों के प्रति अपनी समझ का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित अभ्यास को करने का प्रयास करें :

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) घर के भीतर और घर से बाहर महिलाएँ किस प्रकार के कार्यों को निष्पादित करती हैं?

2) एसएनए और गैर-एसएनए में क्या अन्तर है?

निम्नलिखित अनुभाग इस तथ्य को केन्द्रित करता है कि महिलाओं द्वारा निष्पादित किए गए कार्य का दृश्यमान होना क्यों महत्वपूर्ण है।

1.7 महिलाओं के कार्य की दृश्यता का महत्व

महिलाओं के कार्य की दृश्यता को आंकड़ों में लेना उनके अधिकारों के दृष्टिकोण से तथा आंकलन की वास्तविकता और परिशुद्धता के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। महिलाओं के कार्य की अदृश्यता, अनुत्पादकता और बिना भुगतान वाला स्वरूप पूँजीवादी समाज में उन्हें हाशियाकृत स्थान पर धकेल देता है और उन्हें निम्नतर प्रस्थिति प्रदान करता है। इस प्रकार, एक तरफ, महिलाओं के कार्य की अदृश्यता नीतिगत निहितार्थों में चूक की दिशा में ले जाती है जहाँ महिलाओं के योगदान को हाशियाकृत बना दिया जाता है और इस कारण महिला एक 'आश्रित' आर्थिक इकाई बन जाती है। दूसरी तरफ, महिलाएँ ऐसे कार्य निष्पादित करती हैं जो पारिवारिक आय में प्रत्यक्षतः योगदान नहीं देते और इसका परिणाम यह होता है कि महिलाओं को दमन का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, संकल्पनात्मक के साथ-साथ परिचालन सम्बन्धी पूर्वाग्रहों के कारण महिलाओं द्वारा किया गया कार्य अदृश्य बना रहता है और इसका परिणाम यह होता है कि महिलाओं को **'दोहरी मार'** झेलनी पड़ती है। यहाँ तक कि महिलाएँ अगर निजी क्षेत्र से बाहर जाकर भी कार्य करती हैं तो उन्हें ऐसे क्षेत्रकों/सेवाओं में अवशोषित कर लिया जाता है जहाँ आर्थिक गतिविधि का लाभ महिलाओं के खाते में नहीं जाता।

आइए, इस स्थिति की चर्चा भारतीय सन्दर्भ में करें।

भारत में, यह समझने के लिए कि महिलाओं को क्यों और कहाँ रोज़गार मिलता है, किसी व्यक्ति को यह समझना पड़ेगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि की रूपरेखा क्या है। भारत में स्वतन्त्रा प्राप्त होते ही नियोजन (प्लानिंग) सामने आया और जिस प्रारूप को स्वीकार किया गया वह मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक आर्दश (मॉडल) था। राज्य और बाज़ार दो मजबूत संस्थाओं के रूप में उभरे जिनके विरुद्ध घर-परिवार को खड़ा होना था। समय के साथ-साथ नियोजन का पथ संवृद्धि को ऐसी दिशा में ले गया जहाँ महिलाओं को मुख्यधारा के रोज़गार परिचलन में अवशोषित नहीं किया जा सका। इसकी बजाय अनौपचारिक क्षेत्रों में, घर-परिवार आधारित पारम्परिक क्षेत्रकों में और जीवन निर्वाह के लिए की जाने वाली कृषि सम्बन्धी गतिविधियों में महिलाओं की भीड़ एकत्रित हो गयी। यह विडम्बना ही रही कि हमारी अर्थव्यवस्था के ये सभी क्षेत्र हमारी राष्ट्रीय लेखा प्रणाली में हाशिये पर ही बने रहे।

श्रमबल में महिलाओं की **'सांख्यिकीय अदृश्यता'** के कारणों को इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है :

- प्रतिवादी व्यक्ति का सांस्कृतिक पूर्वाग्रह कि आमतौर पर परिवार का पुरुष ही मुखिया होता है। यह मुखिया महिलाओं के घर से बाहर जाकर कार्य करने को अपने लिए शर्मनाक मानता है। इसका कारण यह होता है कि महिलाओं के बाहर कार्य करने के सही आँकड़े दर्ज होने की बजाय कम आँकड़े ही दर्ज हो पाते हैं।
- आँकड़ों के एकत्रण का पूर्वाग्रहग्रस्त होना, जहाँ साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति के पूर्वाग्रह आँकड़ों को एकत्रित करने में प्रविष्ट हो जाते हैं या फिर यह पूर्वाग्रह प्रश्नावली निर्मित करने वाले संकाय में भी निहित हो सकता है।
- घरेलू कार्य के वर्चस्व और अधिकता के कारण अन्य तरीके के कार्यों का अल्प-प्रतिवेदन ही हो पाता है।
- आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों में विपणन से पूर्व के और गैर-मौद्रिक स्तर पर महिलाओं के योगदान की अदृश्यता, जैसे कृषि, मुर्गीपालन, पशुपालन, कपास के बुनाई उद्योग और इसी तरह की अन्य गतिविधियों के मामले में होता है।
- अपने उपभोग के लिए किए जाने वाले उत्पादन का विक्रय हेतु किए जाने वाले उत्पादन के साथ मिला-जुला होना।

निम्नलिखित अनुभाग में आप इस सम्बन्ध में पढ़ेंगे कि नारीवादियों ने महिलाओं के कार्य के अवमूल्यन और समाज में उनकी योग्यता को कम आँकने के सम्बन्ध में किस प्रकार प्रश्न उठाए हैं। इस अवमूल्यन का परिणाम यह होता है कि राष्ट्र की आर्थिक संवृद्धि में महिलाओं के योगदान को कम आँका जाता है।

1.8 नारीवादी बहसें

समय के साथ-साथ नारीवादियों ने अनेक रूपावलियों (paradigms) के माध्यम से महिलाओं द्वारा किए गए कार्य को मूल्य प्रदान करने के प्रयास किए हैं। इस मूल्य के मापन के लिए विभिन्न विधियाँ अपनायी गयी हैं। आँकड़ों की प्रणाली को चुनौती दी गयी है तथा महिलाओं के कार्य को समाहित करने के लिए आँकड़ा संग्रहण की विधियों में परिवर्तन किए गए हैं।

यह साफ-साफ दिखता है कि चिरसम्मत (क्लासिकल) अर्थशास्त्रियों से शुरू करके राजनीतिक अर्थशास्त्रियों और उनके आलोचकों दोनों में एक बात समान है और वह है महिलाओं द्वारा किए गए श्रम के प्रति एक गहरा पूर्वाग्रह। दोनों विचारों के समर्थक यही मानते हैं कि मज़दूरी के एवज में किया जाने वाला श्रम ही पूँजीवाद के अन्तर्गत निष्पादित किए जाने वाले समस्त श्रम का मूल मापदण्ड है।

कार्ल मार्क्स चिरसम्मत राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के दायरे से बाहर अवश्य गए थे लेकिन वे भी घर-परिवार में शामिल बिना भुगतान वाले श्रम के दूसरे घटक को महसूस नहीं कर सके। महिलाओं के कार्य के मार्क्सवादी विश्लेषण ने इस कार्य को उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली से निकटतापूर्वक जोड़ दिया। कुछ प्रश्न जो उठाए गए थे, वे हैं :

- घर पर किया जाने वाला कार्य क्या उत्पादक है या अनुत्पादक है?
- जीव-वैज्ञानिक और सामाजिक दोनों प्रकार के श्रम के उत्पादन को हमें किस प्रकार समझना चाहिए?
- गृह कार्य (house work) के माध्यम से महिलाएँ क्या किसी तरीके के अधिशेष का उत्पादन करती हैं?

नारीवादियों ने इस विचारधारा को मार्क्सवादी ढाँचे से सम्बद्ध किया और दर्शाया कि श्रम का जेंडर विभाजन किस प्रकार घर के भीतर से लेकर घर के बाहर तक विस्तृत है। उन्होंने

दर्शाया कि महिलाओं ने जब घर से बाहर जाकर कार्य करना शुरू किया तो समान कार्य के लिए उन्हें कम वेतन मिलता है, कम वेतन देने वाले कुछ क्षेत्रों में महिलाओं की भारी भीड़ कार्य कर रही है, महिलाओं ने अक्सर पाया कि घर से बाहर भी उन्हें उसी तरीके के कार्य करने पड़ते हैं, जिस तरीके के कार्य वे घर में किया करती थीं तथा नियोजक महिलाओं के श्रम के विरुद्ध पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे।

होडी हार्टमैन और एन आर. मरुसेन (1980) ने समकालीन मार्क्सवादी सिद्धान्त और व्यवहार की एक नारीवादी आलोचना उपलब्ध करायी। ऐसी आलोचना परिवार के भीतर शक्ति, उत्पादन और विनिमय का एक आदर्श (मॉडल) उत्पन्न करती है तथा पूँजीवादी सामाजिक सम्बन्धों के लिए इसके परिणामों पर प्रकाश डालती है। इससे पितृसत्ता को समझने में मदद मिलती है।

सुधारवादी नारीवाद ने ग्रामीण महिलाओं की कार्य की दशाओं के अनेक अवस्थितिमूलक विश्लेषण प्रस्तुत किए जबकि समाजवादी नारीवादियों ने मज़दूरी के रूप (भुगतान) में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले श्रम की दशाओं पर, उत्पादन के विकेन्द्रीकरण पर और श्रम बाज़ार के अनौपचारिकीकरण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इनके अतिरिक्त, महिलाओं के कार्य के विश्लेषण के लिए वैकल्पिक रूपरेखा (फ्रेमवर्क) भी विकसित की गयी।

अमर्त्य सेन (1990) ने सौदेबाजी और हकदारी का शोध प्रस्तुत किया तथा 'सहयोगात्मक संघर्ष' की संकल्पना को पेश किया। हकदारियों के एक सिद्धान्त के साथ, सेन दर्शाते हैं कि महिलाओं के लिए घर से बाहर जाकर रोज़गार प्राप्त करने का अवसर उनके लिए एक महत्वपूर्ण चर के रूप में होता है जिससे महिलाओं को घर में वापस जाकर अपनी बेहतर स्थिति को दर्शाने का मौका मिलता है, खतरों से निपटने के लिए बेहतर योग्यता उत्पन्न होती है तथा परिवार की आर्थिक स्थिति में योगदान देने के लिए उन्हें अधिक 'योगदान देने वाला महसूस' किया जाता है।

1.9 कार्य को पुनःपरिभाषित करना

महिलाएँ और उनके कार्य पर की गयी चर्चा इसकी समीक्षा को अनिवार्य बना देती है कि किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की लेखा प्रणाली में कार्य को किस प्रकार परिभाषित और प्रक्षेपित किया जाता है। कार्य की संकल्पना को क्या 'घर से बाहर जाकर कार्य करने' और आय/भुगतान/मज़दूरी/मौद्रिक पारिश्रमिक अर्जित करने तक ही सीमित कर दिया जाना चाहिए।

यह एक सुस्थापित तथ्य है कि किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की विभिन्न गतिविधियों और उनके योगदान का संज्ञान न लेने के कारण महिलाओं की प्रस्थिति और जेंडर समानता संस्थाबद्ध और चिरायु हो जाती है। यह स्थिति जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी महिलाओं के और अधिक शोषण और दमन को बढ़ावा देती है। इस प्रकार महिलाएँ एक दुष्चक्र का शिकार हो जाती हैं जिसमें उनके श्रम का अवमूल्यन कर दिया जाता है और इस कारण उन्हें विकास और सशक्तीकरण के सभी मामलों और क्षेत्रों में हाशिये की तरफ धकेल दिया जाता है, चाहे वह राजनीतिक प्रक्रियाएँ हों, नीतियाँ हो, विधायन हो या राष्ट्र निर्माण का कोई अन्य क्षेत्र ही क्यों न हो।

नारीवादी बहसों और संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप के कारण महिलाओं के कार्य के क्षेत्र और महत्व की स्वीकार्यता व्यापक रूप से बढ़ी है। जेंडर विश्लेषण के अभाव तथा सूक्ष्म स्तर पर श्रम में महिलाओं की सहभागिता के सम्बन्ध में जेंडर रूप से अलग-अलग आँकड़ों की

अनुपलब्धता महिलाओं के सन्दर्भ में 'कार्य' को पुनःपरिभाषित करने के सवाल से निपटने में अपर्याप्तता को सामने लाती हैं। कार्य की एक 'समग्र परिभाषा' देने के लिए निम्नलिखित पहलुओं को कार्य की संकल्पना में जोड़ना आवश्यक है :

- व्यवसायों की वे श्रेणियाँ जो महिलाओं के लिए विशिष्ट हैं, उन श्रेणियों को शामिल करने के लिए कार्य की परिभाषा को विस्तृत बनाना;
- कार्य की सांस्कृतिक, क्षेत्रीय और मौसमी प्रकृति को आच्छादित करने के लिए आर्थिक गतिविधि; और
- समय और पारिश्रमिक के पदों में महिलाओं के बिना भुगतान वाले कार्य का आंकलन करने के लिए क्रियाविधि।

कार्य को पुनःपरिभाषित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जिन उपायों को प्रस्तुत किया गया है, आइए उनमें से कुछ पर एक दृष्टि डालते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर, 'कार्य' की परिभाषा में समय-समय पर सुधार किया गया है ताकि कामकाजी महिलाओं के आधार को बढ़ाया जा सके।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, कुछ कदम उठाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं :

- व्यवसाय के अंतर्राष्ट्रीय मानक के वर्गीकरण (ISCO) को फिर से देखने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने सन् 1985 में एक अभिसमय सम्पन्न किया था
- कृषि जनगणना के वैश्विक कार्यक्रम के लिए दिशानिर्देशों को परिवर्तित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र, खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) द्वारा किए गए प्रयास।

(बुलक, 1994, एमजीएसई-009, पुस्तिका-1, पृष्ठ-16 पर)

1.10 सारांश

महिलाओं का कार्य बाज़ार के लिए हो सकता है या परिवार के सदस्यों के उपभोग के लिए हो सकता है। बाज़ार के लिए किए जाने वाले कार्य को घर की चारदीवारी के भीतर रहकर या घर से बाहर जाकर भी किया जा सकता है। महिलाओं के कार्य को आर्थिक रूप से पारिश्रमिक मिल सकता है या यह भी हो सकता है कि यह कार्य ऐसी वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित करता हो, जिन्हें अन्यथा बाज़ार से ही खरीदना पड़ता। उनका कार्य घर-परिवार के भीतर मनुष्यों के उत्पादन और रखरखाव की दिशा में विशाल मात्रा में योगदान देता है।

महिलाओं के न सिर्फ आर्थिक योगदानों का, बल्कि उनके सामाजिक योगदानों का भी संज्ञान लेना और उन्हें मूल्य प्रदान करना आवश्यक है; जैसे – बच्चों, बीमार लोगों और वृद्धजनों की देखभाल करना या ऐसी अन्य गतिविधियाँ जिन्हें महिलाएँ परिवार और समुदाय के लिए करती हैं।

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) जनगणना और एनएसएसओ (NSSO) से जुटाई गयी जानकारी के अनुसार आय और कार्य की धारणा पर चर्चा कीजिए। अपने तर्क के आधार पर उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

2) कार्य के लिए पारिश्रमिक के सम्बन्ध में अपने वर्तमान स्वरूप में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण महिलाओं के विरुद्ध किस प्रकार पूर्वाग्रहग्रस्त हैं, चर्चा कीजिए।

3) महिलाओं के कार्यों के सम्बन्ध में नारीवादियों के परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिए।

1.12 संदर्भ

Abraham, V. (2013) Missing Labour or Consistent 'De-Feminisation'? Economic and Political Weekly, 48 (31).

Deshmukh, Ranadive Joy (2002) *Women's Work and Family Strategies in South and South-East Asia.* New Delhi: Center for Women's Development Studies and Rainbow.

Hartmann, Heidi I. and Markusen, Ann R.(1980) *Women as a Reserve Army of Labour: A Critique*. Review of Radical Political Economics, 15(1), Spring.

Himanshu (2011) Employment Trend in India: A Re-examination, Economic and Political Weekly, 46(37).

IGNOU (2014).Gender Issues in Work, MGSE-009, Block 1 Unit 2

Jain, Devaki (1985) *The Household Trap. A Report on a Field Survey of Female Activity Patterns,* in Devaki Jain and Nirmala Banerjee (Eds), The Tyranny of the Household. Investigative Essays on Women's Work. New Delhi: Shakti Books.

Krishnaraj, Maithreyi (2000) Women's Perspectives on Public Policy in India. Gender, Technology and Development. May- August.

Mazumdar, I. and Neetha, N. (2011) Gender Dimensions Employment Trends in India, 1993-94 to 2009-10, EPW, XLVI, 43

National Sample Survey Office (2006) Employment and Unemployment Situation in India 2004-05, Part 1, 61st Round.

NSSO(2011) Key Indicators of Employment and Unemployment in India 2009-10, 66th Round.

NSSO(2013) Key Indicators of Employment and Unemployment in India 2011-12, 68th Round.

Patel, Vibhuti (2014) Economics of Gender and Development, Mumbai: Centre for Distance Education, SNDT Women's University.

Quick, Paddy (1977) *The Class Nature of Women's Oppression*. Review of Radical Political Economics, 9 (3), Fall.

Sen Amartya (1999) Development *as Freedom.* New Delhi: Oxford University Press.

Shaw, Abhishek (2013) Comparing NSSO's Employment Surveys-A Methodological Note, Economic and Political Weekly, 48(30).

http://www.fao-ilo.org/fileadmin/user_upload/fao_ilo/pdf/FAQs/Definitions_2_pdf accessed on 21st July, 2014.

http://www.ilo.org/global/about-the-ilo/decent-work-agenda/lang—de/index.htm accessed on 22nd July, 2014.

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Deshmukh, Ranadive Joy (2002) *Women's Work and Family Strategies in South and South-East Asia.* New Delhi: Center for Women's Development Studies, and Rainbow.

Hartmann, Heidi I. and Markusen, Ann R.(1980) *Women as a Reserve Army of Labour: A Critique*. Review of Radical Political Economics, 15(1), Spring.

इकाई 2 उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य

संरचना **रजनी आर. मेनन**

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 पारम्परिक विमर्श - महिलाएँ और कार्य

2.4 सामयिक विमर्श - नारीवादी अर्थशास्त्र

2.5 उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य

2.5.1 महिलाओं के उत्पादक कार्य

2.5.2 पुनरुत्पादक कार्य

2.6 संचय, भुगतान वाले कार्य और बिना भुगतान वाले देखभाल के कार्यः नारीवादी विमर्श

2.7 मापन और मूल्यांकन की आवश्यकताः उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य

2.8 मापन के अंतर्राष्ट्रीय मानक

2.8.1 बिना भुगतान वाले कार्यों के मूल्यांकन की पद्धति

2.8.2 आँकड़ों के स्रोत

2.8.3 सार्वजनिक निवेश के लिए समय के उपयोग से जुड़ी सांख्यिकी निहितार्थ

2.9 सारांश

2.10 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

2.11 सन्दर्भ

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में आपने पढ़ा कि 'कार्य' को कैसे परिभाषित और अवधारणाबद्ध किया जाता है भारत के भीतर और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आंकड़ों की विभिन्न पद्धतियों के द्वारा उसे किस तरह वर्गीकृत किया गया है। अब आप पढ़ेंगे कि महिलाओं के उत्पादक एवं पुनरुत्पादक, दोनों, कार्यों के अवमूल्यन में नारीवादी अर्थशास्त्रियों ने कैसे तर्क किया है। इस इकाई का प्रारंभ महिलाओं के कार्यों के संदर्भ में पारम्परिक और समकालीन चर्चाओं से परिचित कराने से होता है। इसके बाद का अनुभाग यह बताता है कि महिलाओं के उत्पादन कार्यों में क्या-क्या शामिल है और महिलाओं द्वारा किए गये पुनरुत्पादक कार्य कैसे बाज़ार की गतिविधियों एवं उत्पादन की प्रक्रिया में योगदान देते हैं।

इस इकाई के अगले अनुभाग में आप खासकर विकासशील अर्थव्यवस्था और तीसरी दुनिया के देशों में अधिकतर महिलाओं द्वारा अंजाम दिये जाने वाले वैतनिक या देखभाल के अवैतनिक कार्यों के संदर्भ में नारीवादी विमर्शों के बारे में पढ़ेंगे।

इस इकाई के अंत में आप उत्पादक एवं पुनरुत्पादक कार्यों की माप एवं मूल्यांकन के महत्व और ज़रूरत के बारे में पढ़ेंगे। इसके बाद आप महिलाओं के कार्यों को मापने की अंतर्राष्ट्रीय पद्धतियों के बारे में जानेंगे।

आगे बढ़ने से पहले, इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्यों के बारे में जान लें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप सक्षम होंगे :

- महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों के महत्व का वर्णन करने में;
- महिलाओं द्वारा किये गये कार्यों के मूल्यांकन में नारीवादी परिप्रेक्ष्य को समझाने में; और
- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के कार्यों एवं योगदानों का मूल्य निर्धारित करने की महत्वपूर्ण पद्धतियों की चर्चा करने में।

2.3 पारम्परिक विमर्श – महिला और कार्य

महिलाओं और कार्य से सम्बन्धित प्रारंभिक विमर्शों को अर्थशास्त्र और उसकी सैद्धांतिक पृष्ठभूमि की तह में जाकर देखा जा सकता है। पारम्परिक आर्थिक सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि परिवार एक बुनियादी आर्थिक इकाई है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र प्रतिनिधि है और उसके पास तर्कसंगत विकल्प हैं। कार्य के दो क्षेत्र हो सकते हैं – आर्थिक और घरेलू. आर्थिक क्षेत्र क्रेता, विक्रेता और बाज़ार पर केन्द्रित है, जबकि घरेलू क्षेत्र उन विविध अवैतनिक कार्यों पर टिका है जो आर्थिक क्षेत्र के संचालन के लिए आवश्यक हैं। बाज़ार में जिन वस्तुओं को बेचा जाता है, उन्हें सिर्फ उत्पादन के रूप में गिना जाता है और इसलिए घरेलू क्षेत्र आर्थिक क्षेत्र के दायरे से बाहर था। एक तार्किक (rational) व्यक्ति एक उत्पादक के तौर पर अधिकतम मुनाफा कमाता है और एक उपभोक्ता के तौर पर अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करता है।

आर्थिक क्षेत्र में, 'कार्य' वह है जिससे ऊर्जा की कोई भी गतिविधि, व्यय या जिससे अन्य लोगों के लिए सेवाओं और मूल्य देने वाले उत्पादों का उत्पादन होता है। हालाँकि 'कार्य' बिना किसी मज़दूरी, वेतन, या आय के संपन्न हो सकता है। आर्थिक संदर्भों में अगर बात करें, तो श्रम बाज़ार के कार्य सिर्फ मज़दूरी के लिए किये जाते हैं, जिसे उत्पादन शब्द के साथ फिर से जोड़ दिया जाता है। कोई कार्य, सिर्फ और सिर्फ, तभी उत्पादक है जब उससे मुनाफ़ा पैदा हो। इस तर्क से, अगर कोई पुरुष अपना भोजन तैयार करने वाली महिला से शादी करता है तो राष्ट्रीय आय में कमी आयेगी क्योंकि खाना बनाने के लिए पत्नी को वेतन नहीं दिया जाता।

पूंजीवादी व्यवस्था महिलाओं को महज सस्ते श्रम और एक सुविधाजनक स्रोत और **'श्रमिकों की एक आरक्षित फौज'** के तौर पर देखता है जिसे उत्पादन के किसी क्षेत्र विशेष में श्रमिकों की कमी होने पर प्रयोग में लाया जाये और ज़रूरत खत्म होने पर उसे फिर से त्याग दिया जाये (इसके बारे में आप पहले ही एमडब्ल्यूजी-002 खंड 2, इकाई 1 में पढ़ चुके हैं)। ऐसी स्थिति हमें दोनों विश्वयुद्ध के समय दिखाई दी, जब कारखानों में महिलाओं को सेना में बुला लिए गये पुरुषों की जगह लगाया और लड़ाई खत्म होते ही उन्हें वापस घर भेज दिया गया।

वर्ष 1950 एवं 1960 के दशक में पूंजीवादी उत्थान के दौरान महिलाओं को कार्यस्थल में एक बार फिर से प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। तब उनकी भूमिका सस्ते श्रम के एक भंडार के तौर पर प्रवासी मज़दूरों के समान थी। अपने पूरे इतिहास में, पूंजीवाद मांग के अनुरूप श्रम की आपूर्ति के प्रतिमान को बदलने में निपुण साबित हुआ है, और ऐसा खासकर महिला श्रम के संदर्भ में हुआ है। सभी समाजों, विशेषतौर पर विकासशील देशों में, आवश्यक लेकिन आमतौर पर खाना पकाने, सफाई एवं अन्य गृहकार्यों, बुनियादी घरेलू ज़रूरतों के प्रावधान, बच्चों की देखभाल, बीमार और बुजुर्गों की देखभाल जैसी अवैतनिक

गतिविधियों के साथ-साथ समुदाय आधारित गतिविधियां भी हैं। काफी हद तक इन्हें महिलाओं की ज़िम्मेदारी के तौर पर देखा जाता है। अवैतनिक कार्य का यह प्रतिमान तब भी कायम रहता है जब महिलाएँ आय के लिए दिहाड़ी मज़दूर या स्व-नियोजित मज़दूर के तौर पर बाहरी कार्यों में संलग्न रहती हैं। गरीब परिवार की महिलाएँ जो बाहरी कार्यों में भी संलग्न रहती हैं, आमतौर पर उपरोक्त दायित्वों को पूरा करने के लिए दूसरों को नियुक्त करने की हैसियत में नहीं होतीं, लिहाजा अक्सर ये दायित्व घर की छोटी बच्चियों एवं बुजुर्ग महिलाओं के द्वारा पूरे किए जाते हैं या फिर उन कामकाजी महिलाओं के कंधों पर काम का **'दोहरा बोझ'** होता है। ये प्रक्रियाएँ भी पूंजीवाद का अभिन्न हिस्सा हैं। महिलाओं द्वारा उपयोग लायक और विनिमय लायक, दोनों किस्म के, उत्पादों का उत्पादन संचय प्रक्रिया के लिए आवश्यक है, और हाल के वर्षों में यह निर्भरता थोड़ी और अधिक स्पष्ट हुई है (घोष, 2013)।

महिलाएँ पारम्परिक 'घरेलू निर्माता' (household producers) और पारम्परिक निर्वाह किसान (subsistance farmers) रही हैं, लेकिन उनके कार्य के लिए उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता। अर्थशास्त्रियों के लिए किसी भी आर्थिक विश्लेषण से महिलाओं को बाहर रखना बेहद सरल था। यह दर्शाने के लिए बड़े पैमाने पर अनुसंधान किये गये हैं कि 'अनुत्पादक' और घरेलू कार्य किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में न सिर्फ योगदान देते हैं बल्कि वे उसका एक बहुत ही आवश्यक अंग भी होते हैं। इस बात का आंकलन किया गया है कि यदि अवैतनिक घरेलू कार्यों एवं निर्वाही कृषि व्यवस्था को किसी आर्थिक विश्लेषण में शामिल कर लिया जाये, तो वैश्विक उत्पादन की मात्रा में एक तिहाई की वृद्धि होगी (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 1990, पृष्ठ 32)।

कार्रास्को (2001) के अनुसार, वस्तुओं और सेवाओं का घरेलू स्तर पर होने वाले या अवैतनिक कार्यों (मसलन, स्वैच्छिक कार्यों) के माध्यम से संभव होने वाले उत्पादन को अदृश्य बना दिया गया है और फलस्वरूप उत्पादन को बाज़ार के लिए उत्पादन मानकर और कार्य को रोज़गार के संदर्भ में रखकर उसे गैर-कार्य मान लिया गया है।

इस प्रकार, 'कार्य' की मूल परिभाषा सिर्फ श्रम बाज़ार की चारित्रिक विशेषता प्रदर्शित करने वाली गतिविधियों को शामिल तक ही सीमित है। **गोर्ज़** (1995) का कहना है कि कार्य की वर्तमान अवधारणा दरअसल औद्योगिक पूंजीवाद का एक आविष्कार है (सेलेब्रिटी और मीसा 2009 में उद्धृत)।

अब, हम महिलाएँ एवं कार्य से सम्बन्धित सामयिक विमर्शों पर एक दृष्टि डालेंगे :

2.4 सामयिक विमर्श – नारीवादी अर्थशास्त्र

महिलाओं के लिए पारम्परिक अर्थशास्त्र की धारणाओं के परिणाम विनाशकारी थे. **'अर्थव्यवस्था' के बारे में मुख्यधारा के विद्वानों के संकुचित एवं अपर्याप्त दृष्टिकोण के जवाब में नारीवादी अर्थशास्त्र का विकास हुआ।** असंतोष दो प्रमुख तत्वों से उपजा।

- एक तथ्य यह था कि मुख्यधारा का अर्थशास्त्र पारम्परिक रूप से अर्थव्यवस्था के मुद्रीकृत पहलुओं के विशेष अधिकार से लैस था, जबकि उसने **'सामाजिक पुनरुत्पादन'** (social reproduction) या 'अवैतनिक कार्यों' (unpaid work), जिसमें निर्वाह के लिए उत्पादन (जिसकी विशेषतौर पर विकासशील देशों में अहम भूमिका है) और सामाजिक ताने-बाने को एकजुट रखने वाला अवैतनिक देखभाल (परिवार, मित्रों और पड़ोसियों के लिए), दोनों शामिल थे, को नज़रअंदाज किये हुए था।

- असंतोष का दूसरा तत्व विषम लैंगिक अर्थशास्त्रियों (Heterodox economists), चाहे वे संरचनावादी हों या राजनीतिक अर्थव्यवस्था या फिर मानवीय विकास परिप्रेक्ष्य से जुड़े हों, द्वारा साझा किया गया। इसका सम्बन्ध, अमीर के साथ-साथ गरीब देशों के मामले में, वैधता और उपयोगिता से है। इसके अलावा, व्यक्तिगत व्यवहार के एक आदर्श के तौर पर इसका सम्बन्ध 'तर्कसंगत विकल्प' (rational choice) के नव-शास्त्रीय अवधारणा और व्यापक रूप से समष्टि अर्थशास्त्र और समाज से है।

अर्थशास्त्र के भीतर गैरी बेकर और उनके साथियों द्वारा विकसित की गयी एक सोच थी– **'नवीन गृह अर्थशास्त्र'** (न्यू होम इकोनॉमिक्स या एनएचई)। इस सोच ने सामाजिक जीवन के अवैतनिक/अदृश्य क्षेत्रों को अनदेखा तो नहीं किया, लेकिन फिर भी इसका विश्लेषण नव-शास्त्रीय विश्लेष्णात्मक उपकरणों के सहारे किया। जिसका परिणाम पारिवारिक रिश्तों से सम्बन्धित एक समस्याग्रस्त दृष्टिकोण के रूप में सामने आया, जो नायकत्व (परिवार के मुखिया की परोपकारिता) की धारणा पर आधारित था। इसने शक्ति सम्बन्धों और असमानताओं की (कल्याण के नतीजों और आय एवं संपत्ति तक पहुंच के संदर्भ में) अनदेखी की और गोलमोल तर्क गढ़े। जैसे, बाज़ार में कम आय पाने की वजह से महिलाएँ गृहकार्यों में दक्ष होती हैं एवं घरेलू जिम्मेदारियों की वजह से वे बाज़ार में कम आय पाती हैं आदि। एनएचई के संक्षिप्त संदर्भ में, मुख्य तर्क यह है कि नारीवादी अर्थशास्त्र सिर्फ इस तथ्य का आलोचक नहीं था कि नव-शास्त्रीय अर्थशास्त्र ने सामाजिक पुनरुत्पादन के अदृश्य और अवैतनिक क्षेत्र को नज़रअंदाज किया। यहां तक कि जब इसने इस दायरे की ओर अपना रुख किया तो इसके विश्लेषणात्मक उपकरणों ने एक आदर्शवादी बाज़ार क्षेत्र (जो पाठ्यपुस्तकों में पाया जाता है) और सामाजिक क्षेत्र के बीच के सभी मतभेदों को प्रभावी तरीके से मिटा दिया।

आप पिछले कुछ अनुभागों के बारे में अपनी समझ को परखें और प्रगति को जांचें :

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) कार्य के दोहरे बोझ से क्या तात्पर्य है?

2) एक विचारधारा के तौर पर नारीवादी अर्थशास्त्र का उभार क्यों हुआ?

3) कार्य के दो क्षेत्रों के बीच अन्तर स्पष्ट करें?

अब हम उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्यों को स्पष्ट करेंगे।

2.5 उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य

इस संदर्भ में, नारीवादी अर्थशास्त्र की एक अहम चुनौती तथाकथित अदृश्य या अवैतनिक अर्थव्यवस्था को दृश्यमान बनाने की थी। आइये, हम जानें कि उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य के रूप में चिन्हित ये दो गतिविधियां समाज में महिलाओं की स्थिति को कैसे प्रभावित करती हैं।

2.5.1 महिलाओं के उत्पादक कार्य

जेंडर और विकास से सम्बन्धित चर्चाओं के दायरे में अवैतनिक आर्थिक कार्यों को रेखांकित करने की प्रवृति का एक लंबा इतिहास है। यह सिलसिला विकास की परंपरा में महिलाओं (वीमेन इन डेवलपमेंट (WID)) परम्परा को लेकर और डेनिश अर्थशास्त्री **एस्टर बोसरप** के काम तक है। 'विकास की परंपरा में महिला' (WID) की अवधारणा के समर्थकों के विचार से, बोसरप की किताब (वीमेन्स रोल इन इकोनोमिक डेवलपमेंट, 1970) का महत्व इसलिए था क्योंकि इसने 'कल्याणकारी दृष्टिकोण' की अवधारणा को चुनौती दी और कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में महिलाओं के महत्व को उजागर किया। अफ्रीका के उप - सहारा क्षेत्र को विशेष तौर पर 'नारीवादी खेती प्रणाली' के लिहाज से दुनिया के सबसे बेहतरीन क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया, जहां महिलाओं द्वारा उपयोग में लायी गयी पारम्परिक 'हो' (hoe) तकनीक ने खाद्यान्न उत्पादन की सारभूत जिम्मेदारी ली।

इसके अतिरिक्त, बोसरप ने कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका और पुरुषों की तुलना में उनकी स्थिति के बीच एक सकारात्मक सह-सम्बन्ध स्थापित किया है. 'विकास की परंपरा में महिला' की अवधारणा के समर्थकों द्वारा बोसरप के अनुसंधान को उत्साह के साथ किये जाने का एक मुख्य कारण यह था कि यह एक मां और पत्नी के रूप में महिलाओं की भूमिका से सम्बन्धित संकीर्ण दृष्टिकोण, जिसने महिलाओं के संदर्भ में पूर्व की विकास नीति के अधिकांश भाग को नज़रअंदाज किया, को खत्म करने में सहायक सिद्ध हुआ। सामान्य तौर पर WID को महिलाओं के उन कार्यक्रमों, जो स्वास्थ्य और समाज-कल्याण के नाम पर प्रयोग में लाये गये थे, से अलग करने का एक बड़ा प्रयास किया गया। महिलाओं को ज़रूरतमंद लाभार्थियों के रूप में चिन्हित करने के बजाय, WID के तर्कों ने महिलाओं को समाज के एक उत्पादक सदस्य के रूप में दर्शाया।

2.5.2 पुनरुत्पादक कार्य

वर्तमान नारीवादी आंदोलन के सबसे व्यापक विषयों में अहम है महिलाओं के कार्य के निर्धारक तत्व के रूप में पुनरुत्पादन की भूमिका पर ज़ोर, श्रम का लैंगिक (Sexual division) विभाजन, और स्त्री एवं पुरुष के बीच अधीनस्थ/वर्चस्ववादी सम्बन्ध।

पुनरुत्पादन और घरेलू क्षेत्र के विश्लेषण पर ज़ोर दिया जाना इस बात की ओर इंगित करता है कि पितृसत्तात्मक रिश्तों में महिलाओं के कार्य एवं उसके जड़ों को समझने के लिए पारम्परिक रूप से उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करना पर्याप्त नहीं है। कार्यस्थल पर लैंगिक (जेंडर) भेदभाव, महिलाओं के वेतन, विकास की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी, और राजनीतिक कार्रवाई के परिणामों की प्रकृति को पूरी तरह से समझने के लिए विश्लेषकों को उत्पादन और पुनरुत्पादन के क्षेत्रों के साथ-साथ उनके बीच के अंतर्संबंधों की फिर से पड़ताल अवश्य करनी चाहिए। यहां श्रमशक्ति में जेंडर विभेद का एक उदाहरण आंतरिक श्रम बाज़ार प्रतिमान (मॉडल) है। यह प्रतिमान (मॉडल) श्रम बाज़ार में महिलाओं के दोयम दर्जे की नव-शास्त्रीय व्याख्या के एक अगले बिन्दु का प्रतिनिधित्व करता है। यह अन्य मॉडल द्वारा विकसित मांग और पूर्ति के कारकों के बजाय जेंडर विभेद और वेतन के अंतर की व्याख्या करने के लिए पूंजीवादी संस्थानों के आतंरिक संगठन पर ध्यान केन्द्रित करता है। इस आतंरिक संगठन की गतिकी (dynamics) रोज़गार के पायदानों और युग्मों (clusters), के निर्माण को बढ़ावा देती है, जो मज़दूरों के बीच पदानुक्रम या वर्गीकरणों को जन्म देते हैं। जेंडर एक कारक है, जिसके माध्यम से मज़दूरों को एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है। इस प्रतिमान (मॉडल) में व्यावसायिक विभेद्, वेतन में अंतर और अन्य किस्म के लैगिक भेदभाव को उत्पादन की अनुक्रमिक एवं स्व-नियामक संरचना के परिणाम के तौर पर देखा जाता है।

इस प्रतिमान (मॉडल) के दो नीतिगत निहितार्थ निकाले जा सकते हैं :

- क्रांतिकारी नीति में मज़दूरों द्वारा नियंत्रित करने के कुछ तरीकों एवं वेतन की बराबरी के माध्यम से अनुक्रम पर आधारित उत्पादन की संरचना की समाप्ति शामिल होगी। यह एक हद तक मज़दूरों के बीच मतभेदों को समाप्त या कम करेगा। यह जेंडर के आधार पर मतभेदों को समाप्त या कम करेगा।
- एक अपेक्षाकृत कम क्रांतिकारी नीति में, समान अवसर और सकारात्मक कार्यनीति शामिल होगी, जो उत्पादन की संरचना और श्रम के पदानुक्रम को उसी रूप में अपनायेगी। लेकिन प्रत्येक रोज़गार को स्त्री-पुरुष की पहुंच के लिए समान रूप से आसान बनाया जायेगा।

इन दोनों नीतियों में एक बड़ी त्रुटि है। वे सिर्फ उत्पादन की संरचना पर केन्द्रित हैं और पुनरुत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका पर गौर नहीं किया जाता। अगर महिलाओं को काम का दोहरा बोझ उठाना पड़ता है और उनके बच्चों की देखभाल के लिए पर्याप्त सुविधा उपलब्ध नहीं है, तो बहुत संभावना है कि इन दोनों में कोई भी नीति श्रम बाज़ार में महिलाओं की दोयम दर्जे की समस्या का समाधान न करे।

बॉक्स सं. 2.1

नारीवादियों का तर्क है कि घरेलू कार्यों को आवश्यक रूप से स्त्री एवं पुरुषों के बीच बाँटा जाना चाहिए, बच्चों के देखभाल की सुविधा विशेष तौर पर उपलब्ध करायी जानी चाहिए और बाज़ारवादी अर्थव्यवस्था में महिलाओं की वास्तविक क्षमताओं का पूर्ण सदुपयोग के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया में पितृसत्तात्मक सम्बन्धों और जेंडर संकीर्णता आवश्यक तौर पर समाप्त की जानी चाहिए।

महिलाओं के कार्य को संकल्पनाबद्ध करना

मार्क्सवादी परम्परा के भीतर, रोचक तथ्य यह है कि एंगेल्स की संकल्पना में, पुनरुत्पादन एवं उत्पादन के बीच परस्पर व्यवहार का विश्लेषण मौजूद नहीं है। महिलाओं की अधीनस्थता की उत्पत्ति के बारे में उनके दृष्टिकोण का सम्बन्ध उत्पादन के साधनों के तौर पर निजी संपत्ति के समावेश से है और इसे पुनरुत्पादन के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने की ज़रूरत है। अर्थात परिवार नाम की संस्था और महिलाओं की यौनिकता एवं उनकी पुनरुत्पादन सम्बन्धी गतिविधियों पर नियंत्रण के द्वारा उत्तराधिकारियों के पितृत्व के निर्धारण की ज़रूरत है। एंगेल्स की संकल्पना का प्रयोग एक औद्योगिकीकृत समाज में मौजूद परिस्थितियों, जहां आबादी के एक बड़े हिस्से का उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण तो नहीं होता लेकिन वहां संपत्तिविहीन लोगों के बीच श्रेणीक्रम और वर्ग का भेद मौजूद रहता है, के अनुरूप किया जा सकता है। खुद एंगेल्स ने भी अपने विश्लेषण को इस दिशा में आगे नहीं बढ़ाया। उनके और मार्क्स के विचार से निर्वाह के लिए उत्पादन और मानव मात्र का प्रजनन मानवीय गतिविधियों के दो बुनियादी स्तर हैं। हालाँकि एंगेल्स और मार्क्स, दोनों, का मानना था कि निजी संपत्ति का उन्मूलन और जिन्सों के उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी औद्योगिकीकरण द्वारा ही सुनिश्चित की जा सकती है और यही महिलाओं की उद्धार का पूर्व-निर्धारित समुच्चय बनेगा। इस प्रकार, एंगेल्स की संकल्पना में पाया जाना वाला उत्पादन और पुनरुत्पादन के बीच का शुरुआती सम्बन्ध इस धारणा के साथ धूमिल पड़ा कि उत्पादन की संरचना के रूपांतरण से महिलाओं का शोषण अपने आप ही मिट जायेगा।

पारम्परिक मार्क्सवादी विचारधारा और पारम्परिक वामपंथी एवं उदारवादी राजनीति ने इसी परंपरा का पालन किया। पुनरुत्पादन पर दिया जाने वाला ज़ोर दरअसल नारीवादियों द्वारा उठाये गये सवालों का परिणाम है। इसे एंगेल्स के शुरुआती सरलीकृत विचारों के विस्तार के तौर पर देखा जाना चाहिए। तीसरी दुनिया के देशों में महिलाओं से सम्बन्धित हाल के विविध अध्ययनों में महिलाओं के कार्यों के आंकलन के लिए उत्पादन और पुनरुत्पादन के पारस्परिक सम्बन्धों पर ज़ोर दिया गया है। आंध्रप्रदेश के नरसापुर में लेस (Lace) बनाने में संलग्न महिलाकर्मियों के बारे में मारिया मीएस द्वारा किये गये एक अध्ययन (1981) में यह दर्शाया गया है कि महिलाओं की तन्हाई या अकेलेपन (seclusion) ने कैसे उन्हें एक गैर-घरेलू उत्पादन कार्य में संलग्न किया। यूं तो लेस बनाने का काम अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार की ओर उन्मुख एक उद्योग है, लेकिन यह अकेलेपन और घरेलू कार्यों के बेहद अनुकूल है। घरेलू कार्यों के अलावा महिलाओं को लेस बनाने के काम में हर दिन सात से आठ घंटा लगना होता है। उनकी प्रतिदिन औसत आमदनी महिला खेतिहर मज़दूर के लिए आधिकारिक रूप से तय मज़दूरी की एक तिहाई से भी कम होती है। उल्लेखनीय औद्योगिक विकास के बावजूद ऐसी स्थिति वर्ष 1970 से जारी है और इस क्षेत्र में हस्तशिल्प के द्वारा होने वाली विदेशी मुद्रा आय के उच्च अनुपात की ओर इंगित करता है। कई महिलाओं के परिवार का खर्च तो उनकी ही कमाई से चलता है। इस अर्थ में वे ही अपनी परिवार की मूल रूप से आय अर्जित करने वाली सदस्य हैं। मीएस का तर्क है कि उच्च शोषण की यह व्यवस्था दरअसल स्थानीय समुदायों के भीतर एक बड़े वर्ग-विभेद और अत्याधिक ध्रुवीकरण की ओर ले जाती है। यह व्यवस्था पृथकता की उस विचारधारा की वजह से संभव हुई है, जो महिलाओं को उनके घरों तक सीमित कर देती है, बाहर जाकर काम करने के उनके अवसरों को समाप्त कर देती है और उन्हें बेहद कम मज़दूरी स्वीकार करने के लिए तैयार करती है।

2.6 संचयन, भुगतान वाले कार्य और बिना भुगतान वाले देखभाल के कार्य : नारीवादी विमर्श

नारीवादी अर्थशास्त्र के भीतर, बाज़ार आधारित पूँजी संचयन (पारंपरिक अर्थव्यवस्था) और गैर-बाज़ार आधारित सामाजिक पुनरुत्पादन (देखभाल की बिना भुगतान वाली अर्थव्यवस्था) के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के बारे में कई महत्वपूर्ण बहसें हुईं हैं (रिज़वी, 2007)।

"राजकोषीय संयम" (fiscal restraint) और "उपभोक्ता शुल्क" (user fees) एवं अधिभारों के द्वारा जन कल्याणकारी सेवाओं के क्रमिक व्यावसायीकरण के संदर्भ में, यह तर्क दिया जाता है कि देखभाल प्रदान करने की लागत को मुद्रीकृत सार्वजनिक क्षेत्र से तेजी से हटाकर अवैतनिक देखभाल के क्षेत्र की ओर स्थानान्तरित कर दिया गया। उदहारण के लिए, स्वास्थ्य क्षेत्र के संगठनों में आये बदलाव को लिया जा सकता है। यह बदलाव मरीजों के अस्पताल में कम अवधि तक रुकने की वजह बन रही है और आवश्यक रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के खर्चों में कटौती का एक तरीका है। इसका मिलान घर पर लंबी अवधि तक आरोग्य लाभ और मरीजों की देखभाल पर अमुद्रीकृत संसाधनों के व्यय से किया जा रहा है।

इधर, संरचनात्मक समायोजन नीतियों ने भी 'व्यापार योग्य' सामानों, चाहे कृषि उत्पाद हो या फिर विनिर्मित, के उत्पादन को बढ़ावा दिया। इसने भी अक्सर महिला श्रम की मांग को मजबूती दी विशेष रूप से उस आर्थिक संकट के संदर्भ में, जिसने बड़ी संख्या में महिलाओं को वैतनिक (विशेष रूप से अनौपचारिक किस्म के) कार्यों की ओर धकेला। यह परिवार के अन्य सदस्यों की वास्तविक कमाई में आई गिरावट से निबटने का एक तरीका था। यह तर्क दिया जाता है कि महिलायें वैसी कामगार हैं जो वैतनिक और अवैतनिक कार्य के माध्यम से "समायोजन" की लागत का एक असंगत हिस्सा और बोझ अपने ऊपर पर लेती हैं जिससे उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ विशेष रूप से आर्थिक संकट की अवधि के दौरान कमोडिटी अर्थव्यवस्था और अवैतनिक देखभाल अर्थव्यवस्था के बीच तनाव बना हुआ है। 1960 और 1970 के दशक में पूर्वी एशिया जैसे सफल विकास के सोपान में भी पूँजी संचय की प्रक्रिया, गैर-बाज़ार उत्पादन के स्तर के साथ एक संभावित व्यापार को कुंद (engenders) करती है। निर्यात को कृषि के माध्यम से और साथ ही निर्यात और सेवाओं की ओर निर्यात के विविधीकरण के माध्यम से विदेशी मुद्रा (आगे जा कर, सहायता निर्भरता से बचने के लिए) सृजत करने की आवश्यकता है। आमतौर पर कपड़ों और इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के निर्यात में वृद्धि करके, जो अक्सर 'सस्ते' महिला श्रम को नियोजित करके उत्पादित किए जाते हैं, वैसे देश तेजी से विकसित हुए हैं (उदाहरण के लिए, पूर्वी एशिया में), जहां विविधीकरण का प्रबंधन किया गया है। यहां मूल समस्या यह है कि एक स्थायी पूँजी संचय प्रक्रिया को कर राजस्व और विदेशी मुद्रा उत्पन्न करने के लिए विपणन (output) में वृद्धि की आवश्यकता होती है। लेकिन यह गैर-विपणन उत्पादन की कीमत पर भी हो सकता है। साथ ही नींद, आराम और श्रमिकों को स्वयं की देखभाल के लिए उनके कार्य दिवस में कटौती करने की आवश्यकता है।

आइए, अब चर्चा करते हैं कि उत्पादक और पुनरुत्पादन कार्य दोनों का मूल्यांकन करना क्यों महत्वपूर्ण है।

2.7 मापन और मूल्यांकन की आवश्यकताः उत्पादक और पुनरुत्पादक कार्य

हालाँकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ पूंजीवाद के तहत सामाजिक सम्बन्धों में एक मूलभूत और स्थायी तत्व के रूप में "समय समायोजन को ध्यान में रखते हुए, उत्पादन और पुनरुत्पादन के लिए आवंटित समय को उत्पादक और पुनरुत्पादन कार्यों के बीच के सम्बन्धों के विश्लेषण में शामिल नहीं करती हैं। मार्क्सवादी विश्लेषणों में भी पुनरुत्पादन की जाँच उत्पादन प्रक्रिया के एक मूल रूप के रूप में की जाती है।"(अविला 2007, पृष्ठ 132) उत्पादक और पुनरुत्पादन के कार्य में जो समय खर्च होता है उसी आवंटित समय को ही उत्पादक कार्य के लिए मूल्यवान माना जाता है। **इसलिए गृहकार्य मज़दूरों के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में एक प्रमुख तत्व है जिसमें से अधिशेष मूल्य लिया जाता है।** चूंकि आमतौर पर गृहकार्य करने वाली महिलाएँ होती हैं, इसलिए यह देखा गया है कि यह श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन का माध्यम है और उसकी वजह से महिलाओं को अधिशेष मूल्य के सांठगांठ में शामिल किया जाता है, जो पूंजीवाद की समझ में यह उनकी योग्यता में शामिल नहीं है। (रुबिन 1998, पृष्ठ 20)। नारीवादी आर्थिक सिद्धांत ने **'देखभाल अर्थव्यवस्था'** (care economy) की अवधारणा विकसित की जिसमें श्रमबल पुनरुत्पादन का कार्य करता है। इसमें गृहकार्य से जुड़ी सभी गतिविधियां शामिल हैं जैसे भोजन बनाना, सफाई का कार्य, घर, बच्चों बीमार और विकलांग लोगों की देखभाल।

देखभाल अर्थव्यवस्था या केयर इकोनॉमी की ज्यादातर गतिविधियां परिवार के दायरे में संचालित होती हैं। विशेषकर तीसरी अर्थव्यवस्था की दुनिया में जहां ज्यादातर घरेलू कार्य महिलाएँ ही करती हैं और इसके लिए उन्हें कोई भुगतान नहीं दिया जाता है। यह सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में मुहैया कराई जाने वाली पूरक सेवाएं होती हैं जिससे देखभाल की अर्थव्यवस्था सृजित होती है।(साल्वाडोर, 2007)।

देखभाल प्रदाता के रूप में राज्य द्वारा निभाई गई भूमिका का भार परिवार, स्वयंसेवक श्रम और / या बाज़ार की देखभाल भार निर्धारित करता है। यदि देखभाल की अर्थव्यवस्था और उसके वितरण को विनियमित करने के लिए कोई सार्वजनिक नीतियां नहीं हैं, तो इसका पूरा बोझ परिवार पर पड़ेगा, विशेषकर उन महिलाओं के मामले में, जिन्हें कार्य के संबंध में दोहरा या तिहरा पालियों में (double or triple work shifts) काम करना पड़ता है और इससे कम आय वाली महिलाओं के लिए सामाजिक उन्नति की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं। (साल्वाडोर, 2007)।

अपने प्रकाशन 'द इकोनॉमिज ऑफ हाउसहोल्ड प्रोडक्शन' में **मार्ग्रेट रीड** ने 'तीसरे व्यक्ति' की अवधारणा स्थापित की है जिसमें बाज़ार के लिए व्यवस्थित अर्थव्यवस्थाओं में अन्य गैर-आर्थिक गतिविधि से उत्पादक गतिविधि को अलग करने के लिए एक सुसंगत आधार प्रदान किया गया था। इसमें इस तथ्य का परीक्षण किया गया था कि क्या किसी गतिविधि का लाभ जिसे मिलना चाहिए उसे न मिलकर किसी दूसरे व्यक्ति को उसका लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार भोजन बनाना उत्पादक कार्य है लेकिन भोजन खाना उत्पादक कार्य नहीं है।

तार्किक रूप से होना यह चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को करता/कारती है तो उसे उसके लिए भुगतान भी किया जाना चाहिए। यानि की, यही उस वस्तु या सेवा के लिए एक संभावित बाज़ार है। उदाहरण के लिए, आपके लिए टीवी देखने के लिए किसी को भुगतान करने का कोई मतलब नहीं है क्योंकि आपको इसका लाभ नहीं मिलेगा। हालाँकि, आपके लिए भोजन तैयार करने, या अधिक विवादास्पद रूप से, आपके साथ सेक्स करने के लिए किसी को भुगतान करना संभव है। इस प्रकार, ये सेवाएं कम से कम संभावित

रूप से विपणन योग्य हैं। इस 'तीसरे व्यक्ति' के मानदंड को अधिकांश अध्ययनों में मानक के रूप में अपनाया गया है जो ग़ैर-बाज़ार उत्पादन को महत्व देता है।

बॉक्स सं. 2.2

1947 में **साइमन कुजनेट्स**, जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय खातों को डिजाइन और कार्यान्वित करने में मदद की थी, ने ग़ैर-बाज़ार उत्पादन को शामिल करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की आवश्यकता का तर्क दिया। 1950 और 1960 के दशक में कुछ देशों के राष्ट्रीय खातों में ग़ैर-उत्पादन को शामिल करने का प्रयास किया गया था, पर वास्तव में, ग़ैर-बाज़ार उत्पादन के महत्व पर 1970 के दशक में महिलाओं के आंदोलन की वजह से ध्यान केंद्रित किया गया।

1970 में एस्टर बोसेरुप के संस्थापक कार्य 'आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका, ने स्पष्ट रूप से तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं में निर्वाह-उत्पादन (subsistence production) की मुख्य भूमिका और उन अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाया। बाज़ार आधारित खातों की अपर्याप्तता को बताते हुए उन्होंने कहा कि वर्तमान प्रणाली की निर्वाह गतिविधियों की अंडर-रिर्पोटिंग की नीति के कारण अविकसित देश वास्तव में ज़्यादा गरीब प्रतीत होते हैं और इससे उनकी आर्थिक वृद्धि (economic growth) वास्तव से बेहतर आंकी जाने की स्थिति में आ जाती है।

यह विकास की पश्चिमी धारणाओं के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती का प्रतिनिधित्व करने वाले 'तीसरे व्यक्ति' के मानदंडों की अवधारणा है और यह एक नारीवादी चुनौती भी थी, जिसे कि बोसेरुप ने बताया कि ये ऐसी महिलाएँ थीं जिन्होंने निर्वाह-उत्पादन (subsistance work) ही अधिकांश रूप से किया है। उन्होंने बताया कि इन महिलाओं की ये गतिविधियां निर्वाह-उत्पादन का हिस्सा हैं जिसे महिलाओं का गृहकार्य बताते हुए उत्पादन का कार्य मानने से इन्कार किया जाता था। बाद में नारीवादी आंदोलनों में इन तर्कों को अपनाया गया। 1970 के दशक की शुरुआत में एन ओकले के संस्थापक कार्य के बाद कई शोध श्रृंखलाओं ने स्पष्ट रूप से उत्पाद कार्य के रूप में उन गृहकार्यों की गिनती की जिसे मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता था। लगभग चालीस साल बाद, आज भी आंकड़े यही बताते हैं कि महिलाएँ पुरुषों के मुकाबले लगभग दोगुने अवैतनिक घरेलू काम करती हैं।

1975 तक, ओईसीडी (OECD) सांख्यिकीविद **डेरेक ब्लेड** जीडीपी में निर्वाह कृषि उत्पादन को शामिल करने के लिए 70 देशों के प्रयासों का सर्वेक्षण करने में सक्षम हुए। हालाँकि, यह देखते हुए कि महिलाओं की पारम्परिक घरेलू भूमिका के चलते घरेलू और निर्वाह गतिविधियों के बीच विभाजन अस्पष्ट है, उन्होंने निर्वाह-उत्पादन की तुलना में महिलाओं के घरेलू श्रम के मामले को 'काफी कमज़ोर' पाया।

1985 में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन से महिलाओं की सिफारिश के साथ विशेष रूप से विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों से राष्ट्रीय खातों की नारीवादी आलोचना की की गई है। अवैतनिक कार्य को मापने और महत्व देने के लिए इसकी 1995 में बीजिंग में पुनः पुष्टि की गई थी। लेकिन **यह मर्लिन वारिंग** ही थीं जिन्होंने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक, **काउंटिंग फॉर नथिंग** (1988) के साथ एसएनए की नारीवादी आलोचना को लोकप्रिय बनाया। दुनिया भर के उदाहरणों का उपयोग करते हुए, वॉरिंग ने उस प्रणाली का उपहास उड़ाया जिसने महिलाओं को 'आर्थिक रूप से निष्क्रिय' के तौर पर वर्गीकृत किया, जिन्होंने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लंबे समय तक काम किया।

निम्नलिखित अभ्यास करके अपनी प्रगति की जाँच करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) देखभाल अर्थव्यवस्था से क्या समझते हैं?

2) निम्नलिखित पर एक या दो पंक्ति लिखें:

क) एस्टर बोसेरुप

ख) मारिया मीज़ (Marie Mies)

ग) मार्गेट रीड

घ) साइमन कुजनेट्स

ङ) एन ओकले

च) मर्लिन वार्निंग

इस इकाई के अन्तिम भाग में आप पढ़ेंगे कि महिलाओं के उत्पादक और गैर-पुनरुत्पादक कार्य को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कैसे मापा जाता है।

2.8 मापन के अंतर्राष्ट्रीय मानक

सन् 1993 की संयुक्त राष्ट्र की राष्ट्रीय लेखा प्रणाली (एसएनए) एक संकल्पनात्मक ढाँचा उपलब्ध कराती है। यह ढाँचा आर्थिक गतिविधियों के मापन और वर्गीकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय मानक स्थापित करता है। इस प्रणाली के अनुसार बिना भुगतान वाली कुछ गतिविधियों को 'आर्थिक कार्य' माना जाता है तथा भुगतान वाले कार्य की ही तरह इन्हें 'एसएनए उत्पादन परिधि' के अन्तर्गत रखा जाता है। बिना भुगतान वाले अन्य कार्य और गतिविधियों को 'गैर-आर्थिक' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

बिना भुगतान वाले आर्थिक कार्य

1993 का एसएनए अभिसमय इस तरफ इशारा करता है कि बिना भुगतान वाले आर्थिक कार्य को मापा जा सकता है और इसे सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के वार्षिक प्राक्कलनों में सम्मिलित किया जा सकता है। बिना भुगतान वाले कार्य निम्न से सम्बन्धित हैं : (क) अचल सम्पत्तियों का घरेलू उपयोग के लिए किया जाने वाला उत्पादन, जैसे एक मकान का निर्माण करना; (ख) जीवन निर्वाह के लिए, स्वयं के उपयोग के लिए किया जाने वाला उत्पादन, जैसे फसलों की खेती करना, पशुपालन, वानिकी और मत्स्यपालन; (ग) बुनियादी आवश्यकताओं के लिए, सामान्य या निजी ज़मीनों से चीजों को एकत्रित करना, जैसे जल इकट्ठा करना या ईंधन के लिए लकड़ी एकत्रित करना; (घ) आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों, जैसे हस्तशिल्प या अन्य विनिर्माण के लिए कच्चे माल को इकट्ठा करना; और (ङ) बाज़ार तक पहुँचने वाली फसलों का उत्पादन करना जैसे बिना भुगतान वाले घरेलू कार्य। जैसे पशुओं की चराई कराना तथा विक्रय के लिए कृषि प्रसंस्करण (एग्रो-प्रोसेसिंग) और खाद्य प्रसंस्करण (food processing)। इस प्रकार, बिना भुगतान वाले आर्थिक कार्य में वे गतिविधियाँ शामिल हैं जो उपार्जित निवेश वस्तुएं (इनपुट्स) स्वयं के उपयोग के लिए या बाज़ार के लिए उत्पादन से जुड़ी होती हैं। व्यवहार में, आँकड़े एकत्रित करने में विद्यमान अन्तराल, ऊपर वर्णित अनेक गतिविधियों के मापन को और राष्ट्रीय आय तथा उत्पाद लेखे में इन गतिविधियों को शामिल किए जाने को बहुत ही कठिन बना देते हैं। बिना भुगतान वाले कार्य के अन्य प्रकारों को एसएनए (1993) द्वारा 'गैर-आर्थिक' माना जाता है और उन्हें एसएनए की उत्पादन परिधि के बाहर ही रखा जाता है। बिना भुगतान वाले गैर-एसएनए कार्य को प्रायः ऐसे कार्य के रूप में सन्दर्भित किया जाता है जो 'एसएनए उत्पादन परिधि से बाहर' आते हैं। बिना भुगतान वाले इस गैर-एसएनए कार्य में शामिल हैं : घरेलू रखरखाव, साफ-सफाई, धुलाई करना, भोजन पकाना, खरीदारी करना, नवजात शिशुओं और बच्चों की (सक्रिय और निष्क्रिय रूप से) देखभाल करना, स्थायी या अस्थायी रूप से बीमार लोगों की देखभाल करना (इसके साथ-साथ अन्य सगे-सम्बन्धियों और निर्योग्य लोगों की देखभाल करना) तथा सामुदायिक सेवाओं के लिए किए जाने वाले स्वैच्छिक कार्य। ऐसे कार्यों के बारे में यह तो माना जाता है कि ये समाज में अपना योगदान देते हैं लेकिन यह नहीं माना जाता कि ये 'अर्थव्यवस्था' में भी अपना योगदान देते हैं। इसका संज्ञान लेते हुए एसएनए की सिफारिश यह है कि राष्ट्रीय आय और उत्पाद लेखे (जीडीपी) में समानान्तर (उपग्रहीय यानी आनुषंगिक) लेखों का निर्माण किया जाना चाहिए।

बिना भुगतान वाले कार्य के उपग्रहीय लेखे या विस्तारित एसएनए (ईएसएनए)

सन् 1993 में एसएनए ने औपचारिक रूप से इस बात का संज्ञान लिया कि गैर-एसएनए (ईएसएनए) गतिविधियाँ उत्पादक होती हैं और कल्याण में अपना योगदान देती हैं। इसलिए यह सिफारिश की गयी है कि इन गतिविधियों का एक उपग्रहीय लेखे में मापन किया जाए, जो मुख्य राष्ट्रीय लेखे से जुड़ा होता है। जहाँ भी सम्भव हो, इस उपग्रहीय लेखे में उसी तरीके की संकल्पनाओं का प्रयोग करना चाहिए, जो मुख्य राष्ट्रीय लेखे में प्रयुक्त होती हैं। दूसरे शब्दों में, यह लेखा राष्ट्रीय लेखे का एक विस्तार होगा ताकि घरेलू लेखे की प्रणाली में पुरुषों और महिलाओं की बिना भुगतान वाली घरेलू सेवाओं और स्वैच्छिक सेवाओं को शामिल किया जा सके।

आइए, अब उन तरीकों के बारे में पढ़ें, जिनके माध्यम से बिना भुगतान वाले कार्य को मापा जा सकता है।

2.8.1 बिना भुगतान वाले कार्यों के मूल्यांकन की पद्धति

बिना भुगतान वाले कार्य का मूल्यांकन या तो उसे कार्य में प्रदान किये गये श्रम के आधार पर (labour input) या फिर उस कार्य द्वारा अर्जित उत्पादन (work output) द्वारा किया जा सकता है।

इनपुट विधि : इनपुट विधि के अन्तर्गत, व्यक्तिगत स्तर पर बिना भुगतान वाले कार्य की गणना करने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा बिना भुगतान वाले कार्य पर खर्च किए गए समय को एक उपयुक्त मज़दूरी दर से गुणा किया जाता है। सामूहिक स्तर पर, बिना भुगतान वाले कार्य पर खर्च किए गए कुल समय को उपयुक्त मज़दूरी दरों के एक समुच्चय से गुणा किया जाता है।

मज़दूरी दर का चयन करना एक बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दा है। यहाँ दो प्रकार की मज़दूरी दरों का प्रयोग किया जा सकता है :

- स्थानापन्न मज़दूरी दर, यानी किसी व्यक्ति को दी जाने वाली मज़दूरी जो बाज़ार में बिल्कुल वैसी ही सेवाओं का उत्पादन करता है, अथवा
- अवसर लागत, यानी उस व्यक्ति द्वारा त्याग दी गयी मज़दूरी दर जो बिना भुगतान वाले कार्य का निष्पादन करता है।

बाज़ार स्थानापन्न मज़दूरी दर या तो एक सामान्य दर (उदाहरण के लिए, गृहस्वामी की मज़दूरी दर) हो सकती है या फिर विशेषज्ञ दर हो सकती है। सामान्य मज़दूरी दर किसी भुगतान पाने वाले घरेलू श्रमिक की दर हो सकती है, जोकि स्थानीय बाज़ार में प्रचलित हो। अलग-अलग गतिविधियों की विशेषज्ञ मज़दूरी दर प्रासंगिक घरेलू गतिविधियों के साथ तुलनीय होती है।

अवसर लागत यानी बिना भुगतान वाले कार्य में संलग्न व्यक्तियों द्वारा त्याग दी गयी मज़दूरी की गणना घरेलू श्रमिकों की उम्र, शिक्षा और योग्यता के आधार पर की जाती है। बिना भुगतान वाले कार्य का, अवसर लागत के आधार पर किया जाने वाला, मूल्यांकन व्यक्ति (शिक्षा, उम्र, योग्यता) को देखते हुए मूल्यों का निर्धारण करता है, न कि गतिविधि को देखते हुए।

आउटपुट विधि : आउटपुट विधि के अन्तर्गत, बिना भुगतान वाले कार्य के मूल्य की गणना करने के लिए आउटपुट की इकाइयों को, आउटपुट की प्रति इकाई मज़दूरी दर से गुणा किया जाता है। बिना भुगतान वाले कार्य का सीधे आउटपुट विधि से मूल्यांकन करने के लिए, बिना भुगतान वाले कार्य के आउटपुट से सम्बन्धित आँकड़ों की आवश्यकता होती है, जैसे – तैयार किए गए भोजनों की संख्या और मात्रा धुले गए और इस्त्री किए गए कपड़ों की संख्या, साफ किए गए घर का क्षेत्रफल, पढ़ाए गए बच्चों की संख्या आदि। इसके साथ ही आउटपुट की प्रति इकाई मज़दूरी दर के सम्बन्ध में भी आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे – तैयार किए गए प्रत्येक भोजन के सम्बन्ध में श्रम का मूल्य, प्रत्येक कपड़े को धुलने और इस्त्री करने पर लगने वाला प्रभार, जिन बच्चों की देखभाल की गयी है, उनमें से प्रत्येक बच्चे की देखभाल पर लगने वाले श्रम का मूल्य आदि।

बॉक्स सं. 2.3

सैद्धान्तिक साहित्य में, बिना भुगतान वाले कार्य को मूल्य प्रदान करने अर्थात उनका मूल्यांकन करने के दो प्रमुख दृष्टिकोण हैं : (i) इनपुट सम्बन्धी विधि, जो बिना भुगतान वाले कार्य पर खर्च किए गए श्रम और समय को मूल्य प्रदान करने पर आधारित है,

तथा (ii) आउटपुट सम्बन्धी विधि, जो उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को बाज़ार मूल्य प्रदान करने पर आधारित है (उदाहरण के लिए, ईंधन के लिए एकत्रित की गयी लकड़ी को या घर में बनाए गए गृहस्थी के उपकरणों या बर्तनों को बाज़ार मूल्य प्रदान करना, आदि)। बिना भुगतान वाले कार्य के लेखे के परिप्रेक्ष्य से देखें तो इनपुट-सम्बन्धी लेखा आउटपुट-सम्बन्धी लेखे से बेहतर है। उदाहरण के लिए, यदि पानी लाने के लिए किसी महिला को काफी दूर तक जाना पड़ता है तो इनपुट-सम्बन्धी लेखा इस चीज को दर्शाएगा कि इसमें अधिक समय का इनपुट किया गया है, जबकि आउटपुट बिल्कुल भी अधिक नहीं दिखता। इस प्रकार, महिलाओं के कठोर प्रयास को इनपुट-सम्बन्धी लेखे में मूल्य प्रदान किया जाता है।

2.8.2 आँकड़ों के स्रोत

इनपुट-आउटपुट तालिकाओं को बनाने के लिए आवश्यक आँकड़े निम्नलिखित हो सकते हैं :

1) घरेलू समय के उपयोग से जुड़े सर्वेक्षण (श्रम के इनपुट और आउटपुट के लिए) – आउटपुट पर अतिरिक्त सूचनाओं के साथ,
2) घरेलू खर्च से जुड़े सर्वेक्षण – कच्चे माल, पूँजीगत वस्तुओं आदि पर किए गए घरेलू खर्च के लिए, तथा
3) प्रासंगिक कीमतों और मजदूरियों पर पूरक सूचनाएँ (उदाहरण के लिए – भोजन, बच्चों की देखभाल आदि की कीमत)।

एसएनए की इनपुट-आउटपुट तालिकाओं की ही तरह, घरेलू इनपुट-आउटपुट तालिकाएँ भी अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र की गतिविधि-संरचना को प्रस्तुत करती हैं तथा परिवारों द्वारा बिना भुगतान वाले श्रम और अपनी स्वयं की पूँजी के द्वारा की गयी प्रत्येक प्रकार की उत्पादक गतिविधि में मध्यवर्ती वस्तुओं, श्रम और पूँजी के उपयोगों को प्रस्तुत करती हैं।

बॉक्स सं. 2.4

घर-परिवार की बिना भुगतान वाली सेवाओं के लिए अनेक देशों ने उपग्रहीय लेखे (satellite accounts) नहीं प्रस्तुत किए हैं। शायद जर्मनी वह पहला देश था जिसने ऐसे लेखों को प्रस्तुत किया था। आस्ट्रेलिया, यूरोस्टेट और व्यक्तिगत रूप से कुछ यूरोस्टेट देशों ने और यूनाइटेड किंगडम आदि ने ऐसे लेखों को निर्मित किया है। इन लेखों ने यह दर्शाया है कि ईएसएनए का मूल्य जीडीपी के मूल्य के साथ तुलनीय है।

समय उपयोग सर्वेक्षण

समय उपयोग सर्वेक्षण (Time use survey) अनेक देशों में बिना भुगतान वाले कार्य की सांख्यिकीय अदृश्यता को अनावृत करने में एक प्रभावशाली उपकरण रहे हैं। समय उपयोग से सम्बन्धित आँकड़े समष्टि और व्यष्टि दोनों स्तरों पर सार्वजनिक नीति का निर्माण करने में सहायता करते हैं। समष्टि स्तर पर, समय उपयोग से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रयोग आवर्धित आर्थिक और सामाजिक लेखा प्रणालियों के निर्माण में किया गया है (पारम्परिक आर्थिक लेखा प्रणालियाँ बाज़ार अर्थव्यवस्था में केवल उत्पादक गतिविधि को ही उपलब्ध कराती हैं तथा गैर-बाज़ारी समय और फुर्सत के उत्पादक उपयोग की उपेक्षा कर देती हैं)। व्यष्टि स्तर पर, समय उपयोग से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रयोग करके घर-परिवार के भीतर के व्यावहारिक प्रारूपों का निर्माण किया गया है, जिनके निहितार्थ राजकोषीय नीति के

सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, अध्ययनों ने बच्चों और वृद्धजनों की देखभाल में लगे गैर-बाज़ारी समय पर, घर-परिवार के भीतर के श्रम के विभाजन पर, खाली समय में की गयी गतिविधियों और समय के तनावों पर और उत्पादन गतिविधियों आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

भारत में समय उपयोग से सम्बन्धित आँकड़ों को व्याख्यायित करना

किसी देश के श्रमबल के आकार पर और इसके साथ-साथ अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान पर बेहतर आँकड़े प्राप्त करने के लिए समय उपयोग सर्वेक्षणों (टीयूएस (TUS) – टाइम यूज़ सर्वेज़) को अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है। छह राज्यों, नामतः गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, मेघालय, ओडिशा और तमिलनाडु में भारत के केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा जुलाई 1998 से जून 1999 के दौरान जो सर्वप्रथम प्रमुख समष्टिगत टीयूएस सम्पन्न कराए गए थे, वह इस दिशा में न सिर्फ दक्षिण एशिया में, बल्कि विकासशील देशों में भी एक अग्रणी प्रयास था। भारत में 18,591 परिवारों पर किया गया यह व्यापक सर्वेक्षण इसको बेहतर तरीके से समझने में सहायता करता है कि अर्थव्यवस्था में जेंडर के हिसाब से समय का आवंटन किस प्रकार किया गया है। यह सर्वेक्षण भारत में महिलाओं द्वारा किए गए कार्य की सांख्यिकीय अदृश्यता को समझने के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। टीयूएस में परिवार के ऐसे सभी सदस्यों को आच्छादित किया गया था, जिनकी उम्र छह वर्ष या इससे अधिक थी।

भारत में टीयूएस ने गतिविधियों को तीन वर्गों में श्रेणीकृत किया था : एसएनए गतिविधियाँ (जिन्हें जीडीपी की गणना में शामिल किया जाता है), विस्तारित एसएनए गतिविधियाँ (जिन्हें जीडीपी की गणना में शामिल नहीं किया जाता है, लेकिन जिन्हें उपग्रहीय लेखे में शामिल किया जाना चाहिए) और अवशिष्ट गैर-एसएनए गतिविधियाँ।

निम्नलिखित अनुभाग में आप इस विषय में पढ़ेंगे कि समय उपयोग सम्बन्धी आँकड़े किस प्रकार नीति के सूत्रबद्धीकरण को प्रभावित कर सकते हैं।

2.8.3 सार्वजनिक निवेश के लिए समय के उपयोग से जुड़ी सांख्यिकी के निहितार्थ

आधारभूत संरचना के सन्दर्भ में राजकोषीय नीति के हस्तक्षेप हमें उस दिशा में ले जा सकते हैं जहाँ देखभाल अर्थव्यवस्था से बाज़ार अर्थव्यवस्था में महिलाओं के समय आवंटन में प्रतिस्थापन प्रभाव दिखते हों। परिवार में निर्धनता को कम करने तथा परिवार की शिक्षा-दीक्षा और स्वास्थ्य की प्रस्थिति को ऊपर उठाने में इसके महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। इसलिए, समय के उपयोग से जुड़ी सांख्यिकी के विश्लेषण से बेहतर राजकोषीय नीतियों को सूत्रबद्ध करने में आधारभूत आवश्यकताओं के पदों में सहायता मिल सकती है। अलग-अलग क्षेत्रों के लिए यह अलग-अलग होती है और पुनः इसके कारण समय के उपयोग से जुड़ी सांख्यिकी से कुछ नई चीजें प्रकाश में आ सकती हैं। बेहतर जेंडर संवेदी मानव विकास के लिए परिपूरक राजकोषीय सेवाओं को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है क्योंकि जेंडर सम्बन्धी मुद्दे अनेक क्षेत्रों के आर-पार व्याप्त होते हैं; उदाहरण के लिए, जल-आपूर्ति की आधारभूत संरचना में निवेश करना बालिकाओं के नामांकन के सुधार की एक पूर्व शर्त हो सकती है, जिसे समय के उपयोग से जुड़ी सांख्यिकी प्रकट कर सकती है।

सार्वजनिक आधारभूत संरचना और समय के आवंटन के बीच सम्बन्ध

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि सार्वजनिक आधारभूत संरचना जैसा मुख्यधारा का खर्च अपनी प्रकृति में किसी से प्रतिद्वन्द्विता नहीं रखता और इन चीजों को 'जेंडर लैस' देखना

संभव नहीं है। समय के बजट (Time budget) की सांख्यिकी द्वारा इस तर्क का खण्डन किया गया है। समय के बजट से जुड़े आँकड़ों ने स्पष्ट किया है कि ऐसे तर्क प्रायः झूठे ही हैं क्योंकि गैर-प्रतिद्वन्द्वी खर्च के भी आभ्यन्तरिक रूप से जेंडर आयाम मौजूद होते हैं। उदाहरण के लिए, जल या ईंधन एकत्रित करने जैसी आर्थिक गतिविधियों में लड़कियाँ और महिलाएँ ही अधिक संलग्न होती हैं तथा जेंडर संवेदी जल नीतियों और ऊर्जा नीतियों के साथ आधारभूत संरचना में निवेश करके महिलाओं को सचमुच लाभ पहुँचाया जा सकता है।

प्रथम दृष्टया, आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेश में वृद्धि महिलाओं के ऊपर पड़ने वाले समय के भार (पानी या जल एकत्रित करने के लिए दूर जाने में खर्च होने वाले समय) से नकारात्मक रूप से सम्बन्धित है। सरकार यदि आधारभूत संरचना में निवेश में वृद्धि करे तो महिलाओं द्वारा किए जाने वाले बिना भुगतान वाले कार्य और बाज़ार के लिए किए गए कार्य के बीच प्रतिस्थापनीयता की सम्भावनाएँ मौजूद हो सकती हैं। आधारभूत संरचना में हानि और ग्रामीण निर्धनता के बीच एक सम्बन्ध हो सकता है। निर्धनता निवारण के लिए बनायी गयी राजकोषीय नीतियों के पदों में कहा जाए, तो 'समय की निर्धनता' (time poverty) अक्सर बढ़-चढ़कर सामने आती है। समय की निर्धनता, 'आय की निर्धनता' (income poverty) को प्रभावित करती है। आय की निर्धनता का निवारण करने के लिए बनायी गयी राजकोषीय नीतियाँ अगर समय की निर्धनता के पहलुओं पर विचार नहीं करती हैं, तो ये पक्षपातपूर्ण हो सकती हैं। नीति पर की जा रही इस चर्चा के जेंडर आयाम हो सकते हैं क्योंकि महिलाओं के पास समय का बहुत अभाव होता है तथा निर्धनता उन्मूलन के लिए बनायी जाने वाली राजकोषीय नीतियों के लिए यह आवश्यक है कि वे जेंडर के पार जाकर समय को आवंटित किए जाने वाले पहलुओं को अपने भीतर समाहित करें।

महिलाओं की एसएनए गतिविधि में समय के आवंटन के बारे में यह पाया गया है कि यह आवंटन सार्वजनिक आधारभूत संरचना के व्युत्क्रमानुपाती होता है। यह परिणाम इस तरफ संकेत करता है कि अगर आधारभूत संरचना को बेहतर बना दिया जाए तो महिलाओं के बिना भुगतान वाले एसएनए कार्य को कम किया जा सकता है। लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं है कि बेहतर आधारभूत संरचना के जरिये पानी एकत्रित करने के बिना भुगतान वाले एसएनए कार्य में लगाए गए समय को अगर मुक्त कर दिया जाए तो बाज़ार कार्य की तरफ इसका प्रभाव प्रतिस्थापन वाला ही होगा। इसको आधारभूत संरचना और गैर-एसएनए गतिविधि में किए गए समय के आवंटन के बीच के सकारात्मक सम्बन्ध से और भी अधिक बल मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि रोज़गार के सम्बन्ध में अवसरों की कमी के कारण महिलाओं के लिए गैर-एसएनए कार्य में किए गए समय के आवंटन में बढ़ोत्तरी एक बाध्य किस्म का खालीपन है। इस विश्लेषण से जो नीतिगत सुझाव उभरता है, वह यह है कि आधारभूत संरचना में किया गया निवेश बिना भुगतान वाली एसएनए गतिविधि में महिलाओं पर पड़ने वाले समय के दबाव को कम करता है; लेकिन आधारभूत संरचना में किए गए निवेश के साथ-साथ परिपूरक रोज़गार गारण्टी नीतियाँ भी आवश्यक हैं ताकि बिना भुगतान वाले कार्य को बाज़ार कार्य से प्रतिस्थापित करने वाले प्रभाव को सुनिश्चित किया जा सके और इसका परिणाम यह होगा कि इससे घर की गरीबी पर भी प्रभाव पड़ सकता है।

बॉक्स सं. 2.5

समय की निर्धनता आय की निर्धनता को प्रभावित करती है, लेकिन परिवार की क्षमता-वंचना के निवारण के लिए रोज़गार नीतियों के साथ आधारभूत संरचना आवश्यक है। किन्तु, आधारभूत संरचना में पर्याप्त सार्वजनिक निवेश के बिना रोज़गार गारंटी नीतियाँ भी समान रूप से व्यर्थ साबित हो सकती हैं क्योंकि महिलाएँ समय के मामले में निर्धन

होती हैं और बिना भुगतान वाली गतिविधियों में उनका जो समय खर्च होता है, उस समय को मुक्त करने के लिए बेहतर आधारभूत संरचनाएँ व सुविधाएँ आवश्यक होती हैं। ऐसा करके ही महिलाओं का संक्रमण बाज़ार अर्थव्यवस्था की तरफ किया जा सकता है।

सरकार के रोज़गार गारंटी कार्यक्रम और महिलाओं के समय का आवंटन

रोज़गार के नवीन अवसरों का सृजन करके महिलाओं के बिना भुगतान वाले कार्य के बोझ को कम किया जा सकता है और उनके जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है, तथा इस प्रकार भुगतान वाले और बिना भुगतान वाले श्रम के जेंडर विभाजन को परिवर्तित किया जा सकता है। कुछ मामलों में इससे आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेश करने की प्राथमिकता को बल मिलेगा जिसके कारण बिना भुगतान वाले कार्य कम हो जाएँगे; जैसे – ग्रामीण जल परियोजनाएँ, सहायक पथ तथा लड़कों और लड़कियों के लिए विद्यालयों में अलग-अलग शौचालयों का निर्माण। इनके कारण पानी एकत्रित करने के लिए जाने में लगने वाला समय घट जाएगा और बच्चों को विद्यालय जाने में कम समय लगेगा तथा महिला विद्यार्थियों को विद्यालय जाने में अधिक सुविधा होगी। कुछ अन्य मामलों में ऐसे कार्यों व गतिविधियों में सीधे निवेश करने की आवश्यकता होगी जो 'अदृश्य' हैं; जैसे – बच्चों की देखभाल करना, वृद्धजनों की देखभाल करना तथा बहुत बीमार लोगों की देखरेख करना। जो सर्वाधिक आवश्यक हैं, उनकी सचमुच सहायता करने के लिए यह आवश्यक है कि कार्यक्रम सन्दर्भ-विशिष्ट हों। इसकी गारंटी को सुनिश्चित करने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि प्रक्रियाएँ सहभागितापरक और समुदाय-आधारित हों जिनमें महिलाओं और महिला-समूहों की प्रत्यक्ष संलग्नता हो।

यदि इन योजनाओं को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्रों में नौकरियों की गारंटी देने वाले कार्यक्रम बनाए जाएँ तो इन कार्यक्रमों के तीन अलग-अलग लाभ होंगे। **पहला,** ये कार्यक्रम सहभागिता करने वाले लोगों के लिए आय का सृजन करेंगे, और इसके साथ ही सबके लिए मज़दूरी की एक दर का स्तर सुनिश्चित करेंगे जिसमें (कार्यक्रम के डिजाइन पर निर्भर करते हुए) कुछ लाभ भी शामिल होंगे। सम्भव है कि इन नवीन सृजित नौकरियों में हमेशा महिलाओं की भर्ती की जाए और यह भी सम्भव है कि हमेशा महिलाओं की ही भर्ती न की जाए। ऐसा हो सकता है कि महिलाएँ भवनों आदि के निर्माण में कार्यरत श्रमिक के रूप में नियोजित हों जबकि युवा पुरुष स्थायी रूप से बीमार लोगों की, घर-परिवार में रहकर, देखभाल करें। किन्तु इन सभी मामलों में, आय के अतिरिक्त, क्षमता-निर्माण और कौशल-अर्जन का लाभ अलग-अलग मात्रा या कोटि में हासिल हो सकेगा। **दूसरा,** प्रदान की जाने वाली वस्तुएँ और सेवाएँ अल्पसुविधायुक्त समुदायों और आबादी के लिए खपत का हिस्सा बन जाएँगी, जो कि अपने आप में ही निर्धनों के विकास के पक्ष में एक महत्वपूर्ण योगदान होगा। **तीसरा,** और यह जेंडर समानता को प्रोत्साहित करने के लिए बहुत उल्लेखनीय है, कि इसके परिणामस्वरूप बिना भुगतान वाले कार्यों के पुनर्वितरण के सम्बन्ध में एक अत्याधिक शक्तिशाली नीति बन जाएगी।

हमारे सन्दर्भ में रोज़गार गारंटी कार्यक्रमों का महत्व यह है कि यदि इन्हें भलीभाँति एक प्रारूप दिया जाए तो ये कार्यक्रम बिना भुगतान वाले श्रम के मौजूदा जेंडर विभाजन को सुदृढ़ करने की बजाय महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए नौकरियों के सृजन के द्वारा पुनरुत्पादन की लागत को पुनर्वितरित करते हुए बिना भुगतान वाले कार्य को कम कर सकते हैं। अगर ऐसी परियोजनाएँ जेंडर-संसूचित नहीं होंगी तो खतरा यह होगा कि ये परियोजनाएँ महिलाओं के लिए प्रचलित दिन के 'दोहरे' प्रभाव (यानी काम के दोहरे बोझ) को उत्पन्न कर सकती हैं।

2.9 सारांश

महिलाओं और कार्य पर प्रारम्भिक विमर्शों को अर्थशास्त्र के ज्ञानानुशासन और इसकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में खोजा जा सकता है, जहाँ मुख्यतः क्रेताओं और विक्रेताओं पर ध्यान दिया जाता था और बाज़ार को निर्मित करने वाले केवल उसी कार्य को ही उत्पादक माना जाता था जो लाभों को उत्पन्न कर सके।

जबकि घर-परिवार का क्षेत्र स्वयं को बिना भुगतान वाले कार्य की श्रेणी में रखता है, जो कि जीवन को चलाने के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार, नारीवादी अर्थशास्त्रियों के लिए कार्य केवल गतिविधि या ऊर्जा का खर्च नहीं है जिससे, अन्य लोगों के लिए, मूल्य वाली वस्तुएँ और सेवाएँ उत्पादित होती हों बल्कि कार्य इस तरह भी निष्पादित किया जा सकता है जिसमें कोई मज़दूरी न मिलती हो, कोई वेतन या आय प्राप्त नहीं होती हो। आर्थिक रूप से कहें तो श्रम बाज़ार में कार्य वही है जो भुगतान के रूप में किया जाता है।

नारीवादी अर्थशास्त्र का विकास 'अर्थव्यवस्था' के प्रति मुख्यधारा के आर्थिक चिन्तन द्वारा प्रस्तावित प्रतिबन्धित और अनुपयुक्त दृष्टिकोण के प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। वर्तमान नारीवादी आन्दोलन की सर्वाधिक व्यापक विषयवस्तुओं में से वह महत्व है जो महिलाओं के कार्यों को एक निर्धारक के रूप में पुनरुत्पादन की भूमिका पर, श्रम के जेंडर विभाजन पर तथा महिलाओं और पुरुषों के बीच के अधीनस्थ/वर्चस्वमूलक सम्बन्धों पर दिया जाता है।

2.10 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) क्या महिलाओं द्वारा किए गए उत्पादक और पुनरुत्पादक दोनों कार्यों को मापना महत्वपूर्ण है? उदाहरणों की सहायता से चर्चा कीजिए।

2) महिलाओं द्वारा किए गए कार्य के मापन के लिए अंतर्राष्ट्रीय मापदण्डों की प्रासंगिकता की व्याख्या कीजिए।

3) महिलाओं के कार्य पर सार्वजनिक निवेश के निहितार्थों के लिए समय के उपयोग की सांख्यिकी का विश्लेषण कीजिए।

2.11 संदर्भ

Avila, Maria Betania (2007). Notas sobre o trabalho doméstico. In: Transformando as Relaçoes Trabalho e Cidadania: produçao, reproduçao e sexualidade. Núcleo de refl exão feminista sobre trabalho produtivo e reprodutivo. Bahía, Brazil as quoted *by Lilian Celiberti and Serrana Mesa, 2009 in Gender Relations in Productive and Reproductive Work IPS Latin America Edition.*

Beneria, Lourdes and Gita Sen (1981) Accumulation, Reproduction and "Women's Role in Economic Development": Boserup Revisited, Signs, Vol. 7, No. 2, Development and the Sexual Division of Labor (Winter)

Carrasco, Cristina (2001) La sostenibilidad de la vida humana, ¿un asunto de mujeres? IcariaEditorial- Barcelona as quoted *by Lilian Celiberti and Serrana Mesa, 2009 in Gender Relations in Productive and Reproductive Work IPS Latin America Edition*.

Celiberti, Lilian and Mesa, Serrana (2009) in Gender Relations in Productive and Reproductive Work IPS Latin America Edition.

Chakraborthy, Lekha (2008) Public Investment and Unpaid Work in India: Selectiive Evidence from Time Use Data.Conference Paper, Levy Economics Institute, NewYork. www.levyinstitute.org/pubs/wp-536.pdf

Ghosh, Jayati (2013) Women's Work in India in Early 21st centuary. www.sundarayya.org/papers/jayati/pdf Last accessed on January 9th, 2015.

Hirway, Indira (2005) Measurements based on Time Use Statistics, Conference Paper, Levy Economics Institute, NewYork.

Mies, M. (1981) Dynamics of Sexual Division of Labour and Capital Accumulation. Economic and Political Weekly.

Razvi. (2007) Political and Social Economy of Care in Development Context, Gender and Development Programme Paper. No. 3, UNRISD.

Rubin, Gayle (1998) "El tráfi co de mujeres: notas sobre la 'economía política' del sexo," in: Navarro, Marysa and Stimpson, Catherine (comp.). ¿Qué son los estudios de mujeres? Fondo de Cultura Económica. Mexico as quoted by *Lilian Celiberti and Serrana Mesa, 2009 in Gender Relations in Productive and Reproductive Work IPS Latin America Edition.*

Salvador, Soledad (2007) Estudio comparativo de la "economía del cuidado," in Argentina, Brasil, Chile, Colombia, México y Uruguay. IGTN/CIEDUR as quoted by *Lilian Celiberti and Serrana Mesa, 2009 in Gender Relations in Productive and Reproductive Work IPS Latin America Edition.*

United Nations Development Programme (1990) *Human Development Report 1990*. New York: Oxford University Press, page 32.

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Mies, M. (1981) Dynamics of Sexual Division of Labour and Capital Accumulation. Economic and Political Weekly.

Razvi. (2007) Political and Social Economy of Care in Development Context, Gender and Development Programme Paper. No. 3, UNRISD.

इकाई 3 विभाजन

संरचना — हर्षदा राठौर

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारत में श्रम बाज़ार के विभाजन की प्रकृति

- 3.3.1 विभाजन के कारण : माँग पक्ष
- 3.3.2 विभाजन के कारण : आपूर्ति पक्ष
- 3.3.3 श्रम बाजार पर विभाजन के प्रभाव
- 3.3.4 महिलाओं को श्रम बाज़ार से जोड़कर रखने के उपाय

3.4 वेतन में अन्तर

- 3.4.1 वेतन में अन्तर की प्रकृति
- 3.4.2 वेतन में अन्तर के निर्धारक तत्व
- 3.4.3 वेतन में अन्तर के कारण
- 3.4.4 वेतन में अन्तर को मिटाने के उपाय

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

3.8 सन्दर्भ

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

महिलाएँ आदिकाल से ही एक श्रमिक के तौर पर कार्य कर रही हैं, लेकिन आज श्रम के बाज़ार में वह अपने पुरुष सहयोगियों के मुकाबले समान धरातल पर नहीं खड़ी हैं। महिला कामगारों को असंगठित क्षेत्र में रखा जाता है और कम वेतन दिया जाता है। संगठित क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी कम है और उन्नति के मौके भी गिने-चुने मिलते हैं। महिलाएँ विभाजित बाज़ार में काम करती हैं। उनकी कार्य की स्थितियाँ भी दयनीय हैं और असंगठित क्षेत्र में होने के कारण वे सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के दायरे में भी नहीं आती हैं। श्रम विभाजन (शब्दावली देखें) का महिलाओं पर एक कामगार के तौर पर न केवल हानिकारक प्रभाव होता है, बल्कि इससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का भी नुकसान होता है।

महिलाओं की इस प्रकार की दुर्दशा केवल भारत के लिए ही नई बात नहीं है, बल्कि यह विश्व के अल्पविकसित देशों से लेकर औद्योगिक रूप से विकसित देशों तक समान रूप से विद्यमान है। हालाँकि, इस इकाई में हमारे अध्ययन का केन्द्र भारत है। आइए, इस इकाई के उद्देश्यों के बारे में जानें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- विभाजन की प्रकृति की व्याख्या, इसके कारण, प्रभाव और उपायों की व्याख्या कर सकें;

- वेतन में अन्तर के कारणों और प्रभावों का विश्लेषण कर सकें;
- महिलाओं को श्रम बाज़ार के साथ एकीकृत करने के तरीकों की व्याख्या कर सकें; और
- वेतन के अन्तर को दूर करने के सम्भावित उपायों पर चर्चा कर सकें।

3.3 भारत में श्रम बाज़ार के विभाजन की प्रकृति

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 127.2 लाख महिला कामगार थीं। इनमें से 94.67 प्रतिशत महिलाएँ असंगठित क्षेत्र में थीं। पुरुष कामगारों में भी 89.07 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे थे। जहाँ 10.91 प्रतिशत पुरुष संगठित क्षेत्र में थे तो केवल 5.28 प्रतिशत महिला कामगार संगठित क्षेत्र में थीं। **यह महिला कामगारों के असंगठित क्षेत्र में पूर्णतया और सापेक्ष रूप से संकेन्द्रण को दर्शाता है।**

आइए, इस परिदृश्य पर विस्तार से चर्चा करें।

- अगर हम कामगारों का वर्गीकरण मुख्यधारा और हाशिये के कामगारों (आपने इन वर्गों के बारे में इस खण्ड की इकाई 1 में पढ़ा है) के तौर पर करें तो 2001 की जनगणना के आँकड़े स्पष्ट रूप से बताते हैं कि श्रम बाज़ार में महिलाओं की स्थिति पुरुषों के मुकाबले कमज़ोर है। इस तरह से, हाशिये के सभी कामगारों में से 60.92 प्रतिशत कामगार महिलाएँ हैं और 39.07 प्रतिशत कामगार पुरुष हैं। मुख्यधारा के कामगारों में यह स्थिति विपरीत है। मुख्यधारा के कुल कामगारों में काफी अधिक संख्या, 76.72 प्रतिशत पुरुष कामगारों की है, जबकि केवल 23.27 प्रतिशत महिला कामगार हैं। मुख्यधारा के कामगारों के वर्ग के बारे में 2001 की जनगणना के विश्लेषण में यह देखा गया कि महिला कामगारों की एक बड़ी संख्या, लगभग 46.22 प्रतिशत खेती के कार्य में लगी है। इस वर्ग में इनमें से 53.60 लाख से ज्यादा खेतिहर मज़दूर के तौर पर काम करती हैं, जबकि 32.90 प्रतिशत ही उत्पादक के तौर पर कार्यरत हैं।

- अगर 2001 की जनगणना के आँकड़ों के आधार पर क्षेत्रवार महिला और पुरुष कामगारों की तुलना करें तो, हमें देखने को मिलता है कि 79 प्रतिशत महिला कामगार प्राथमिक क्षेत्र में काम करती हैं, जबकि इस क्षेत्र में पुरुष कामगारों का आँकड़ा 63 प्रतिशत है। इस तरह से, कृषि और इससे सम्बन्धित कार्यों में ज्यादातर महिला कामगार लगी हुई हैं।

- अगर हम सहायक क्षेत्र में रोज़गार का विश्लेषण करें तो औद्योगिक क्षेत्र में केवल 13 प्रतिशत महिला और 19 प्रतिशत पुरुष कामगार कार्यरत हैं। यह अन्तर तृतीयक क्षेत्र में और बढ़ जाता है, जहाँ 18 प्रतिशत पुरुष कामगारों के मुकाबले केवल 8 प्रतिशत महिला कामगार हैं। इस तरह से, उच्च आय वाली नौकरियों में महिलाएँ और भी कम हैं।

- सहायक और तृतीयक क्षेत्र में महिलाएँ भले ही काम कर रही हों, लेकिन उन्हें सभी उद्योगों में बराबर मौके नहीं मिलते हैं। एनएसएसओ ने उद्योगों को लगभग 384 क्षेत्रों में बाँटा है। केवल 55 तरह के उद्योगों में ही महिला कामगारों की संख्या ज्यादा है। इन उद्योगों में महिलाएँ कुल कामगारों के 40 प्रतिशत से अधिक हैं। तृतीयक क्षेत्र में महिलाओं की संख्या की स्थिति बहुत अलग नहीं है। व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में 8.98 प्रतिशत पुरुष कामगारों के पास रोज़गार है तो 2.26 प्रतिशत महिला कामगारों के पास रोज़गार है। यातायात और संचार के क्षेत्र में 3.54 प्रतिशत पुरुष कामगार हैं तो केवल 0.32 प्रतिशत महिला कामगार हैं।

इस तरह हमने देखा कि (macro data sets) आँकड़ों के विश्लेषण से महिलाओं की दयनीय स्थिति का प्रमाण मिलता है। आइए देखते हैं कि उपरोक्त स्थिति के क्या कारण हो सकते हैं।

3.3.1 विभाजन के कारणः माँग पक्ष

श्रम बाज़ार का विभाजन मुख्यतः समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे का नतीजा है। नियोक्ता और कामगार भी, ज्यादातर पुरुष होते हैं, उनका अधिकांश यह मानना होता है कि महिलाओं का मुख्य काम घर के भीतर ही एक पत्नी या मां के रूप में होता है। यहाँ हम कुछ अहम कारकों की चर्चा करेंगे जो श्रमिकों को जेंडर आधार पर विभाजित करते हैं।

- **गौण (Secondary) भूमिका** : श्रम बाज़ार में एक महिला जो भी कार्य करती है, उसकी भूमिका को गौण माना जाता है। उसे घर में आमदनी देने योग्य नहीं माना जाता और उसकी आय को गौण या मामूली आय माना जाता है। हालाँकि, अक्सर सभी सदस्यों की आय परिवार के भरण-पोषण के लिए ज़रूरी होती है।

- **समाज की पितृसत्तात्मक भूमिका** : हमारा समाज एक पितृ सत्तात्मक समाज है। कई पीढ़ियों तक पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति के चले आने की वजह से नियोक्ताओं को यह असलियत समझने और स्वीकार करने में परेशानी होती है कि महिलाएँ भी बराबर की हिस्सेदार हैं।

- **महिलाओं की कार्य के प्रति लगन** : महिलाओं की काम के प्रति लगन को लेकर गलत धारणाएँ चलन में हैं। नियोक्ताओं का मानना है कि महिलाएँ काम में अनियमित रहेंगी। माना जाता है कि महिलाएँ ज्यादा छुट्टियाँ और कार्य के प्रति कम गम्भीरता दिखाती हैं। पुरुषों के इसी नजरिये की वजह से महिला कामगारों की माँग कम योग्य और कम वेतन वाले क्षेत्रों में होती है।

- **आधुनिकता का प्रभावः** इस पारम्परिक नजरिये के साथ ही, आधुनिकता और मशीनीकरण भी महिलाओं के विरुद्ध गया है। पहले तो महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कामों के लिए मशीनों को तैनात कर दिया गया है, और इन मशीनों को पुरुष ही चलाते हैं। इससे महिला कामगारों की जगह पुरुष कामगार लेते जा रहे हैं। महिलाओं के ट्रेड यूनियन के संगठित न होने से, इसका उचित प्रतिरोध नहीं हो पाता है। इससे हमें पता चलता है कि आधुनिकीकरण से महिला कामगारों की माँग में परिवर्तन आया है।

- **कानूनों का असरः** महिला कामगारों की माँग में कमी आने के अन्य कारण, उन्हें सुरक्षा देने वाले कानून हैं। कुछ सुविधाएँ जैसे कि मातृत्व अवकाश और क्रेच उपलब्ध कराना नियोक्ताओं के मौजूदा खर्च को बढ़ाता है। समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धान्त भी महिला कामगारों को कम वेतन देने के लिए नियोक्ताओं के झुकाव को कम करता है क्योंकि अन्य सुविधाएँ और प्रावधान वेतन के अतिरिक्त होते हैं। इस वजह से भी महिला कामगारों की माँग में कमी आई है।

अगले उपभाग में आप श्रम के विभाजन के आपूर्ति पक्ष के कारणों के बारे में पढ़ेंगे।

3.3.2 विभाजन के कारणः आपूर्ति पक्ष

वही पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति जो कि माँग पक्ष से श्रम बाज़ार को विभाजित करती है, आपूर्ति पक्ष से भी विभाजन के लिए जिम्मेदार है। आइए, कुछ और अन्य अहम पहलुओं का परीक्षण करें।

- **पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति** : परिजनों और समाज की पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति, श्रम बाज़ार में महिलाओं की स्थिति को कमज़ोर बनाती है। पालन-पोषण और देखभाल में लड़कियों पर लड़कों की तरह ध्यान नहीं दिया जाता है। परिवार में लड़कों को जो स्वास्थ्य सुविधाएँ या खानपान मिलता है, वह लड़कियों को नहीं मिलता है। वे आम तौर पर रक्ताल्पता से ग्रस्त होती हैं या दूसरी बीमारियों के बोझ तले दबी होती हैं। एक लड़की को आमतौर पर हाईस्कूल की शिक्षा नहीं दी जाती है। अगर उन्हें पढ़ने की इजाजत भी मिलती है तो भी उन्हें अपने भाइयों की तरह अपने भविष्य के लिए उचित विषयों को चुनने के मौके नहीं मिलते हैं।

  पितृसत्तात्मक मूल्य महिलाओं से एक खास अनुशासन कनाए रखने और चुनिन्दा नौकरियों को ही करने की उम्मीद करते हैं, जिन्हें महिलाओं के लिए उपयुक्त कहा जाता है। ये पितृसत्तात्मक मूल्य महिलाओं में भी इस कदर घर कर गए हैं कि बहुत कम महिलाएँ उस क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण करती हैं जो पुरुषों के लिए आरक्षित समझे जाते हैं। शिक्षा पूरी करने के बाद भी वे उस अनिर्णययुक्त स्थिति में रहती हैं कि नौकरी करें या नहीं और करती भी हैं तो कितने समय के लिए कार्यरत रह सकती हैं। हालाँकि अब स्थिति बदल रही है, परन्तु हम अब भी समाज के कुछ वर्गों में पितृसत्तात्मक सोच का बोलबाला देखते हैं।

- **पितृसत्तात्मक संरचनाएँ** : पितृसत्तात्मक समाज की सोच में माना जाता है कि घर का काम करना और बच्चों को पालना ही महिलाओं का मुख्य काम है। इसलिए, महिलाएँ हमेशा ऐसे काम को प्राथमिकता देती हैं, जो उन्हें घर के पास मिले और काम का समय ऐसा हो जिससे वे घर की जिम्मेदारी भी पूरी कर सकें। वे अक्सर उन्नति के ऐसे मौके छोड़ देती हैं, जिसमें उनके कार्य या कार्यस्थल में बदलाव हो, पुरानी या नयी जगह पर अतिरिक्त जिम्मेदारी मिले।

  पितृसत्तात्मक संरचनाएँ भी पितृसत्तात्मक नजरिये के साथ महिलाओं के आवागमन को रोकने के लिए जिम्मेदार हैं। विवाह के समय महिलाएँ अपने पति या ससुराल वालों के पास रहने चली जाती हैं। वे अपने पति का स्थानान्तरण होने पर भी उनके साथ जाती हैं। इस तरह से महिलाओं का सीमित आवागमन श्रम बाज़ार में उनकी आपूर्ति को बाधित करता है।

- **मोलभाव की शक्ति** : आपूर्ति पक्ष में महिलाओं की अनुपलब्धता की एक और वजह उनका मोलभाव करने में असमर्थ होना है। यह एक स्पष्ट तथ्य है कि श्रमिक की मोलभाव की क्षमता उसकी यूनियन की शक्ति पर निर्भर करती है। महिलाओं के पास यूनियन के कामों के लिए समय निकालना मुश्किल होता है। इसलिए महिलाओं के कामगार संगठन देखने को नहीं मिलते हैं। संगठन के कामों के लिए सक्रिय भागीदारी चाहिए होती है जिसमें उनको संगठन के कामों के लिए लम्बे समय तक किसी जगह पर रखा जा सकता है। पुरुष सदस्य इसके लिए समय दे सकते हैं, लेकिन महिलाएँ ऐसा नहीं कर सकती हैं।

3.3.3 श्रम बाज़ार पर विभाजन के प्रभाव

श्रम बाज़ार का विभाजन अवांछनीय है, क्योंकि यह महिला कामगारों के साथ भेदभाव करता है। विभाजन से महिला कामगारों को पुरुष कामगारों के मुकाबले कम वेतन मिलने लगता है। आइए, देखते हैं कि श्रम के विभाजन से महिला कामगारों की स्थिति पर और क्या प्रभाव पड़ते हैं।

- **सघन पूँजी तकनीक का अभाव** : विभाजन महिला कामगारों को विशेष क्षेत्रों तक सीमित रखता है जिसमें सघन पूँजी तकनीक कम होती है। उन भारतीय उद्योगों में जहाँ महिला कामगारों की संख्या ज्यादा है, वहाँ पूँजी/श्रम का अनुपात और उत्पादन/श्रम का अनुपात भारत के सभी उद्योगों के औसत अनुपात से नीचे है।

- **नौकरी खोने की सुभेद्य स्थिति** : महिला कामगारों के लिए नियोक्ताओं की रणनीति रहती है– 'आखिर में रखना और सबसे पहले निकालना।' विभाजन महिलाओं को सबसे दयनीय कामगार बनाता है। तनावपूर्ण स्थिति में ये ही सबसे पहले निकाले जाने वाले कामगारों में शामिल होती हैं। दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि अगर स्थिति सुधर जाती है तो स्थिति के सुधरने के बाद महिलाओं को ही अन्त में नौकरी पर रखा जाता है।

- **महिला कामगारों की अतिरेकता** : विभाजन का एक और गम्भीर प्रभाव पितृसत्तात्मक सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं के चलते महिला कामगारों का अधिकतम संख्या में बेरोज़गार होना है।

आने वाले उपभाग में आप मुख्यधारा की कामगार महिलाओं और विभाजन पर काबू पाने के उपायों के बारे में पढ़ेंगे।

3.3.4 महिलाओं को श्रम बाज़ार से जोड़कर रखने के उपाय

- **पितृसत्तात्मक नजरिये से मुक्ति पाना** : जैसा कि हमने देखा है श्रम बाज़ार में विभाजन की मुख्य वजह, माँग और आपूर्ति पक्ष की ओर से, महिलाओं की माँ, पत्नी और कामगार की भूमिकाओं के प्रति पितृसत्तात्मक सोच में रही है। इस सोच को बदलने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। महिला संगठनों को महिलाओं के भीतर से ही इस सोच को खत्म करने के लिए असाधारण प्रयास करने चाहिए।

- **श्रम बाज़ार के विभाजन के विपरीत प्रभावों के बारे में जागरूकता** : श्रम बाज़ार के विभाजन के बारे में पुरुषों को जागरूक करना चाहिए कि इससे केवल महिलाओं को ही नहीं बल्कि नियोक्ताओं को भी नुकसान होता है। उन महिलाओं को भी इन नुकसानों के बारे में बताना चाहिए जो इसे अपना भाग्य मानकर स्वीकार कर लेती हैं।

- **नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) की भूमिका** : श्रमिकों के साथ काम करने वाले सभी संगठनों और सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्र के नियोक्ताओं को महिलाओं और पुरुषों दोनों कर्मचारियों के कार्यरत होने के लाभ के तथ्य के बारे में बताया जाना चाहिए और इसे सुनिश्चित करने के लिए विशेष उपाय किए जाने चाहिए।

- **जेंडर समावेशी नीतियाँ** : जेंडर-संवेदी और जेंडर समानता को बढ़ाने वाली नीतियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। दोनों जेंडरों के लोगों को शैक्षणिक गतिविधियों में अव्वल आने और कार्यस्थल पर बेहतर प्रदर्शन के लिए विशेष भत्ता देने का प्रावधान करना चाहिए।

- **सरकार द्वारा वकालत (advocacy)** : सरकार और महिलाओं की समस्याओं को देखने वाले गैर-सरकारी संगठनों को भी लगातार इस गलत धारणा को बदलने की कोशिश करनी चाहिए कि महिलाओं के लिए काम करने की सबसे बेहतर जगह घर है। बाहर काम करने से महिलाओं के बच्चों और परिवारों पर बुरा असर पड़ेगा, ऐसी काल्पनिक सोच को हतोत्साहित करना चाहिए। इस तरह की धारणाओं को दूर करने के लिए इस क्षेत्र में शोधों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

- **औपचारिक शिक्षा को बढ़ावा** : लड़कियों को बराबर संख्या में प्राथमिक शिक्षा में पंजीकृत करवाने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए और उनके स्कूल छोड़ने के अनुपात को कम करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें विशेष छात्रवृत्ति देकर उच्च शिक्षा में जाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अगर कुछ शित्रा के क्षेत्र महिलाओं के लिए अब तक अनछुए हैं तो वहां पर महिलाओं को लाने के लिए खास प्रयास किए जाने चाहिए।

- **बच्चों की देखभाल करने की सुविधा** : विशेष सुविधाएँ जैसे कि मातृत्व अवकाश, कामगार महिलाओं के बच्चों की देखभाल के लिए क्रेच आदि होने चाहिए ताकि संगठित क्षेत्र के श्रम बाज़ार में महिलाएँ प्रवेश कर सकें। चूँकि व्यक्तिगत तौर पर नियोक्ता इस खर्च को सहने पर तैयार होंगे, इसलिए सरकार को अपने कन्धों पर यह जिम्मेदारी लेनी चाहिए। इससे नियोक्ता की ओर से भी महिला कामगारों को रखने का विरोध कम हो जाएगा।

- **समान पारिश्रमिक** : एक जैसे कार्य के लिए महिला और पुरुष को बराबर पारिश्रमिक मिलना चाहिए। भारत ने समान पारिश्रमिक अभिसमय का अनुमोदन किया है लेकिन इस तथ्य के बावजूद भी समान पारिश्रमिक सम्भव नहीं हो सका। इसलिए, अगर महिलाओं को श्रम बाज़ार में लाना है तो इस कानून में संशोधन और इसको प्रभावी तौर पर लागू करने की आवश्यकता है।

आने वाले अनुभाग में आप वेतन में अन्तरों की प्रकृति, निर्धारकों, कारणों और प्रभावों के बारे में पढ़ेंगे। इसे पढ़ने से पहले, आपकी पिछले अनुभागों के बारे में समझ की जाँच करने का समय है, जिसे आपने अभी-अभी पढ़ा है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) विभाजन की परिभाषा दीजिए। श्रम बाज़ार में माँग और आपूर्ति पक्ष के विभाजन के कारणों को गिनाइए।

2) उन तत्वों की सूची बनाइए जो श्रम बाज़ार में विभाजन को प्रभावित करते हैं।

3) श्रम बाज़ार में विभाजन से मुक्ति पाने के उपायों की सूची बनाइए।

इस अनुभाग में आप वेतन के अन्तर की प्रकृति, निर्धारकों, कारणों और प्रभावों के बारे में पढ़ेंगे।

3.4 वेतन में अन्तर

औद्योगीकरण के समय से ही महिला कामगारों को वेतन की असमानता यानी अन्तर का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ हम पुरुष और महिला कामगारों के बीच वेतन में अन्तरों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

3.4.1 वेतन में अन्तर के प्रकृति

समान कार्य के लिए महिला और पुरुष कामगारों को दिए जाने वाले वेतन में अन्तर होता है। यह विश्वभर में पाया जाता है और भारत के लिए यह अनोखी बात नहीं है। आमतौर पर ऐसा खास तरह के कामों को महिलाओं के लिए आरक्षित करके और दूसरे कामों को पुरुषों के लिए निर्धारित करके तथा पुरुषों के लिए आरक्षित कामों के लिए अधिक वेतन देकर किया जाता है। नीचे दी गई एक केस-स्टडी से आप इस बात को पूरी तरह से समझ सकेंगे।

बॉक्स सं. 3.1

पश्चिम बंगाल में निर्मला बनर्जी के अध्ययन से खुलासा हुआ कि छोटी औद्योगिक इकाइयों में महिला कामगारों को पुरुष कामगारों के मुकाबले कम वेतन दिया जाता है। उन्होंने अपने एक और अध्ययन में बताया कि कोलकाता में बीड़ी बनाने वाले मज़दूरों को उनके महिला और पुरुष होने के आधार पर अलग-अलग वेतन दिया जा रहा था। महिला कामगारों को प्रति 1000 बीड़ियों पर 3 रुपये दिए जा रहे थे, जबकि पुरुष कामगारों को प्रति 1000 बीड़ी के लिए 10 रुपये और दैनिक भत्ता दिया जा रहा था। यह अन्तर इसलिए था कि पुरुष फैक्ट्री में काम कर रहे थे और महिलाएँ घरों से काम कर रही थीं। महिलाओं को अपना काम समय पर पूरा करने के लिए अपने घर के कामों को छोड़ना पड़ता था। वे अपने काम को समय पर पूरा करने के लिए अपने बच्चों और बूढ़े रिश्तेदारों की मदद भी लेती थीं। ये सब त्याग और समझौते करने के बावजूद उन्हें कम वेतन मिलता था। चूंकि वे फैक्ट्री में काम नहीं करती थीं, इसलिए उन्हें श्रम कानूनों की सुरक्षा भी नहीं मिलती थी। यह देखते हुए कि वे घर से काम कर रही थीं, उन्हें लंच ब्रेक (खाने की छुट्टी) जैसी सुविधाएँ भी नहीं मिलती थीं। इन सबके बावजूद उन्हें संगठित क्षेत्र में समान काम करने पर पुरुषों के मुकाबले कम वेतन मिलता था।

यद्यपि समान पारिश्रमिक अभिसमय संख्या 1000 को 1951 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा पारित किया गया था और भारत ने भी इसका अनुमोदन किया था। भारत में समान वेतन कानून 1976 में पारित किया गया, जो नियोक्ताओं के लिए समान वेतन देना अनिवार्य बनाता है, लेकिन महिला कामगारों को आज तक भी पुरुष कामगारों के मुकाबले कम वेतन मिलता है।

एनएसएसओ (1996) का प्रतिवेदन दिखाता है कि केवल कृषि के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि रोज़गार के सभी दूसरे क्षेत्रों जैसे उद्योग, वित्त और अन्य कार्ड सेवाओं में महिलाओं को कम वेतन दिया जाता है। इस प्रकार, महिलाओं को कृषि में पुरुषों के मुकाबले 90.8 प्रतिशत, खनन में 67.8 प्रतिशत, वित्त में 84.5 प्रतिशत और सेवा क्षेत्र में 72.0 प्रतिशत ही वेतन दिया जाता है। वेतन में अन्तर न केवल रोज़गार के सभी विभिन्न क्षेत्रों में देखा जाता है बल्कि कुछ व्यवसायों में भी देखा जाता है। समान शैक्षणिक स्तर पर, नर्सिंग में महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले 85.5 प्रतिशत, शिक्षण क्षेत्र में 71.4 प्रतिशत, लिपिकीय कार्यों में 87.4 प्रतिशत वेतन मिलता है। अगर शिक्षित महिलाओं की ऐसी दशा है तो सोचा जा सकता है कि अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित महिलाओं की स्थिति क्या होगी।

बॉक्स सं. 3.2

वेतन में अन्तर सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में देखा जाता है, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में यह थोड़ा कम है। इस प्रकार, सार्वजनिक क्षेत्र में पुरुष-महिला के वेतन का अनुपात क्रमशः कृषि, निर्माण और सेवा क्षेत्र में 1.01, 1.28 और 1.27 है। निजी क्षेत्र के उपरोक्त सभी क्षेत्रों में यह अनुपात 1.47, 1.61 और 1.58 है।

वैतनिक कामों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से इस बात के मिश्रित उदाहरण मिलते हैं कि जेंडर के आधार पर वेतन में अन्तर घट रहा है। कुछ औद्योगिक देशों में, जैसे– अमेरिका में यह अन्तर कम हो गया लगता है। अन्य देशों जैसे– जापान में यह बढ़ गया है। इसी तरह से, विकासशील देशों में, जैसे कि एल सल्वाडोर और श्रीलंका, हांगकांग, म्यांमार, सिंगापुर, ताइवान और चीन में वेतन के अन्तर बढ़ गए हैं।

जबकि प्रमाण विरल हैं, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की मात्रा के साथ व्यापार विस्तार और उदारीकरण जेंडर के आधार पर वेतन के अन्तरों को दो तरह से प्रभावित कर सकते हैं: (अ) महिला और पुरुष कामगारों की माँग पर अलग-अलग प्रभाव के द्वारा और (ब) पूँजी के निर्यात से सीधे प्रभावित होने वाले उद्योगों में संगठित कामगारों के सापेक्ष मोलभाव की शक्ति बढ़ाने के द्वारा।

अपेक्षा की जाती है कि एफडीआई का प्रवाह महिला कामगारों का वेतन बढ़ाने की दिशा में होगा, क्योंकि यह महिला कामगारों की माँग को प्रोत्साहित करेगा। इसके विपरीत, व्यवसाय के अपने कुछ या समस्त उत्पादन को राष्ट्रीय सीमाओं में स्थानान्तरित करने की योग्यता प्रभावित कामगारों के वेतन पर दबाव डालती है। ऐसे शोध कम उपलब्ध हैं, जो दर्शाते हैं कि बाद वाला प्रभाव ज्यादा असरकारक रहा है।

यह भी तर्क दिया जाता है कि उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता (नाफ्टा - एनएएफटीए) पर हस्ताक्षर करके और साथ ही निवेश के दूर जाने की धमकी ने अमेरिका में विनिर्माण नियोक्ताओं की इस सम्बन्ध में सफलतापूर्वक मदद की है कि वे वेतन वृद्धि का विरोध करें। इसी तरह से, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की, नई औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से, जहाँ वेतन और काम की परिस्थितियाँ सुधर गई हैं, वहाँ से कम विकसित देशों, जैसे भारत, मॉरीशस, श्रीलंका और हाल ही में बांग्लादेश, चीन और वियतनाम की

ओर जाने की प्रवृत्ति है। जिन उद्योगों में पूँजी 'फूटलूज' हो (अर्थात् जहाँ व्यापार के बाहर चले जाने की धमकी की अत्याधिक आशंका मौजूद हो), उन उद्योगों में यदि महिलाएँ पुरुषों के वेतन के मुकाबले ज्यादा संकेन्द्रित हों, तो महिलाओं का वेतन पुरुषों के मुकाबले बढ़ने की उम्मीद कम ही है। वास्तव में, ऐसा विकासशील देशों में कम वेतन वाले उन स्थलों पर होने की सम्भावना होती है, जो एफडीआई को आकर्षित करते हैं। आश्चर्य नहीं है कि वेतन की विसंगति उन विकासशील देशों या इलाकों में देखी जाती है, जहाँ निर्यात आधारित औद्योगीकरण या इकोनोमिक प्रोसेसिंग जोन (EPZ) होते हैं।

इसके विपरीत, कुछ विकसित अर्थव्यवस्थाओं, जैसे अमेरिका में भूमण्डलीकरण के कारण ने पुरुषों के वेतन को महिलाओं के मुकाबले बुरी तरह से प्रभावित किया है। पिछले दो दशकों में, व्यापार के उदारीकरण और पूँजी की गतिशीलता ने संकेन्द्रित उद्योगों में अच्छे वेतन वाले (ब्लू कॉलर वेजेज़) रोज़गार के कार्यों को कम किया है जहाँ पुरुष कामगारों की संख्या अधिक थी। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा बढ़ने से ऐसे उद्योगों में पुरुष कामगारों की मोलभाव की क्षमता कम हुई है। यह भी जेंडर के आधार पर वेतन के अन्तरों के कम होने की एक व्याख्या हो सकती है। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध से अमेरिका में वेतन विसंगति घटी है, जिसे पुरुष कामगारों के वास्तविक वेतन में कमी की शुरुआत माना जाता है (लॉरेंस और बर्नस्टीन, 1994)। कम से कम कुछ देशों में, जेंडर आधार पर कम होती वेतन विसंगति महिला और पुरुषों में **अधोगामी संगतीकरण (downward harmonlization)** के रूप में प्रदर्शित होती है।

अन्य कारकों ने भी पिछले दशकों में जेंडर आधारित पर वेतन विसंगतियों को प्रभावित किया है। दुनिया भर में जेंडर के आधार पर व्यावसायिक अलगाव के तरीकों में अहम बदलाव आए हैं। यद्यपि, महिलाएँ शिक्षा के हर स्तर पर, पुरुषों से कम कमाती हैं, लेकिन खासतौर पर, विकसित देशों में उच्च पदों पर महिलाओं की संख्या बढ़ने से समस्त श्रम बाज़ार में महिलाओं का वेतन पुरुषों के मुकाबले प्रभावी रूप से सुधरा है। अन्य महत्वपूर्ण कारक, जो देश और क्षेत्र पर निर्भर करते हैं, इस प्रकार हैं :

- वेतन समझौते का प्रकार
- तकनीकी बदलाव
- औद्योगिक विकास का तरीका
- जेंडर असमानता के प्रति समाज की सोच में बदलाव

बॉक्स सं. 3.3

महिलाओं और पुरुषों के वेतन में अन्तर उन देशों में कम होता है जहाँ केंद्रीकृत सामूहिक मोलभाव होता है। ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, नॉर्वे और स्वीडन में वेतन का अन्तर अपेक्षाकृत कम है। इन देशों में केन्द्रीकृत सामूहिक मोलभाव होता है जो आमतौर पर समतावादी वेतन नीतियों पर ज़ोर देता है। कनाडा और अमेरिका में वेतन में अन्तर तुलनात्मक रूप से अधिक है, क्योंकि वहाँ वेतन के मोलभाव की प्रक्रिया विकेन्द्रीकृत है, बाज़ार-उन्मुखी है और उद्यम के आकार पर निर्भर करते हुए उद्यम के स्तर पर है (लिम, 1996; कूसेरा, 1998)। बड़े उद्यम महिलाओं को अधिक वेतन देने की प्रवृत्ति रखते हैं और अधिक महिलाओं को रोज़गार देते हैं।

3.4.2 वेतन में अन्तर के निर्धारक तत्व

समान काम के लिए महिलाओं को कम वेतन दिया जाता है और महिलाओं को कमतर काम और ठेके पर या सामान्य काम तक सीमित रखा जाता है। महिला कामगारों को भेदभावपूर्ण मौके मिलते हैं और उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार होता है।

- वेतन विसंगति का कारण शिक्षा, योग्यता, मौकों में पितृसत्तात्मक नज़रिया और महिलाओं के कमतर होने के भ्रम से जेंडर आधारित अन्तर होता है। राज्य और श्रमिक संगठनों की ओर से सकारात्मक कदम नहीं उठाने से भी वेतन विसंगति बनी हुई है।

- वेतन विसंगति के असर के रूप में कार्यस्थल, घर, समुदाय और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं को कमतर माना जाता है, बेटों को प्राथमिकता दी जाती है, पुरुषों को कमाऊ और घर का मुखिया समझा जाता है।

हाल के वर्षों में महिलाओं के वैतनिक रोज़गार में वैश्विक स्तर पर बढ़ोत्तरी के बावजूद, रोज़गार में जेंडर भेदभाव अब भी विश्व भर में मौजूद है। यह श्रम बाज़ार में महिलाओं की कमज़ोर स्थिति का अहम सूचक हो सकता है। वास्तव में, उच्च स्तर के व्यावसायिक भेदभाव आमतौर पर श्रम बाज़ार में महिलाओं की कमज़ोर स्थिति से सम्बन्धित होते हैं। कम वेतन, कम स्तर और सीमित रोज़गार की सम्भावनाएँ आदि इनमें शामिल हैं। यह श्रम बाज़ार की कठोरता और आर्थिक अक्षमता का स्रोत हो सकती है।

'पुरुषों के काम' करने वाली महिलाओं की संख्या ज्यादा है, बजाय इसकी विपरीत स्थिति के। लेकिन, एक नियम के तौर पर, महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले रोज़गार के सीमित अवसर मिलते हैं। पुरुष-प्रधान, गैर-कृषि व्यवसाय, महिला-प्रधान रोज़गार के मुकाबले सात गुना अधिक है। महिलाएँ लिपिकीय और सचिवालय और निचले स्तर की सेवा के कार्यों (जैसे दुकान सहायक, घरों में काम करने वाली सेविका, सौंदर्य प्रसाधनों में काम करने वाली) में अधिकता से संलग्न हैं और प्रोफेशनल के तौर पर वे ज्यादातर नर्स या टीचर होती हैं। महिलाओं के रोज़गार आमतौर पर कम वेतन वाले होते हैं जिससे उनका सम्मान और स्तर भी कम माना जाता है।

दो विभिन्न प्रकार के रोज़गारों के विभाजन में एक अन्तर हमेशा किया जाता है। **क्षैतिज विभाजन** से आशय अलग-अलग रोज़गारों में महिलाओं और पुरुषों की मौजूदगी से है (उदाहरण के तौर पर महिलाएँ नौकरानी/टीचर होती हैं और पुरुष ट्रक ड्राइवर/मोटर मैकेनिक होते हैं); जबकि दूसरा प्रकार **ऊर्ध्वाधर विभाजन** है, जो महिलाओं और पुरुषों के किसी रोज़गार में स्तर के आधार पर क्रमिक पदानुक्रम से सम्बन्धित है (उदाहरण के तौर पर उत्पादन करने वाले कामगार की तुलना में उत्पादन के निरीक्षक)। रोज़गार के विभाजन का कोई भी रूप विश्व भर में सामाजिक-आर्थिक विकास के स्तर से सम्बन्ध नहीं रखता है। दोनों क्षेत्रवार अलग-अलग हो सकते हैं, हालाँकि, सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलू इस तौर पर अहम हो सकते हैं कि ये जेंडर आधार पर रोज़गार में भेदभाव की सीमा को निर्धारित करते हैं।

एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में **क्षैतिज भेदभाव** सबसे कम है और मध्य एशिया/उत्तरी अमेरिका में सबसे ज्यादा है। यह अन्य विकासशील क्षेत्रों में तुलनात्मक रूप से ज्यादा है, जबकि ओईसीडी और पूर्वी यूरोप की परिवर्तित अर्थव्यवस्था में औसत मात्र है। ओईसीडी के उपक्षेत्रों में जेंडर आधार पर रोज़गारपरक भेदभाव अधिक और महत्वपूर्ण तौर पर मौजूद है। उत्तरी अमेरिका में यह निम्न स्तर पर है, जबकि उपक्षेत्र के रूप में स्कैण्डिनेविया में यह

सर्वाधिक है। यहाँ पर विभाजन का स्तर ऊँचा होने का कारण सम्भवतया कल्याण के तौर पर सृजित रोज़गारों का 'महिला-उन्मुखी' रहना है (एंकर और मेलकास, 1998, पृ. 9)।

इसके विपरीत **ऊर्ध्वाधर विभाजन** विश्व के अन्य क्षेत्रों के अलावा एशिया और प्रशान्त क्षेत्र में ज्यादा है। ऐसा लगता है कि विशेषज्ञता आधारित औद्योगिक विकास ने महिलाओं के लिए औद्योगिक रोज़गार के नए अवसर प्रदान किए हैं (साथ ही महत्वपूर्ण तौर पर **क्षैतिज विभाजन** को कम किया है) हालाँकि, ऐसा रोज़गार में आय, अधिकार और भविष्य की उन्नति की सम्भावनाओं के सन्दर्भ में जेंडर असमानताओं को कम किए बिना हुआ है।

बॉक्स सं. 3.4

जेंडर के आधार पर व्यावसायिक अलगाव को अक्सर यह कहकर सही ठहराया जाता है कि महिलाओं के पास विशेष गुण हैं, जिनसे वे कुछ कामों के लिए पुरुषों के अपेक्षा अधिक योग्य हैं। यह तर्क दिया जाता है कि पारम्परिक रूप से 'महिलाओं' के रोज़गार देखभाल करने की, निपुण हाथों से किए जाने वाले काम की और पारम्परिक घर के कार्यों की गतिविधियों से जुड़े होते हैं। महिलाओं से इन्हें करने की उम्मीद की जाती है। इसी तरह से महिला कामगारों मातहती और अधीनता जैसे अन्य गुण भी जोड़े जाते हैं और ये जेंडर रोज़गार जेंडर आधारित तरीकों से रोज़गार को प्रभावित करते हैं।

अब आप पिछले अनुभागों की आपकी समझ को जाँच लें जिन्हें आपने अभी पढ़कर खत्म किया है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) संक्षेप में लिखें:

i) श्रम बाज़ार में महिलाओं को एकीकृत करने के तरीके।

ii) श्रम बाज़ार में वेतन के अन्तरों को दूर करने के तरीके।

2) श्रम बाज़ार में वेतन के अन्तरों (विसंगति) की क्या प्रकृति होती है?

आइए, अब हम पुरुष और महिला कामगारों के बीच में वेतन विसंगति होने के कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

3.4.3 वेतन में अन्तर के कारण

महिलाओं और पुरुषों के बीच वेतन विसंगति के कारण समाज की गहन पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति में निहित हैं। आइए इसके कुछ और कारणों के बारे में पढ़ते हैं।

- **गौण कमाई करने वाली** : महिलाओं को कम वेतन देने का एक तर्क यह रखा जाता है कि पुरुष तो परिवार को चलाने के लिए नौकरी करते हैं, जबकि महिलाएँ केवल अतिरिक्त आय के लिए काम करती हैं। परन्तु कई सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण इस बात की पुष्टि करते हैं कि बड़ी संख्या में महिलाएँ अपने परिवार की अकेली आय जनित सदस्य हैं। जनगणना के आँकड़े भी बताते हैं कि बड़ी संख्या में महिलाएँ परिवारों की मुखिया हैं।

- **मशीनरी का प्रयोग करने में अक्षम** : वेतन विसंगति हमेशा केवल आय की विभिन्न दरों पर नहीं होती है। महिलाओं और पुरुषों की औसत आय में अन्तर इसलिए भी होता है कि कई महिला कामगार समान रोज़गार में निचले स्तर पर काम कर रही होती हैं या असंगठित क्षेत्र में जैसे बीड़ी मज़दूरों की तरह से काम काम कर रही हैं। यह इस तथ्य पर भी निर्भर करता है कि जब भी मशीनों को लगाया जाता है तो महिलाओं की जगह पर पुरुषों को रखा जाता है और उन्हें मशीनों की वजह से उत्पादन बढ़ने के बाद वेतन वृद्धि भी दी जाती है। महिलाएँ जो यही काम घर पर करती हैं, की औसत आय भी कम होती है क्योंकि उन्हें पुरुषों के मुकाबले काम के कम घण्टे मिलते हैं और वे बड़े स्तर पर बेरोज़गारी की समस्या से जूझती हैं।

- **श्रम का जेंडर विभाजन** : महिला और पुरुष के बीच कार्य का विभाजन भी वेतन में अन्तर का एक कारण है। कृषि में निराई करना मुख्य रूप से महिलाओं का काम माना जाता है और यह काम आमतौर पर खाली समय में किया जाता है। दूसरी ओर, हल जोतना, बुवाई और फसल काटना मुख्य रूप से पुरुषों के काम हैं और ये सभी व्यस्त मौसम (पीक सीजन) के काम हैं और खास समय में होने वाले काम हैं। काम में अन्तर (निराई बनाम जुताई, बुवाई और कटाई) और समय में अन्तर (खाली समय (off peak season) की तुलना में खास समय यानी पीक सीजन में होने वाले काम) भी महिला और पुरुष कामगारों के बीच वेतन विसंगति को बढ़ावा देते हैं।

- **अप्रचलित तकनीक का इस्तेमाल** : उद्योगों में महिलाओं को दिए जाने वाले काम अक्सर कम पूँजी वाली तकनीक से सम्बन्धित होते हैं। जिस प्रकिया में वे सहभागी होती हैं, वह ज्यादा प्राथमिक होती है, जिसमें अपरिष्कृत उपकरण प्रयुक्त होते हैं, जिनमें शारीरिक और मानवीय ऊर्जा अधिक लगती है। परिणामस्वरूप, उत्पादन धीरे-धीरे होता है, निम्न स्तरीय होता है और वेतन भी कम दिया जाता है।

- **नगण्य श्रम में संलग्नता** : उदाहरण के तौर पर, हस्तशिल्प की बात करें तो महिलाओं की योग्यता अधिकांश पूँजी और ऊर्जा बचाने की सरलता में होती है। उन्हें कभी-कभी ही उत्पादित माल को अन्तिम आकार देने का निश्चित काम दिया जाता है जो हस्तशिल्प को बचाएगा। महिलाओं की योग्यता सहायकों के रूप तक ही सीमित रहती है इसलिए महिलाओं का वेतन कम रहता है।

- **श्रम बाज़ार से कमज़ोर सम्बन्ध** : महिला कामगारों के कम वेतन की वजह श्रम बाज़ार से कमज़ोर सम्बन्ध होना भी है। पितृसत्तात्मक मूल्यों से अन्तर्सम्बन्धित होकर, उनकी सोच यह रहती है कि उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी बच्चों और घर को देखना है। वे एक बच्चे के पैदा होने के बाद रोज़गार और उसके अवसर छोड़ देती हैं और श्रम बाज़ार में फिर से तब प्रवेश करती हैं, जब उनका बच्चा स्कूल जाने लायक हो जाता है।

यहाँ पर आप इस अभ्यास के माध्यम से अपनी समझ की जाँच कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) वेतन में अन्तरों (वेतन-विसंगति) को निर्धारित करने वाले कारकों को लिखिए।

2) वेतन विसंगति के कारणों की सूची बनाइए।

3) कौन से कारक वेतन विसंगति को प्रभावित करते हैं? स्पष्ट कीजिए।

अगले उप-अनुभाग में आप पढ़ेंगे कि कैसे वेतन विसंगति को कम किया जा सकता है।

3.3.4 वेतन में अन्तर को मिटाने के उपाय

नीचे बताए गए उपाय वेतन विसंगति को दूर करने में अहम साधन बन सकते हैं।

- **श्रम बाज़ार का विभाजन खत्म हो :** वेतन विसंगति श्रम बाज़ार को विभाजित करती है। इसलिए, माँग और आपूर्ति दोनों पक्ष के तत्वों को बदलकर श्रम बाज़ार के विभाजन को रोका जाए।
- **संगठित श्रम बाज़ार में प्रवेश :** महिलाओं को संगठित श्रम बाज़ार में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और सुविधा देनी चाहिए।
- **यूनियन की गतिविधियों में भागीदारी :** महिलाओं को बड़ी संख्या में श्रम यूनियनों में भागीदार बनने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वे वेतन विसंगति से लड़ सकें।
- **समान वेतन कानून :** समान वेतन कानून को लागू करना चाहिए और इसकी कमियों को दूर किया जाना चाहिए।

3.5 सारांश

श्रम बाज़ार केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्वभर के सभी देशों में भी कामगारों के जेंडर के आधार पर विभाजित है। यहाँ पर महिला कामगारों को पुरुष कामगारों के बराबर महत्व नहीं मिलता है। इसके पीछे कामगारों की माँग और आपूर्ति पक्ष में कई कारक काम कर रहे हैं, जिससे बाज़ार में यह विभाजन मौजूद है। इस विभाजन का एक अहम कारण समाज और नियोक्ताओं की गहरी पितृसत्तात्मक सोच है। नियोक्ताओं की सोच में बदलाव लाने के प्रयास ही श्रमिकों के विभाजन को दूर करने की दिशा में सबसे अहम कदम होंगे। महिलाओं की योग्यता में निखार विभाजन से मुक्ति पाने का उपचार होगा। महिलाओं के लिए कई तरह के तकनीकी पाठ्यक्रम होने चाहिए और उन्हें नए क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। अगर हम महिलाओं को श्रम बाज़ार में एकीकृत करने में सफल रहे तो यह न केवल महिला कामगारों के लिए, बल्कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभदायक होगा।

3.6 शब्दावली

विभाजन : एक समान ज़रूरत, चाहत और माँग की विशेषताओं वाले व्यापक समरूप बाज़ार को स्पष्ट पहचान के उपवर्गों में बाँटने और व्याख्या करने की प्रक्रिया। इसका उद्देश्य ऐसे मिश्रित बाज़ार की रूपरेखा बनाना है जहाँ विशेष रूप से उपभोक्ताओं की उम्मीदों का ध्यान रखा जाए।

वेतन विसंगति (वेज डिफरेंशियल्स, डब्ल्यू.डी.) : एक ही उद्योग में विभिन्न योग्यताओं वाले कामगारों या विभिन्न उद्योगों में तुलना योग्य कामगारों के वेतन में अन्तर।

वेतन में भेदभाव : वेतन में भेदभाव से आशय है जब नियोक्ता बिल्कुल समान काम के लिए महिला और पुरुष कामगार को अलग-अलग वेतन दे। ऐसी क्षतिपूर्ति में वेतन, ओवरटाइम वेतन, बोनस, स्टॉक ऑप्शन, लाभ का हिस्सा और बोनस प्लान, जीवन बीमा (लाइफ इंश्योरेंस), अवकाश और छुट्टियाँ तथा इसके जरिये मिलने वाला पैसा, सफाई या गैसोलीन भत्ता, होटल का खर्च, यात्रा का खर्च और दूसरे लाभ शामिल होते हैं। वेतन में भेदभाव समान कार्य स्तर उपलब्ध न कराने पर भी हो सकता है।

पितृसत्ता : यह एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें पुरुष मुख्य अधिकारी के तौर पर काम करते हैं और सामाजिक संगठनों के केन्द्र में रहते हैं। परिवार में एक पति अपनी पत्नी, बच्चों और सम्पत्ति पर अधिकार रखता है। यह विभिन्न संस्थाओं में पुरुषों को सत्ता और सुविधाएं उपलब्ध कराता है और महिलाओं को दोयम दर्जे का बनाता है। कई पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुषों के पास ही सम्पत्ति और जाति को रखने का अधिकार होता है।

ऐतिहासिक तौर पर, पितृसत्ता ने अपने आप को विभिन्न संस्कृतियों के सामाजिक, कानूनी, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं में व्यक्त किया है। पितृसत्ता का आधुनिक सभ्यता पर भी गहरा प्रभाव है, हालाँकि कई संस्कृतियाँ गत सदी में समानाधिकारवादी सामाजिक व्यवस्था की ओर बढ़ी हैं।

आधुनिकीकरण : सामाजिक विज्ञानों में आधुनिकीकरण का तात्पर्य किसी 'पूर्व-आधुनिक' या 'पारम्परिक' समाज के 'आधुनिक' समाज बनने में विकासात्मक संक्रमण के मॉडल से है। आधुनिकीकरण की प्रयोजनमूलकता सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों में वर्णित है, जिसका एक नमूने की तरह आमतौर पर वे समाज अनुकरण करते हैं जो आधुनिक हो चुके हैं।

समान वेतन कानून, 1976 : यह कानून समान काम या समान प्रकृति के काम के लिए महिलाओं और पुरुषों को समान वेतन देने का प्रावधान

करता है ताकि जेंडर आधार पर रोज़गार में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव रोका जा सके।

3.7 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारत में श्रम बाज़ार के विभाजन को बढ़ावा देने वाले विभिन्न कारणों की चर्चा कीजिए। महिलाओं को श्रम बाज़ार में एकीकृत करने के तरीकों पर अपने सुझाव दीजिए।

2) क्या आप इससे सहमत हैं कि समाज की पितृसत्तात्मक अभिवृत्ति विभाजन का मुख्य कारण है? उदाहरण के साथ चर्चा कीजिए।

3) भारत में महिला और पुरुष कामगारों के वेतन में अन्तर के कारण बताइए।

4) वेतन में समानता लाने के लिए आप किन उपायों का सुझाव देंगे? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

3.8 संदर्भ

Anker and Melkas (1998). Gender Equality and Occupation Segregation in lordic labour Markets. ILO: Geneva.

Government of India (1974). *Towards Equality Report the Committee on the Status of Women in India,* New Delhi: Dept of Social Welfare, Ministry of Education and Social Welfare.

International Labour Organization (1978). Women's Participation in the Economic Activity of Asian Countries, Geneva, ILO.

Jain, Devakai and Banerjee, Nirmala (1988). (Eds). *Tyranny of the Household*. New Delhi: Vikas Publishing House.

Kucera (1998). Foreign Trade and Men and Women's Employment and Earnings in Germany & Japan CEPA Working Papers on Globalization, Labour Markets and Social Policy, Working Paper 6, April 1998

Lim (1996). More and Better Jobs for Women: An Action Guide ILO: Geneva.

Lawrence and Bernstein (1994) Handbook of Labour, Economics, Vol-3, Part A (1999). Chapter 26 Changes in Wage Structure and Earnings Inequality.

NSSO (1996) Employment and Unemployment Situation in India: Government of India.

Savara, M. (1985). *Changing Trends in Women's Employment*. Bombay: Himalaya Publishing House.

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Lim (1996). More and Better Jobs for Women: An Action Guide ILO: Geneva.

Kucera (1998). Foreign Trade and Men and Women's Employment and Earnings in Germany & Japan CEPA Working Papers on Globalization, Labour Markets and Social Policy, Working Paper 6, April 1998

Lawrence and Bernstein (1994) Handbook of Labour, Economics, Vol-3, Part A (1999). Chapter 26 Changes in Wage Structure and Earnings Inequality.

इकाई 4 महिलाओं के कार्य का प्राक्कलन करना

संरचना

मदिरा दत्ता

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 कार्यबल का संघटन

4.3.1 भारत की जनगणना

4.3.2 राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ)

4.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

4.5 सारांश

4.6 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

4.7 संदर्भ

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

श्रम संबंधी आँकड़ों के आंकलनकर्ताओं के समक्ष हमेशा से महिलाओं के कार्य का प्राक्कलन करना सबसे कठिन और विविध अभ्यास में से एक रहा है। दुर्भाग्यवश, महिलाओं के काम जैसे नर्सिंग, घर व बच्चों की देखभाल, पालन-पोषण के काम किसी राष्ट्रीय लेखा प्रणाली का हिस्सा नहीं हैं और न ही सकल घरेलू उत्पाद का हिस्सा हैं। वे अक्सर घर-परिवार के खेतों/उद्यमों और अनौपचारिक क्षेत्र की कई गतिविधियों में अवैतनिक श्रमिकों के रूप में काम करती हैं, जिनका दस्तावेजीकरण करते समय अनदेखी की जाती है। उनके घरेलू काम-काज का आर्थिक कामों के साथ घालमेल हो जाता है और वैचारिक स्तर पर व परिचालन स्तर पर दोनों को अलग करना मुश्किल हो जाता है। असंगठित क्षेत्र में ऐसे श्रमिकों (90 प्रतिशत से ज्यादा) का एक बड़ा हिस्सा है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिक (अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के रूप में भी जाने जाते हैं) अपने अधिकारों और सुविधाओं के सम्बन्ध में पूरी तरह से अनभिज्ञता और अज्ञानता का जीवन जीते हैं। इन क्षेत्रों में ज्यादातर कामगार समाज के वंचित तबकों की महिलाएँ होती हैं। वे इस क्षेत्र में दिहाड़ी मजदूर, घरेलू कामगार या स्व नियोजित तक सिमट कर रह जाती है।

बॉक्स सं. 4.1

बहुत कठिनाइयों का सामना करने के बावजूद महिलाओं का काम छिपा रह जाता है, क्योंकि बिना गणना के, और गणना के इस तथ्य के कारण कि महिलाओं का काम मुख्य रूप से मौसमी, अनियमित और अनिश्चित है।

यह इकाई भारत में राष्ट्रीय लेखा प्रक्रियाओं जैसे कि भारत की जनगणना, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण और अन्य प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करती है जिनमें महिलाओं के काम की गणना की जाती है। यह इकाई प्रणाली में मौजूदा खामियों और पूर्वाग्रह को निपटने में मदद करेगी जो कि अर्थव्यवस्था में महिलाओं के वास्तविक योगदान की अनदेखी करता है। इस इकाई में, भारत में अनौपचारिक अर्थव्यस्था में महिलाओं के योगदान और भूमिका पर भी चर्चा की गई है।

आइए, हम इस इकाई के प्रमुख उद्देश्यों की चर्चा करें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप, इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- राष्ट्रीय दस्तावेजीकरण प्रक्रियाओं द्वारा महिला श्रमिकों की गणना पर चर्चा कर सकें; और
- भारत में कार्यबल के संघटन की व्याख्या कर सकें; और
- देश की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिला श्रमिकों के योगदान का आंकलन कर सकें।

महिलाओं के लिए श्रम कार्य बिचौलियों के जरिये आता है। वे इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ होती हैं कि उनको काम देना वाला कौन है? इसलिए, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में असंगठित विनिर्माण अर्थव्यवस्था में श्रम कानूनों के परिणामस्वरूप आमतौर पर इन महिलाओं को न्याय नहीं मिल पाता है।

4.3 कार्यबल का संघटन

भारत के कार्यबल ढाँचे को तीन खण्डों में बाँटा जा सकता है। इसके एक छोर पर सार्वजनिक क्षेत्र के वरिष्ठ अधिकारी और निजी क्षेत्र का प्रबन्धकीय वर्ग जैसे सफेद पोश श्रमिक हैं जो कि श्रमबल के एक प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। इस श्रेणी के लिए नौकरी की सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा प्रावधान उनके काम के अनुबंधों का हिस्सा हैं। व्यापार उदारीकरण और बढ़ते भूमण्डलीकरण के वर्तमान युग में (आप इस पाठ्यक्रम के खण्ड 6 में विस्तार से इसके बारे में पढ़ेंगे) यह उच्च वर्ग समूह वेतन और मुआवजा पैकेजों का लाभ उठाने के लिए तत्पर है जोकि अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हैं।

जबकि अन्य छोर पर ऐसे श्रमिक हैं जो कि स्व-नियोजित हैं, अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिक और अनियत मज़दूर कुल श्रमबल का 92 से 93 प्रतिशत हिस्सा होते हैं। इनके लिए सिर्फ न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान मौजूद हैं। यह कार्यबल का 93 प्रतिशत हिस्सा है, जहाँ महिला श्रमिकों का संकेंद्रण सबसे ज्यादा है और वे ही श्रम कानूनों और सामाजिक सुरक्षा के दायरे से बाहर हैं।

इन दो श्रेणियों के बीच में सार्वजनिक क्षेत्र और संगठित निजी क्षेत्र के नियमित वेतनभोगी कर्मचारी हैं, जो कि श्रमबल का लगभग 6 से 7 प्रतिशत हैं। इस विशेष वर्ग समूह के लिए श्रम बाज़ार और सरकारी विधान का बड़ा हिस्सा सामाजिक बीमा योजनाओं द्वारा चिंतित होता है। राज्य की गतिविधियों का मुख्य ज़ोर मूलतः न्यूनतम वेतन कानून और रोज़गार सृजन के लिए विभिन्न प्रचार उपायों के आसपास मंडराता है, जिसके कार्यान्वयन की समस्याओं के मद्देनज़र प्रभावी होने की संभावना नहीं है।

बॉक्स नं. 4.2

> महिला श्रमिकों का संकेंद्रण उन लोगों में सबसे अधिक है जो कि श्रम कानूनों और सामाजिक सुरक्षा के दायरे से बाहर रहती हैं।

आइए, अब पढ़ते हैं कि भारत में जनगणना और एनएसएसओ कार्यबल का आंकलन कैसे करते हैं। आप पहले से ही एमडब्ल्यूजी-005 खण्ड 3 इकाई 4 में जनगणना और एनएसएसओ जैसे वृहद आँकड़े के बारे में पढ़ चुके हैं। भारतीय श्रमबल के आँकड़े मुख्य

रूप से दो प्रमुख सूचना स्रोतों पर निर्भर करते हैं। इनमें भारत की जनगणना और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के द्वारा एकत्रित किए गए आँकड़े शामिल हैं।

4.3.1 भारत की जनगणना

भारत के रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त द्वारा संचालित प्रति दस वर्ष पर होने वाली जनगणना श्रमबल की विभिन्न विशेषताओं पर आँकड़े उपलब्ध कराती है। दस साल में एक बार पूरे देश में विभिन्न जनसांख्यिकीय, सामाजिक और आर्थिक आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। श्रमिकों से जुड़े एकत्रित आँकड़े को मुख्य श्रमिक और सीमांत श्रमिक के रूप में सारणीबद्ध किया जाता है।

कार्य सहभागिता दर (डब्ल्यूपीआर) को कुल जनसंख्या के श्रमिकों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया गया है, जो कि 2001 की जनगणना के अनुसार 39.3 प्रतिशत है। 1991 की जनगणना में डब्ल्यूपीआर 37.5 प्रतिशत थी। नीचे दी गई तालिका 4.1 में, भारत की जनगणना, 2001 के अनुसार कार्य सहभागिता दर (डब्ल्यूपीआर) दर्शायी गई है। ग्रामीण सीमांत श्रमिकों के मामले में सबसे अधिक सुधार देखा गया है, जो 1991 में 0.7 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में पुरुषों के लिए 7.9 प्रतिशत और इसी अवधि के दौरान महिलाओं के मामले में 8.1 प्रतिशत से बढ़कर 14.2 प्रतिशत हो गया है।

तालिका 4.1: कुल श्रमिकों का विभाजन, मुख्य श्रमिक, सीमांत श्रमिक और गैर-श्रमिक

भारत	कुल/ग्रामीण/शहरी	व्यक्ति/पुरुष/महिलाएँ	कुल जनसंख्या का अनुपात			
			कुल श्रमिक	मुख्य श्रमिक	सीमांत श्रमिक	गैर-श्रमिक
2001 जनगणना (अस्थायी)	कुल	व्यक्ति	39.3	30.6	8.7	60.7
		पुरुष	51.9	45.4	6.6	48.1
		महिलाएँ	25.7	14.7	11	74.3
	ग्रामीण	व्यक्ति	42	31	10.9	58
		पुरुष	52.4	44.5	7.9	47.6
		महिलाएँ	31	16.8	14.2	69
	शहरी	व्यक्ति	32.2	29.3	2.9	67.8
		पुरुष	50.9	47.5	3.4	49.2
		महिलाएँ	11.6	9.1	2.4	88.5
1991 जनगणना (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर)	कुल	व्यक्ति	37.5	34.1	3.4	62.5
		पुरुष	51.6	50.9	0.6	48.4
		महिलाएँ	22.3	15.9	6.3	77.7
	ग्रामीण	व्यक्ति	40	35.7	4.3	60
		पुरुष	52.5	51.8	0.7	47.5
		महिलाएँ	26.7	18.6	8.1	73.3
	शहरी	व्यक्ति	30.2	29.5	0.7	69.8
		पुरुष	48.9	48.6	0.4	51.1
		महिलाएँ	9.2	8.1	1	90.8

स्रोतः भारत की जनगणना, 2001 और 1991, भारत सरकार

वास्तव में, मुख्य श्रमिकों के अनुपात में 1991 के 34.1 प्रतिशत से घटकर 2001 में 30.5 प्रतिशत तक रहने की अनुमानित रही। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य श्रमिकों के प्रतिशत में यह भारी गिरावट आती है जो 1991 के 51.8 से 2001 में 44.5 तक गिर सकती है। सर्वेक्षण यह बताता है कि कृषि गतिविधियाँ काम के पर्याप्त अवसर मुहैया नहीं करा रही हैं और उन परिवारों पर प्रवास करने और घर आधारित गतिविधियों में नौकरी के अवसरों को तलाशने के लिए दबाव बन रहा है। भारत की जनगणना 2001 के अनुसार कार्य सहभागिता दर (डब्ल्यूपीआर) की तुलना भारत के राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएसओ) द्वारा किए गए प्रतिदर्श सर्वेक्षण के आधार पर अनुमानित डब्ल्यूपीआर के साथ की गई है (संदर्भ तालिका 4.2)। हम देखते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर दो ढाँचों के बीच बहुत कम अंतर है।

देश	व्यक्ति/पुरुष/महिलाएँ	कार्य सहभागिता दर (डब्ल्यूपीआर)		
		2001 की जनगणना के अनुसार	एनएसएसओ के अनुसार	अंतर
भारत	व्यक्ति	39.26	38.85	0.41
	पुरुष	51.93	54.1	-2.17
	महिलाएँ	25.68	22.45	3.23

स्रोतः 2001 जनगणना (अस्थायी)

एनएसएसओ (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन), 55वाँ दौर (जुलाई 1999)
डब्ल्यूपीआर सामान्य स्थिति को संदर्भित करता है (अर्थात् प्रमुख स्थिति और गौण स्थिति).

4.3.2 राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ)

एनएनएसओ द्वारा एकत्रित किए गए आँकड़ों से पाँच वर्षों में जारी किए जाने वाले व्यापक सर्वेक्षणों से रोज़गार और बेरोज़गारी की जानकारी प्राप्त होती है। इन सर्वेक्षणों पर अनेक रिपोर्ट्स उपलब्ध होती हैं। एनएसएसओ का 55वाँ, 56वाँ एवं 61वाँ दौर श्रमिकों से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराता है। एनएसएसओ के 55वें दौर में जुलाई 1999–जुलाई 2000 के दौरान कृषि और गैर कृषि संबंधित उद्यमों को शामिल किया गया है। इसने देश में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के श्रमिकों की पहचान के साथ ही उनके परिणामों का अनुमान लगाया। 56वाँ दौर विभिन्न लोगों के नेतृत्व वाले असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के विषय में गूढ़ अध्ययन प्रदान करता है। 56वाँ दौर जुलाई 2000–जून 2001 के मध्य संचालित किया गया, जिसमें 1998 में हुई आर्थिक जनगणना के आधार पर विनिर्माण संयंत्रों को शामिल किया गया। 61वाँ दौर भारत में 2004-2005 के मध्य रोज़गार और बेरोज़गारी की स्थिति को दर्शाता है। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के पुरुषों और महिलाओं के मध्य रोज़गार के बड़े अंतर को दर्शाता है। इसके अनुसार शहरों में पुरुष और महिला रोज़गार की स्थिति में काफी अंतर है जहां पुरुष 57% रोज़गार करते हैं जबकि महिला केवल 18% रोज़गार करती हैं। शहरों में ज्यादातर महिलाएँ अनौपचारिक रोज़गार द्वारा शोषण का शिकार होती हैं जिसकी कोई गणना नहीं की जाती।

एनएसएसओ के 55वें एवं 56वें दौर के आँकड़ों के आधार पर अध्ययन द्वारा यह पता चलता है कि देश में 1993–1994 में रोज़गार की स्थिति 374 मिलियन से बढ़कर 1999–2000 में 397 मिलियन हो गई। (सामान्य सिद्धांत और स्थिति के आधार पर) इसके अंतर्गत लगभग 28 मिलियन (7%) संगठित क्षेत्र में और शेष 369 मिलियन (93%) असंगठित क्षेत्र में वृद्धि

हुई है। एनएसएसओ द्वारा श्रमशक्ति को असंगठित क्षेत्र के अंतर्गत होने वाले रोज़गार की प्रकृति के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है।

ये निम्न प्रकार हैं-

स्व खाता निर्माण उद्यम (ओएएमई) - घरेलू उद्यमों में नियुक्त श्रमिकों को नियमित रूप से रोज़गार नहीं मिलता। यहाँ एक ही व्यक्ति उत्पाद से लेकर मार्केटिंग तक पूरी प्रक्रिया का उत्तरदायित्व संभालता है।

गैर निर्देशिका विनिर्माण उद्यम (एनडीएमई) - लघु उद्यम पांच लोगों से ज्यादा श्रमिकों को रोज़गार नहीं देते, उसमें भी कई बार परिवार के सदस्य ही श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

निर्देशिका विनिर्माण उद्यम (डीएमई) - अधिकतर उच्च घरेलू उद्योगों में छह या उससे अधिक श्रमिकों को रोज़गार देते हैं उनमें भी कई बार परिवार के सदस्य ही श्रमिक होते हैं।

अगले अनुभाग को पढ़ने से पूर्व निम्न अभ्यास को अभी पढ़े गए अनुभागों के विषय में अपनी समझ का मूल्यांकन करते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) किन्हीं दो स्रोतों का नाम बताइए, जो भारत में कार्यशील जनसंख्या का अनुमान लगाते हैं। वे अपने अनुमान की कार्यप्रणाली में किस प्रकार भिन्न होते हैं?

2) एक या दो पंक्ति निम्न विषय पर लिखें-

   क) हाशियाकृत श्रमिक

ख) मुख्य श्रमिक

ग) ओएएमई

घ) सूचित क्षेत्र

आइए, अब अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाओं की स्थिति के विषय में पढ़ते हैं।

4.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाओं के लिए वैश्वीकरण के साथ ही बड़े पैमाने पर अतिरेकता देखने को मिलती है और बड़ी मात्रा में पुरुष बेरोज़गार हुए हैं– इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को अपने परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियाँ उठाने के लिए बहुत ही कम पारिश्रमिक पर काम करने को मजबूर होना पड़ता है। महिला श्रमशक्ति का एक बड़ा भाग असंगठित क्षेत्रों में काम करता है जहाँ न केवल श्रम कानूनों का उल्लंघन होता है बल्कि महिलाओं के लिए काम करने की परिस्थितियाँ भी नियोक्ता के इच्छानुरूप ही तय की जाती हैं। तय सीमा से काफी कम दर पर वेतन दिया जाता है। वहाँ न तो छुट्टी मिलती है न ही किसी प्रकार की चिकित्सा सुविधा या आपातकालीन क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। 1991 में संगठित और असंगठित क्षेत्र में तालिका 4.3 द्वारा लिंगानुपात के आधार पर श्रमिकों के वितरण को दर्शाया गया है। हालाँकि यह तालिका 1991 की स्थिति को दर्शाती है, ये आँकड़े असंगठित क्षेत्र में महिला और पुरुष कर्मियों दोनों की वास्तविक स्थिति को दर्शाते हैं। कुल महिला श्रमशक्ति का केवल 4.2% हिस्सा ही संगठित क्षेत्र में कार्यरत है जबकि बाकी 95.8% हिस्सा असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। जहां पर न तो संवैधानिक रूप से सुरक्षा देने की व्यवस्था है और न ही महिलाएँ अपने समकक्ष पुरुष श्रमिकों को मिलने वाले वेतनमान के बराबर वेतन के लिए दावा कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को मिलने वाले लाभ तो बिल्कुल ही नदारद होते हैं।

तालिका 4.3: 1991 में संगठित/असंगठित क्षेत्र (आँकड़े लाख में)

क्षेत्र	महिला		पुरुष		सभी	
	वास्तविक	%	वास्तविक	%	वास्तविक	%
संगठित	3.78	4.2	22.95	10.2	26.73	8.5
असंगठित	85.99	95.8	201.41	89.8	287.40	91.5
सभी	89.77	100	224.36	100	314.13	100

स्रोत : जनगणना आँकड़ें एवं डीजीई एवं टी (भारत सरकार) की गणना के अनुसार

महानगरों में उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती मांग और अन्य सहायक गतिविधियों के कारण असंगठित क्षेत्र श्रम आपूर्ति के लिए एक अच्छा आधार है। यह अनुमानित है कि कार्यरत जनसंख्या का लगभग तीन चौथाई वर्ग विशेषकर असंगठित क्षेत्र से जुड़े गरीब एवं विकासशील देश असंगठित क्षेत्र से जुड़े हैं और इन समाजों में गरीबी स्तर को बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। ये श्रमिक बिना किसी सामाजिक सुरक्षा या संवैधानिक प्रावधान के रहते हैं। उदाहरण के लिए, दुर्घटना की स्थिति में, लंबी अवधि की बीमारी के मामले में, बेरोज़गारी या वृद्धावस्था की स्थिति में अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के लिए उन्हें आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए कोई विकल्प नहीं देता। असंगठित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत अनेक प्रकार की गतिविधियाँ, जिनमें घरेलू उद्योग सम्मिलित हैं जैसे– इलेक्ट्रॉनिक्स असेंबलिंग, गारमेंट पीस वर्क, क्राफ्ट्स, स्ट्रीट वेंडर्स, दैनिक दिहाड़ी मज़दूर, टेक्सटाइल बुनाई, ब्लॉक प्रिंटिंग, कढ़ाई, हस्तकरघा उत्पादन, खाद्य उत्पाद इत्यादि। विकासशील देशों में यह एक प्रमुख गैर कृषि रोज़गार का ज़रिया हैं। जोकि शहरों की झुग्गियों में केंद्रित होता है। इस क्षेत्र के श्रमिकों में घरेलू कामगार, स्वरोज़गारी, दैनिक दिहाड़ी मज़दूर, विक्रेता आदि शामिल होते हैं।

इस क्षेत्र के महत्व को **राष्ट्रीय श्रम आयोग** द्वारा किए गए एक अध्ययन द्वारा न्यायोचित समझा जा सकता है। जिसके अनुसार राष्ट्रीय आय का लगभग 60% हिस्सा एवं घरेलू बचत का भी 60% हिस्सा इसी असंगठित क्षेत्र से आता है। अनुमानतः भारत में, निर्यात के क्षेत्र में अनौपचारिक क्षेत्र की हिस्सेदारी लगभग 40% (आईआईएफटी, 1999) है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में अत्यधिक क्षमता है, इस तथ्य के बावजूद यह क्षेत्र, अप्रचलित प्रौद्योगिकी, असंगठित उत्पादन प्रणाली, कम उत्पादकता, अपर्याप्त कार्यशील पूँजी, परंपरागत उत्पादन श्रृंखला, बाज़ार सम्बन्ध और उत्पादन एवं बिक्री में समग्र रूप से ठहराव जैसी अनेक समस्याओं से घिरा है। इसके अतिरिक्त और ऊपर देखें तो हम पाते हैं कि स्थिति अत्यधिक गंभीर है। श्रमशक्ति के लगभग 90% हिस्से में कार्यरत मज़दूरों को मिलने वाले लाभ का वास्तव में कुछ हिस्सा ही लाभार्थियों तक पहुंच पाता है। (दत्ता, 2011)। इसका प्रमुख कारण बिचौलियों द्वारा शोषण है। वैश्वीकरण एवं मिल क्षेत्रों की कठिन प्रतिस्पर्धा ने महिला श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को और बद्तर बनाया है। वे सरकार द्वारा निर्धारित मज़दूरी से भी कम मज़दूरी पर काम करने को मजबूर होती हैं। इस प्रकार उन्हें अपने जीवन की तमाम इच्छाओं का दमन करना पड़ता है

विनिर्माण क्षेत्र में महिलाएँ

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं में से महिला श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा विनिर्माण क्षेत्र में कार्यरत है। असंगठित क्षेत्र का यह प्रमुख हिस्सा एनएसएसओ के 56वें दौर के परिणाम द्वारा प्रकाश में लाया गया। तदनुसार, असंगठित क्षेत्र के उद्यम लगभग 98.18% हैं जो कि औद्योगिक क्षेत्र का सबसे बड़ा हिस्सा है। (एनएसएसओ, 2000-2001)। संगठित क्षेत्र के

साथ असमान विशाल स्थिति, जटिल संबंधों के बावजूद, असंगठित अर्थव्यवस्था काफी हद तक अदृश्य बनी हुई है। प्रच्छन्न रोज़गार एवं बेरोज़गारी की उच्च दर संयुक्त रूप से ग्रामीण अंचल के आन्तरिक क्षेत्र के कामगारों को अच्छे रोज़गार की तलाश में अपने परिवार सहित शहरों की ओर पलायन पर मजबूर करती है।

बॉक्स नं. 4.3

विनिर्माण क्षेत्र में महिलाओं को काम बिचौलिए के द्वारा मिलता है। महिलाओं को अपने वास्तविक नियोक्ता की जानकारी नहीं होती। इस प्रकार असंगठित निर्माण अर्थव्यवस्था के भीतर विशेष कर शहरी क्षेत्र में आमतौर पर श्रम कानून इन महिलाओं के लिए अन्याय वाला साबित हो रहे हैं।

यह वैश्विक अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन में महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरा है, और अक्सर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नेटवर्क की अंतिम कड़ी के रूप में काम करता है। यह बड़े विक्रेताओं द्वारा बेचे गए उत्पादों को उप-महाद्वीपों तक फैलाता है। घरेलू उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों की कार्य परिस्थितियाँ, जिसमें नियोक्ता और कर्मचारी के बीच सम्बन्ध, काम करवाने के तरीके आदि सभी बड़े उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों से काफी भिन्न हैं। ऐसी जगहों पर न तो सीधा नियंत्रण होता है, न ही पर्यवेक्षण और न ही काम करने के घंटे निश्चित हैं। बड़े उद्योगों की भांति समय-समय पर होने वाले वेतन निर्धारण की भी सुविधा नहीं है। व्यवहार में, यह पाया गया है कि वास्तव में श्रमिकों के खाते में मिलने वाले वेतन में, काम के खर्च आदि के नाम पर कई प्रकार की कटौतियाँ नियोक्ता द्वारा की जाती हैं, जिनकी गणना होनी चाहिए। इन कटौतियों से प्रतिदिन की आय में भारी कमी आती है। जनसंख्या का यह बड़ा भाग, जो भारी कष्ट उठाता है, उनका कष्टमय जीवन निश्चित रूप से महत्वपूर्ण मुद्दा है और इसे बिल्कुल भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रीय श्रम कानून (भट्ट, ईला आर. 1998) की एक रिपोर्ट के अनुसार कानून केवल संगठित क्षेत्र के श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हैं जिनकी संख्या कुल श्रमशक्ति की केवल 10% है। शेष बचे 90-93% श्रमिक वर्तमान में सामाजिक सुरक्षा की परिधि से बाहर है जो अधिक असुरक्षित हैं। उन्हें सामाजिक सुरक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। पितृ सत्तात्मक समाज में महिलाओं के पास अपनी आर्थिक और आपराधिक समस्याओं से निजात पाने के लिए कोई साधन नहीं है। इसके लिए जबरदस्त प्रयास, संसाधन और समय की आवश्यकता है। श्रम कानून को अमल में लाने के लिए नियोक्ता-कर्मचारी के मध्य अच्छे सम्बन्धों की स्थापना और उनका अस्तित्व में रहना आवश्यक है। साथ ही एक उत्तरदायी नियोक्ता की पहचान करना भी आवश्यक है। हालाँकि अक्सर वास्तविक नियोक्ता की पहचान करना बहुत कठिन होता है। ऐसा इसलिए देखा गया है या तो नियोक्ता बदलते रहते हैं और या फिर वास्तविक नियोक्ता से कर्मचारी का सीधा संबंध नहीं रहता। ऐसे रोज़गारों में आमतौर पर संबंधित लक्षित समूह के साथ अनुबन्ध का मुख्य बिन्दु निचले स्तर की मध्यस्थता वाले बिचौलिए ही होते हैं। यह बीड़ी बनाना, घरों में अगरबत्ती बनाना, निर्माण कार्य या पीस रेट पर घर में सिलाई आदि के कार्य हो सकते हैं।

वहीं दूसरी ओर स्वरोज़गार में लगी महिलाएँ अपनी नियोक्ता स्वयं होती हैं। उत्पादन से लेकर विपणन तक एक ही महिला जिम्मेदारी निभाती है। उदाहरण के लिए, पापड़ बनाना, अचार बनाना, लेस (फीता) बनाना, कढ़ाई करना, ज़री का काम आदि बहुत से कार्य हैं जिनका स्वामित्व एक ही महिला के हाथ में होता है।

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र को एनएसएसओ द्वारा वर्गीकृत किया गया है जिसमें विनिर्माण उद्योगों पर ध्यान केंद्रित करते हुए इसे ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए ओएएमई

श्रेणी में रखा गया है। इस श्रेणी में महिला कामगारों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। जबकि एनडीएमई और डीएनई श्रेणी पुरुषों पर अधिक ध्यान केंद्रित करती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि महिलाएँ उन विनिर्माण उद्योगों का प्रबन्धन करती हैं जो श्रमिकों के बिना भी चलाए जा सकते हैं। अधिकतर स्वरोज़गार घरेलू उद्यम में काम करने वाले श्रमिक विनिर्माण क्षेत्र की ओएएमई श्रेणी से सन्बन्धित है।

तालिका 4.4: 2000 – 2001 में ग्रामीण/शहरी क्षेत्रों में श्रमिकों (%) का वितरण

श्रेणी	ग्रामीण			शहरी		
	पुरुष	महिला	दोनों	पुरुष	महिला	दोनों
ओएएमई	74.16	88.80	79.82	34.42	78.10	45.15
एनडीएमई	11.39	2.77	8.50	34.19	7.80	27.71
डीएमई	14.45	8.43	11.68	31.39	14.1	27.14
सभी (000 में)	14,706	9,279	23,985	9,875	3,219	13,095

स्रोत : एनएसएसओ 56वां दौर 2006–2001, रिपोर्ट संख्या 477

तालिका 4.4 स्पष्ट रूप से श्रमिकों के जेंडर वितरण के ढाँचे को दर्शाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में ओएएमई श्रेणी के अन्तर्गत महिला एवं पुरुष कामगारों में ज्यादा अन्तर नहीं है। जबकि शहरी क्षेत्र के मामले में यह अंतर काफी अधिक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शहरी क्षेत्रों में ओएएमई श्रेणी के अन्तर्गत महिला श्रमिकों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

4.5 सारांश

श्रम से सन्बन्धित आँकड़ों का अनुमान लगाने वालों के लिए महिला श्रम के आँकड़ों का अनुमान लगाना सबसे जटिल कार्यों में से एक है। उपरोक्त चर्चा यह दर्शाती है कि किस प्रकार महिलाओं को आर्थिक तंगी के समय अपने परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाने के लिए आगे आना पड़ता है और परिवार के लिए आपातकालीन समय में काम करती हैं। यह भूमण्डलीकरण का ही परिणाम है कि मुख्य रूप से घर को बनाने वाले पुरुष ही बेरोज़गार होने पर, घर के लिए बेकार बन जाते हैं और घर चलाने में सक्षम नहीं रहते। आउटसोर्सिंग और अनुबन्ध आधारित श्रम का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया है। जिससे औपचारिक श्रम अनौपचारिक श्रम में बदल रहा है। अनौपचारिक श्रम के अन्तर्गत कर्मचारी-नियोक्ता के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं रहता इस कारण यह श्रम कानून के दायरे में नहीं आता। 90% से ज्यादा महिला कामगार अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का ही हिस्सा हैं, जहां उनका शोषण होता है और उन्हें हाशिये पर धकेल दिया जाता है। ओएएमई श्रेणी के अन्तर्गत अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिला कामगार बहुत अधिक संख्या में हैं, जहां स्वरोज़गार की स्थिति में केवल एक ही महिला उत्पादन से लेकर विपणन तक की सारी जिम्मेदारी अकेले ही उठाती है। महिलाओं के सम्बन्ध में ऐसा परिदृश्य शहरी क्षेत्रों में ही दिखाई पड़ता है। ओएएमई श्रेणी के अन्तर्गत जो महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं उनके काम को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

4.6 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारतीय अर्थव्यवस्था में असंगठित क्षेत्र के महत्व की चर्चा कीजिए।

2) शहरों की बस्तियों में रहने वाली महिलाएँ ओएएमई श्रेणी में क्यों कार्यरत हैं?

4.7 संदर्भ

Bhatt, Ela R. et al. (1988). *Shramshakti*: A Report of the National Commission on Self-Employed Women and Women in the Informal Economy, Ministry of Labour, Government of India.

Dutta, M. (2011). *Capturing Women's Work*. New Delhi: Pentagon Press.

Dutta, M. (2012). *Understanding Gender Equality in India - 2012* – A publication of the National Commission for Women and UN Women.

Indian Institute of Foreign Trade. (1999). *Informal Sector: A Contribution to India's Exports*. A Consultancy project for Self- Employed Women's Association: New Delhi.

National Sample Survey Organization. (2000-2001). *Report on Unorganized Manufacturing Activities in Delhi, 56th Round*. Ministry of Statistics and Programme Implementation, New Delhi: Government of India.

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dutta, Mondira (2011). *Capturing Women's Work*. New Delhi: Pentagon Press.

Chandrasekhar , C.P. and Ghosh, J. (2002*). The Market that Failed*: A Decade of Neo-Liberal Economic Reforms in India, New Delhi: Leftword Press.

खण्ड

2

स्त्रियों के कार्य के संदर्भ में इतिहास-लेखन संबंधी मुद्दे एवं विमर्श

इकाई 1
अंतर्राष्ट्रीय विमर्श 75

इकाई 2
भारतीय विमर्श-I 89

इकाई 3
भारतीय विमर्श-II 110

इकाई 4
लामबंदी और प्रतिरोध 124

इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय विमर्श

संरचना युथिका मिश्रा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 महिलाओं की आर्थिक गतिविधिः सीमाएँ एवं सामर्थ्य

1.4 पारिवारिक जीवन और कार्य के बीच संबंध - 'संतुलनकारी कृत्य'

1.5 गरीबी का स्त्रीकरण

1.6 शिक्षित समाज में महिलाएँ

1.7 स्त्रियों के कार्य और सामाजिक संरक्षण

1.8 सारांश

1.9 संदर्भ

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

ऐतिहासिक रूप से, पूर्वी और पश्चिमी दोनों समाजों में महिलाओं को कमजोर लिंग के रूप में देखा जाता रहा है और इसी दृष्टिकोण के चलते महिलाओं को मनुष्य रूप में कमतर आंका गया। आज भी दुनिया के अधिकांश देशों में महिलाएँ, पुरुषों की अपेक्षा कम सुपोषित, कम स्वस्थ और शारीरिक हिंसा तथा यौन शोषण के प्रति अधिक सुभेद्य हैं साथ ही नौकरियों में उन्हें पुरुषों की अपेक्षा कम वेतन दिया जाता है। इसी तरह पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में साक्षरता की संभावना कम है और उनके लिए पूर्व-व्यावसायिक या तकनीकी शिक्षा की संभावनायें आज भी काफी कम हैं। यदि स्त्रियां ऐसे कार्यस्थलों और राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का प्रयास भी करती हैं तो उन्हें नियोजन में भेदभाव और यौन उत्पीड़न के साथ साथ परिवार के सदस्यों की ओर से अपेक्षाकृत अधिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। तमाम देशों में कानून की नज़र में भी महिलाएँ पुरुषों के पूर्णतया समान नहीं हैं। अधिकांशतया घरेलू कार्यों और बच्चों की देखभाल की पूरी जिम्मेदारी के बोझ से दबी स्त्रियों को मनोरंजन और कल्पनात्मक उड़ानों के लिए अवसर कम मिलता है। यह सभी असमान सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ महिलाओं को कमतर मानवीय क्षमताओं से लैस करती हैं। हालाँकि, लगभग सभी व्यवसायों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन आ रहा है।

आइए, इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद, आप इस योग्य हो चुके होंगे कि :

- यह विश्लेषण कर सकें कि महिलाओं को कमजोर लिंग क्यों माना जाता है और समाज में पुरुषों की तुलना में उनके अधिकार अपेक्षाकृत कम क्यों हैं;
- उन कारणों का परीक्षण कर सकें कि क्यों कार्यस्थल पर महिलाओं को भेदभाव का सामना करना पड़ता है और समान कार्य के लिए कमतर वेतन प्राप्त करती हैं;

- पूर्व-औद्योगिक काल, औद्योगिक काल और आधुनिक काल के दौरान महिलाओं के रूबरू उनकी कार्य भागीदारी को अवस्थित कर सकें,
- उन तरीकों की जांच कर सकेंगे जिससे स्त्रियों के कार्य के प्रति सांस्कृतिक समझ में परिवर्तन आता गया; और
- महिलाओं के कार्य और उनकी आनुषंगिक स्थिति के प्रति विभिन्न संगठनों, समूहों और विद्वतजनों की चर्चाओं की समीक्षा कर सकें।

1.3 महिलाओं की आर्थिक गतिविधिः सीमाएँ एवं सामर्थ्य

अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय निकायों की पहल से महिलाओं के सवेतन कार्य के रूबरू स्थिति में परिवर्तन हो रहा है और परिणामस्वरूप समग्र रूप में महिलाओं की समझ में बदलाव आया है। आज समाज में महिला पेशेवर उद्योगपतियों, उद्यमियों, मंत्रियों और न्यायाधीशों की अच्छी खासी प्रतिशतता है। दुनिया भर में विश्वविद्यालयों में महिला स्नातकों का अनुपात बढ़ रहा है। महिलाओं की आर्थिक उन्नति को प्रायः समाज की समग्र उन्नति के लिए एक संकेतक के रूप में उपयोग किया जाने लगा है।

महिलाओं का श्रमशक्ति के रूप में लगने का एक अर्थ पुरुषों पर कम निर्भरता भी है। साथ ही श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी ने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विमर्श के बौद्धिक क्षेत्र का विस्तार किया है। कहने की बात नहीं है कि प्रशासनिक पदों पर महिलाओं की नियुक्ति ने उन मिथकों को तोड़ दिया है कि राजनीति और नेतृत्व जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के पदों पर विशुद्ध रूप से पुरुषों का एकाधिकार है। लेकिन, क्या हाल की घटनाओं से महिलाओं की आर्थिक स्थिति में अंतर्निहित सुधार के संकेत मिलते हैं? क्या वास्तव में महिलाएँ पुरुषों के मुकाबले अपनी जीवन स्थितियों में सुधार कर पा रही हैं? विशिष्ट रूप से क्या महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो रही हैं, अधिक नौकरियां पा रही हैं और बेहतर वेतन पा रहीं हैं?

जेंडर का अर्थशास्त्र

यदि हमें महिलाओं की समस्या और आर्थिक विकास पर सफलतापूर्वक काम करना है, जिससे कि महिलाओं को रोजगार बाजार में उनका स्थान पाने के लिए तैयार किया जाए तो कई ऐसी संरचनाएं और प्रतिमान हैं जिसका हमें सामना करना पड़ेगा जैसे कि वेतन में समता, 'अदृश्य रुकावटें', कार्य और परिवार में संतुलन, घरेलू कार्य और 'वास्तविक कार्य', गरीबी का स्त्रीकरण और विद्वत समाज में महिलाएँ।

इसके साथ ही जेंडर और आर्थिक गतिविधि के सन्दर्भ में रोजगार और बेरोजगारी के अर्थ को भी समझना होगा। महिलाओं के कार्य को नए सिरे से जेंडरीकृत दृष्टिकोण से परिभाषित करना पड़ेगा जिसे घरेलू कार्य या पारिवारिक कार्य कहा जाता है, उसे वैश्विक पहलों की नई रोशनी में देखना होगा जिससे महिलाओं के कार्य को सीधे-सीधे घरेलू और बाहरी कार्य के रूप में अभिलेखित किया जा सके। जिसे पहले एक गैर आर्थिक गतिविधि के रूप में देखा जाता था उसे आज बदली स्थितियों में देखा जा रहा है जो भविष्य में संभावना है कि महिलाओं की आर्थिक भूमिका को फिर से पुनर्परिभाषित किया जाए।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति

महिलाओं के आर्थिक कल्याण को अक्सर किसी समाज की समग्र उन्नति के संकेतक के रूप में देखा जाता है। ऐसा माना जाता है और आम चर्चा का विषय है कि जिस समाज

में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को बेहतर वेतन मिलता है, वह समाज अपने समस्त जनों के लिए लाभ और समान अवसर उपलब्ध करवाने में उतना ही तत्पर होता है। बल्कि बिल्कुल हाल के दिनों में, महिला समूहों के गठन में वृद्धि और प्रमुख सरकारी पदों पर महिलाओं की नियुक्ति में बढ़ोत्तरी की परिघटनाएं देख चुके हैं। महिलाएँ बहुत तेज़ी से राजनीति और विकास को प्रभावित कर रही हैं। क्या महिलाएँ वास्तव में जीवन स्थितियों में पुरुषों के बराबर सुधार कर पा रही हैं? विशेष रूप से, क्या महिलाएँ अधिक शिक्षित हो रही हैं, अधिक नौकरियां पा रही हैं और क्या उन्हें बेहतर वेतन मिल रहा है?

सामान्य ऐतिहासिक गतिविधियों और महिलाओं के कमाऊ सामर्थ्य, व्यवसायों में उनकी प्रगति और 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के विचार पर आधारित मजदूरी की समानता हेतु चलाए गए आधुनिक आन्दोलनों और आर्थिक लिहाज से जेंडर आधारित विचारों को पीछे छोड़ देने जैसी बातों पर थोड़ी चर्चा कर लेना व्यावहारिक होगा। विभिन्न समाजों में विभिन्न स्तरों तक सफलता प्राप्त करने हेतु नीतियों, कार्यक्रमों, तरीकों और साधनों पर चर्चा वैश्वीकरण के संदर्भ के अन्तर्गत की जाएगी। अफ्रीका, यूरोप, नई दुनिया और एशिया के उन तमाम देशों, जिन्होंने बाजार में लैंगिक समानता हासिर कर ली है या हासिल करने के बहुत करीब हैं, के द्वारा निर्धारित मानकों को उन देशों के लिए लक्ष्य की तरह चिन्हांकित किया जाएगा जो अभी तक ऐसा नहीं कर पाए हैं।

महिलाओं के कार्य पर विभिन्न दृष्टिकोण

'वास्तविक कार्य','घरेलू कार्य' और परिवार के बारे में परस्पर विरोधी धारणाएं हैं क्योंकि ज्यादातर कामकाजी महिलाएँ अभी भी अपने परिवारों हेतु प्रतिबद्ध हैं। वास्तव में महिलाओं के घरेलू कार्य सामाजिक रूप से उत्पादन की श्रेणी में आते हैं क्योंकि क्योंकि श्रम शक्ति के उत्पादन और उसके पोषण में इसका महती योगदान है। एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा जो बिल्कुल हाल में सामने आया है, वह है अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा सुझाया गया **'शिष्ट कार्य'** का कार्यवृत्त।

1.4 पारिवारिक जीवन और कार्य के बीच संबंध-'संतुलनकारी कृत्य'

कार्य और पारिवारिक जीवन के बीच परस्पर-व्याप्त संबंधों को समझने की महती आवश्यकता है। यह संबंध खासतौर पर अकुशल महिला कर्मियों में व्यापक है। किसी भी औद्योगिक समाज की यह एक लाक्षणिक विशिष्टता है।

इस बारे में चर्चा कि औद्योगीकरण के चलते महिलाओं के जीवन में सुधार हुआ है या गिरावट आयी है, दरअसल महिलाओं के आर्थिक अवसरों की सवाल से जुड़ी हुई है। औद्योगिक समाजों में घर से बाहर जाकर कार्य करने को अधिक महत्व दिया गया है। इसी के परिणामस्वरूप बाहरी कार्य एक तरह से आत्मसम्मान का प्रतीक बन गया है। इसी से यह समझने में मदद मिलती है कि क्यों महिलाएँ उस कार्य के लिए तैयार हुई हैं जिसे **केट क्रेहन** 'संतुलनकारी कृत्य' **(Balancing set)** कहती हैं जिससे कि वे अपने लिए आत्मसम्मान को सुनिश्चित कर सकें।

हालाँकि, काम और घर के बाहर काम करने की प्रतिबद्धता से जुड़ी ये धारणाएं विभिन्न देशों में अलग-अलग हैं। सिल्विया वौल्बी, जेंडर आधारित रोजगार में परिवर्तन और समाज तथा राजनीतिक अर्थव्यवस्था की व्यापक प्रणालियों के लिए इसके अंतर्संबंधों पर प्रकाश डालती हैं। जेंडर वैश्वीकरण और कार्य रूपांतरण पर उनका अध्ययन (जीएलओडब्लू) काम करने

के गैर-मानक रूप विनियमन, ज्ञान अर्थव्यवस्था की प्रकृति, और पूँजीवाद तथा जेंडर व्यवस्था की किस्मों के सैद्धांतीकरण में परिवर्तनों को समझने में विशेष रूप से उपयोगी है।

वेतन समानता

अमेरिकी श्रम सांख्यिकीय ब्यूरो के अनुसार, विकासशील देशों में खाद्य पदार्थों के कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत तक हिस्सा महिलाएँ उत्पादित करती हैं लेकिन कभी कभार ही उस भूमि पर उनका अधिकार होता है जिन पर वे खेती करती हैं। पूरी दुनिया में कुल श्रम शक्ति की एक तिहाई महिलाएँ हैं। हालाँकि दूसरी अन्य गतिविधियों के साथ-साथ उनका अधिकांश काम भी अवैतनिक रह जाता है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी महिलाओं का ही वर्चस्व है, परन्तु आमतौर पर उनका यह काम आर्थिक आंकड़ों में परिलक्षित नहीं हो पाता। यदि सकल घरेलू उत्पाद की वैश्विक गणना में घरेलू काम शामिल कर लिए जाएँ तो इसकी कुल राशि में 25 प्रतिशत की वृद्धि होगी जो आमतौर पर पुरुषों की तुलना में अधिक होगी। यह भी स्पष्ट है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ अधिक घण्टे काम करती हैं। विकासशील देशों में, महिलाओं के काम के घंटे पुरुषों की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक हैं लेकिन हर पेशे में महिला पूर्णकालिक कर्मचारियों की तुलना में पुरुष पूर्णकालिक कर्मचारी अधिक वेतन प्राप्त करते हैं। आखिर इस वेतन अंतराल से पार पाना इतना कठिन क्यों है? इसके पीछे एक कारण तो पितृसत्तात्मक समाज की महिलाओं और उनके द्वारा किए गए काम के प्रति सोच है जो उसे कम महत्वपूर्ण मानती है। इसके अतिरिक्त एक तथ्य यह भी है कि अंशकालिक कामगारों में 90 प्रतिशत तक महिलाएँ हैं। इसका अल्पकालिक लाभ यह है कि इससे ऐसी नौकरियों की संख्या में वृद्धि होती है जिसे घरेलू जिम्मेदारियों के साथ किया जा सकता है, जबकि दीर्घकालिक हानि अधिक है जिसमें कमतर जॉब सिक्योरिटी, नौकरी के अवसरों को बनाए रखने की कम क्षमता और कार्यस्थल के लाभों जैसे पेंशन और स्वास्थ्य बीमा आदि के न होने जैसे नुकसान शामिल हैं।

पुरुषों की बेरोजगारी और अल्प रोजगार की समस्या ने महिलाओं पर और भी दबाव डाला है कि वे परिवार हेतु जीविका कमाने वाले सदस्य की भूमिका निभायें। परिवार को अकेले अपने दम पर पालने में पुरुष तेज़ी से असमर्थ होते जा रहे हैं। कनाडा, फ्रांस, स्वीडन, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, नीदरलैंड और स्पेन आदि में कामकाजी उम्र के युवा बेरोजगार पुरुषों की प्रतिशतता में वृद्धि हुई है। कामकाजी माएँ, जो बच्चे की देखभाल और दूसरी प्राथमिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए, घर से बाहर काम करने में सामंजस्य बिठा रही हैं, उनके कंधों पर भारी बोझ बढ़ता जा रहा है, खास कर उस समय जब उनका परिवार बढ़ता है। इस परिघटना में दूसरे अन्य कई कारक भी अपना योगदान देते हैं जिनमें प्रवासन के बढ़ता स्तर और वैवाहिक विघटन के उच्च स्तर के साथ साथ एकल मां को जन्मे बच्चों की संख्या में वृद्धि भी शामिल हैं। पुरुषों द्वारा ड्रग्स और शराब का अत्यधिक सेवन, कई संगठनों और संघों में सहभागिता तथा बहु-विवाह जैसी प्रथाओं से महिलाओं को और अधिक आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि पुरुषों के पास उन कई परिवारों का खर्च चलाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। फिलीपींस के साक्ष्य से पता चलता है कि एक अतिरिक्त बच्चा अपनी माँ के काम के बोझ में प्रति सप्ताह औसतन 8.4 घण्टे की वृद्धि कर देता है।

चूंकि महिलाओं द्वारा अपनी कमाई का खर्च अपने परिवार की बुनियादी जरूरतों पर करने की संभावना अधिक होती है, इसलिए उनकी आय परिवार पर अधिक सकारात्मक प्रभाव डालती है। दक्षिण भारत में हुए एक अध्ययन में पाया गया कि महिलाएँ मुश्किल से अपनी कमाई का कोई हिस्सा अनन्य रूप से अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए रखती हैं जबकि पुरुष औसतन 26 प्रतिशत हिस्सा अपने पर खर्च करते हैं। उनकी महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका के बावजूद आर्थिक क्षेत्र में निर्णय लेने की स्थिति में महिलाओं की संख्या बहुत ही कम है।

अधिकांश देशों में निजी क्षेत्र में सिर्फ 10 से 30 फीसदी तक महिला प्रबंधक बन पाती हैं और अत्यधिक उच्च पदों पर उनकी प्रतिशतता 5 प्रतिशत तक सीमित रह जाती है। ट्रेड यूनियन आंदोलन में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व काफी कम है।

ग्लास सीलिंग अर्थात अदृश्य सीमा

मौजूदा आर्थिक संरचनाएं पुरुषों के प्रभुत्व से ग्रसित हैं और महिलाओं की उन्नति में बड़ी बाधा उत्पन्न करती हैं जो उनकी शिक्षा और अनुभवों को नज़रअंदाज़ कर उन्हें पेशेवर रूप से आगे बढ़ने से रोकती हैं। दुखद यह है कि ऐसी संरचनाएं आज भी अभेद्य हैं। ये संरचनाएं महिलाओं की तुलना में पुरुषों की पारंपरिक अपेक्षाओं और धारणाओं पर आधारित नेटवर्क और उपलब्धियों को मानक के रूप में शामिल करती हैं। ऐसी स्थिति में ग्लास सीलिंग या अदृश्य सीमा नेतृत्व या निर्णायक पदों की आकांक्षा करने वाली महिलाओं द्वारा सामना करने वाली स्थिति के लिए उच्चतम सीमा है। ऐसी महिलाओं की संख्या का अनुपात तो आश्चर्यजनक रूप से काफी कम है जिन्होंने अपने दम पर नेतृत्व के उच्चतम पदों पर अपना स्थान बनाया है। यह भी पाया गया कि जो महिलाएँ इस स्तर तक किसी तरह पहुँच भी गईं, खासतौर पर बहुराष्ट्रीय निगमों (एमएनसी) में, तो उन्हें एक दूसरी ग्लास सीलिंग का सामना भी करना पड़ा। इन महिलाओं को पुरुषों के समान ही वेतन और बोनस मिलता है। परन्तु इन्हें कम लोगों को प्रबंधित करने का अवसर दिया जाता है, कम स्टॉक का विकल्प दिया जाता है और पुरुषों की तुलना में कम विदेशी दौरे पर भेजा गया। कहने का अर्थ है कि किसी संस्था में उसी पद पर रहने का यह कतई मतलब नहीं कि उस संस्था में उन्हें पुरुषों के समान पदस्थिति प्राप्त हो। स्पष्टतः उन्हें यह संदेश दिया गया कि वे अपनी कंपनी में जितना हो सकता था उतनी ऊंचाई तक पहुंच चुकी हैं जबकि वहीं पुरुषों के लिए आगे भी नए अवसर उपलब्ध रहते थे।

काम और परिवार में संतुलन

अध्ययनों से पता चलता है कि, दुनिया के अधिकांश हिस्सों में, पुरुषों की तुलना में महिलाएँ प्रति सप्ताह अधिक घंटे काम करती हैं। हालाँकि, महिलाओं द्वारा काम में खर्च किया गए समय का एक बड़ा हिस्सा अवैतनिक कार्यों के लिए समर्पित होता है जैसे कि घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल, भोजन बनाना, कपड़े साफ करना, घर साफ करना, इस्त्री करना, बागवानी करना और पानी लाना तथा जलावन लकड़ी लाना और अन्य घरेलू गतिविधियां जिनकी गणना अर्थशास्त्रियों द्वारा काम की गणना में नहीं की जाती। ज्यादातर देशों में, अवैतनिक काम करने में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का दोगुना समय जाया होता है। उदाहरण के तौर पर जापान में यह दर पुरुषों से नौ गुणा अधिक है। यहां तक कि यदि महिलाएँ पूर्णकालिक रूप से सवेतन कार्यरत हैं, तब भी ज्यादातर घरों में महिलाएँ ही घरेलू काम भी करती हैं। पारिवारिक जीवन में महिलाएँ जबर्दस्त ढंग से काम का अधिकांश बोझ उठाती हैं यद्यपि कुछ देशों में यह अंतर उल्लेखनीय रूप में कम हुआ है।

महिलाओं द्वारा प्रति सप्ताह काम किए जाने वाली अवधि की बात करें तो बांग्लादेश में प्रति सप्ताह 53 घण्टे, भारत में 69 घंटे और नेपाल में 77 घंटे है जबकि इन्हीं देशों में पुरुषों द्वारा प्रति सप्ताह क्रमशः 46, 56 और 57 घण्टे तक काम किया जाता है। इन देशों में एक और उल्लेखनीय समानता है। वह यह कि बच्चे की देखभाल में पिता द्वारा निभाई गई भूमिका प्रतिदिन औसतन एक घंटे से भी कम है। चीनी पिता बच्चों की देखभाल में सबसे अधिक प्रति दिन 0.9 घंटे खर्च करते हैं। कई महिलाओं के लिए वास्तविकता यह है कि बच्चों के देखभाल की व्यवस्था बनाने और उसे बनाए रखने के लिए सहायता और सहारे में भारी कमी है और इसके लिए उन्हें लगातार संघर्ष करना पड़ता है। इसके अलावा, पुरुषों की तुलना में पहले से ही महिलाओं की कम आय का अधिकांश हिस्सा बच्चों की देखभाल हेतु

भुगतान करने में चला जाता है। और ऐसे दम्पत्तियों में भी जिनमें दोनों समान रूप से पेशेवर कॅरियर में होते हैं इन समस्याओं को सुलझाने की जिम्मेदारी भी असंगत रूप से महिलाओं पर पड़ती है।

आगे पढ़ने से पहले निम्नलिखित अभ्यास का प्रयास करें।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

1) ग्लास सीलिंग या अदृश्य सीमा से क्या आशय है?

2) जेंडर का अर्थशास्त्र से क्या तात्पर्य है?

3) कामकाजी पुरुषों और महिलाओं के बीच असमान वेतन के क्या कारण हैं?

आगे आने वाले अनुभाग में आप गरीबी के स्त्रीकरण के बारे में पढ़ेंगे।

1.5 गरीबी का स्त्रीकरण

1950-2010 की अवधि के दौरान विश्व की जनसंख्या तिगुनी होकर लगभग 7 बिलियन तक पहुँच गई है। विश्व में महिलाओं की तुलना में लगभग 57 मिलियन अधिक पुरुष हैं। कुछ अनुमानों के अनुसार, दुनिया भर के गरीबों की आबादी में से 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं और प्रतिदिन 1 डॉलर या उससे कम कमाने वाले 1.5 बिलियन लोगों में से अधिकांश महिलाएँ हैं। इसके अलावा, गरीबी के दुश्चक्र में फंसी महिलाओं और पुरुषों के बीच अंतर पिछले दशकों में लगातार बढ़ता गया है। इस परिघटना को ही प्रायः **'गरीबी का स्त्रीकरण'** कहकर संदर्भित किया जाता है।

एक अवधारणा के रूप में 'गरीबी का स्त्रीकरण' पद 1970 के दशक में आया। फिर यह अधिकांशतया 1990 के दशक की शुरुआत में संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों द्वारा किये अनुसंधान के दौरान लोकप्रिय हुआ। इस अवधारणा के कई अर्थ हैं, जिनमें से कुछ परिवर्तन के अपने अंतर्निहित प्रतीक के साथ पूरी तरह से सुसंगत नहीं है। हाल के दौर में इस क्षेत्र में हुए अध्ययन दावा करते हैं कि गरीबी का स्त्रीकरण दरअसल महिलाओं या महिला-प्रधान परिवारों के विरुद्ध पक्षपाती ढंग से गरीबी के स्तर में बदलाव करता है। अधिक विशिष्ट रूप से कहा जाए तो यह महिलाओं और पुरुषों के बीच या फिर एक ओर ऐसे परिवारों जिनकी प्रधान महिलाएँ हैं और दूसरी ओर ऐसे परिवारों जिनके प्रधान पुरुष या दम्पत्ति हैं के बीच भी गरीबी के स्तरों में अंतर में वृद्धि को दर्शाता है। इस पद का प्रयोग ऐसे अर्थ में किया जा सकता है कि जेंडर असमानता के चलते गरीबी में वृद्धि होती है इसलिए इसे गरीबी के कारणों का स्त्रीकरण कहना अधिक उपयुक्त होगा।

गरीबी में रहने वाली महिलाओं को अक्सर अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधनों जैसे कृषि या उद्यम ऋण, भूमि पर मालिकाना हक और विरासत आदि से वंचित रखा जाता है। उनकी मेहनत के बदले न तो कोई पुरस्कार मिलता है और न कोई पहचान, उनकी स्वास्थ्य देखभाल और पोषण की आवश्यकताओं को भी प्राथमिकता नहीं दी जाती और शिक्षा तथा सहायता सेवाओं तक उनकी पर्याप्त पहुंच भी नहीं होती। गरीबी का यह लैंगिक विभाजन (gendered distribution) दिखाता है कि पुरुष नेतृत्व वाले घरों की तुलना में उन घरों में गरीबी अधिक है जिनकी प्रधान महिलाएँ कमाऊ हैं और इन सर्वाधिक गरीब घरों में भी पुरुषों की बजाय महिलाएँ गरीबी से अधिक ग्रस्त हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई अध्ययन की रिपोर्टों (1995 से 2010 के बीच) का सुझाव है कि गरीबी के स्त्रीकरण को उन्मूलित करने हेतु तीन प्रासंगिक कारक हैं:

- मजबूत पारिवारिक संबंध,
- महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर, और
- सामाजिक कल्याण की एक मजबूत प्रणाली।

दुनिया भर में **'गरीबी के स्त्रीकरण'** की अवधारणा का परीक्षण उन तीन महत्वपूर्ण कारकों के संदर्भ में किया गया जिस पर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट (यूनएनडीपी, 2004) में जोर दिया गया था:

- प्रथम कारक है महिला-प्रधान परिवारों की संख्या में वृद्धि,
- द्वितीय, घरों के अंदर ही महिलाओं और लड़कियों में असमानताएं और उनके प्रति पूर्वाग्रह, और
- तृतीय, नव उदारवादी आर्थिक नीतियां

बॉक्स सं. 1.1

एक तर्क दिया जाता है कि महिलाओं की वृद्धिकारी दर्शनीय गरीबी की जड़ें जनसांख्यिकीय रुझानों, सांस्कृतिक प्रतिमानों और राजनीतिक अर्थव्यवस्था में है। सामाजिक असमानता महिलाओं और लड़कियों की इस प्रवणता को ज्यादा बढ़ाती है और यह समस्या सामाजिक वर्ग और क्षेत्र के साथ बदलती रहती है। हालाँकि वंचित महिलाओं की स्थिति निर्विवाद है, गरीबी को उससे भी निम्नतर मानव अधिकारों से इंकार के रूप में देखा जाता है। यह भी देखा गया है कि गरीब महिलाएँ दोहरा कष्ट सहती हैं, पहला तो लैंगिक असमानता के कारण और दूसरा गरीबी की वजह से। इसलिए गरीबी का समूल नाश करने या उसे कम करने के प्रयासों में लैंगिक असमानता और महिलाओं के मानव अधिकारों पर ध्यान देने की जरूरत है।

आप गरीबी के स्त्रीकरण के बारे में अधिक विस्तार से खण्ड 6 में पढ़ेंगे। अब हम लोग शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर उच्चतर शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति की पड़ताल करते हैं।

1.6 शिक्षित समाज में महिलाएँ

वर्षों पहले, जो महिलाएँ उच्च शिक्षा पाने के लिए बहुत जोर देती थीं, उन्हें तमाम देशों में अनुचित माना जाता था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिकी शिक्षक एडवर्ड क्लार्क ने यह तर्क दिया था कि महिलाओं का मस्तिष्क अपेक्षाकृत अविकसित और उच्च शिक्षा की बौद्धिक दृढ़ता के लिए अनुपयुक्त होता है और यदि महिलाएँ विचार करने में अपनी ऊर्जा का बहुत अधिक उपयोग करेंगी तो उनके जीवंत प्रजनन अंगों में ऊर्जा की कमी हो सकती है जो कालांतर में उन्हें बांझ तक बना सकती है। कई देशों में, स्नातकों में महिलाओं की संख्या 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत से अधिक नहीं है और दूसरे देशों में भी उनकी भागीदारी अभी भी काफी कम है। अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ़ यूनिवर्सिटी प्रोफेसर्स (एएयूपी) द्वारा जारी की गई एक रिपोर्ट दर्शाती है कि शैक्षणिक सत्र 2003-04 में डॉक्टरल संकाय में पुरुष सदस्य, महिलाओं की तुलना में एक या दो ही अधिक थे। इसकी तुलना में अपेक्षाकृत निचली रैंक में आने वाले सामुदायिक कॉलेजों के संकाय महिलाओं से ही भरे हुए थे। 2005-06 के शैक्षणिक सत्र के दौरान केवल 26 प्रतिशत महिलाएँ उच्च शिक्षा संस्थानों में महत्वपूर्ण पदों पर काबिज थीं जबकि बाकी महिलाएँ निचले स्तर के अधिगम संस्थाओं जैसे परास्नातक, स्नातक या सहयोगी संस्थानों में पदासीन थीं।

विभिन्न संस्थानों में महिला संकाय सदस्यों की संख्या में अंतर इसमें शामिल अध्ययन के विषय के कारण भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में डिग्री के लिए पुरुष अधिक जाते हैं और अधिकतर अनुसंधान विश्वविद्यालयों में इन्हीं क्षेत्रों से लोगों को नौकरी पर रखने की संभावना भी अधिक रहती है। इस प्रकार, सबसे बड़ी समस्या यह हो सकती है कि विश्वविद्यालयों में महिला छात्रों और महिला शिक्षकों की अधिकांश भीड़ ऐसे विषयों में है जो परंपरागत तौर पर स्त्रैण माने जाते रहे हैं। अब जबकि ऐसे कुछ संकेत हैं कि विज्ञान और गणित में कुछ हद तक जेंडर का अंतर कम हो रहा है, वहीं दूसरी ओर लगता है कि प्रौद्योगिकी और कंप्यूटर विज्ञान की पढाई में यह बढ़ता जा रहा है।

यहां पदों या रैंक का सवाल भी उठाया जा सकता है क्योंकि यह भी चर्चा का एक संकेतक है कि सामान्य व्यवस्थाओं में महिलाएँ कहां हैं। इसमें सामने आता है कि अधिकतर महिलाएँ निम्नतर पदों जैसे कि अनुदेशक, व्याख्याता और सहायक प्रोफेसर पर ज्यादा काबिज होती

हैं और वह भी पुरुष संकाय सदस्यों की अपेक्षा उच्चतर पदों तक कम ही पहुंच पाती हैं। **व्यवसायों की आर्थिक स्थिति पर आई वार्षिक रिपोर्ट** यह खुलासा करती है कि 2004 में पूर्णकालिक प्रोफेसरों में से 26 प्रतिशत महिलाएँ थी जबकि उनकी तुलना में 74 प्रतिशत पुरुष प्रोफेसर थे। 2009 के **उच्च शिक्षा के तिथिगत पंचांग** के अनुसार यह आंकड़ा 2007 तक अपरिवर्तित ही रहा। पाइपलाइन बहस का उपयोग विसंगतियों, रैंक और कार्यकाल की व्याख्या करने में किया गया है।

इस सिद्धांत के अनुसार महिलाएँ अभी इंतजार (पाइपलाइन) में है और अंततः अपने पुरुष समकक्षों की दर से आगे प्रगति करने लग जाएंगी। अकादमिक उपलब्धियों में समानता के बावजूद अकादमिक पदों पर भी महिलाओं की पदोन्नति पुरुषों के समान दर से नहीं होती और निचले अकादमिक स्तर पर महिलाओं के लिए अपघर्षण भी अधिक है, अर्थात उन्हें निम्न पदों पर लम्बे समय तक बनाए रखा जाता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं को पूर्णकालिक प्रोफेसर के पद तक पहुंचने में अधिक समय लगता है। फिर ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि दोनों की डिग्रियां और योग्यताएं समान रहने के बावजूद पुरुष और महिला प्रोफेसरों के वेतन में विसंगतियों की ओर इशारा करते हैं। एएयूपी के अनुसार पुरुषों और महिलाओं के बीच सभी पदों पर वेतन में अंतर 2.9 प्रतिशत से 12.1 प्रतिशत तक है।

एक दूसरा संबंधित मानदण्ड महिलाओं के और पुरुषों के वेतन का असमान होना है। 1975-76 की एएयूपी की वार्षिक रिपोर्ट में पूर्णकालिक शिक्षकों के वेतन का विवरण जेंडर के आधार पर प्रकाशित किया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार महिला संकाय सदस्यों का समग्र औसत वेतन पुरुषों के वेतन का 81 प्रतिशत था। 2009-10 की रिपोर्ट में भी यह अनुपात 81 प्रतिशत था, जिससे यह पता चलता है कि तीन दशकों से भी अधिक अवधि में अमेरिकी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के विभागों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के बावजूद महिलाओं के वेतन में कमी की ओर कोई सुधार नहीं हो सका। इससे आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है और साबित किया जा सकता है कि उच्च शिक्षा में अभी भी जेंडर असमानता जीवित है और अच्छी अवस्था में है।

शिष्ट या सभ्य कार्य

महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए स्वतंत्रता, समानता, सुरक्षा और मानवीय गरिमा के वातावरण में सम्मानजनक और उत्पादक काम प्राप्त करने के अवसरों को बढ़ावा देने की रणनीति के रूप में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) द्वारा एक अवधारणा **'सभी के लिए सभ्य काम'** सामने रखी गई है। शिष्ट या सभ्य काम की अवधारणा इसके चारों स्तम्भों- रोजगार और उद्यम विकास, काम के समय अधिकार, सामाजिक संरक्षण और संवाद के साथ एक महत्वपूर्ण संदर्भ का निर्माण करता है जिसका उद्देश्य विशेष तौर पर समाज के हाशिए पर धकेल दिए गए समूहों के सशक्तिकरण पर केन्द्रित रहते हुए समाजों को अधिक निष्पक्ष, संधारणीय और समतावादी बनाना है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इसका नियोजन उस वैश्विक वित्तीय और आर्थिक संकट के चुनौतीपूर्ण पृष्ठभूमि में किया है जिसने पहले ही लाखों मजदूरों, पुरुषों और महिलाओं को समान रूप से बेरोजगार कर दिया है।

शिष्ट कार्य वैश्वीकरण और धन के निष्पक्ष वितरण के लिए पहली आवश्यकता है, जो लम्बी अवधि में सभी को लाभान्वित करेगा। विकासशील देशों के कामगारों को औद्योगिक देशों के अधिक सुरक्षित परिस्थितियों में काम करने वाले और रहने वाले लोगों के समर्थन और एकजुटता की अतीव आवश्यकता है। **मारिया फ्लोरो और मिके मेयर्स** (2009) का तर्क है कि विशेष तौर पर महिलाओं को सामाजिक अधिकारों और संरक्षण की आवश्यकता है क्योंकि वेतन अर्जक के रूप में उनकी भूमिका बढ़ने के बावजूद वही सर्वाधिक कमजोर और

निर्बल लोगों में बनी हुई हैं। तमाम देशों में, शिक्षा, परिवार, राजनीति, संस्कृति और धर्म में व्यापक रूप से प्रचलित बहु स्तरीय भेदभावों के चलते सामान्य तौर पर श्रम बाजार तक महिलाओं की पहुंच और विशेष तौर पर शिष्ट कामों तक उनकी पहुंच अभी भी सीमित है। उन्हें अभी भी सम्मानजनक रोजगार, सामाजिक अधिकारों, सामाजिक संरक्षण और सामाजिक संवाद से बहुत कुछ हासिल करना है क्योंकि वे आज भी बच्चों की परवरिश और बुजुर्गों तथा बीमारों की तीमारदारी में लगी हुई हैं। सामान्य तौर पर पिछले दशकों में सभी क्षेत्रों में श्रमिकों के अधिकारों और काम में लैंगिक समानता के बारे में जागरूकता बढ़ी है फिर भी बहुत कुछ करने को बचा हुआ है।

व्यापार, पूँजी प्रवाह और आर्थिक पुनर्गठन में तीव्र विस्तार ने काम के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। उन्नत और विकसित बाजार अर्थव्यवस्थाओं से स्थानांतरित होकर नौकरियां विकासशील देशों की ओर और औपचारिक क्षेत्र से स्थानांतरित होकर अनौपचारिक क्षेत्र की ओर चली गई हैं। इन परिवर्तनों ने रोजगार के नए अवसर, विशेष रूप से महिलाओं के लिए पैदा किए लेकिन इसने अंतराल और असंतुलन भी पैदा किया तथा साथ ही दुनिया के तमाम हिस्सों में महिला कार्मिकों को हाशिए पर रखने की प्रक्रिया जारी रही।

महिलाओं की सभ्य या शिष्ट काम तक पहुंच, विशेष रूप से उनके बच्चों को जन्म देने और उत्पादन कार्यों में लगे होने के दोहरे बोझ से प्रभावित होता रहा है। इस बात ने और भी बोझ बढ़ाया है काम की परंपरागत अवधारणाओं में इसका हिसाब नहीं किया जाता। काम की परंपरागत अवधारणा में सिर्फ सवेतन कार्य पर ध्यान केन्द्रित रखा जाता है जबकि बच्चों के लालन पालन से जुड़े श्रम में हुए संबंधित परिवर्तनों की पड़ताल तक नहीं की जाती। प्रभावशाली सामाजिक सिद्धांतों ने महिलाओं के दोहरे बोझ की समस्या को प्रबलित ही किया है। समाज-जीवविज्ञान ने पुरुषों और महिलाओं के 'प्राकृतिक' अंतर पर बहुत जोर दिया है। मुख्यधारा के आर्थिक धारणाओं ने अवैतनिक काम, गैर-बाजार उत्पादन, सामाजिक मानदण्डों और आर्थिक एजेंट्स के बीच संबंधों की कीमत पर व्यक्तिगत तार्किकता, प्रतियोगिता और बाजारू गतिविधियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। अभी बिल्कुल हाल की अवधि में नारीवादी अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र को 'मानव जीवन के प्रावधान' के अध्ययन के रूप में पारिभाषित करते हुए नए और अधिक व्यापक सिद्धांतों का विकास किया है। विभिन्न देशों की आर्थिक विकास के वक्र, विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथाएं और संस्थाओं के परिणामस्वरूप शिष्ट काम तक महिलाओं की पहुंच में उल्लेखनीय अंतर पैदा होता है। यह अंतर न केवल पुरुषों और महिलाओं के बीच, बल्कि शिक्षा, परिवार की संरचना, जाति, वर्ग और सामाजिक सुरक्षा और कल्याण प्रोत्साहन तंत्र तक पहुंच के कारण भी प्रकट होता है।

कार्यस्थलों पर शिष्ट काम की उपलब्धता और इस उपलब्धता की प्रवृत्ति विभिन्न देशों और क्षेत्रों में काफी अलग हैं। वैश्विक स्तर पर देखा जाए तो 1996 से 2006 के बीच महिला श्रम बल की भागीदारी की दर पुरुषों के 80 प्रतिशत की तुलना में 53 प्रतिशत और लगभग स्थिर रही है। वैश्विक श्रम बाजार में पिछले दशक के शुरुआती वर्षों में लैंगिक अंतर में कुछ कम होता दिखा परन्तु 2007-08 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद इसमें फिर से वृद्धि हो गई। इस संकट ने महिलाओं में बेरोजगारी की दर को काफी बढ़ा दिया और महिलाओं की 13 मिलियन नौकरियों को खत्म कर दिया। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में हालाँकि रोजगार-जनसंख्या अनुपात में लैंगिक अंतर 24.5 प्रतिशत के उच्च स्तर पर बना रहा परन्तु महिलाओं और पुरुषों दोनों की श्रम बल में भागीदारी दर समान रूप से कम हुई।

हालाँकि, क्षेत्रीय पृथक्करण के आंकड़ों से पता चलता है कि महिलाओं के लिए सभी क्षेत्रों में रोजगार के विकल्प अपेक्षाकृत बहुत अधिक सीमित हैं। महिलाओं को अभी भी कुछ निश्चित प्रकार के रोजगारों में विलगित रखा गया है। 2012 में, असुरक्षित रोजगार में

महिलाओं का हिस्सा; अर्थात परिवार में बगैर वेतन काम करने वाली महिलाओं और निजी तौर पर श्रमिक की तरह काम करने वाली महिलाओं जिनके पास काम करने की शिष्ट परिस्थितियां नहीं होतीं, पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा नहीं होती और श्रम संगठनों के माध्यम से अपनी बात रखने का अवसर नहीं होता; 50 प्रतिशत था जबकि वहीं ऐसे पुरुषों का हिस्सा 48 प्रतिशत। हालाँकि, उत्तरी अफ्रीका में उनके हिस्सेदारी में अंतर (24 प्रतिशत), मध्य पूर्व और उप-सहारा अफ्रीका (15 प्रतिशत) में यह अंतर बहुत गहरा था। विकासशील देशों में महिलाओं के खेतिहर मजदूरी से निकलने और विकसित देशों में औद्योगिक मजदूरी से निकलकर सेवा क्षेत्र में जाने के साथ कुछ समयावधि में यह क्षेत्रीय पृथक्करण में काफी वृद्धि हुई है।

इस प्रकार, उनमें से 85 प्रतिशत महिलाएँ शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवाओं में चली गईं हैं। इसी के साथ साथ यह भी देखा गया कि महिलाओं की नौकरियों के अंशकालिक या अस्थायी होने की संभावना अधिक रहती है। तमाम देशों में, महिलाएँ प्रमुखता से अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने लगी हैं और इस क्षेत्र में इस क्षेत्र में महिला कार्मिकों की हिस्सेदारी बढ़ती हुई प्रतीत होती है। 1980 के आरम्भ से 1990 के दशक के अंत तक, लैटिन अमेरिकी देशों और आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) के 20 देशों में और कई उत्तर-समाजवादी देशों में वेतन में दिखने वाले लैंगिक अंतर में उल्लेखनीय कमी आई और इन देशों में महिलाओं ने पुरुषों की तुलना में 80 प्रतिशत तक मजदूरी अर्जित की। लेकिन वेतन अंतराल में होने वाली यह कमी 2000 से 2010 के बीच लगभग सभी देशों में अवरुद्ध रही। यह भी देखा गया है कि वेतन या मजदूरी में अंतराल औपचारिक क्षेत्र की अपेक्षा प्रायः अनौपचारिक क्षेत्र में अधिक रहा है, और रोजगार के अनौपचारिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित होने से वेतन के लैंगिक अंतराल में होने वाली कमी का निवल लाभ महिलाओं के लिए सीमित ही है।

अब आप लोग एक छोटा सा अंतराल लीजिए और अब तक के अपने अधिगम की जांच के लिए कुछ सवालों के जवाब देते हुए निम्न अभ्यास कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) शिष्ट या सभ्य काम से क्या आशय है?

2) गरीबी के स्त्रीकरण के क्या कारण हैं ?

3) गरीबी के स्त्रीकरण के उन्मूलन हेतु कौन से कारक प्रासंगिक हैं?

आगे आने वाले अनुभाग में आप महिलाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता और महत्व के बारे में पढ़ेंगे।

1.7 स्त्रियों के कार्य और सामाजिक संरक्षण

नौकरियों के औपचारिक, कानून सम्मत और बड़ी कंपनियों से निकलकर छोटी और अनौपचारिक कंपनियों तथा घर से काम में स्थानांतरित हो जाने से काम अब अधिक असुरक्षित हो गए हैं। इन नौकरियों तक प्रायः महिलाओं की पहुंच अच्छी रहती है लेकिन ये नौकरियां श्रम कानूनों के संरक्षण से बाहर होती हैं और सामाजिक कल्याण के अधिकारों से भी हीन होती हैं। औपचारिक क्षेत्र में अंशकालिक श्रमिक भी महत्वपूर्ण असुरक्षाओं का सामना करते हैं।

सामाजिक संरक्षण, जिसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च शामिल हों और पेंशन तथा स्वास्थ्य बीमा तक पहुंच हो, विशेष रूप से महिलाओं को लाभ पहुंचा सकता है। 1980 के दशक के मध्य से लेकर 2004 तक के इन वर्षों में तमाम देशों ने इन संरक्षणों पर खर्च में गिरावट का अनुभव किया है। अपवाद स्वरूप कुछ थोड़े से मामलों में, राज्य ने अनौपचारिक या स्व-नियोजित श्रमिकों के कल्याण हेतु भी सामाजिक संरक्षण की योजनाओं का विस्तार करना शुरू कर दिया है। कुछ विकासशील देशों में एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक व्यवस्था, स्वयं श्रमिकों द्वारा, कुछ गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) की सहायता से, सामाजिक संरक्षण के वैकल्पिक स्वरूपों का विकास करना भी रहा है।

तमाम देशों में बढ़ते हुए 'लचीले' श्रम बाज़ारों ने श्रमिकों के अधिकारों और संगठित होने के उनके अधिकारों को कम किया है और उनकी सौदेबाजी की शक्ति को कम कर दिया है। श्रमिक संघों ने अक्सर इसकी प्रतिक्रिया में नए क्षेत्रों जैसे सेवा क्षेत्र और अनौपचारिक क्षेत्रों को संगठित किया है। कई देशों में संघों की महिला सदस्यता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है लेकिन इसने हमेशा महिला श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि नहीं की है। कुछ देशों में गैर-सरकारी संगठनों ने अनौपचारिक और गृह कार्य क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को संगठित करना शुरू किया है।

बाज़ार अर्थव्यवस्था में महिलाओं के शिष्ट या सभ्य काम पाने की क्षमता परिवार स्तर पर उनकी लैंगिक भूमिकाओं और असंगत कार्य-विभाजन से जुड़ी है। घरों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में काफी अधिक अवैतनिक कार्य करना पड़ता है। जब सवेतन और अवैतनिक काम के घण्टों को जोड़ा जाता है तो पता चलता है कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में सप्ताह में अधिक घंटे काम करती हैं और उनके पास सोने या मनोरंजन तथा

अवकाश के लिए कम समय होता है। यह उस दर को प्रभावित करता है जिस दर से सवेतन कार्य का पारिश्रमिक तय किया जाता है। महिलाओं से बच्चों को जन्म देने और उनकी देखभाल करने की अपेक्षा भी महिलाओं के रोजगार और कार्यस्थल के चुनाव को प्रभावित कर सकता है।

अवैतनिक पारिवारिक जिम्मेदारियों हेतु सामाजिक सहायता तंत्र की कमी ने भी इन समस्याओं को गहरा किया है और गरीब तथा कमजोर परिवारों को सबसे अधिक मुश्किल में डाला है, जिससे वे रोजगार और देखभाल के बीच किसी एक का चुनाव करने या इन दोनों गतिविधियों में सामंजस्य बिठाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कार्मिकों, विशेषकर महिला कार्मिक 'समय से हीन' और 'धन से हीन' बनकर रह जाती हैं, जो उनके तनाव को बढ़ाता है और उनकी सेहत को कमजोर करता है। कुछ देशों ने विस्तारित सवेतन अभिभावकीय छुट्टी की व्यवस्था करके, इस छुट्टी को साझा करने के लिए अधिक प्रोत्साहन देकर, अपेक्षित साप्ताहिक घंटों को सीमित करके और सार्वजनिक तथा वित्तीय सहायता प्राप्त बच्चों के देखभाल की सेवा का विस्तार करके सवेतन और अवैतनिक काम के बीच तनाव को काफी कम कर दिया है। हालाँकि लैंगिक समानता और सभी कामगारों के लिए शिष्ट या सभ्य काम कार्यवृत्त को सुनिश्चित करने के लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

शिष्ट या सभ्य काम की उपलब्धता को बढ़ाने वाली आर्थिक और सामाजिक नीतियों को सफलतापूर्वक प्रोत्साहन देने के लिए कई मुद्दे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, उदाहरण के लिए, एक ओर तो जेंडरीकृत सांख्यिकीय तंत्र का विकास करना और शिष्ट या सभ्य काम पर जेंडर के भिन्न-भिन्न रूपों वाले आंकड़ों के मूल्यांकन हेतु ढांचे का निर्माण करना और दूसरी ओर सामाजिक नीतियों और सामाजिक संरक्षण तंत्रों के विकास और कार्यान्वयन में श्रमिक संघों और महिलाओं के संगठनों को भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करना।

कामकाजी महिलाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा के बारे में और अधिक तथा विस्तार से आप खण्ड 5 और खण्ड 6 में पढेंगे।

1.8 सारांश

निःसंदेह, यह स्पष्ट है कि उच्च स्तर की बच्चों के देखभाल की व्यवस्था और कार्यस्थल में कुछ खास तरह का लचीलापन जिसकी आपूर्ति स्वयं में बहुत कम ही है, नौकरी और परिवार में संतुलन के तनाव को कम करके प्रतिफल को बढ़ाया जा सकता है। कार्यस्थल पर महिलाओं के एक अदृश्य परन्तु अपारगम्य रुकावट 'ग्लास सीलिंग' को उन्नत और प्रगतिशील आर्थिक नीति के माध्यम से अनिवार्य रूप से हटाया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका, परिवार के अस्तित्व और आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महिलाओं पर अड़चनें डालने वाली मौजूदा आर्थिक नीतियों को बदलना चाहिए। ऋण, संपत्ति और बाजारों तक महिलाओं की पहुंच भी समान रूप से होनी चाहिए और इस पहुंच को सुरक्षित करने के लिए परिवार के पुरुष सदस्य की सहमति आवश्यक नहीं होनी चाहिए। ऐसे नीतिगत बदलाव भी अवश्य होने चाहिए जो परिवार में महिलाओं की भूमिकाओं हेतु अधिक मूल्य रखें जो यह सुनिश्चित भी करे कि पुरुष सदस्य भी अपने बच्चों और घरेलू कार्यों में समान जिम्मेदारी उठाए।

स्पष्ट रूप से, महिलाओं के लिए गरीबी के खतरे को कम करना उन्हें ऐसी स्थिति में लाना है जहाँ वे अच्छी आय अर्जित कर सकें। इसका तात्पर्य है उन महिलाओं के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक सहारा प्रदान करना जो नौकरियों और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच

संतुलन साधने की कोशिश कर रही हैं। और इसका अर्थ है महिलाओं को इस तरह से शिक्षित और तकनीकी रूप से प्रशिक्षित करना जो उन्हें उचित आय और प्रगतिशीलता के साथ रोजगार बाजार में प्रवेश करने की अनुमति दें। जरूरत है कि युवा महिलाओं अर्थात नई लड़कियों के लिए अपने को इंजीनियर, कंप्यूटर वैज्ञानिक, राजनीतिक नेता, व्यवसाय प्रबंधक, जैव प्रौद्योगिकीविद, विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बनाने या फिर व्यापार क्षेत्रों में इलेक्ट्रीशियन, धातु शुद्धता और दूसरे उच्च कुशलता वाले और उच्च वेतन वाले कार्यों में अपने को नियोजित करने की कल्पना करने में मदद करने के तरीके खोजे जाएं। हमें यह समझना होगा कि यह न केवल महिलाओं के लिए बल्कि समग्र रूप से पूरे समाज के लिए आवश्यक है।

1.9 संदर्भ

Boserup, E. (1970). *Women's Role in Economic Development*, New York: St. Martin's Press.

Ellen, Jordan. (1989). *The Exclusion of Women from Industry in Nineteenth-Century Britain*. Comparative Studies in Society and History, 31 309-26.

Floro, Maria S. and Mieke Meurs (2009) Global Trends in Women's Access to "Decent Work", Dialogue on Globalisation, Occasional Papers, ILO, Geneva.

Pearce, D.M. (1978) The Feminization of Poverty: Women, Work and Welfare, *Urban and Social Change Review*, February 28-36.

Stange, Mary Zeiss and Carol K. Oyster, Jane Sloan (General Editors) (2011) Encyclopedia of Women in Today's World, Volume I, Sage Publications Inc., LA.

Epstein T. Scarlett, Kate Crehan, Annemarie Gerzer and Jurgen Sass (1986) (Eds) *Women, Work and Family in Britain and Germany.* The Anglo German Foundation for the Study of Industrial Society Croom Helm Ltd., Kent, Great Britain.

Knights, David, Deborah Kerfoot and Ida Sabelis (eds.)(2013) "Gender, Work and Organization.", Journal of Women's Studies published by John Wiley and Sons Ltd.

Ryan, John A. (1906). *A Living Wage*. Its Ethical and Economic Aspects. New York: Macmillan.

Rana, K. (1998). (Eds). *Modern Working Women and the Development Debate*. Kanishka Publishers, Distributors.

Report of International Labour Conference (ILO), 60th Session, (1975). Report VIII, Equality of Opportunity and Treatment for Women Workers.

Report of International Labour Conference (ILO), 96th Session (2007), Equality at Work: Tackling the Challenges.

Sylvia, W. (1986). *Patriarchy at Work*, Cambridge University Press.

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Rana, K. (1998). (Eds). *Modern Working Women and the Development Debate*. Kanishka Publishers, Distributors.

Sylvia, W. (1986). *Patriarchy at Work*, Cambridge University Press.

इकाई 2 भारतीय विमर्श-I

संरचना — नंदिता मंडल

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 पृष्ठभूमि

2.4 असंगठित क्षेत्र में महिला कामगार

2.4.1 संस्थागत असंगठित क्षेत्र

2.4.2 गैर-संस्थागत असंगठित क्षेत्र

2.5 असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की समस्याएं

2.6 संगठित क्षेत्र में महिला कामगार

2.7 पंचवर्षीय योजनाएं (एफवाईपी): महिला कामगार

2.8 सारांश

2.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

2.10 संदर्भ

2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों पर अंतर्राष्ट्रीय विमर्श के बारे में पढ़ने के बाद, इस इकाई में हम भारतीय विमर्श और उसके रूबरू लाभप्रद रोजगार में महिलाओं की भागीदारी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उनके योगदान के बारे में केन्द्रित रहेंगे। यह इकाई आपके सामने उस घटना की परिस्थितियों और उन कारणों को उजागर करेगी, जिसने भारत सरकार को महिला श्रमिकों के हितों की ओर ध्यान केन्द्रित करने को अभिप्रेरित किया और यह भी कि भारतीय अर्थव्यवस्था में उनका योगदान अभी भी किस तरह से अदृश्य है।

इसके पश्चात इकाई में संस्थागत और गैर-संस्थागत दोनों प्रकार के अनौपचारिक क्षेत्रों में महिला कामगारों की स्थिति के बारे में चर्चा की जाएगी। और फिर संगठित क्षेत्र में जैसे कि सेवा विनिर्माण और प्रशासनिक सेवाओं में महिलाओं पर चर्चा की गई है। पंचवर्षीय योजनाओं में महिला कामगारों की स्थिति का विहंगावलोकन करते हुए यह इकाई समाप्त होगी।

आइए, अब इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पूर्णतया पढ़ लेने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- भारतीय अर्थव्यवस्था में 1970 से 1985 तक की अवधि में महिलाओं के योगदान की व्याख्या कर सकें; और
- भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान के महत्व और उसकी गहराई की समालोचकीय पड़ताल कर सकें।

2.3 पृष्ठभूमि

"आप किसी राष्ट्र की हालत वहां रहने वाली महिलाओं की स्थिति देखकर बता सकते हैं।"

-जवाहर लाल नेहरू

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री की उपरोक्त अभिव्यक्ति भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान के संदर्भ में आज भी प्रासंगिक है।

1971 में, अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की पूर्व संध्या पर, भारत सरकार ने फूलरेनु गुहा की अध्यक्षता में भारत में महिलाओं की स्थिति पर एक समिति की नियुक्ति की थी। इस समिति को भारतीय महिलाओं के अधिकारों और उनकी स्थिति का पड़ताल करने और उत्तर औपनिवेशिक भारत में राष्ट्र निर्माण हेतु महिलाओं को उचित भूमिका निभाने के लिए कुछ उपायों को सुझाने का अधिदेश दिया गया था। जब 1974 में इस समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो उसे भारत में महिलाओं की स्थिति पर 'ऐतिहासिक मानदण्ड' की तरह स्वीकार किया गया। रिपोर्ट में 1911 से 1971 तक काम में महिलाओं की गिरती सहभागिता को रेखांकित किया गया था। परिवार में महिलाओं के कार्यों और निर्वाह अर्थव्यवस्था को भारत की जनगणना द्वारा दर्ज नहीं किया गया था।

यहाँ इस इकाई के लिए, काम को बहुत ही परंपरागत तरीके से आर्थिक रूप से उत्पादक गतिविधि में भागीदारी के रूप में पारिभाषित किया गया है। ऐसी भागीदारी शारीरिक या मानसिक प्रकृति की हो सकती है। भारत में महिलाओं के काम की परिभाषा के मामलों में, जेंडर अर्थशास्त्रीय समालोचकों द्वारा गंभीर पड़ताल की आवश्यकता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन, जिसे जमीनी स्तर से आंकड़े एकत्र करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है, इन आंकड़ों के लिए विभिन्न दौर से गुजरता है और हर नए दौर के साथ आकड़ों को प्रामाणिक बनाने के लिए अधिक से अधिक बिंदुओं पर विवेचन करना पड़ता है। एनएसएसओ स्तर के विशेषज्ञ, आंकड़ा संग्रह की प्रक्रिया की प्रामाणिकता को सुनिश्चित करने के लिए, रास्ते की बाधाओं को हटाने के लिए बहुत कड़ी मेहनत करते हैं। एनएसएसओ द्वारा महिला श्रमिकों और गैर-श्रमिकों के लिए दी गई परिभाषा के गहन पड़ताल की आवश्यकता है। अब हम असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की स्थिति की समीक्षा करेंगे।

2.3 असंगठित क्षेत्र में महिला कामगार

महिला कामगारों को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- संगठित या औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ, और
- असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली महिलाएँ।

यह वर्गीकरण संगठन की श्रेणी और उस क्षेत्र में रोजगार में समस्याओं की प्रकृति पर आधारित है। इन दोनों के बीच कार्यात्मक अंतर नहीं जैसे कृषि, उद्योग और सेवाओं के बीच होता है, क्योंकि ये कार्य दोनों क्षेत्रों में पाए जा सकते हैं। महिलाओं की स्थिति पर 1974 में बनी समिति के अनुसार इन दो श्रेणियों के बीच वास्तविक अंतर संगठन या उत्पादन संबंधों के चलते, सार्वजनिक नियंत्रण और विनियमन के पैठ की स्थिति के चलते है।

आंकड़ा संग्राहक एजेंसियों और वैज्ञानिक जांचकर्ताओं के अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र में महिला कामगार, श्रमबल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। श्रम शक्ति रिपोर्ट, 1988 के एक आंकलन के अनुसार, कुल महिला श्रमबलों में से 94 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में नियोजित

हैं। इनमें भी वे दुष्कर कार्य के हिस्सों में लगी हैं जैसे कि प्रति नग की दर से पारिश्रमिक पाने वाली, अनियत मजदूर, दिहाड़ी वाली मजदूरों की तरह। इस हिस्से के लिए श्रम कानूनों का अस्तित्व ही नहीं होता और वे समान मजदूरी, काम की मानवीय दशाओं, मातृत्व लाभ और सामाजिक सुरक्षा, श्रम के संरक्षण आदि जैसे कानूनों से वंचित हैं।

बॉक्स सं. 2.1

ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों में नियमित मजदूरी/सवेतन कर्मचारियों के वेतन और आकस्मिक मजदूरी में महिलाओं की मजदूरी उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में अधिक असमान है।

अनौपचारिक क्षेत्र में मिलने वाले रोजगार के लक्षणों में अनियत मजदूरों का अधिक अनुपात, कम मजदूरी/वेतन, काम के अधिक घण्टे, कम कौशल और निम्न उत्पादकता आदि गिनाए जा सकते हैं। यहां न तो नौकरी की सुरक्षा है, न ही सामाजिक सुरक्षा। इस क्षेत्र में कार्य-स्थल पर यौन उत्पीड़न सर्वप्रमुख पेशागत जोखिम है। इस क्षेत्र में पेशे की अनन्य प्रकृति के चलते महिला कामगारों की, उनके अधिकारों हेतु लड़ने हेतु, लामबंदी को सुसाध्य बनाने के लिए कोई व्यापार संघ या श्रमिक संगठन भी नहीं होते। अपर्याप्त कानून और महिला कामगारों की रक्षा करने हेतु कानूनी सुरक्षाओं के अप्रभावी प्रवर्तन इस क्षेत्र में रोजगार के कुछ अन्य विशेषताएं हैं। उनकी गतिविधियों की विभिन्न प्रकृति के चलते, महिला कामगारों को निम्नलिखित व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

क) कारीगरी और प्रति नग की दर से उत्पादन करने वाली मजदूरों सहित गृह-आधारित उत्पादक

ख) फुटपाथ वाले लघु-विक्रेता और फेरी वाली

ग) अनुबंधित मजदूर और अनियत मजदूर

घ) घरेलू सहायिका, पट्टेदार, मेहतर, धोबन आदि.

ड) निर्माण कार्य और खेती तथा दूसरे प्राथमिक क्षेत्रों में हाथ से काम करने वाली मजदूर

च) पारंपरिक और गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में प्रक्रियागत कार्यों में लगी महिलाएँ।

रोजगार की स्थिति के आधार पर उपरोक्त समूहों को तीन व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

क) स्वरोजगार

ख) अपने घरों से बाहर मजदूरी करने वाले (निर्माण में लगे मजदूर, कृषि श्रमिक आदि) और घरों में रहकर काम करने वाले (गृह-आधारित मजदूर)

ग) परिवार में अवैतनिक काम करने वाले कामगार

असंगठित क्षेत्र, नीति निर्माताओं के सम्मुख सामाजिक न्याय की दो विकट समस्याएं प्रस्तुत करते हैं। इनमें से पहला है, कामकाजी आबादी का एक बड़ा हिस्सा अर्थव्यवस्था के हाशिए पर रहने के लिए मजबूर किया जा रहा है। और दूसरा है, असंगठित क्षेत्र में सस्ते श्रम की उपलब्धता को देखते हुए, अधिकांश नियोक्ता अपनी अधिकतर गतिविधियों को इन संगठनों की तरफ मोड़ रहे हैं। इसका अर्थ यह होगा कि भविष्य में पूरा का पूरा मजदूर वर्ग, विकास के उत्पादों में निरंतर कमतर हिस्सा प्राप्त करेगा। कोई भी लोकप्रिय सरकार लंबे समय तक इन संभावनाओं को नजरअंदाज नहीं कर सकती (निर्मला बनर्जी, 1985. पृष्ठ 7-8)।

रोजगार की प्रवृत्तियां

कार्य बलों के क्षेत्रीय वितरण के विश्लेषण से पता चलता है कि महिलाएँ अधिकांशतया कम वेतन वाली नौकरियों तक ही सीमित हैं। इस बात से आपको एक अंतर्दृष्टि मिल सकती है कि 1981 में, 81.6 प्रतिशत महिला कामगार (66.2 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में) प्राथमिक क्षेत्र (कृषि और संबद्ध आज़ीविकाओं) में लगी हुई थीं। द्वितीयक (उद्योग) और तृतीयक (सेवा) क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या मुश्किल से क्रमशः 8.9 प्रतिशत और 9.5 प्रतिशत थी। पुरुषों के मामले में ये अनुपात अधिक अर्थात् क्रमशः 13.9 प्रतिशत और 19.9 प्रतिशत हैं।

इतिहास की ओर गौर करते हुए कहा जा सकता है कि उद्योगों जैसे कि वस्त्रोद्योग और धातुकर्म उद्योगों में गिरावट, और कुम्हारों और लोहारों द्वारा किए जाने वाले अनगढ़ सेवाओं में गिरावट ने न केवल पुरुषों को बल्कि महिलाओं को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। हैरानी की बात है, गैर-कृषि रोजगार में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत उस निवल स्तर तक फिर से पहुंच ही नहीं सका जिस उच्च स्तर पर वह 1911 में था, जबकि पुरुषों के लिए केवल एक अस्थायी झटका साबित हुआ। 1921 के बाद, गैर-कृषि रोजगार में पुरुषों की कुल संख्या और पूर्ण पुरुष रोजगार में उनका अनुपात दोनों में बढ़ोत्तरी हुई।

1911 से 1961 की अवधि के दौरान महिलाओं ने जितनी गैर-खेतिहर नौकरियां गंवाईं उनमें से केवल आठ प्रतिशत कार्यों की गणना 'विशिष्ट रूप से महिलाओं के लिए' कार्य की कोटि में की गई और बाकी बचे 92 प्रतिशत मामलों में पुरुषों ने महिलाओं को बहुत आराम से उनके पुराने काम से प्रतिस्थापित कर दिया। (निर्मला बनर्जी, 1985, पृष्ठ 14)।

ग्रामीण असंगठित क्षेत्र में आने वाले रोजगार का एक बड़े हिस्से पर महिलाओं का कब्जा है। ग्रामीण परिवेश में महिलाओं के रोजगार मूल रूप से कृषि, डेयरी, पशुपालन, मत्स्य पालन, सामाजिक और कृषिवानिकी, खादी और ग्रामोद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प और रेशम कीट पालन जैसे 9 क्षेत्रों में समाहित हैं। इनमें से पहले पांच क्षेत्रों को मोटे तौर पर कृषि और संबद्ध व्यवसायों के रूप में वर्गीकृत किया गया है, और अंतिम चार ग्राम एवं लघु उद्योग क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत हैं।

आगे आने वाले उप-अनुभाग असंगठित क्षेत्र में रोजगार के विभिन्न पहलुओं में महिला श्रमिकों की स्थिति से अवगत कराएंगे.

2.4.1 संस्थागत असंगठित क्षेत्र

कृषि

यह क्षेत्र सर्वाधिक प्रतिशत महिलाओं को अपने में समाहित करता है और यही महिलाओं के लिए सर्वाधिक सुलभ रोजगार क्षेत्र है। 1971 की जनगणना के अनुसार, 80.1 प्रतिशत महिला श्रमिक कृषि क्षेत्र में थीं जबकि संख्या रूप में 1951 में 18.3 मिलियन की बजाय 1971 में उनकी संख्या 9.2 मिलियन हो गई थी। इसके लिए बढ़ती हुई गरीबी जिससे भूमिहीनता और पारिवारिक खेतों पर उत्पादक रोजगार अवसरों में अपर्याप्त वृद्धि हो पाई को जिम्मेदार ठहराया गया जिसके चलते सक्रिय खेती से महिलाओं को विमुख कर दिया गया। महिला खेतिहर मजदूरों की संख्या में 1951 के 12.6 मिलियन से, 1971 में 15.7 मिलियन तक की वृद्धि भी रोजगार अवसरों के स्तर में गिरावट और बढ़ती हुई गरीबी की सूचक थी।

महिला कृषि मजदूरों के लिए मजदूरी की कम दरों के कारणों में रोजगार की असंगठित प्रकृति, ऐसे मामले जिनमें बाहरी मजदूरों को पारिवारिक सदस्यों द्वारा स्थानांतरित किया जा सकता है, श्रम की मौसम के अनुसार जरूरत और कुछ कार्यों जैसे कि निराई, रोपाई

आदि का परंपरागत वर्गीकरण महिलाओं के श्रम के तौर पर एकाधिकृत करना रहा है। खेतिहर मजदूरों के लिए, न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा तय की जाती है और इनकी आवधिक समीक्षा भी की जाती है लेकिन दुर्भाग्य से यह अधिनियम भारत के सभी राज्यों में प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जाता।

समान कार्य के लिए मजदूरी में अंतर के अलावा, महिलाओं द्वारा परंपरागत रूप से किए जाने वाले कार्यों जैसे बुआई, निराई, रोपाई, ओसाई, गहाई, और कटाई आदि के लिए सामान्य तौर पर पुरुषों द्वारा किए जाने वाले कार्य जैसे जुताई की अपेक्षाकृत मजदूरी की कम दरों का निर्धारण करना भी महिलाओं के भेदभाव को और मजबूत करता है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा सामना किए जाने वाली दूसरी समस्या प्रतिदिन 7-9 घंटे के कार्य को दैनिक कार्य के बराबर मानने की परम्परा भी है। कृषि में आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रवेश और खेतिहर कार्यों में इसके उपयोग की शुरुआत से भी खेती में महिलाओं की भागीदारी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

डेयरी उद्योग

डेयरी उद्योग में महिलाओं का योगदान, पशुओं के लिए चारे के संग्रह से लेकर, चारा काटने और जानवरों की सफाई और धुलाई और उनकी देखभाल तक विस्तृत है। यहां तक कि सहकारी दुग्ध समितियों में भी महिलाओं को शायद ही कभी सदस्य बनने की अनुमति दी जाती है और उन्हें प्रबंध समिति के सदस्य के रूप में सहकारी समितियों को संचालित करने का मौका शायद ही कभी दिया जाता है। सहकारी समितियों के दायरे से बाहर होने के कारण ही वे दूध के लिए उचित मूल्य प्राप्त करने में विफल रहती हैं क्योंकि अच्छे विपणन केन्द्र स्थानीय ऋणदाताओं के चंगुल में हैं।

भवन-निर्माण कार्य

भवन-निर्माण कार्यों में भाड़े के श्रमिकों के रूप में महिलाओं को इसके अस्थायी और लगातार स्थान बदलने की प्रकृति के चलते बहुत झेलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त हर तरह के मौसम में अत्यधिक श्रम वाले कार्य तथा बिचौलियों और ठेकेदारों के शोषण जैसी कठिनाइयों से ग्रसित हैं। निर्माण कार्य स्थलों में जल्दी-जल्दी बदलाव और उनके कार्य की अस्थिरता उन्हें और उनके बच्चों को प्राथमिक सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, राशन कार्ड आदि से वंचित रखता है। उनकी गिनती सामूहिक रूप से अकुशल मजदूरों के रूप में की जाती है जबकि वे कुछ विशेष कौशल वाले कार्य भी करती हैं। अधिक मजदूरी वाली और तथाकथित कुशलता आधारित कार्य, निरपवाद रूप से पुरुषों के लिए आरक्षित हैं। स्व-नियोजित महिलाओं पर बने आयोग ने इस संबंध में ध्यान आकर्षित किया था कि भवन निर्माण कार्यों में श्रमिकों के नियोजन में परिवर्तनशीलता पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं के मामले में अधिक स्पष्ट है। अर्थात इस क्षेत्र में जब कभी मजदूरों की मांग में कोई वृद्धि होती है, पुरुष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों का उपयोग बहुत अधिक होता है। दूसरी ओर, जब कभी समग्र व्यवसाय में कोई गिरावट आती है, पुरुष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों में गिरावट अधिक तीव्रता से प्रतिबिंबित होती है। हालाँकि इन मजदूरों की रक्षा करने के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, अनुबंधित श्रमिक अधिनियम और अंतर-राज्य प्रवासी मजदूर अधिनियम जैसे विभिन्न अधिनियम इस क्षेत्र में लागू हैं, परंतु व्यवहार में नियोक्ताओं द्वारा इनका खूब उल्लंघन किया जाता है।

उत्खनन एवं खनन

उत्खनन और खनन एक दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसने महिलाओं को बहुत बड़ी संख्या में नियोजित किया हुआ है। भूमिगत खदानों में महिलाओं और बच्चों को काम करने से बचना

चाहिए परन्तु छिपे तौर पर भूमिगत खदानों में बाल श्रम का बहुतायत से उपयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाली प्रमुख समस्याओं में अनियत मजदूरी का उच्च दर; कम मजदूरी; काम की श्रमसाध्य और खतरनाक प्रकृति; कार्य सुरक्षा की कमी और श्रम कानूनों का न लागू होना शामिल हैं।

गृह आधारित कार्य

अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू पूँजी दोनों अतिरिक्त और ऊपरी लागत को कम करने के लिए बहुत तेज़ी से घर से काम करने वालों को खोज रहे हैं जिससे कि मुनाफे की सीमा को अधिकतम किया जा सके। भारत में, जो महिलाएँ तमाम प्रकार के उत्पादों (जैसे कुर्ता, शर्ट, मेजपोश, साड़ी, रुमाल आदि) पर कढ़ाई की बढ़िया कलाकारी करती हैं, वे भी इसी तरह की स्थिति से पीड़ित हैं। एक आंकलन के अनुसार इस क्षेत्र में, कुल श्रमिकों में से 97 प्रतिशत महिलाएँ और सिर्फ 3 प्रतिशत पुरुष हैं जो कढ़ाई की तरह के कार्यों में जैसे कि काटने, मुद्रण, सिलाई आदि में लगे हुए हैं। कुल महिला श्रमिकों में से 95.8 प्रतिशत अनुबंधित श्रमिक हैं, महिलाओं की स्थिति पर बनी समिति ने 1974 में इस ओर ध्यान दिलाया था कि गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले सभी मजदूरी का काम करने वाले श्रमिक प्रति व्यक्ति 40 रुपये प्रति महीना कमाते थे।

खाद्य प्रसंस्करण

खाद्य प्रसंस्करण एक अन्य क्षेत्र है जो सबसे पुराना गृह-आधारित उद्योग है, जहां महिलाएँ बड़ी संख्या में अपनी भूमिका निभाती हैं। इस उद्योग में सब्जियों, फलों, अचारों, चटनी, मसाले आदि के प्रसंस्करण जैसे विस्तृत प्रसार वाली वस्तुएं शामिल हैं। हाल के दिनों में यह क्षेत्र एक निर्यातोन्मुखी उद्योग के रूप में उभर रहा है,जहां इसके 30 प्रतिशत उत्पादों का निर्यात किया जा रहा है। सामान्यतया इस क्षेत्र के कार्य मौसम आधारित होते हैं और इन उद्योगों में लगभग 40 प्रतिशत से 50 प्रतिशत कर्मचारियों को नियमित काम नहीं मिलता है। इस क्षेत्र में अनुबंध को आगे दूसरे छोटे ठेकेदारों को सौंप देने की परंपरा प्रचलित है और उत्पादन के परंपरागत तरीकों में महिला श्रमिकों को अधिक तरजीह दी जाती है क्योंकि उन्हें बहुत कम मजदूरी देनी पड़ती है और उनकी मांग भी सामान्यतया कम रहती है।

2.4.2 गैर-संस्थागत असंगठित क्षेत्र

असंगठित क्षेत्र में आने वाले कुछ प्रमुख गैर-संस्थागत व्यवसाय निम्न प्रकार हैं।

घरेलू कार्य

घरेलू नौकर और कामगार, खासतौर पर शहरी अर्थव्यवस्था में, सीढ़ी के निचले पायदान पर होते हैं। काम का **लैंगिक विभाजन** और कार्य आवंटन का स्वरूप मुख्य रूप से घरेलू सेवा को, महिला प्रधान उद्योग की तरह प्रस्तुत करता है। घरेलू काम में तमाम प्रकार की नौकरियां जैसे झाड़ू लगाना, झाड़ना, खाना पकाना, कपड़े और बर्तन धोना, खरीदारी करना, बच्चों की देखभाल करना आदि शामिल हैं। संक्षेप में, इसके अन्तर्गत वह सभी प्रकार के घरेलू कार्य आते हैं जो पितृसत्तात्मक समाज में एक महिला की भूमिका माने जाते रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, आंतरिक घरेलू कार्यों के साथ पारिवारिक कृषि आधारित काम भी शामिल रहते हैं।

यह श्रमिकों के सबसे दुर्बल समूहों में से एक है क्योंकि घरेलू कामों में लगी हुई इन लाखों महिलाओं की सुरक्षा के लिए सरकार की ओर से लगभग कोई कानून या नियम नहीं हैं। इस प्रकार के उद्योग की सबसे सामान्य विशेषताओं में बेहद कम मजदूरी दर, काम के लंबे

और अनियमित घंटे और श्रमिक-संगठनों का अभाव शामिल हैं। इस तरह के उद्योग की एक और विशिष्ट तथ्य यह है कि इनमें सारे कार्य उपठेकेदारों, बिचौलियों की श्रृंखला के माध्यम से कराए जाते हैं जो प्रकारांतर से महिला कामगारों का बड़े पैमाने पर शोषण करते हैं। घर पर किए जाने वाले कार्यों पर आधारित उत्पादों के कुछ उदाहरणों में शामिल हैं– बीड़ी के बण्डल, पेपर बैग, तैयार वस्त्र, कपास से रूई बनाना, हाथ की कढ़ाई, अनाज की सफाई, मसाला बनाना, माचिस की तीलियाँ बनाना, अगरबत्ती बनाना, कागज के रोल तैयार करना, छोटे विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक आइटम्स की फिटिंग, औद्योगिक वस्तुओं पर लेबलिंग, कपड़ों पर जरी करना, कृत्रिम गहने पर काम करना इत्यादि।

बीड़ी बनाना

1974 में महिलाओं की स्थिति पर बनी समिति ने अपने अध्ययन में कहा था कि बीड़ी बनाना, देश में सबसे अधिक मेहनत वाले उद्योगों में से एक के रूप में कुख्यात है। इसमें मजदूरी हमेशा निर्मित बण्डलों की संख्या पर आधारित होता है। काम के घंटे और बोनस भुगतान बिल्कुल अनियमित हैं। बीड़ी बनाने वाले श्रमिक सांस के संक्रमण, फेफड़ों के संक्रमण, तपेदिक और कैंसर जैसे रोगों से जूझते हैं।

माचिस बनाना

इस उद्योग का संगठन भी बिल्कुल बीड़ी उद्योग के समान है। तमिलनाडु के शिवकाशी में इसके बड़े कारखाने हैं जहां बड़े पैमाने पर बच्चे और महिलायें घर पर काम करती हैं, जबकि पुरुष कारखाने में काम करते हैं। यहाँ कोई श्रमिक संगठन नहीं है और इन श्रमिकों की सुरक्षा के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं है। प्रति नग दर से मजदूरी, काम के अत्यधिक घंटे, रोजगार सुरक्षा की कमी और कल्याणकारी सुविधाओं का अभाव के चलते इनका अत्यधिक शोषण होता है।

सिलाई और कढ़ाई

रेडीमेड वस्त्र के मामलों में आमतौर पर महिलाएँ अपने घरों में सिलाई का काम करती हैं। महिलाएँ खुद व्यापारियों से कपड़े इकट्ठा करती हैं, उन्हें अपने घरों में सिलती हैं और तैयार उत्पादों को व्यापारियों तक पहुंचा कर अगले खेप की सामग्री इकट्ठा कर आती हैं। इस तरह इन कार्यों में शामिल जगह, परिवहन, सिलाई मशीनों के रखरखाव और धागे इत्यादि की पूरी लागत व खर्च महिलाओं को सहन करना पड़ता है। मजदूरी का भुगतान आमतौर पर सप्ताह या महीने में और निरपवाद रूप से प्रति नग दर से किया जाता है। चूंकि ये मजदूर बिखरे हुए और असंगठित होते हैं, अतः संगठित विरोध की संभावना न होने के कारण बहुत कम मजदूरी दी जाती है। मौजूदा श्रम कानूनों को भी इन पर लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि स्थापित मानदंडों और नियमों के अनुसार इन्हें श्रमिक माना ही नहीं जाता और यदि कभी इन कानूनों को लागू किया जाता है तो भी उनका बुरी तरह से उल्लंघन किये जाता है। इसके अलावा, इस क्षेत्र में महिलाएँ अधिक हैं क्योंकि इसमें अधिकतर घर पर किये जाने वाले काम हैं और इसलिए वे किसी भी समय अपने नियोक्ताओं की इच्छा पर काम पर रखी या निकाली जा सकती हैं। किसी औपचारिक अनुबंध के अभाव में, काम करने की उनकी स्थितियां अक्सर उत्पीड़क होती हैं और मालिक हमेशा जिम्मेदारियों से बच सकता है। महिला मजदूर सामाजिक सुरक्षा लाभों जैसे भविष्य निधि, ग्रेच्युटी, पेंशन, चिकित्सा सुविधाएं और सवेतन अवकाश से वंचित होती हैं। इन घरेलू श्रमिकों की एक अनूठी विशेषता होती है कि प्रत्येक श्रमिक दूसरे श्रमिकों से बिल्कुल अलग-थलग होता है और उन्हें संगठित करने की समस्या लगभग अकरणीय है।

झाड़ू लगाने और कूड़ा उठाने का काम

हमारे देश में आमतौर पर सरकार और नगरपालिकाएं महिला सफाई कर्मियों की नियमित नियोक्ता होते हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग के अध्ययन समूह ने इस बात को उल्लिखित किया था कि महिलाओं को दिए जाने वाले मातृत्व अवकाश और दूसरे लाभ तथा काम की अन्य शर्तों को देखते हुए नगरपालिका अधिकारियों द्वारा महिला सफाई कर्मियों की भर्ती को हतोत्साहित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सामान्य तौर पर वे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा शासित होती हैं। मजदूरी और काम के घंटे एक स्थानीय निकाय से दूसरे स्थानीय निकायों में अलग-अलग होते हैं। अधिकांशतया उन्हें अंशकालिक नौकरियां दी जाती हैं वह भी साप्ताहिक आराम, मातृत्व अवकाश या सवेतन छुट्टियों, वर्दी या मकान किराया भत्ता के बिना।

ठेला लगाने वाली और फेरी वाली महिलाएँ

घूमकर बेंचने वाली महिलाएँ और फेरीवाली, सब्जी, फूल, फल, कपड़े, बर्तन, चूड़ियां, खिलौने और तैयार भोजन इत्यादि के व्यापार में लगी हुईं महिलाएँ अत्यधिक दुर्बल और शोषण के प्रति प्रवणशील समूह के तौर पर एक दूसरा समूह निर्मित करती हैं जो अधिकारियों और समुदाय द्वारा लगातार शोषित होने को अभिशप्त होती हैं। इस सन्दर्भ में स्व-नियोजित महिलाओं पर बनी राष्ट्रीय समिति ने ध्यान दिलाया था कि भारतीय पुलिस अधिनियम, भारतीय रेलवे अधिनियम और टाउन प्लानिंग अधिकारियों द्वारा इन्हें असामाजिक तत्वों के रूप में देखा जाता है। शहरी नियोजक अक्सर उन्हें नियोजन में रुकावट के तौर पर देखते हैं और उनकी गतिविधियों को अनधिकृत करार देते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि यह प्रणाली रोजगार के अवसरों को उपलब्ध कराने के साथ ही माल के सस्ते और सुविधाजनक वितरण के अवसर प्रदान करती है।

एक महिला विक्रेता छोटे पैमाने पर एक मामूली राशि कमा पाने के लिए दिन में अधिकांशतया 10-12 घंटे मेहनत करती है। शहरी क्षेत्रों में, वे बड़े पैमाने पर गहन आबादी वाले क्षेत्रों जैसे कि सार्वजनिक बाजारों, परिवहन केन्द्रों, वाणिज्यिक केंद्रों और मनोरंजन क्षेत्रों में और उसके आसपास बसे होते हैं। इन विक्रेताओं की समस्याओं में पूँजी की कमी, विपणन के लिए जगह और पुलिस और अन्य अधिकारियों द्वारा उत्पीड़न जैसी समस्याएं शामिल हैं।

स्वरोजगार में नियोजित महिलाएँ

मोटे तौर पर देखा जाए तो हमारे देश में स्वरोजगार एक प्रमुख रोजगार क्षेत्र का गठन करता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के अड़तीसवें चक्र के अनुसार कुल 98.4 मिलियन महिला कामगारों में से 59 मिलियन महिला कामगार (60.1 प्रतिशत), स्वरोजगार में नियोजित थीं, जो पुरुषों की स्वरोजगार प्रतिशतता 55.9 प्रतिशत से कुछ अधिक थीं।

कुछ ऐसी समस्याएं हैं जिनका सामना स्वरोजगार में नियोजित महिलाओं को करना ही पड़ता है जैसे कि बुनियादी सुविधाओं की कमी और बाजार आधारित मांगों की अपर्याप्त जानकारी। इसके अतिरिक्त बच्चों के देखभाल की सुविधाओं के अभाव, असुरक्षित परिवहन, अपर्याप्त कार्यस्थल और प्रशिक्षण की कमी से महिलाएँ और अधिक असमर्थ हो जाती हैं। संस्थागत ऋण सुविधाओं के अभाव में बिचौलियों द्वारा शोषण का षिकार भी बनती हैं।

आगे पढ़ने से पूर्व पढ़े हुए अनुभागों का आंकलन करने के लिए निम्नलिखित अभ्यास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) रोजगार के दो व्यापक क्षेत्रों का नाम बताइए।

2) संस्थागत और गैर-संस्थागत रोजगारों के अन्तर्गत आने वाले कतिपय व्यवसायों के नाम बताइए।

आगे आने वाले अनुभागों में आप पढ़ेंगे कि असंगठित क्षेत्र में काम करते समय महिला श्रमिकों द्वारा किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

2.5 असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की समस्याएं

असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

निम्न आय अर्जनः असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों द्वारा निम्न आय अर्जन के कारण हैं:

क) कौशल की कमी के चलते निम्न उत्पादकता।

ख) समान वेतन अधिनियम और न्यूनतम वेतन कानूनों का कार्यान्वयन न होना।

ग) बिचौलियों / ठेकेदारों द्वारा शोषण।

घ) नए कुशलताओं और प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए प्रशिक्षण के अवसरों का अभाव।

ड) रोजगार की अनियत प्रकृति का उच्च अनुपात।

अब हम असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों द्वारा अर्जित निम्न मजदूरी के कारणों के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

मशीनीकरण

शिक्षा के सीमित अवसरों के कारण नई खेतिहर तकनीकों को अपनाए जाने के चलते कृषि में महिलाओं की भागीदारी बहुत हद तक प्रभावित हुई है। 1961 से 2011 के पांच दशकों के दौरान आधुनिक जड़ी-बूटी और चावल मिलों, पिसाई, मछली पकड़ने वाले समुदायों के मशीनीकरण, पावरलूम के उपयोग ने लगभग 84,000 महिला हथकरघा बुनकरों को बेरोजगार कर दिया है।

प्रशिक्षण का अभाव

असंगठित क्षेत्र में अधिकांश कामगारों के पास पेशेवर प्रशिक्षण के नाम पर कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्तिगत सेवाओं जैसे कि नर्सिंग और खाना पकाने के साथ-साथ कुछ गैर-घरेलू कामों जैसे सिलाई, बिजली की फिटिंग या कांच के कामों ने कुछ आरंभिक प्रशिक्षण नियमित तौर पर कराए जाते हैं। लेकिन अधिकांश श्रमिकों को जो भी कार्य वे करते हैं, उसके लिए उन्हें बहुत ही कम लगभग नही ंके बराबर औपचारिक प्रशिक्षण मिला होता है। ज्यादातर कामगारों ने घर पर ही परिवार के अन्य सदस्य से वह कुशलता सीखी होती है।

इस तरह के प्रशिक्षण के दो प्रभाव देखने में आते हैं। पहला तो यह कि कामगार तुरन्त किए जाने वाले कामों के लिए ही कुछ निर्देश प्राप्त करता है। अर्थात एक पूर्ण पेशेवर या व्यापार से संबंधित कौशल सीखने की कोई गुंजाइश नहीं होती। इस प्रकार, यदि महिला कामगार अपने लिए कुछ अच्छे कौशल वाले काम की मांग करती है तो उसके लिए उसे किन्हीं मान्यता प्राप्त संस्थाओं से कुछ अन्य प्रशिक्षण प्राप्त करने होंगे। ऐसा स्पष्ट रूप से दर्जी के मामले में देखा जा सकता है जो एक सिलाई मशीन पर सिर्फ सिलने का काम करती हैं और आमतौर पर न कटिंग सीखती है और न किसी प्रकार की कढ़ाई। दूसरा असर यह होता है कि कामगार सिर्फ अपने काम से संबंधित मूलभूत विषय की आधारभूत बातों को समझती हैं उनमें कोई नवाचार या नई सोच की गुंजाइश नहीं रह जाती।

श्रम कानूनों के संरक्षण का अभाव

सरकार ने महिला कामगारों के हितों की रक्षा और उनके संरक्षण हेतु तमाम कानूनों जैसे कि समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976, मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 और फैक्ट्री एक्ट, 1948 के अन्तर्गत महिला श्रमिकों के लिए विशेष प्रावधान इत्यादि को अधिनियमित किया है। असंगठित क्षेत्रों में अस्थायी और अनियत महिला कामगार मातृत्व सुरक्षा कानून द्वारा संरक्षित नहीं हैं जिससे गर्भावस्था के आखिरी और अग्रिम चरणों में भी उन्हें काम करते रहना पड़ता है। इतना ही नहीं बीमारी या गर्भावस्था के दौरान अनौपचारिक क्षेत्रों के मालिक न केवल कोई सुविधा प्रदान करने में विफल रहते हैं बल्कि इन स्थितियों को महिला कामगार को काम से निकालने के लिए पर्याप्त आधार भी मानते हैं। असंगठित क्षेत्र की महिला कामगारों को क्रेच सुविधाओं, सवेतन छुट्टियों और अन्य सामाजिक सुरक्षा लाभों से पूर्णतया वंचित रखा जाता है।

संगठन का अभाव

असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों में संगठन और संघटन का अभाव, उनकी संगठनात्मक ताकत में बाधा डालता है। असंगठित क्षेत्र में, महिला श्रमिकों को तरह-तरह से शोषित किया जाता है जैसे कि निम्न मजदूरी दर, वस्तुओं की गिनती के आधार पर मजदूरी, काम के लंबे घंटे, वेतन से संबंधित श्रम कानूनों का लागू न किया जाना, काम की स्थिति, बीमा, भविष्य निधि, मातृत्व अवकाश, क्रेच सुविधाएं इत्यादि की अनुपलब्धता।

संसाधनों तक पहुंच का अभाव

बैंक और अन्य औपचारिक संस्थान महिलाओं को ऋण देने के मामलों में ज्यादा भेदभाव करते हैं और उनसे ऋण के बदले गारण्टी के रूप में चल या अचल संपत्ति जमानत पर रखने को कहते हैं। परन्तु तथ्य यह है कि हमारे देश में महिलाओं की ऐसी संपत्तियों तक पहुंच ही नहीं है।

सहायक सेवाओं का अभाव

असंगठित क्षेत्र की महिला कामगारों के लिए बच्चों को लेकर एक और समस्या यह है कि चाइल्ड केयर या बच्चों के लिए डे केयर सेंटर जैसी सहायक सेवाओं तथा विशेषकर लड़कियों को स्कूल भेजने की सुरक्षित व्यवस्थाओं का अभाव है।

यौन उत्पीड़न

हालाँकि सभी क्षेत्रों की महिला श्रमिकों को ऐसी समस्या का सामना करना पड़ता है, अनौपचारिक क्षेत्र के कार्यस्थल महिलाओं के यौन उत्पीड़न के संदर्भ में अधिक संवेदनशील हैं। मछली सुखाने, भवन निर्माण, चूने-गारे के काम आदि में मुख्य ठेकेदार अपने अधीन कई उपठेकेदारों को रखते हैं, जो काम देने के बदले अक्सर महिला श्रमिकों का शोषण करते हैं और उनसे यौन आग्रह करते हैं।

1970 से 2013 की अवधि के दौरान, भारत में, मुख्य रूप से असंगठित कार्य में महिला कामगारों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। महिलाओं के आंदोलनों ने उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला और उनकी लामबंदी करने, उन्हें संगठित करने के प्रयास किए। नारीवादी अध्ययनों ने ऐसी श्रम प्रक्रियाओं और श्रम संबंधों के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा की जो यौन शोषण को बनाए रखते हैं। 2013 में, भारत ने, कार्यस्थलों पर यौन शोषण की रोकथाम हेतु अधिनियम लागू किया जिसके लिए इस समय नियम निर्धारित किए जा रहे हैं। यह अधिनियम अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में काम करने वाली कामकाजी महिलाओं को अपने अन्तर्गत शामिल करता है।

विभिन्न स्तरों पर नीतियों में बदलाव लाने के लिए महिला श्रमिकों के पक्ष में किए गए विरोध और लामबंदियों के बारे में हम दूसरी इकाइयों में विस्तार से व्याख्या करेंगे।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के रोजगार की प्रवृत्ति क्या है?

2) भारत में असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?

अब हम संगठित क्षेत्र में महिला श्रमिकों की स्थिति के बारे में पढ़ेंगे।

2.6 संगठित क्षेत्र में महिला कामगार

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, भारत ने औद्योगीकरण और उसके चलते सामाजिक संरचना में हुए बदलावों के कारण तेजी से संक्रमण का एक दौर देखा। उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण हेतु व्यापक रास्तों के खुल जाने से महिलाएँ संगठित क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए अधिक सक्षम होकर उभरीं। समग्र तौर पर आर्थिक आवश्यकता और इस बात की जागरूकता, कि नौकरियां आर्थिक बेहतरी के साथ-साथ उच्चतर सामाजिक गतिशीलता और स्वंतत्रता प्रदान करती हैं, ने अधिक से अधिक महिलाओं को व्यवसायों के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करने के अवसरों का लाभ उठाने के लिए प्रेरित किया।

1940 के बाद पिछले कई दशकों के दौरान, महिला कामगार सवेतन श्रमबल में बढ़ी हुई संख्या में प्रवेश कर रही हैं। इस अवधि के दौरान मध्यम वर्ग, शहरी, शिक्षित, उच्च जाति की महिलाओं ने उल्लेखनीय तौर पर घर से बाहर जाकर किए जाने वाले कामों में अपनी भागीदारी बढ़ाई। स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी और स्वतंत्रता से पहले की अवधि में महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने के महत्व को मिली स्वीकृति ने मध्यम वर्गीय महिलाओं को ऐसे अवसर प्रदान किए कि लम्बे समय तक चलने वाली अर्थव्यवस्था में सवेतन कार्य की वृहत्तर दुनिया में प्रवेश कर सकें।

गैर-भेदभाव वाले संवैधानिक प्रावधान, तृतीयक क्षेत्रों में रोजगार अवसरों के विस्तार, उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक अवसरों, शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों में पारिवारिक आय बढ़ाने के लिए बढ़ते दबाव, कुछ ऐसे कारक हैं जिनके कारण श्रम बाज़ार में मध्यम वर्ग की महिलाओं की भागीदारी और बढ़ी।

घर से बाहर निकलकर सवेतन नौकरियों में प्रवेश करने के लिए महिलाओं के पास और कई प्रेरक कारक थे। विवाहित शिक्षित महिलाओं के मामलों में लाभदायक रोजगार को चुनने के महत्वपूर्ण प्रेरणाएं निम्नवत हैं:

क) खाली समय का व्यस्त उपयोग

ख) आर्थिक स्वायत्तता

ग) गरिमा और स्वाभिमान के साथ जीना

घ) अपनी स्वयं की पद और प्रतिश्ठा प्राप्त करने के लिए

ड.) प्राप्त उच्च और व्यावसायिक शिक्षा का उचित उपयोग करना

च) कॅरियर और आत्मबोध की महत्वाकांक्षा

छ) समुदाय और समाज की सेवा और बड़े स्तर पर करना।

महिलाओं के रोजगार को 1970 के दशक में स्वीकार किया गया खासतौर पर आर्थिक संकट के दौरान और जो महिलाएँ व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी थीं मगर "काम नहीं करती थीं'' उन्हें अपनी शिक्षा और प्रशिक्षण बेकार करने वाली समझा जाने लगा। सार्वजनिक क्षेत्र के अधिक विस्तृत होते जाने के कारण भी मध्यम वर्गीय महिलाओं का रोजगार में प्रवेश अधिक बढ़ा। अर्ध-सरकारी उपक्रमों में भी महिला रोजगार की संख्या बढ़कर दोगुनी हो गई।

कुछ खास नौकरियों और विशेष प्रकार के कामों में ही महिलाओं का संकेंद्रण और अपनी कुशलता के अनुरूप काम न पाना महिलाओं के लिए चिंता के विषय हैं। सभी देश इस समस्या और इसके प्रभाव के बारे में समझ चुके हैं और इस समस्या से सख्ती के साथ निबटने के लिए पहले ही कार्रवाई शुरू कर चुके हैं। इस मुद्दे का जितना हिस्सा यूनेस्को से जुड़ा है, उतने के लिए उसने उल्लेखनीय महत्व दिया है। इस बात के सभी हामीदार थे कि सभी मानव चाहे वे पुरुष हों या स्त्री एकसमान हैं, और शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अपनी कुशलता/योग्यता के अनुसार रोजगार के अवसरों के प्रति भी उनके अधिकार समान हैं। इस मुद्दे पर और जोर देने के लिए तथा सबके सम्मुख रखने के लिए यूनेस्को ने जापान, तत्कालीन जर्मन गणराज्य संघ और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सहयोग से चार अलग-अलग स्थानों पर चार सम्मेलनों का आयोजन किया।

पैंतालिस साल पहले, शिक्षण के अलावा आमतौर पर केवल तीन और व्यवसायों क़ानून, स्वास्थ्य और मंत्रालयों को महिलाओं के लिए उल्लेखनीय तौर पर महत्व प्राप्त नौकरियों का क्षेत्र माना जाता था। उन दिनों महिलाओं को कानूनी रुकावटों और जन-भावनाओं की वजह से इन व्यवसायों में काम करने से बिल्कुल रोक दिया गया था। महिलाओं के लिए अध्यापन के कार्य की सिफारिश इसलिए की गई कि इसे इस तरह व्यवस्थित किया जा सकता था कि महिलाएँ सिर्फ समान जेंडर के लोगों के साथ आपसी संवाद कर सकें जो नारीत्व की उनकी परंपरागत भूमिका के साथ किसी प्रकार का संघर्ष उत्पन्न नहीं करता था। इसके अलावा अध्यापन के कार्य में काम के कम घंटे, छुट्टियाँ आदि अन्य आकर्षण थे जो वास्तव में यह भी संभव बनाते थे कि महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में कोई व्यवधान नहीं आए।

भारत में संगठित क्षेत्र, जो प्राथमिक तौर पर मुख्यतया सार्वजनिक क्षेत्र और गैर-खेतिहर क्षेत्र की स्थापनाओं से मिलकर बनता है, देश की कुल वास्तविक कार्यबल का एक आठवां हिस्सा समाहित किए हुए है। इसमें भी महिलाओं की हिस्सेदारी वर्ष 1980-91 के दौरान 12-2 प्रतिशत रही। मोटे तौर पर एक समझ बनाने के लिए यह तथ्य जानना महत्वपूर्ण है कि संगठित क्षेत्र में महिलाओं के रोजगार की कुल संख्या 1971 में 19.30 लाख से बढ़कर 1986 में लगभग 33.41 लाख हो गई। (www.indiastatistics.com)

संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत, सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं का रोज़गार 1971 में 8.62 लाख से बहुत तेजी से बढ़कर 1986 में 19.30 लाख हो गया। निजी क्षेत्र में भी महिलाओं के रोजगार में वृद्धि हुई हालाँकि इससे थोड़ी कम दर से अर्थात 1971 में 10.67 लाख से बढ़कर 1986 में 13.07 लाख हो गई।

चूंकि महिलाएँ कार्यालयों में बड़े स्तर पर अधिकांशतः शिक्षक, नर्स, क्लर्क और सेक्रेटरी के रूप में नौकरी करती हैं इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र में कुल रोजगार में से महिलाओं के रोजगार में बहुत कम केवल 1 प्रतिशत (यानी 1980-81 में 9.7 प्रतिशत से लेकर 1984-85 में 10.8 प्रतिशत तक) वृद्धि हुई है। संगठित क्षेत्र में महिलाओं के उद्योगवार रोजगार के आँकड़े इंगित करते हैं कि 1971 और 1981 दोनों ही अवधि के दौरान, महिला श्रम का बड़ा हिस्सा कृषि से संबद्ध गतिविधियों के बाद सेवाक्षेत्र और विनिर्माण उद्योग में नियोजित था। परन्तु अब परिदृश्य बिल्कुल बदल गया है। 1991 के बाद, सेवा क्षेत्र और अन्य व्यवसायों जैसे, आईटी और अध्यापन में महिलाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है।

विनिर्माण

महिलाओं के लिए रोजगार के प्रमुख स्रोतों में से एक क्षेत्र विनिर्माणका था। एक अंतर्दृष्टि के लिए देखा जा सकता है कि 1971-81 के दौरान, इस क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के अनुपात में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में वृद्धि दर्ज हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला कामगारों के अनुपात में 1971 के 270 प्रति 1000 पुरुष से बढ़कर 1980 में .... प्रति 1000 पुरुष हो गया जबकि इसी दौरान 'शहरी क्षेत्र में 260 प्रति 1000 पुरुष से बढ़कर 330 प्रति 1000 पुरुष हो गया। हालाँकि इस क्षेत्र के अन्तर्गत परम्परागत उद्योगों जैसे कि भोजन, तम्बाकू और वस्त्रोद्योग में महिलाओं का प्रतिशत हिस्सा लगभग स्थिर रहा और 86 प्रतिशत से अधिक महिला कामगार विनिर्माण उद्योग में नियोजित थीं। काजू और कॉफी उद्योग में मशीनीकरण के चलते और उसके परिणामस्वरूप घरेलू उद्यम से दूसरी तरह के संगठनों में बदलाव से महिलाओं के रोजगार को काफी क्षति पहुंची। उद्योगों के गैर-परंपरागत समूहों जैसे वस्त्र, प्लास्टिक और रबर उत्पादों में महिला रोजगार के हिस्से में एक उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई।

अन्य उद्योगों जैसे उर्वरक और कीटनाशक, पेंट निर्माण, रसायनिक उत्पाद, छपाई, रंगाई और सूती वस्त्रों के विरंजन, मशीनरी के विनिर्माण, बिजली के उपकरण आदि में महिला रोजगार के संदर्भ में विकास हुआ है। गैर-परंपरागत उद्योग की ओर भी कुछ बदलाव हुए हैं। हालाँकि आधुनिक क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश कम कुशलता वाली नौकरियों तक सीमित था। उदाहरण के लिए, रबर, प्लास्टिक और पेट्रोलियम जैसे उद्योगों में महिलाओं का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रहा है जो कम आधुनिक तकनीकों का उपयोग और कम मूल्यवान उत्पादों का उत्पादन करते हैं।

व्यापार एवं वाणिज्य

व्यापार और वाणिज्य में महिला कामगारों की हिस्सेदारी ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बढ़ी है। हालाँकि इस क्षेत्र में महिला कामगारों की संख्या अभी भी बहुत नगण्य है जैसे कि कुल कामगारों का मात्र 1 प्रतिशत हिस्सा। पिछले 20 वर्षों के दौरान महिला उद्यमिता पर तमाम चर्चाएँ हुई हैं।

सेवाओं और अन्य व्यवसायों में महिलाएँ

सार्वजनिक क्षेत्रों में पेशेवर, तकनीकी और संबंधित श्रेणियों जिसमें शिक्षिकाएँ भी शामिल हैं, में महिला कर्मचारियों की संख्या में 1960 से लगातार वृद्धि हो रही है। इसी तरह परिवहन, भंडारण और संचार में भी महिला कर्मचारियों की संख्या लगातार बढ़ी है। निजी क्षेत्र में, वह क्षेत्र जहाँ महिला कामगारों के अनुपात में तेज़ी से वृद्धि हुई है, वे हैं लिपिक और संबंधित क्षेत्र, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक। प्रबंधक स्तर पर महिलाओं का नियोजन मात्र कुछ नए उद्योगों जैसे कि विज्ञापन, बाजार अनुसंधान, संक्रिया अनुसंधान, होटल प्रबंधन, आईटी और कॉटेज उद्योगों में हुआ है।

औद्योगीकरण और बढ़ती हुई नौकरशाही के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर सफ़ेदपोश नौकरियों का आगाज़ हुआ है जिसमें कुछ विशेष प्रकार की गतिविधियों में महिला कर्मचारियों का संकेन्द्रण हुआ। अध्यापन में महिलाओं का संकेन्द्रण, अवसर और प्राथमिकता दोनों तथ्यों को दर्शाता है। भारतीय समाज में अध्यापन कार्य को महिलाओं के लिए सर्वाधिक उत्तम काम माना गया है क्योंकि इसमें नारीत्व की पारंपरिक भूमिका के साथ सबसे कम टकराव होता है। हालाँकि, संगठित क्षेत्र में महिला कर्मचारियों के संघटन को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से तीन चौथाई के करीब महिलाएँ ऐसी नौकरियों में हैं जिसमें माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। स्पष्ट रूप से महिलाओं के लिए माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा ग्रहण कर पाना शुद्धतः शहरी परिघटना है जो इस निष्कर्ष की ओर इंगित करता है कि ग्रामीण महिलाएँ व्यापक पैमाने पर सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों से बाहर हैं क्योंकि वे प्रधानतः शैक्षिक रूप से वंचित श्रेणी से संबंध रखती हैं। पंजीकृत व्यापार संघों में, जो नियमित रूप से अपना प्रभाव दिखलाते हैं, महिला सदस्यों की प्रतिशतता बहुत ही मामूली लगभग नगण्य है और उससे भी कम प्रतिनिधित्व उच्च पदस्थ नौकरशाही और अधिशासी सदस्यों में है।

अध्यापन में महिलाएँ

20वीं सदी की शुरुआत में स्थापित लड़कियों के स्कूल, प्रशिक्षण स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों ने महिलाओं को सक्षम बनाया कि वे अध्यापन व्यवसाय के लिए आवश्यक योग्यताओं को हासिल कर सकें। स्वतंत्रता के पश्चात वाले युग में भारत में महिला अध्यापिकाओं की संख्या में खूब वृद्धि हुई। यद्यपि महिलाओं ने बड़ी तेज़ी से इन व्यवसायों में प्रवेश किया परन्तु शीर्षस्थ पद तक पहुंचना उनके लिए हमेशा कठिन था। पिछले 20 वर्षों के दौरान परिदृश्य बदल चुका है। सार्वजनिक के साथ-साथ निजी क्षेत्र के शैक्षिक संस्थानों में विभिन्न पदों का नारीकरण कर दिया गया है। आजकल, स्कूलों और विश्वविद्यालय शिक्षा में महिला प्रबंधक काफी बड़ी संख्या में पायी जाती हैं।

इंजीनियरिंग में महिलाएँ

घर से बाहर संपादित किए जाने वाले कठिन श्रम की प्रकृति के चलते इंजीनियरिंग को आमतौर पर पुरुषों का व्यवसाय माना जाता था। 1990 के दशक से इस क्षेत्र ने भी व्यापक बदलाव का अनुभव किया है। अब महिलाएँ बड़ी अच्छी तादात में आईटी और बायो-टेक्नोलॉजी क्षेत्रों में प्रवेश कर रही हैं।

प्रशासनिक और केंद्रीय सेवाओं में महिलाएँ

आजादी से पहले सिविल सेवा परीक्षा लेने वाली संस्थाओं का महिलाओं से एक तरह का बैर या शत्रुता या विद्वेश हुआ करता था। केवल अविवाहित महिलाएँ या बिन बच्चे की विधवाएं इन सेवाओं में शामिल हो सकती थीं, और सरकार ने महिलाओं को चयनित नहीं करने का अधिकार आरक्षित कर रखा था भले ही वे परीक्षा प्रक्रिया का उत्तीर्ण करके योग्य घोषित हुई हों। 1954 में, सरकार ने एक प्रावधान के तहत महिलाओं पर प्रतिबंधों में ढील दी कि अगर विवाहित महिलाओं द्वारा सेवाओं की दक्षता में बाधा आई तो इन महिलाओं को इस्तीफा देने के लिए कहा जा सकता था। फिर भी इस नियम का उपयोग शायद ही कभी किया गया। अंततः यह वर्ष 1972 था जब महिला सांसदों द्वारा संसद में धमकी भरी निंदा किए जाने के बाद इसे हटा दिया गया। आईएएस कैडर में पहली महिला अधिकारी ने 1951 में ज्वाइन किया था और उन्होंने यह बताया कि चयन समिति ने उसे विदेश सेवा में शामिल होने के लिए मनाने की काफी कोशिश की थी क्योंकि उन्हें संदेह था कि क्या कोई महिला जिले में आईएएस अधिकारी के रूप में कानून और व्यवस्था की जिम्मेदारियों का पालन कर पाएगी?

इसी तरह भारतीय पुलिस सेवा भी कई वर्षों तक महिलाओं को स्वीकार करने से इनकार करता रहा। उनका तर्क यह था कि पुलिस सेवा और महिलाएँ परस्पर विरोधी या असंगत थीं। हालाँकि पहली महिला आईपीएस अधिकारी (किरण बेदी) ने 1972 में कार्यभार ग्रहण किया। वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार, पूरे भारत में प्रशासनिक और कार्यकारी पदों पर 1000 महिलाएँ, जबकि वित्तीय संस्थानों में प्रबंधकों और अधिकारियों के रूप में लगभग 400 महिलाएँ कार्य कर चुकी थीं। इसकी तुलना में वर्तमान परिदृष्य काफी उत्साहजनक है। पिछले 40 वर्षों में आई.ए.एस.,आई.पी.एस.,आई.ई.एस.,आई.एफ.एस. जैसी सेवाओं में बड़ी संख्या में महिलाएँ शामिल हो रही हैं।

क्लर्क, आशुलिपिक, टाइपिस्ट, रिसेप्शनिस्ट जैसी नौकरियां अधिक से अधिक शिक्षित महिलाओं को नियोजित करती हैं। केंद्र और राज्य सरकार की सेवाओं में, महिला कर्मचारियों का सबसे अधिक संकेंद्रण तृतीय श्रेणी यानी लिपिकीय लेखा और संबंधित कर्मचारियों के स्तर पर था।

कानूनी सेवाओं में महिलाएँ

19वीं सदी के दौरान, ब्रिटिश कानून ने इग्लैंड और भारत में महिलाओं के बार में प्रवेश करने पर रोक लगाई हुई थी। हालाँकि, तत्कालीन बॉम्बे की एक पारसी ईसाई महिला कार्नेलिया सोराबजी 1892 में विधि स्नातक करने के लिए ऑक्सफोर्ड गई और कानून की डिग्री हासिल करने वाली पहली भारतीय महिला बनी। वहां से वापस लौटने पर बंगाल के गवर्नर ने उन्हें महिलाओं के प्रतिपाल्य अधिकरण में कानूनी सलाहकार के रूप में नियुक्त किया।

विरोध और आंदोलनों के कारण, भारत सरकार ने 1923 में विधि व्यवसायी (महिला) अधिनियम पारित किया जिसके द्वारा महिलाओं पर लगे प्रतिबंध को हटा दिया गया। इसके बाद से महिला अधिवक्ताओं की संख्या लगातार बढ़ी और परिणामस्वरुप न्यायपालिका में महिलाओं का प्रतिनिधित्व भी अधिक हुआ।

स्वास्थ्य सेवाओं में महिलाएँ

मानव सभ्यता की सम्पूर्ण अवधि के दौरान स्वास्थ्य रक्षा और देखभाल के मामलों में महिलाएँ पहले पायदान पर थीं। पहली भारतीय महिला डाक्टर्स जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड और स्कॉटलैंड में अध्ययन किए थे, 1880 और 1890 के दशक में यहां के अस्पतालों में काम करने लौटकर वापस भारत आईं। मिशनरियों के रूप में भी योग्य महिला चिकित्सक संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत के अस्पतालों में काम करने के लिए आईं। इडा स्कडर, जिन्होंने भारत में उपयुक्त चिकित्सीय देखभाल के अभाव में बच्चे के जन्म के समय महिलाओं की दुर्दशा को साक्षात देखा था, मेडिकल स्कूल में अध्ययन हेतु अमेरिका लौट गईं और अध्ययन के पश्चात वेल्लोर में महिलाओं के लिए नर्सिंग और मेडिकल केयर होम खोलने के लिए भारत वापस आईं। इसका नाम बाद में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज रखा गया।

1885 में लेडी डफ़रिन कोश बनाया गया और काफी संख्या में डफ़रिन अस्पताल खोले गए और डफरिन फण्ड की छात्रवृत्तियों से महिला चिकित्सकों को प्रशिक्षण दिया गया। प्रथमतः 1883 में महिलाओं को मेडिकल डिग्री के लिए बॉम्बे विश्वविद्यालय में दाखिल करवाया गया और 1885 में कलकत्ता मेडिकल कॉलेज महिलाओं को मेडिकल डिग्री प्रदान करने में आगे आया। दिल्ली में वर्ष 1916 में लेडी हार्डिंग कॉलेज खुलने के बाद भारत के उत्तरी हिस्से में महिलाओं के लिए पहला मेडिकल कॉलेज खोला गया। इन कॉलेजों से निकले स्नातक डफरिन फण्ड से वित्तीय सहायता प्राप्त अस्पतालों में नौकरी पर रखे गए।

स्वतंत्रता के बाद से मेडिकल कॉलेजों की संख्या बढ़ती गई। 1946 में कुल 1200 छात्रों के वार्षिक नामांकन के साथ सिर्फ पंद्रह मेडिकल कॉलेज थे। आज, स्थिति में इतना सुधार हो चुका है कि भारत के प्रत्येक राज्य में सैकड़ों मेडिकल कॉलेज हैं।

विज्ञान में महिलाएँ

19वीं सदी से पहले वैज्ञानिक समुदाय में अनन्य रूप से पुरुषों का वर्चस्व था। विज्ञान को केवल पुरुषों के लिए उपयुक्त क्षेत्र माना जाता था। वैज्ञानिक कार्य की कठोरता के चलते महिलाओं को उसके लिए भावनात्मक और बौद्धिक रूप से अनुपयुक्त माना जाता था। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश करने वाली महिलाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, मगर अभी भी विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में महिलाएँ संख्या और अनुपात में पुरुषों से काफी पीछे हैं।

20वीं सदी का पहला दशक सकारात्मक बदलावों का साक्षी बना। लेकिन फिर भी जो महिलाएँ वैज्ञानिक पेशे में सफल हुईं उनमें असाधारण प्रेरणा, मान-अपमान से परे रह लेने की क्षमता और अद्‌भुत योग्यता और साहस होना चाहिए था। महिलाओं के लिए यह आवश्यक हो जाता था कि पुरुष वर्चस्व वाले क्षेत्र में काम चुनने के चलते पड़ने वाले तिहरे दण्ड से पार पाना होता था। इस तिहरे जुर्माने को इस तरह से वर्णित किया गया थाः क) विज्ञान को सांस्कृतिक तौर पर महिलाओं के लिए अनुपयुक्त कॅरियर के रूप में परिभाषित किया गया था; ख) एक धारणा यह भी थी कि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ विज्ञान में कम सक्षम थीं; ग) वैज्ञानिक समुदाय के भीतर महिलाओं को अत्यधिक भेदभाव का सामना करना पड़ता था।

जबकि विज्ञान के अन्तर्गत चिकित्सा एक पसंदीदा और अधिक सम्मानित क्षेत्र था, कुछ अन्य क्षेत्र जिन्होंने महिलाओं को आकर्षित किया वे थे रसायन, जैव-भौतिकी, सांख्यिकी, वनस्पति विज्ञान, माइक्रो बॉयलॉजी और अन्य सामान्य जीव विज्ञान से संबंधित विज्ञान की शाखाएं।

मीडिया में महिलाएँ

आजादी के समय से ही महिलाओं के लिए एक कॅरियर के रूप में पत्रकारिता का क्षेत्र खुलने लगा था। मीडिया में भी बहुत कम महिलाएँ ऐसी थीं जिन्हें पत्रकार के तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता था और अधिकांशतया केवल अधीनस्थ पदों पर कार्यरत थीं।

कुछ सबसे प्रतिष्ठित महिला पत्रकार थीं, जो उस समय महिलाओं और नवजवानों की पत्रिकाओं की संपादक थीं। उनमें ईव्स वीकली की गुलशन इविंग, फेमिना की विमला पाटिल और मनोरमा की राचेल थॉमस, यूथ टाइम्स की एन्स जंग और वनिता की श्रीमती के. एम. मैथ्यू थीं।

तथ्यगत तौर पर पहला समाचार पत्र सिंडीकेट श्रीमती कुसुम नायर और उनके पति द्वारा शुरू किया गया था। 1979 में महिलाओं के एक समूह द्वारा एक नारीवादी पत्रिका 'मानुशी' का प्रकाशन हिन्दी और अंग्रेजी में किया गया। अब हम इस बात के साक्षी हैं कि प्रिण्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में महिलाएँ जिम्मेदार और चुनौतीपूर्ण पदों पर विराजमान हैं।

भारत में ऐसी बहुत सी महिलाएँ थीं जो साहित्य की दुनिया में प्रतिष्ठित थीं और रेडियो, टेलीविजन तथा फिल्म उद्योग में भी महिलाओं द्वारा उल्लेखनीय योगदान दर्ज किया गया। मल्टीमीडिया चैनलों ने एंकर, संवाददाताओं और रिपोर्टरों के रूप में कॅरियर के लिए बड़े केन्द्र खोल दिए हैं लेकिन लगभग सभी मीडिया मालिक पुरुष हैं।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

एक या दो पंक्तियों में निम्न व्यवसायों में काम करने वाली महिलाओं के बारे में लिखें:

1) चिकित्सा

2) विज्ञान

3) अध्यापन

4) कानून

5) मीडिया

6) व्यापार और वाणिज्य

आइए, अब हम विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के घटक के बारे में पढ़ते हैं।

2.7 पंचवर्षीय योजनाएं (एफवाईपी) : महिला कामगार

यहां हम विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के लिए आवंटित बजट पर चर्चा करेंगे।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना तक महिलाओं को कल्याण के विषयों में से एक समझा जाता था और उन्हें वंचित समूहों के साथ एक कोटि में रखा गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961) को गहन कृषि विकास के समग्र उपागम से जोड़ा गया था। इस योजना में पहली बार श्रमिकों के रूप में महिलाओं को संगठित करने की आवश्यकता की पहचान की थी। इसने महिलाओं द्वारा झेली जाने वाली सामाजिक पूर्वाग्रहों और उन पर थोपी हुई अयोग्यताओं को भी समझा। योजना में कहा गया था कि महिलाओं को खतरनाक कामों से बचाया जाना चाहिए, उनके लिए मातृत्व लाभ और उनके बच्चों के लिए क्रेच सुविधा दी जानी चाहिए। इसमें यह भी सुझाव दिया गया था कि समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत और महिलाओं के लिए प्रशिक्षण के प्रावधान का तेजी से कार्यान्वयन किया जाए जिससे महिलाएँ उच्चतर कामों के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकें।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-1966) ने महिलाओं की शिक्षा को उनके कल्याण हेतु प्रमुख रणनीति के तौर पर मान्यता दी। स्वास्थ्य कार्यक्रम मुख्य रूप से मातृत्व एवं बाल कल्याण, स्वास्थ्य शिक्षा, पोषण और परिवार नियोजन के प्रावधानों पर केन्द्रित था।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-1974) ने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की रणनीति का जारी रखा। प्रचालन के लिए आधार के रूप में मूलभूत नीति यह थी कि महिलाओं का कल्याण परिवार के अंदर ही प्रोत्साहित किया जाए।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979) ने महिलाओं को, उनकी आय की जरूरतों और उनके संरक्षण के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। इसलिए इस योजना को पहली बार महिलाओं की आर्थिक भूमिका को महत्व देने के लिए याद किया जाता है। इस योजना की अवधि, अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक और भारत में महिलाओं की स्थिति पर बनी समिति द्वारा रिपोर्ट जमा करने के साथ-साथ पड़ी। रिपोर्ट में जोर देकर कहा गया था कि सामाजिक परिवर्तन और विकास की गत्यात्मकता ने बड़ी संख्या में महिलाओं को प्रभावित किया और असंतुलन और असमानताओं की एक श्रृंखला को वास्तविक धरातल पर उतार दिया जैसे कि क) घटता लिंग अनुपात, ख) निम्न आयु संभाव्यता, ग) उच्चतर शिशु और मातृ मृत्यु दर, घ) काम में घटती सहभागिता, ड) निरक्षरता और च) बढ़ता प्रवासन।

भारत की योजना के इतिहास में पहली बार, **छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)** ने महिला और विकास पर एक अलग अध्याय की शुरुआत की। सरकार ने छठीं योजना अवधि के दौरान कार्यान्वयन के लिए महिलाओं के रोजगार पर एक कार्यदल की नियुक्ति की। इस योजना के दस्तावेज में दर्ज किया गया था कि महिलाओं की स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण सुधारों में से एक यह होगा कि रोजगार अवसरों में से उपयुक्त हिस्सा उनके लिए सुरक्षित कर दिया जाए, और इसे दर्शाने के लिए बजट आवंटन की निश्चित प्रतिशतता महिलाओं के लिए हो तथा पूरे भारत में चलने वाली गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों के बजट आवंटन में से 30 प्रतिशत आवंटन महिलाओं के लिए निर्धारित कर दिया गया। विकास को महिलाओं की शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य में उन्नति के तौर पर भी परिभाषित किया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990) के संचालन ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक के दौरान व्यक्त महिलाओं के लिए समानता और सशक्तीकरण की चिंताओं का विश्लेषण किया। इसने महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ाने, उनकी अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में

उनमें जागरूकता पैदा करने और उन्हें आर्थिक गतिविधियों तथा रोजगार के लिए प्रशिक्षित करने पर ध्यान केंद्रित करने की गुणात्मकता पर ज़ोर दिया। इस योजना अवधि में कुल परिव्यय का 2.4 प्रतिशत महिलाओं के विकास के लिए समर्पित किया गया था। योजना अवधि के दौरान, लैंगिक पूर्वाग्रह और जेंडर पक्षपात को समाप्त करने के लिए शैक्षणिक कार्यक्रमों की पुनर्संरचना और विद्यालय पाठ्यक्रमों को रूपांतरित करने का सुझाव दिया गया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह था कि प्राथमिक स्तर पर लड़कियों के लिए शिक्षा मुफ्त कर दी गई। इसी योजना अवधि में स्वनियोजित महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना, भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को जान पाने की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण थी।

आठवीं योजना (1992-1997) ने विकास की बजाय सशक्तीकरण को अपने आदर्शों में स्थान देते हुए पूर्ववर्ती योजनाओं से परिवर्तन दिखलाया और शिक्षा, स्वास्थ और रोजगार जैसे आधारभूत क्षेत्रों में लाभ का प्रवाह महिलाओं की ओर सुनिश्चित करने का वायदा किया। महिलाओं के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में व्यय पहली योजना में 4 करोड़ से बढ़कर 8वीं योजना में 2000 करोड़ हो गया था।

नौवीं योजना (1997-2002) ने महिलाओं के सशक्तीकरण को अपना रणनीतिक उद्देश्य घोषित किया। इसने महिलाओं के लिए घटक योजना की अवधारणा को स्वीकार किया और सुनिश्चित किया कि सभी विकास क्षेत्रों से कम से कम 30 प्रतिशत धन आवंटन का प्रवाह महिलाओं के लिए हो। इसने चार गुने ऐसे कार्यक्रमों और योजनाओं का सुझाव दिया जो महिलाओं को सीधे प्रभावित करते थे। इन प्रस्तावित योजनाओं की कोटि को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

1) महिला केंद्रित योजनाएँ जिनमें आवंटित धन का 100 प्रतिशत महिलाओं पर खर्च होना जरूरी था।

2) महिला समर्थित योजनाएं जहां आवंटन और लाभों का कम से कम 30 प्रतिशत प्रवाह महिलाओं के लिए था।

3) जेंडर-तटस्थ योजनाएं पूरे समुदाय के लाभ हेतु थीं जिसमें पुरुष और महिलाएँ दोनों इन योजनाओं का लाभ उठाते हैं.

4) बाकी बचे राज्य आधारित विशिष्ट कार्यक्रम, जिनका महिलाओं की स्थिति/अवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। (इकोनॉमिक्स फॉर जेंडर एंड डेवलपमेंट)

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) देश की महिलाओं के लिए सामाजिक सशक्तिकरण, आर्थिक सशक्तिकरण और लैंगिक न्याय पर केंद्रित थी। **ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012)** के दौरान महिलाओं के संबंध में जेंडर समानता की प्राथमिकता वाले क्षेत्रों जैसे कि संकट में पड़ने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य, राहत और पुनर्वास पर केन्द्रित था।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) अपनी योजना अवधि के दौरान महिलाओं के समावेशी विकास पर केन्द्रित थी जिससे कि उनकी स्थिति में समग्र परिवर्तन लाया जा सके जिससे उनके लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो। आप इस पाठ्यक्रम के खण्ड 5 के इकाई 4 में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के घटक के बारे में फिर से पढ़ेंगे।

इकाई के अंत में सवालों को हल करने से पहले इकाई का सारांश पढ़ें।

2.8 सारांश

इस इकाई में आपने अनौपचारिक और औपचारिक दोनों अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति, पद और उनके प्रतिनिधित्व के बारे में पढ़ा। इकाई में असंगठित क्षेत्र की महिला कामगारों की समस्याओं पर भी चर्चा की गई। संगठित क्षेत्र में महिलाएँ अनुभाग के अंतर्गत आपने यह भी पढ़ा कि क्यों भारत में पढ़ी-लिखी महिलाएँ घर से बाहर जाकर भी रोजगार करने का विकल्प चुन रही हैं। इसी अनुभाग में आगे विभिन्न उपजीविकाओं और व्यवसायों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व पर विचार किया गया। अंततः संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं पर चर्चा के साथ यह इकाई समाप्त होती है।

2.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) संगठित और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति पर विस्तार से वर्णन कीजिए।

2) भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान की समालोचनात्मक ढंग से जाँच कीजिए।

3) 1951 से 2014 की अवधि के दौरान पंचवर्षीय योजनाओं सरकार द्वारा अपनाए गए कल्याण रणनीतियों की चर्चा कीजिए।

4) भारतीय अर्थव्यवस्था में महिला कामगारों के क्षेत्रवार वितरण का वर्णन करें।

2.10 संदर्भ

Banerjee, Nirmala (1985). Women Workers in the unorganised sector, Hyderabad: Sangam Books.

Devi, Rajula A (1983). Women In the Informal Sector, Kurukshetra:

Government of India, (1974). Towards Equality, Report of the Commission on the Status of Women in India, Ministry of Education and Social Welfare.

Government of India, (1988). Shramashakti, Report of the National Commission on Self-Employed Women and Women in Informal Sector.

Government of India (1988). Report of the Core Group, National Perspective Plan for Women 1988-2000 A.D.

Singh, Anita, Andrea Menece and Kelles (1987). Invisible Hands: Women in Home based Production , New Delhi: Sage Publication.

Patel, Vibhuti (2009). Discourse on Women Empowerment, Delhi: The Women Press.

2.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

GOI (1974). Towards Equality, Report of Ministry of Education and Social Welfare.

Government of India, (1988). Shramashakti, Report of the National Commission on Self-Employed Women and Women in Informal Sector.

इकाई 3 भारतीय विमर्श-II

संरचना — नीलिमा श्रीवास्तव

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय महिला कामगारः समकालीन चुनौतियाँ

3.4 रोजगार दरों में गिरावट

3.5 महिलाओं के कार्य में परस्पर आच्छादन

- 3.5.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
- 3.5.2 समकालीन स्थिति

3.6 नव-उदारवाद और महिला कामगार

3.7 भविष्य का आंकलन

- 3.7.1 महिलाओं की बढ़ती शैक्षिक स्थिति
- 3.7.2 जेंडरीकृत संगठनों पर उठते सवाल

3.8 सारांश

3.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

3.10 संदर्भ

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

21वीं सदी की भारतीय कामकाजी महिला कौन है? आखिर कौन सी बात घर से बाहर जाकर उसे काम करने को प्रेरित करता है? वह अर्थपूर्ण काम किसे मानती हैं? बचपन का समाजीकरण उसके काम में उसकी स्थिति को कैसे प्रभावित करता है? भारतीय परंपराएँ, भारतीय संस्कृति और भारतीय समाज उसके कामकाजी स्थिति में बने रहने को कैसे प्रभावित करते हैं? भारत में आज के कामकाजी महिलाओं की स्थिति समझने के लिए ऐसे और संबंधित पहलुओं के प्रश्न आवश्यक हैं।

इस इकाई में आप उन समकालीन चुनौतियों के बारे में पढ़ेंगे जिसका सामना भारत की महिलाओं को करना पड़ता है और यह भी कि वे इन संघर्षों से कैसे निबटती हैं। यह इकाई देश में पिछले दो दशकों के दौरान महिलाओं के गिरते रोजगार दरों और उसके पश्चात महिलाओं की कामकाजी स्थिति के लिए जाति और वर्ग के प्रभावों के बारे में भी छानबीन करती है।

इकाई का आखिरी अनुभाग भारत में कामकाजी महिलाओं पर नवउदारवाद और अन्य वैश्विक ताकतों के प्रभाव से जूझता है। अब हम इस इकाई के उद्येश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद के दौर में भारत में महिलाओं और उनके कार्य परिदृश्य की व्याख्या कर सकें;

- पिछले 20 वर्षों में महिलाओं के रोजगार दरों में गिरावट के कारणों का विश्लेषण कर सकें; और
- वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था में आए उदारवाद के परिणामस्वरूप महिलाओं के रोजगार में आए नए रुझानों पर चर्चा कर सकें।

3.3 भारतीय महिला कामगारः समकालीन चुनौतियाँ

पिछली दो शताब्दियों में दुनिया भर में लोगों के काम करने का तरीका बहुत नाटकीय रूप से बदला है। विकास की प्रक्रियाएँ, जो पहले पहल यूरोप में उभरीं और बाद में दुनिया भर में फैलती चली गईं, ने श्रम के उद्येश्यों और शर्तों दोनों को बदल डाला।

भारत में कामकाजी महिलाओं का एक उभरता हुआ समूह, सामूहिक तौर पर एक ऐसी ताकत का प्रतीक है जो चल रहे सामाजिक परिवर्तनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अपने बाजारों को विदेशी निवेश, निजीकरण और परिणामस्वरूप वैश्वीकरण के लिए खोलने के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था ने विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण की एक नई यात्रा शुरू की। भारत की नई वैश्विक अर्थव्यवस्था ने तमाम अवसरों को उत्पन्न करने के साथ साथ चुनौतियों को भी सामने रखा। उन्होंने सामाजिक-सांस्कृतिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत व्यावसायिक महत्वाकांक्षाओं की कसी हुई रस्सी पर संतुलन साधते हुए अच्छी तरह से उसका इस्तेमाल किया।

भारत में 478 मिलियन श्रमिकों के साथ दुनिया में दूसरा सबसे बड़ा कार्यबल है लेकिन सन् 2000 की शुरुआत से श्रमबल में महिलाओं की घटती भागीदारी के चलते आर्थिक नुकसान हुआ है। (शेनॉय-पैकर 2014, पृष्ठ 6)।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप बाद में हुए भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और आधुनिकीकरण से श्रमबल में काम करने वाली महिलाओं की भागीदारी में भारी गिरावट आयी। लेकिन इसने "भारतीय नारी के नए अवतार'' को भी जन्म दिया, जो अपराधबोध से मुक्त होकर भौतिकवाद का आनन्द लूट रही, अभिभावकीय जिम्मेदारियों को उठाने को लेकर मोलभाव करती है, विवाह और मातृत्व को बाद के लिए टालते हुए सिर्फ और सिर्फ कॅरियर पर ध्यान केन्द्रित करने में व्यस्त है। लेकिन, वही आर्थिक सुधार जिसने उदार भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व पूँजीवाद के साथ एकीकृत किया, भारतीय समाज के इस नव-भूमंडलीकृत उच्च-मध्यम वर्ग की जीवन शैली में व्यापक पैमाने पर परिवर्तन ला रहा है जिसका दुखद प्रभाव गरीबों, अकुशल मजदूरों और अशिक्षितों के आर्थिक और सामाजिक शोषण के रूप में उनके जीवन पर पड़ा है। (मजूमदार, 2007) और इस गरीब, अकुशल और अशिक्षित भारतीय जनसंख्या का सबसे बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। इसीलिए वे गहन सामाजिक, आर्थिक और यौन शोषण का सामना करती हैं।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि यद्यपि वैश्वीकरण ने रोजगार के अवसरों हेतु नई संभावनाओं को खोला जिसने शिक्षित महिलाओं को लाभ पहुंचाया जबकि उसी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में गरीब महिलाओं के रोजगार हेतु असंगत रूप से अनुचित प्रभाव डाला। इसी बात को दत्ता (2005) लिखते हैं कि शिक्षित मध्यम वर्ग की महिलाओं के रोजगार अवसरों में वृद्धि ने अकुशल या अर्ध-कुशल महिलाओं की सेवाओं की मांग में वृद्धि कर दी। उच्च-मध्यम वर्ग की महिलाओं का आधुनिक जीवन शैली, निम्न वर्ग की महिलाओं द्वारा नौकरानियों, रसोइयों, देखभाल करने वाली महिलाओं के रूप में सेवा के कारण संभव हुआ। इस तरह घरेलू कार्य 'मैकडोनाल्डाइजिंग' हो गए अर्थात फास्ट फूड कंपनियों की तरह घरेलू कार्य भी नियंत्रित, तैयार और तत्काल परोसे जाने योग्य हो गए। उच्च प्रोफ़ाइल

नौकरियों के माध्यम से हासिल की गई शक्ति और पदस्थिति के परिणामस्वरूप कामकाजी महिलाओं का यह वर्ग अपनी विशिष्ट कुशलताओं से कार्यक्षेत्र में व्याप्त अदृश्य सीमाओं (ग्लास सीलिंग) को तोड़ने में सफल होती रही मगर साथ-साथ 'अधिक से अधिक बांझ, अमानवीय, तकनीकी चालित और अतृप्त' होती गईं। इसी तरह हालाँकि इस पूरी प्रक्रिया ने निचले तबके की महिलाओं के लिए रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने में मदद की परन्तु उन्हें भी अधिक व्यावसायिक खतरों और व्यक्तिगत स्वास्थ्य मुद्दों का अधिक गंभीरता से सामना करना पड़ा।

3.4 रोजगार दरों में गिरावट

2011 की जनगणना के अनुसार, महिलाओं की आबादी कुल आबादी का 48.4 प्रतिशत है परन्तु देश में पुरुषों की तुलना में महिला श्रम की भागीदारी केवल आधी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के 66वें चक्र के आंकड़े दिखलाते हैं कि केवल 23 प्रतिशत महिलाएँ श्रम शक्ति में हैं। महिला श्रमबल की भागीदारी की वास्तविक दर (एफएलएफपी) ग्रामीण क्षेत्रों में 2004-05 में 33.3 प्रतिशत से घटकर 2009-10 में 26.5 प्रतिशत रह गई जबकि इसी दौरान शहरी क्षेत्रों में यह गिरावट 17.8 प्रतिशत से कम होकर 14.6 प्रतिशत रह गई। इस तरह कुल 23 मिलियन महिला कामगार इस दौरान कम हो गईं। (एमडब्ल्यूसीडी, 2014, पृष्ठ 2)।

वृद्धि और विकास आयोग (2008) उल्लेख करता है कि 1980 के दशक से श्रमबल में महिलाओं की भागीदारी अलग तरह से विकसित हुई है। **महिला श्रम भागीदारी दर (एफएलपीआर) जिसे गतिविधि दर** भी कहा जाता है, में वृद्धि औद्योगिक देशों और इण्डोनेशिया जैसे कुछ विकासशील देशों में हुई परन्तु भारत, चीन और रूस में इसमें कमी आई। यह अंतर मुख्य तौर पर अलग-अलग जनांकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और विधिक प्रवृत्तियों और मानकों के चलते आया जो सुनिश्चित करता है कि महिलाओं की गतिविधियों को आर्थिक माना जाए या नहीं। (क्लावेर्न एंड की, 2012, पृष्ठ 77)।

कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी में कमी का पारंपरिक कारण उनसे घर और घरेलू कार्य से बंधे रहने की सांस्कृतिक और रुढ़िगत अपेक्षा है। श्रम बाजार से महिलाओं के बाहर जाने में कुछ अन्य कारक जैसे घरेलू आय में बढ़ोत्तरी, आंकड़ा संग्रह के गलत तरीके, काम के सीमित अवसर और महिलाओं का उच्च प्रजनन दर जिम्मेदार हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) ने कुछ अन्य कारकों जैसे गैर-परम्परागत क्षेत्र में रोजगार और बच्चे के जन्म के बाद फिर से श्रमबल का हिस्सा बन पाने की चुनौतियों को भी इसमें जोड़ा जिसके चलते महिलाओं की रोजगार दर में गिरावट आई है।

महिला कार्यबल भागीदारी दरों में गिरावट की एक अन्य वजह यह तथ्य है कि हालिया वैश्विक आर्थिक मंदी ने भारतीय विनिर्माण और निर्यातोन्मुखी क्षेत्रों पर निर्णायक प्रभाव डाला है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय मांग में कमी आ गई थी। इस वैश्विक आर्थिक मंदी के परिणामस्वरूप 3.7 मिलियन नौकरियों की कमी हुई जिसमें से 80 प्रतिशत महिलाओं के पास थी। (थॉमस, 2013 शेनॉय-पैकर 2014 में उद्धृत)।

एनएसएसओ के 66वें चक्र के आंकड़ों ने यह भी दर्शाया कि शिक्षा में नौजवान लोगों की संख्या बढ़ी है, जो एक तरह से श्रम के लिए अनुपलब्ध हो गए, और इसलिए भी श्रमबल भागीदारी दर में गिरावट आई। नीचे दिखाई गई तालिका में आइए इस पहलू में हुए आयु-वार बदलाव को देखें:

आयु वर्ग	2009-10 में विद्यालय में बच्चों की प्रतिशतता	2004-05 में विद्यालय में बच्चों की प्रतिशतता
14-15 वर्ष (दोनों)	89.3	82.4
लड़कियां	87.7	79.6
15-19 (दोनों)	59.5	46.2
लड़कियां	54.6	40.3
20-24 वर्ष (दोनों)	15.6	11.25
लड़कियां	12.8	7.6

स्रोतः योजना आयोग, 2011-एप्रोच पेपर से 12 वें पंचवर्षीय योजना (2012-2017)

हालाँकि, कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि भारतीय महिलाओं द्वारा कार्यस्थलों में चुनौतियों का सामना करने के बावजूद उनकी संख्या में, कम से कम शहरी क्षेत्रों में तो लगातार बढ़ी है परन्तु यह वृद्धि 2001 और 2011 की जनगणना रिपोर्टों में महत्वपूर्ण रूप से प्रतिबिंबित नहीं होती। परन्तु "दिखाई देने वाली कामकाजी महिलाओं" का यह नया वर्ग वास्तविक रूप में भारत की सभी कामकाजी महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। इस पहलू की सच्ची तस्वीर ऊपर से दिखने वाले उत्साहजनक तस्वीर की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही जटिल, बहुपक्षीय और विरोधाभासी है। इस तरह प्रत्यक्ष दिखने वाली ये नई वैश्वीकृत भारतीय कामकाजी महिलाएँ अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाली गरीब महिलाओं की वास्तविकता के साथ-साथ मौजूद हैं।

20वीं सदी के साठ के दशक और सत्तर के दशक के मध्य तक, उच्च जाति की महिलाओं पर आदर्शात्मक प्रतिबंध निम्न जाति की महिलाओं की तुलना में अधिक सख्त थे। क्योंकि उनकी महिलाओं का मजदूरी या वेतन के लिए काम करना तब अधिक अपमानजनक और परिवार की प्रतिष्ठा के खिलाफ था। वास्तव में श्रमबल से महिलाओं का बाहर होना सच्चे मायने में उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति का प्रतीक था। जैसे-जैसे शहरी भारतीय समाज अधिक प्रगतिशील होता गया, उच्च वर्ग की महिलाओं ने उन व्यवसायों को अपनाना शुरू कर दिया जिन्हें 'भद्र' माना जाता था और स्त्रियोचित विशेषताओं के सदृश थे। इन व्यवसायों ने पेशेवर गतिशीलता को बहुत कम बढ़ावा दिया और काम के लिए प्रवास या यात्रा करने की आवश्यकता न के बराबर थी। लेकिन भारतीय समाज के मध्यम वर्ग में शिक्षा के प्रचार प्रसार तथा वृद्धि और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के बाद रोजगार के अवसर खुल जाने के साथ, भारतीय महिलाएँ अपने घरों से बाहर निकलकर उन व्यवसायों और काम के लिए आगे आने लगीं जिन्हें अभी दो दशक पहले तक पुरुषों के विशिष्टाधिकार की तरह देखा जाता था। **लीडल और जोशी (1989)** लिखते हैं कि कानून में बदलाव और गतिशील हो रहे समाज के चलते जहाँ कुछ दशकों पहले तक महिलाओं के व्यवहार पर थोपे जाने वाले निर्देशात्मक अंकुश ढीले पड़ने लगे थे, अधिक से अधिक शहरी महिलाएँ, अपनी पत्नी और माँ की पारंपरिक भूमिका से आगे निकलकर, कार्यबल का हिस्सा बनना स्वीकार करने लगीं।

यह अच्छी तरह से समझा जाना चाहिए कि सार्वजनिक स्थलों पर दिखने वाली मध्यम वर्गीय महिलाओं की भीड़ श्रमबल में उनकी भागीदारी का पूर्ण संकेत नहीं है। सामाजिक स्थिति और संगठनात्मक पदस्थिति के अनुसार महिलाएँ श्रम बाजार में नए कामों को हस्तगत करना जारी रखे हुई हैं। **बनर्जी (2002)** दावे के साथ कहते हैं कि महिलाओं का आर्थिक रूप से सुविधाविहीन या निम्नतर बने रहने का का कारण परिवार द्वारा अभी भी

उनके शरीर, उनकी यौनिकता और श्रम पर अपना कड़ा नियंत्रण थोपना है। (सीएफ. शेनॉय-पैकर, 2014, पृष्ठ 20)। इस प्रकार वर्ग संरचना और परम्पराओं में उनकी स्थिति, उन्हें दिए जाने वाले प्रशिक्षण और उनके समाजीकरण के परिणामस्वरूप महिलाएँ जब भी कार्यबल में जगह बनाती हैं आर्थकि रूप से निम्नतर बनी रहती हैं।

आगे पढ़ने से पहले निम्न अभ्यास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) 'सेवाओं के मैकडोनाल्डाइजेशन' से क्या अभिप्राय है?

2) भारत में महिलाओं के रोजगार में गिरावट के क्या कारण हैं?

आगामी अनुभाग में हम जाति, वर्ग, जेंडर और महिलाओं के काम के परस्पर आच्छादन के बारे में पढ़ेंगे।

3.5 महिलाओं के कार्य में परस्पर आच्छादन

भारत में महिला कामगारों पर किसी भी विमर्श में जेंडर के साथ-साथ जाति और वर्ग को घेरे हुए सामाजिक संलापों की संचयी सौदेबाजियां महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाएं हैं। किसी अर्थव्यवस्था को अपनी पूर्ण क्षमता से कार्यरत होने के लिए जरूरी है कि महिलाओं की कुशलताओं और प्रतिभाओं को ऐसी गतिविधियों में शामिल किया जाना चाहिए जहां उनकी उन योग्यताओं का सबसे बेहतर उपयोग हो सके। जब महिलाओं के श्रम का कम उपयोग होता है या उन्हें उनकी योग्यताओं से इतर काम पर लगाया जाता है क्योंकि वे बाजारों या सामाजिक संस्थाओं में भेदभाव का सामना करती हैं जो उन्हें अपनी शिक्षा को पूर्ण करने से रोकती हैं, तो इसका परिणाम अर्थव्यवस्था को सिर्फ हानि के रूप में होता है। (विश्व विकास रिपोर्ट 2012, क्लेवर्न और किआ, 2012 में उद्धृत, पृष्ठ 79)।

किसी भी समाज में **लैंगिक संबंधों** (gender relations) का स्थान उत्पादन संबंधों के केन्द्र में होता है क्योंकि उत्पादन, कार्यसंगठन, प्रोत्साहन, पारिश्रमिक, शक्ति और अधिकार के साधनों पर मालिकाना हक की संरचनात्मक प्रणाली लैंगिक संबंधों से जुड़ी होती है।

शेनॉय-पैकर (2014, पृष्ठ 10) लिखते हैं कि विशेष जाति, समुदाय और धार्मिक समूह जिससे महिलाएँ संबंधित होती हैं कार्यबल में उनकी भागीदारी को उस सीमा तक जहां उनकी जाति और वर्ग परस्पर आच्छादित होते हैं, और उस हद तक जो उनके सामाजिक गठनों और संरचनाओं में व्याप्त होते हैं प्रभावित करते हैं।

3.5.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में महिलाओं को जाति और वर्ग द्वारा स्तरीकृत कठोर सामाजिक व्यवस्था के कारण पुरुषों के रूबरू पारंपरिक रूप से गौण स्थिति दी गई है। मोहंती (2004) लिखते हैं कि मुख्य रूप से घर के काम और बच्चों को पालने और पोसने की भूमिका में महिलाओं की पुरुषों पर निर्भर रहने वाली छवि देश के सामंती और पूँजीवादी सामाजिक इतिहास के लम्बी अवधि का परिणाम है जो पुरुषों को समाज की उत्पादन प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले और इसलिए उनके पास अधिक ताकत होने के रूप में देखती है। देसाई और कृष्णराज (2004) कहते हैं कि जाति न केवल श्रम के सामाजिक विभाजन को निर्धारित करती है बल्कि कामों को मौलिक रूप से 'अनिवार्य रूप से पुरुषों के लिए' और 'अनिवार्य रूप से महिलाओं के लिए' चिन्हित करके श्रम के लैंगिक विभाजन (sexual division) को भी संभव बनाती है। (शेनॉय-पैकर, 2014 पृष्ठ 15 पर उद्धृत)

लीडल और जोशी (1989) का विचार है कि समाज में जाति आधारित पदानुक्रम विकसित करने में महिलाओं की अधीनता एक महत्वपूर्ण हथियार की तरह थी। महिला की जाति जितनी अधिक ऊँची होगी, परिवार और वंश की शुद्धता की जरूरत के लिए उसकी स्वतंत्रता पर उतना ही अधिक रोक लगाया जाएगा। इस प्रकार, निम्नतर जाति की महिलाओं को अधिक स्वतंत्रता और अपने काम के विषय में बिना प्रतिबंध के गत्यात्मकता की सुविधा होगी जबकि उच्च जाति की हिंदू महिलाएँ आवाजाही के लिए प्रतिबंधित और घर में ही अकेले छोड़ दी जाती हैं। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशों से बाहर निकले मध्य वर्ग को देश के प्रशासन के लिए अंग्रेजी में शिक्षित भारतीयों को नियुक्त करने की आवश्यकता थी। अंग्रेजी में शिक्षित होने और अंग्रेजों के लिए काम करने के अवसर लगभग अनन्य रूप से विशेषतः उच्च जातीय ब्राह्मणों के लिए उपलब्ध थे। इस नए क्रम के अनुरूप या निर्मित श्रमिक वर्ग ने महिलाओं के काम पर विरोधाभासी प्रभाव डाला।

महिलाएं काम के सार्वजनिक क्षेत्र में सुविधाविहीन बनकर रह गईं और अपने निजी मामलों में भी पुरुषों द्वारा निर्धारित किए गए, निर्मित किए गए मूल्यों के अन्तर्गत सामाजिक नियंत्रणों के अधीन कर दी गईं। महिलाओं को निम्नतर स्थिति में पदावनत करने के पीछे जाति और वर्ग जैसे अन्य कारक भी जिम्मेदार थे। (शेनॉय-पैकर 2014, पृष्ठ 2)।

इसकी तुलना में व्यवहार के अन्य मानक भी थे जो उच्चतर जाति की महिलाओं पर लागू थे उन्हें शहरी, मध्यम वर्ग की महिलाओं पर लागू किया जाना था। आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाओं को नियंत्रण में रखना दुरूह कार्य माना गया और उन्हें सामाजिक संरचना और पदानुक्रम की उपेक्षा करने में सक्षम समझा गया। लीडल और जोशी (1989) का कहना है कि महिलाओं को संगठित करने, उन्हें सक्रिय करने और उनके प्रतिरोध के आंदोलन मुख्यतः मध्यमवर्गीय कामकाजी महिलाओं के बीच से उठे। (इसके बारे में और अधिक सामग्री आप अगली इकाई सामूहिक लामबंदी और प्रतिरोध में पढ़ेंगे)।

3.5.2 समकालीन स्थिति

नई उदारीकृत अर्थव्यवस्था में समर्थन तंत्र के हट जाने से जाति को प्रथा विहीन कर दिया गया। (सेठ, 1999)। समकालीन भारत में सभी जातियों के लोग व्यक्तिगत के साथ-साथ सामूहिक रूप से सामाजिक पायदान में ऊपर की ओर गतिशीलता की इच्छा महसूस करने लगे। निजमन (2006) का तर्क है कि सामाजिक स्तरीकरण को चिन्हित करने वाली औजार के रूप में जाति को, विशेषकर अपरिहार्य रूप से शिक्षित शहरी सामाजिक क्षेत्रों में वर्ग द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। (शेनॉय-पैकर 2014, पृष्ठ 13 में उद्धृत)।

जाति और वर्ग में एक जटिल संबंध है और वर्ग ने स्वयं को एक सामाजिक और राजनीतिक लेंस के रूप में पुनर्जीवित कर लिया है।

यह नया उभरता वर्ग खुद को नई जीवन शैली और आधुनिक उपभोग शैली के साथ-साथ उन आर्थिक संपत्तियों से जोड़ता जा रहा है जो अभी पच्चीस वर्ष पहले तक परम्परागत भारतीय मध्यम वर्ग को उपलब्ध नहीं था। इस प्रकार आर्थिक वृद्धि के साथ, आर्थिक वर्ग भी बड़ी तेजी से सभी सामाजिक स्तरीकरण पर प्रमुखता प्राप्त करता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप जाति आधारित हैसियत और अनुष्ठानिक शुद्धता का महत्व धीरे-धीरे घट रहा है। (कपाड़िया, 2002 पृष्ठ 151)।

वर्तमान संदर्भ में, शहरी महिलाओं के कार्यबल की भागीदारी में 'वर्ग-जाति गत्यात्मकता' ने उल्लेखनीय प्रतिशाखाएं प्रस्फुटित की हैं जहां उच्च वर्ग और उभरते हुए नए मध्यम वर्ग की महिलाएँ अपनी गतिशीलता और जातीय हुक्मनामों के सामाजिक और सांस्कृतिक नियंत्रण से लगातार बाहर निकल रही हैं और सफलतापूर्वक उच्च शिक्षा ग्रहण कर पेशेवर आकांक्षाओं को पूरा कर रही हैं।

मजूमदार (2007, पृष्ठ 23), महिलाओं द्वारा किए जाने वाले वेतनभोगी कार्य के क्षेत्र में बहुस्तरीय अंतर्विरोध के उभार के बारे में, उत्पादन के वैश्वीकृत संगठन से जुड़ी प्रक्रियाओं के बारे में तर्क देते हैं, जो उच्च दर से 'सीमित और संकुचित' होने की ओर प्रवृत्त है और उसी के परिणामस्वरूप पिछले दो दशकों में महिलाओं के रोजगार और श्रमबल में भागीदारी में गिरावट आई है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और वैश्वीकरण की ताकतों के प्रभाव के परिणामस्वरूप एक नया भारतीय मध्यम वर्ग उभरा, जो शिक्षित है और धीरे-धीरे उच्चतर गत्यात्मकता की ओर उभर रहा है। यही भारत का वह नया और समृद्ध मध्यम वर्ग है जो श्रम बाजार को गति दे रहा है। इस उभरते हुए नए मध्यम वर्ग की संरचना ने नए गठबंधन और प्रतिरोधियों को खड़ा करते हुए पुरानी जाति पदानुक्रम को खत्म कर दिया है। (मुखर्जी, 1999, पृष्ठ 1761)।

इस प्रकार, जाति और वर्ग ने हमेशा भारतीय समाज में महिलाओं के काम को प्रभावित किया है।

3.6 नव-उदारवाद और महिला कामगार

नव-उदार वह शब्द है जिसका उपयोग 1980 के दशक से वैश्विक अर्थव्यवस्था पर हावी रहने वाली संरचनाओं की विशिष्ट प्रवृत्तियों का वर्णन के लिए किया जाता है। नव-उदारवाद का केंद्रीय अभिलक्षण किसी देश की आंतरिक और बाह्य आर्थिक नीतियों में बाजार पूँजीवाद के मौलिक सिद्धांतों का सहज स्वीकरण है।

व्यावहारिक रूपों में नवउदारवादी नीतियों का अर्थ है कि कुछ देश अपने को वैश्विक उत्पादन की संरचनाओं, वित्त और निवेश तथा श्रम आवंटनों से तटस्थ रखने में सक्षम हैं। निवल परिसंपत्तियां, प्रतिस्पर्धात्मकता और व्यक्तियों, राष्ट्रों तथा निगमों का लचीलापन यह सुनिश्चित करता है कि वे वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता की इस प्रणाली में विजेता हैं या फिर पराजित।

नव-उदारवाद में से उदारचेता पद दरअसल ऐतिहासिक रूप से अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में यूरोप में उभरे आर्थिक और राजनीतिक खुलेपन और प्रतिस्पर्धात्मकता की संरचनाओं और व्यवहारों से व्युत्पन्न हुआ है। यह प्रवृत्तियां आज के पश्चिम, औद्योगीकृत देशों जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में पाई जाने वाली राजनीतिक अर्थशास्त्र के केन्द्र में आ चुकी हैं। उदारवाद बाजार तंत्र द्वारा शासित अर्थव्यवस्था की ओर संकेत करता है। अपने मूल में उदारवाद राजाओं के अत्याचार के विरोध में खड़ा है; एक दार्शनिक सिद्धांत के रूप में यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कानून का शासन और प्रतिस्पर्धात्मक राजनीतिक प्रक्रियाओं जैसे नागरिक अधिकारों को समर्थन प्रदान करता है। उदार अर्थव्यवस्था वह है जिसमें आर्थिक संक्रियाओं में सरकार का हस्तक्षेप कम से कम हो जाता है। बीसवीं सदी के अंत तक पुराने दशकों से चले आ रहे उदारवादी मानदण्डों को पश्चिमी, औद्योगीकृत देशों और विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और इसके द्वारा नियंत्रित अंतर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे कि विश्व बैंक के वर्चस्व वाली वैश्विक अर्थव्यवस्था में निहायत ही नए अर्थ मिले। इसलिए इस अवधि के दौरान उभरे परिवर्तित वैश्विक संदर्भ को इंगित करने के लिए उदारवाद के साथ उपसर्ग "नव" को जोड़ा गया। (एवरेट्ट और चार्लटन, 2014, पृष्ठ 3)।

पूँजीवाद और उदारवाद ने व्यक्तियों और निगमों के लिए संपत्ति के निजी स्वामित्व की अवधारणा को जन्म दिया। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो कुछ लोगों के लिए ऐसा पहली बार हो रहा था कि वे उस भूमि पर खेती कर सकते थे जो उनके स्वामित्व और नियंत्रण में थी। दूसरे केवल अपने श्रम को बेच सकते थे वह भी अधिकतर अपमानजनक स्थितियों में। समय के साथ भौतिक उपभोग में हुए व्यापक सुधारों का उत्पादन की नई प्रणालियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा जिसमें मानव शोषण और पर्यावरणीय क्षति भी शामिल थी। बीसवीं सदी के मध्य तक औद्योगीकृत पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में निगमों, कारखानों और सरकार में काम कर रह अधिकांश व्यक्तियों के पास सुरक्षित श्रम संविदाएं थीं और ठीक-ठाक स्तर की सामाजिक सुरक्षा (स्वास्थ्य, बेरोजगारी, और सेवानिवृत्ति लाभ) भी थी; और उनके कार्यस्थल, सरकार के बनाए पारिश्रमिक तथा कार्यदशाओं के लिए कानूनों के अधीन थे। इन नौकरियों को मिलाकर जो बनता था उसे औपचारिक अर्थव्यवस्था की तरह विशेषित किया जाता था जिसे आधुनिक दुनिया को पारिभाषित करने वाले लक्षणों की तरह देखा जाता था। अंतर्राष्ट्रीय उत्पादन की संरचना में परिवर्तनों के चलते इक्कीसवीं सदी में भी काम की प्रकृति विकसित होती जा रही है।

अंतर्राष्ट्रीय उत्पादन और सेवाओं की इस पुनर्संरचना से संबंधित प्रवृत्ति वह है जिसे सामान्य तौर पर **'आउटसोर्सिंग' (बहिःस्रोतन)** के नाम से जाना जाता है। परिष्कृत कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी की सुविधाओं से लैस होकर आउटसोर्सिंग दुनिया के कुछ भागों में नौकरियों में तीव्र कमी का कारण बना तो कुछ दूसरे भागों में नौकरियों को पैदा करने का कारण बना। इसके अन्तर्गत नौकरियां बड़ी तेजी से स्थानांतरित हो सकती हैं इसके परिणामस्वरूप आउटसोर्सिंग को उन देशों और क्षेत्रों में भी सामान्यतया कार्य असुरक्षा के साथ जोड़कर देखा गया, जहां के लोग प्रारम्भिक तौर पर इससे लाभान्वित हुए थे। एक दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति थी अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन का महत्व। विशेषकर पिछली दो सदियों में हुए व्यापक पैमाने पर प्रवासन के पीछे औद्योगीकरण और रोपण कृषि के विकास की

केन्द्रीय भूमिका थी। हालाँकि आज वर्तमान समय में गुणवत्ता और परिमाण दोनों आधारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन बिल्कुल अलग है। नई जिम्मेदारियों को निभाने के लिए बहु-दिशाओं में आने जाने वाले प्रवासियों की संख्या अब पहले से बहुत अधिक है। जेंडर के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों का वितरण लगभग समान है परन्तु पुरुष और महिला भिन्न-भिन्न काम करते हैं। समकालीन भूमण्डलीकरण की एक अन्य विशेषता है शक्ति केन्द्र के रूप में नए **'आर्थिक खिलाड़ियों'** का प्रवेश जैसे कि चीन, ब्राजील और रूस जिन्होंने लम्बे समय से चलते आ रहे पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के वर्चस्व को कम किया है। (एवरेट और चार्लटन, 2014)।

निर्यातोन्मुखी औद्योगीकरण (ई.ओ.आई) में महिलाएँ श्रमबल के एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करने लगीं और वस्त्रोद्योग तथा खाद्य उत्पादन जैसे श्रम-गहन उद्योगों में उनका श्रमबल में पहले से प्रभुत्व स्थापित था। कारखाना उत्पादन का स्त्रीकरण कई कारकों का परिणाम है। निर्यातोन्मुखी उद्योग अपने प्राथमिक चरणों में कामगारों की इतनी भारी मांग करते हैं कि पुरुष और महिला दोनों कामगारों की आवश्यकता पड़ती है। एक बार जब किसी विशेष उद्योग में महिलाओं को काम पर रख लिया जाता है तो फिर **''निष्चलता''** (stickness) (जेंडर आधारित कामगार रखने की प्रवृत्ति जारी रहना), **''प्लवन''** (spill over) (पूर्व औद्योगीकृतों के जेंडरीकृत नियोजन के निर्णय का बाद के उद्यमियों द्वारा नकल करना) और **''व्यापकता''** (स्त्रीकृत क्षेत्रों में तीव्र विस्तार) जैसे प्रभाव घटित होते हैं। मालिकों, प्रबंधकों और राज्य नियोजकों का, अपने जेंडर आधारित आदर्शों में महिलाओं को "फुर्तीली हाथों वाली" के रूप में चिन्हित किया जाता है और सभी क्षेत्रों और उद्योगों में, नियोक्ता और सरकारें विभिन्न श्रेणियों की महिलाओं – जवान, अधेड़, ग्रामीण और देशज सभी को एक उपयुक्त श्रमबल के रूप में नियोजित करने को प्रोत्साहित करते हैं। (एवरेट और चार्लटन, 2014, पृष्ठ 126)।

सामाजिक समालोचक एक दुर्बल महिला कार्यबल की तस्वीर पेश करते हैं, जो कम वेतन पर अधिक घंटे तक, अल्पकालिक अनुबंधों पर, अनुचित कटौती लक्ष्यों के साथ और संगठित होने पर अपनी नौकरियों को खतरे में डाले हुए भी काम पर लगी रहती हैं। दूसरी ओर अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि निर्यातोन्मुखी उद्योगों में महिलाओं की नौकरियां अन्य विकल्पों से बहुत अच्छी हैं और उनमें मुक्तिकामी प्रभाव भी हैं। हालाँकि उपरोक्त दोनों तर्कों में समस्याओं को चिन्हित किया गया है परन्तु बाद वाला तर्क संरचनात्मक बाधाओं की परीक्षा किए बिना जोर देता है जबकि पहले वाले तर्क में शोषण और उत्पीड़न बिल्कुल स्पष्ट है। अभी हाल में विद्वानों ने वैश्विक बाजार कारखानों में महिला कामगारों के जीवन पर अधिक सूक्ष्मता से और जटिल तस्वीर प्रस्तुत किया है, यह उल्लिखित करते हुए कि महिला कामगारों को अन्तर्विरोध का अनुभव करना पड़ता है जैसे कि परिवार में उनके रुतबे में बढ़ोत्तरी या पतियों और पिताओं से अधिक स्वायत्तता के साथ-साथ घर और काम में लगातार जारी रहने वाली अधीनता। स्वयं कामगार भी कारखाने की विभिन्न स्थितियों पर विभिन्न तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं अर्थात कुछ मामलों में लचीलापन तो कुछ में प्रतिरोध। (आप प्रतिरोध और लामबंदी के बारे में इस खण्ड की अगली इकाई में पढेंगे।)

आगे पढ़ने से पहले निम्नलिखित अभ्यास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) 'नव-उदारतावाद' से आपका क्या समझते हैं?

2) 'आउटसोर्सिंग' से क्या आशय है?

3) निर्यात उन्मुखी औद्योगीकरण क्या है?

आगामी अनुच्छेद में आप कार्यस्थल में जेंडर सम्बन्धित मुद्दों के बारे में पढ़ेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि इससे पुरुष और महिलाएँ कैसे अलग-अलग तरीके से प्रभावित होते हैं।

कार्यस्थल में जेंडर-विनिर्दिष्ट मुद्दे:

इस स्थिति का पुनरीक्षण हम दो क्षेत्रों में करते हैं। एक वह परम्परागत क्षेत्र है जहां महिलाएँ खेतिहर समाज के आरम्भ से ही काम कर रही हैं और दूसरा क्षेत्र वह है जो 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए सामाजिक-आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आया।

वैश्वीकरण और विकास ने कृषि को बदल डाला क्योंकि उनके पास दूसरे कार्य क्षेत्र भी हैं। अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के निर्माण ने कृषि-व्यवसाय को प्रेरित किया, जिसका सामान्य भाषा में अर्थ है कि खेती अब लाभ के लिए होने लगी। हालाँकि, कृषि-व्यवसाय प्रायः एक बड़ा व्यवसाय बन जाता है जिसमें ऊर्ध्व एकीकरण की संरचनाओं में बहुराष्ट्रीय निगमों को शामिल कर लिया जाता है। इनके कार्यों में बीज चयन और बीज वपन, भूमि-धारण, श्रम अनुबंध, उर्वरक और कीटनाशक, विपणन और परिवहन आदि शामिल हो जाते हैं। ये परिवर्तन महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए वृहत्तर बाजार भागीदारी हेतु अवसरों को पैदा कर सकते हैं। हालाँकि, विशेष रूप से महिलाओं के लिए आज की तारीख में भी इन बाजारों तक समान पहुंच बहुत ही सीमित है। कृषि व्यवसाय के प्रभाव पर वाद-विवाद से बहुत पहले विकास हेतु कार्यरत महिला विशेषज्ञों ने शिक्षा और तकनीकी सहायता, संपत्तियों पर अधिकार के संरक्षण और पूँजी के साधनों तक महिलाओं की गैर-बराबर पहुंच की ओर ध्यान दिलाया था। खेत जितना ही छोटा और बेकार होता है, नए बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने

में महिलाओं को उतना ही अधिक नुकसान उठाना पड़ता है। सांस्कृतिक और सामाजिक बाधाएँ भी अक्सर बाजार तक महिलाओं की पहुंच को अवरुद्ध करते हैं विशेष रूप से जहां महिलाओं को परिवहन, वित्तीयन और विपणन के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है।

अब एक दूसरे परिदृश्य का पुनरीक्षण करते हैं।

पिछले कुछ दशकों से प्रबंधन और उससे सम्बद्ध व्यवसायों में महिलाओं का अनुपात बढ़ रहा है। ऐसी घटनाएं उच्च शिक्षा में महिलाओं की संख्या में वृद्धि को प्रतिबिंबित करती हैं। भले ही महिलाओं ने पेशेवर, तकनीकी और प्रबंधकीय कार्यबलों में लम्बी छलांग लगाई है, फिर भी इन व्यवसायों में जेंडर आधारित बड़ा वेतन अंतर बना हुआ है। इस वेतन विसंगति का कारण कामों का जेंडर आधारित क्षैतिज और ऊर्ध्वाकार व्यावसायिक अलगाव है। महिलाएँ शिक्षण और नर्सिंग जैसे कमतर वेतन वाले व्यवसायों में केन्द्रित हैं। उदाहरण के लिए, प्राथमिक-विद्यालय के शिक्षकों में महिलाएँ बहुमत में हैं।

परन्तु, कारखानों तक पहुंच हेतु अनवरत चलने वाले मुद्दों, वेतन में असमानता, दोहरे-कार्यदिवस के बोझ और अनुबंधित कामगारों के नियोजन के बावजूद कारखानों का भौतिक कार्यस्थल कम खतरनाक होता है। उनकी औपचारिक शिक्षा और कार्यस्थल की कुशलताओं के चलते ऐसा मान लिया जाता है कि उनके पास अधिक व्यक्तिगत अभिकरण हैं। यह स्थिति अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के कामगारों के वृहत्तर बहुमत के बिल्कुल विपरीत है।

3.7 भविष्य का आंकलन

दो हालिया प्रवृत्ति महिलाओं के लिए भविष्य में श्रम भागीदारी में 'अच्छे दिन' के बारे में सुनिश्चित करते हैं।

यह देखा गया है कि 11 से 14 वर्ष की लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर 2004-05 में 11.2 प्रतिशत से घटकर 2010 में 5.9 प्रतिशत रह गया है, इस प्रकार इस बात का संकेत करती है कि लड़कियों की शिक्षा लोगों के बीच काफी गति पा चुकी है और भविष्य में यह लाभांश श्रम भागीदारी में परिवर्तित हो जाएगी। दूसरी तरफ प्रवासन के आंकड़ों पर नज़र डालें तो यह पता चलता है कि गांव से शहरों की तरह प्रवसित करने वाली अधिकांश महिलाएँ अभी भी शादी के कारण (60.8 प्रतिशत) प्रवास करती हैं जबकि उसके बाद अपने अभिभावकों या अर्जक सदस्य के साथ प्रवास करने वाली महिलाएँ (29.4 प्रतिशत) परन्तु कुल प्रवसित महिलाओं में से 2.7 प्रतिशत रोजगार के कारण और दूसरी 2.2 प्रतिशत उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए शहरों की ओर प्रवास करती हैं। (एमडब्ल्यूसीडी, 2014, पृष्ठ 3)। अब हम भारतीय महिला कार्यबल के बदलते परिदृश्य और इस परिवर्तन से जुड़े कारकों पर एक नज़र डालते हैं।

3.7.1 महिलाओं की बढ़ती शैक्षिक स्थिति

शैक्षणिक संस्थाओं में पढ़ाई जारी रखने वाले कामकाजी उम्र (15-24 वर्ष) के व्यक्तियों की जनसंख्या 2004-05 में 3 करोड़ से बढ़ कर 2009-10 में 6 करोड़ से भी ज्यादा हो गई है। (योजना आयोग, 2011)

लड़कियों की शिक्षा में वृद्धि और शैक्षणिक संस्थाओं में उनका लम्बी अवधि तक ठहरना शिक्षित महिलाओं के बेहतर नौकरी की आकांक्षाओं का पूर्वाभास है जो अपने आपको उच्चतर योग्यताओं और बेहतर कौशलों से मजबूत करने के लिए रोजगार संजाल से खुद को बाहर रखे हुए हैं। रोजगार के लिए और वह भी उच्चतर स्तर पर रोजगार के लिए

महिलाओं का बाहर आना उन संसाधनों से स्वयं जाहिर होता है जो, उनके परिवार और स्वयं लड़कियों ने इतने दिनों तक स्वयं को श्रम बाजार में निम्नतर स्तर और अकुशल या अर्ध कुशल स्तर पर प्रवेश करने से रोककर, निवेश किया है।

जैसे हम लोगों ने पिछले अनुभागों में पढ़ चुके हैं, वर्तमान समय में भारत में श्रमबल में पुरुषों की सहभागिता महिलाओं की अपेक्षा बहुत बहुत अधिक है परन्तु महिलाओं की परिष्कृत शैक्षणिक उपलब्धियां इस बात का संकेत हैं कि भविष्य में श्रमबल में उनकी सहभागिता में वृद्धि होगी। ऐसी महिला कामगार अधिक टिकाऊ और प्रतिष्ठित रोजगार के अवसरों की ओर देख रही होंगी और श्रम बाजार में भी आत्मविश्वास से लबरेज, बोलने में समर्थ तथा मोलभाव की शक्तियों से लैस होंगी।

यह भी कल्पना किया गया है कि विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि होगी जो अधिक कुशल श्रमिकों को नियोजित करेगा जिन्हें अभी प्रशिक्षण दिया जा रहा है या कुशल बनाया जा रहा है। इसके साथ ही महिला कामगारों के व्यावसायिक स्वरूप में परम्परागत क्षेत्र से विनिर्माण गहन क्षेत्रों की ओर परिवर्तन होगा।

12वीं पंचवर्षीय योजना का उपागम पत्र यह भी सुझाव देता है कि महिला श्रमबल भागीदारी दर में यह गिरावट अस्थाई है और यह विश्वास करने के सभी कारण मौजूद हैं कि श्रमबल में महिलाओं की भागीदारी में 12वीं योजना और उसके बाद के वर्षों में वृद्धि होगी।

3.7.2 जेंडरीकृत संगठनों पर उठते सवाल

यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश संगठनों का ढांचा जेंडरीकृत और मर्दाना है। इसलिए यह पुरुषों को बेहिसाब और बिना मेहनत के लाभ पहुंचाता है। नतीज़तन महिलाओं को अपना कॅरियर आगे बढ़ाने में अतिरिक्त चुनौतियों और परेशानी का सामना करना पड़ता है। तमाम संगठन और उनकी संस्कृति पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए तैयार की गई हैं और व्यापक तौर पर पितृसत्तात्मक समाज के मानदंडों को प्रदर्शित करते हैं। परिणामस्वरूप महिलाएँ अपने कार्यस्थल में असहज और ठगा सा महसूस करती हैं, जो उन्हें सुविधाहीनता का एहसास कराती हैं और उनकी कॅरियर की उन्नति में बाधाएं पैदा करती हैं।

ब्रिटन (1999) लिखते हैं कि संगठन जेंडरीकृत नहीं हैं बल्कि सटीक तौर पर 'पौरुषीकृत' या 'मर्दाना' हैं, जहां महिलाओं से जुड़े कौशलों की अपेक्षा मर्दाना कौशल समूहों को मानदंड बनाया गया है और उन्हें ही पुरस्कृत किया गया है। मर्दाना लाभों को नीतियों, विचारधाराओं, कामगारों के परस्पर संबंधों, संगठनात्मक संरचनाओं और पुरुष एवं महिला की अलग पहचानों को उत्पन्न कर और उसे बनाए रखकर जैसी तमाम वैयक्तिक और अवैयक्तिक तरीकों के जरिये कायम रखा जाता है।

कॅरियर में महिलाओं के आगे बढ़ने में आने वाली बाधाओं को मुख्य रूप से दो स्तरों पर पहचाना गया है। पहला है **संगठनात्मक संस्कृति** जो महिला कर्मचारियों के ऊपर की ओर उन्नति में अवरोध पैदा करती हैं जैसे कि वे उसके लिए अनुपयुक्त हैं क्योंकि कार्य संस्कृति पुरुषों द्वारा बनाई हुई है और उन पर उन्हीं का वर्चस्व है। यह ऐसी संस्कृति है जिसे कुछ लोगों को अपने शामिल करने और बाकियों को अपने से बाहर रखने के लिए पैदा की गई है। दूसरे, पुरुषों को समस्या का हिस्सा माना गया है परन्तु उन्हें समाधान का हिस्सा नहीं माना गया।

सैंडबर्ग (2013) कुछ 'आंतरिक अवरोधों' के बारे में लिखते हैं जो महिलाओं को अपना ही कॅरियर बाधित करने को विवश करती हैं और इसे उन्होंने 'नेतृत्व की महात्वाकांक्षा न होने'

के रूप में परिभाषित किया है। परन्तु यह प्रमाणित करने के लिए अधिकाधिक सुबूत हैं कि अधिकांश कार्यस्थल, व्यक्तिगत प्रयासों और उपलब्धियों की पहचान करते हुए योग्यता को पुरस्कृत करने वाले नहीं हैं। यहां उपदेशात्मक 'सलाहकारिता' और 'पुराने लोगों का संजाल' तथा ऐसी कार्य संस्कृति है जो आक्रामक और प्रतिस्पर्धात्मक तरीके से अधिक घण्टे काम करने को मूल्यवान मानता है और उन्हें ही पुरस्कार तथा पहचान मिलती है इस तरह से महिलाएँ अपने आप इस घेरबंदी से बाहर हो जाती हैं।

अभी बिल्कुल हाल में संगठनों ने महिला कर्मचारियों को निर्णय लेने के पदों तक उनकी तरक्की का समर्थन करने में रुचि दिखाई है क्योंकि उनका मानना है कि महिलाओं की कुछ खास लोगों के बीच उपस्थिति व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है और उत्पादकता में वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध में कुछ पहल किए गए हैं परन्तु प्रगति बहुत धीमी है और अभी स्थिति संतोषजनक नहीं है।

3.8 सारांश

कार्य करना मानव जीवन का एक अविभाज्य अंग है। हम सब काम करते हैं, काम कर चुके हैं या फिर हमारे जीवन के दौरान हम काम करेंगे। हालाँकि, हममें से प्रत्येक के लिए काम का अलग-अलग अर्थ हैं; यह आयु और शारीरिक क्षमता, जेंडर, स्थान और वर्ग के आधार पर भिन्न-भिन्न होता है। काम वैतनिक या अवैतनिक हो सकता है और आमतौर पर यह दोनों का सम्मिलित रूप होता है। उदाहरण के लिए, तमाम लोग जो आय अर्जन के लिए काम करते हैं अपने घरों या खेतों में बहुत से काम करते हैं जो जीवित रहने के लिए आवश्यक होता है परन्तु उसके लिए उन्हें कोई पैसा नहीं मिलता।

भारत में महिला कामगार अभी भी स्वरोजगार और दैनिक मजदूरों के रूप में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में केंद्रित हैं। परन्तु लड़कियों की शैक्षिक स्थिति में वृद्धि के साथ हालात धीरे-धीरे बदल रहे हैं। अभी बिल्कुल हाल में निर्णय लेने वाले पदों पर महिलाओं की उपस्थिति की महत्ता बढ़ रही है लेकिन कार्यान्वयन के स्तर पर अभी बहुत कुछ किया जाना है।

3.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारत में जाति और वर्ग महिलाओं की श्रमबल में भागीदारी को कैसे प्रभावित करते हैं? चर्चा करें। अपने अभिमत की पुष्टि के लिए उदाहरण दीजिए।

2) नव-उदारतावाद की व्याख्या करें और कैसे इसने भारत में कामकाजी महिलाओं के कार्य परिदृश्य को बदल डाला?

3) अनौपचारिक और औपचारिक क्षेत्रों में भारतीय कामकाजी महिलाओं के सम्मुख आने वाली समकालीन चुनौतियों पर चर्चा करें।

3.10 संदर्भ

Britton, D. M. (1999). Cats Fights and Gang Fights: Preference for Work in a Male Dominated Organization, Sociological Quarterly, 40(3).

Burke, Ronald J. and Major, Debra, A. (2014). Advancing Women's Career: Why Men Matter; in Burke, Ronald J. and Major, Debra, A (Eds) *Gender in Organizations*. Cheltenham, U.K, Northampton, U.S.A. Edward Elgar Publishing, Inc.

Datta, A (2005). MacDonaldization of Gender in Urban India: A Tentative Exploration Gender, Technology and Development, 9.

Everett, Jana and Chalton, Sue (2014). Women Navigating Globlisation Feminist Approach to Development. Maryland: Rowman and Littlefield.

Kapadia. K (2002) Translocal Modernities and Transformations of Gender and Caste. In Kapadia, K (ed), The Violence of Development: The Politics of Identity, Gender and Social Inequalities in India. London Zed Books.

Liddle, J. and Joshi, R. (1989) Daughters of Independence: Gender, Caste and Class in India. New Brunswick, New Jersey. Rutgers University Press.

Mazumdar, I. (2007) *Women Workers and Globlisation: Emergent Contradictions in India*, Kolkota: Bhatkal and Sen.

Mukherjee, R. (1999) "Caste in itself, Caste and Class or Caste in Class", Economic and Political weekly 3 (July): 1759-61.

MWCD (2014): 'Evaluation of Working Women Hostel Scheme' A Report Submitted by SOGDS, IGNOU for MWCD, GOI.

Planning Commission, 2011 - Approach Paper to 12th FYP (2012-17) http://planningcommission.gov.in/plans/planrel/12appdrft/appraoch_12plan.pdf accessed on 7th October, 2014.

Sandberg (2013) *Lean In: Women, Work and Will to Lead*. New York. Alfred Knopf.

Shenoy-Packer, Suchira (2014) *India's Working Women and Career Discourses* London. Lexington Books.

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Planning Commission, 2011 - Approach Paper to 12th FYP (2012-17)

Patel, Vibhuti (2005) Economics of Gender and Development, Centre for distance Education, SNDT Women's University, Mumbai.

इकाई 4 लामबंदी और प्रतिरोध

संरचना सुनीता ढल और नीलिमा श्रीवास्तव

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पृष्ठभूमि : प्रतिरोध और आंदोलन

4.4 सैद्धांतिक अवधारणाएं

4.5 लामबंदी और प्रतिरोध : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.6 महिलाओं के अनुभव : लामबंदी एवं प्रतिरोध

4.7 समकालीन दौर में लामबंदी

4.8 सारांश

4.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

4.10 संदर्भ

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

आपने पहले भी पाठ्यक्रम एमडब्ल्यूजी-009 के खण्ड 3 की इकाई 4 में महिलाओं के प्रतिरोध और संघर्ष के बारे में पढ़ चुके हैं। यहां हम महिलाओं द्वारा कामगारों के रूप में किए गए लामबंदी आंदोलनों और प्रतिरोधों के बारे में चर्चा करेंगे। आप पढ़ चुके हैं कि सिल्विया वाल्बी ने कैसे घर का वातावरण स्वयं में पदानुगत रूप से वर्गीकृत है जहां आय अर्जक का पद 'पुरुष' से संबंधित है और महिलाओं को 'द्वितीयक आय अर्जक' तक पदावनत रखा गया है। महिलाएँ भले ही श्रमबल में सहभागिता करें परन्तु परिवार के लिए 'प्राकृतिक देखभालकर्ता और पोषणकर्ता' के रूप में उनकी अपेक्षित भूमिका और कुछ समुदायगत भूमिकाएं भी इन सबसे ऊपर होती हैं। समाज में उनकी यह दोयम दर्जे वाली स्थिति आर्थिक संस्थानों में भी विस्तृत होती चली जाती है और महिलाओं को 'आरक्षित श्रमिक सेना' के तौर पर देखा जाता है या फिर उन्हें ऐसे पेशों से संबद्ध रखा जाता है जो उनकी पालन-पोषण कर्ता और सेवा सुश्रुषा वाली परंपरागत भूमिका से संबंधित हो और इस प्रकार उनके साथ भेदभाव करते हुए, उन्हें उत्पीड़ित करते हुए हाशिए पर धकेल दिया जाता है।

इस इकाई में हम स्वयं को श्रमिकों के रूप में संगठित कर और लामबंदी करने के महिलाओं के प्रयासों के बारे में केस स्टडीज़ और विवरणात्मक बयानों द्वारा कुछ दृष्टांतों पर विचार करेंगे। और यह भी देखेंगे कि कैसे महिलाओं ने अपने कार्य परिदृश्य में बदलाव लाने के लिए प्रतिरोधों को जन्म दिया। अब हम इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद, आप सक्षम होंगे कि :

- आप परिभाषित और व्याख्या कर सकें कि लामबंदी और प्रतिरोध से क्या तात्पर्य है;

- चर्चा कर सकें कि कैसे महिलाओं ने अपने आप को संगठित करके अपने संघर्षों से निजात पाई; और
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष आंदोलनों के परिणाम की व्याख्या कर सकें।

4.3 पृष्ठभूमि : प्रतिरोध और आंदोलन

दुनिया भर में और विशेष रूप से दुनिया के विकासशील देशों में असंगठित क्षेत्र के कार्यबलों के एक बड़े हिस्से को श्रम संरक्षण कानूनों और नीतियों को लाभ नहीं मिलता। इससे अपने अधिकारों के मामले में और मजबूरी की अवस्थाओं में वे दुर्बल पड़ जाते हैं। काम के लम्बे घण्टे और नीरस काम की समस्या कम वेतन मिलने से और जटिल हो जाती है। महिला कामगारों को भी, जो अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में श्रमिकों का बड़ा हिस्सा बनाती हैं, अपनी जेंडर भूमिकाओं और अपेक्षाओं के चलते अधिक कष्ट सहना पड़ता है।

ऐतिहासिक साक्ष्य इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि किसी भी समाज में भौतिक प्रगति महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में सुधार लाती है। लेकिन, इस तरह से आने वाली सामाजिक-आर्थिक सुधार की स्थिति स्वमेव पुरुषों के साथ समानता और **लैंगिक न्याय** (gender justice) नहीं लाती। अपने **जेंडर अधिकारों** (gender rights) और सशक्तीकरण के लिए लड़ने की महिलाओं के आंदोलनों की योग्यता को व्यापक आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा अनुकूलित किया गया है जिसने श्रम बाजार में महिलाओं की मुखर सहभागिता को निर्धारित किया है। दुनिया भर में बाजारों को विभिन्न स्थानों में वित्तीय पूँजी का वर्चस्व, नए व्यापार संबंधों के उदय, वैश्विक उत्पादन श्रृंखलाओं और उत्पादन प्रक्रियाओं के विस्तार आदि ने नाटकीय रूप से बदल डाला है। (कस्टर, 2014)।

अनुचित काम की जरूरत और कम वेतन वाले बन्द गतिरोध वाली नौकरियां जिसमें आगे बढ़ने की गुंजाइश ही न हो ने बड़ी संख्या में कामकाजी महिलाओं को, चिरस्थाई होती जा रही अपेक्षाओं के उस तंत्र और असमानता के स्वरूप को चुनौती देते हुए, सामूहिक कार्रवाई करने को प्रेरित किया। इस प्रकार के संघर्ष न केवल लिंग व जाति आधारित व्यावसायिक अलगाव के हठीले स्वरूप और उसके परिणामस्वरूप होने वाले आर्थिक असमानता पर धावा बोलते हैं बल्कि उस जेंडर तंत्र को भी झकझोरते हैं जो पुरुषों के लिए ताकत और महिलाओं के लिए सुविधाविहीनता को बनाए रखता है। इस तरह की संगति या साहचर्य का असर यह होता है कि एक ही 'कामकाजी वर्ग' से संबंधित होने के बावजूद उनके लिए इसके अनुभव नितांत भिन्न और एक दूसरे के विपरीत होते हैं। (मैक्लीन, 2011)।

अपने भौतिक अवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में मनुष्यों के एक दूसरे से संबंध विभिन्न ऐतिहासिक अवधियों में अलग-अलग रहे हैं। चंद्रा तलपड़े मोहंती (2011, पृष्ठ 178) लिखते हैं कि 20वीं शताब्दी के अंत को वैश्विक पूँजीवादी वर्चस्व और शोषण की यौन राजनीति के गहराते जाने से अभिलक्षित किया जा सकता है, परन्तु यह आशा और एकजुटता की नवीकृत राजनीति के आरम्भ का भी द्योतक है।

4.4 सैद्धांतिक धारणाएं

सामाजिक विषमताओं और शोषण के विश्लेषण में, मार्क्सवाद ने उत्पादन के विभिन्न आर्थिक तरीकों में काम के सामाजिक संबंधों को रेखांकित किया है। मार्क्सवादियों का तर्क है कि पूँजीवाद के अंतर्गत लाभ के तर्क ने बुर्जुआ वर्ग को बाजारों के विस्तार द्वारा भूमि, श्रम और पूँजी की उत्पादन संबंधी शक्तियों को तब्दील कर दिया और इस प्रकार भूमि को

भी बाजार की एक वस्तु बनाकर रख दिया। इसने कामगार वर्ग को सामंती और स्वतंत्र खेतिहर उत्पादन से दिहाड़ी मजदूर में बदलने को मजबूर कर दिया।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने बड़े पैमाने पर कारखाना-आधारित उत्पादन के युग के दौरान अपने लेखन में तर्क दिया कि बाजार के सार्वजनिक दायरे महिलाओं का प्रवेश उन्हें घरेलू अर्थव्यवस्था की पितृसत्तात्मक बाधाओं से मुक्त करेगा और वर्गीय हितों के बंटवारे के इर्द-गिर्द पुरुष श्रमिकों के साथ उनकी सामूहिक कार्रवाई को प्रोत्साहित करेगा। मानकीकृत क्रमिक संयोजन (एसेम्बली लाइन) उत्पादन के युग के दौरान अस्तित्व में आए हुए मजदूर संघ आंदोलन निश्चित रूप से अपने कामगार वर्ग सदस्यता के बदले सामूहिक कार्रवाई में लग गया परन्तु यह पुरुष प्रधान सदस्यता थी और वही बनी रही।

परन्तु ये संघ उन देशों में, जहां अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों में प्रवेश आसान थी, मजदूरी बहुत ही कम थी और स्पष्ट नियोक्ता-कर्मचारी संबंध अनुपस्थित था, कामगारों के वृहत्तर बहुमत तक पहुंचने में नाकाम रहीं। (कबीर, सुदर्शन और मिलवर्ड, 2013, पृष्ठ 2)।

उपरोक्त संदर्भित स्थान पर ही कबीर आगे उन कारणों के बारे में लिखते हैं कि क्यों इन संघों की सदस्यता में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में बहुत कम थी। क्योंकि श्रम बाजार बहुत बुरी तरीके से जेंडर के इर्द-गिर्द विभाजित था और महिला कामगार अनुचित अनुपात में अनौपचारिक गतिविधियों में संकेन्द्रित थीं, जिन्हें इन मजदूर संघों ने व्यापक तौर पर अनदेखा किया। (2013, पृष्ठ 8)। इसके अलावा, श्रम बाजार के सीमित अवसर और अधिकांश अनौपचारिक नौकरियों में कानूनी संरक्षण और सामाजिक सुरक्षा की अनुपस्थिति ने महिलाओं द्वारा संगठित होकर किसी भी रूप में आवाज उठाने को एक बड़ी जोखिम वाली गतिविधि बना दिया। 'पारिवारिक आय' के लिए प्राथमिक आय अर्जक पुरुष श्रमिकों के साथ मिलकर संघर्ष करने और काम करने की महिलाओं की क्षमता पर विभिन्न 'संरक्षात्मक' प्रतिबंधों के आरोपण, इन सबने मिलकर मजदूर संघों में किसी पद तक महिलाओं की पहुंच को लगभग शून्य बनाए रखा।

1970 के दशक से, उत्पादन प्रक्रियाओं के विखंडन और लचीली श्रम बाजार रणनीतियों की खोज से विश्व अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का आगाज हुआ जिसने पुराने समय के केन्द्रीभूत और स्थिर कार्यबल को एक छिन्न भिन्न, बिखरे हुए, काफी हद तक अनौपचारिक और अधिकांशतया महिला कामगारों वाले श्रमबल से प्रतिस्थापित कर दिया। ऐसे काम की संरचना सामूहिक पहचान और सामूहिक हित को उभरने से रोकती है।

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिला कामगारों को संगठित करने में सबसे शक्तिशाली बाधा उनका वह 'भय' है जो महिलाएँ अपने जीवन अनुभवों के द्वारा आत्मसात की होती हैं। महिलाओं को शुरू से ही घर पर रहने वाले पुरुष सदस्यों, उनके नियोक्ताओं और उनके समाज से डरते हुए बड़ा किया जाता है। नतीजतन, वे लगातार अपनी आजीविका के साधन के खोने के डर, भुखमरी के डर, बीमारियों की वजह से बच्चों को खो देने के डर और अपने घरों से बाहर निकाल दिए जाने के डर को लेकर जीती रहती हैं। और फाके पड़ने का डर एवं बीमारियों की वजह से बच्चों के खोने का डर पाले रखती हैं। उन्हें बहुत कम कानूनी या सामाजिक संरक्षण प्राप्त हैं। उनके पास बहुत ही कम कानूनी या सामाजिक संरक्षण के उपाय होते हैं जो, घर और व्यापक अर्थव्यवस्था दोनों में शक्ति की आरोपित विषमताओं के समक्ष खड़ा होने पर उनकी सहायता करें। (कबीर एवं अन्य, 2013, पृष्ठ 7)।

अनौपचारिक आर्थिक व्यवस्थाओं में लामबंदी और प्रतिरोध की चुनौतियां उन संस्कृतियों में और भी बदतर होती गईं जहां बचपन से लड़कियों को महिला अधीनता वाली सांस्कृतिक

मानदंडों का पालन करते हुए बड़ा किया जाता है, जहां उनके जीवन को अन्य वर्चस्वशाली पारिवारिक सदस्यों, जो अधिकांशतया पुरुष सदस्य होते हैं, द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार उनके पालन-पोषण में उस साहस की कमी रह जाती है जो सार्वजनिक जीवन में शक्तिशाली व्यक्तित्वों के सम्मुख खड़ा कर सके।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने उल्लिखित किया है (आई एल ओ 2004, पृष्ठ 45) कि 'इस तरह के विविधतापूर्ण कार्यबल की समस्याएं और बाधाएं भी उतनी ही विविध प्रकार की होती हैं जितनी बाधाओं और अवरोधों का सामना वे संगठित होने में करती हैं।' फिर भी, इन चुनौतियों के समाधान और सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति को उन्नत बनाने के लिए हाल के दशकों में विभिन्न प्रकार के लामबंदी आंदोलनों का उदय हुआ है। फिर भी, पुरुषों के मुकाबले उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ है।

बॉक्स सं. 4.1

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं के हालात और उनकी स्थिति के बारे में सार्वभौमिक चेतावनी जारी करने और सभी विकासात्मक कार्यक्रमों में महिलाओं के मुद्दों को शामिल करने में महती योगदान दिया है। वर्ष 1948 में एलेनोर रूजवेल्ट ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में महिलाओं के अधिकारों का मुद्दा उठाया। महिलाओं के अधिकारों के लिए आंदोलन 19वीं सदी के दौरान महिलाओं के सार्वजनिक मताधिकार के आंदोलन के रूप में शुरू हुआ। 1920 में स्थापित महिलाओं की स्थिति पर अंतर-अमेरिकी आयोग, उन समूहों में से एक था जो नव स्थापित संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में महिलाओं के लिए समान अधिकार का प्रावधान करवाने में सहायक बना। महिलाओं का अंतर्राष्ट्रीय परिषद (इंटरनेशनल काउंसिल ऑफ वीमेन) और महिलाओं का अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन (इंटरनेशनल एलायंस ऑफ़ वीमेन) गैर-सरकारी संगठनों में से थे जो संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद (ईसीओएसओसी) के सलाहकारी संस्थाओं की तरह थे इसलिए संयुक्त राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति पर आयोग की सदस्यता (सीएसडब्ल्यू) में इन्हें शामिल किया गया था जिसे 1947 में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधिदेश को संतुष्ट करने के लिए स्थापित किया गया था। 1946 में, संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं की स्थिति पर आयोग का गठन किया। इसे दो बुनियादी कार्य करने थेः 'महिलाओं के राजनीतिक, आर्थिक, नागरिक, सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र के अधिकारों के बारे में आर्थिक एवं सामाजिक परिषद हेतु सिफारिशें और रिपोर्ट तैयार करना'; और 'महिला अधिकारों के क्षेत्र में उन तात्कालिक समस्याओं पर सिफारिशें करना जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता हो' (संयुक्त राष्ट्र 1996: 13)। आयोग की चिंताएं 1987 तक उसी समान बनी रही जब तक कि इसे विस्तृत करते हुए इसमें समानता, विकास और शांति हेतु समर्थन करने तथा महिलाओं की उन्नति हेतु उपायों के क्रियान्वयन की निगरानी क्षेत्रीय, खण्डीय, राष्ट्रीय और वैश्विक तीनों स्तरों पर नहीं किया जाने लगा। (संयुक्त राष्ट्र, 1996) तीन अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों जिनके नाम महिला अधिकार आंदोलन, मानवाधिकार आंदोलन और उपनिवेशवाद के विरुद्ध आंदोलन थे, और संघर्ष में सहभागी रहीं महिलाओं ने महिलाओं के आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया। इसके अतिरिक्त तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों में स्वतंत्रता आंदोलन का भाग रह चुकीं महिलाएँ अपने राष्ट्रों के निर्माण में पुरुषों के साथ शामिल हो गईं।

आगे पढ़ने से पहले पिछले कुछ अनुभागों की समझ के बारे में अपना आंकलन करने हेतु निम्नलिखित अभ्यास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) पुरुषों और महिलाओं को अलग-अलग लामबंदी संबंधी चुनौतियों का सामना क्यों करना पड़ता है?

2) महिलाओं के आर्थिक अधिकार की प्राप्ति में संयुक्त राष्ट्र का योगदान क्या है?

आगे आने वाले अनुभागों में आप उन उदाहरणों के बारे में पढ़ेंगे जहां महिला कामगारों ने अपने काम परिदृश्य में परिवर्तन लाने के लिए स्वयं को संगठित किया।

4.5 लामबंदी और प्रतिरोध : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

19वीं सदी के दौरान और 20वीं सदी के आरम्भ में पश्चिम में महिलाओं की लामबंदी और प्रतिरोध को समझने के लिए निम्न मामलों का अध्ययन करें। (**स्रोतः** http://womhist-alexanderstreet.com/absV8N1.htm).

जूतों के श्रमिकों में लैंगिक और पारिवारिक बंटवारे ने 1860 के नव इंग्लैंड हड़ताल को सम्भव बनाया था और जमीन पर साकार किया था।

मेरी एच. बेल्वेट लिखती हैं कि 1852 में हल्के चमड़े की सिलाई के लिए सिलाई मशीनों का इस्तेमाल शुरू करने और भाप चालित शुरुआती फैक्ट्रियों में इसके उपयोग के परिणास्वरूप ग्रामीण न्यू इंग्लैण्ड और लिन, मेसाचुसेट्स के जूता केन्द्रों के लिए अपने घरों में हाथ सिलाई कर जूते तैयार करने वाली महिलाओं के पूर्व-औद्योगिक कार्य समाप्तप्राय हो गए। काम से दूर कर दी गई कामगार महिलाओं ने इस खतरे (मशीनीकरण और केन्द्रीयकरण के) को पहचान लिया और मजदूरी कमाने तथा अपनी पारिवारिक पारिश्रमिक अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देने के लिए अपनी क्षमता भर उसका विरोध किया। जबकि दूसरी ओर कुछ दूसरी महिलाओं के लिए छोटे कारखानों में चलने वाली मशीनी सिलाई ने अपने घर से बाहर अपेक्षाकृत ऊँचे वेतन पर पूर्णकालिक काम का अवसर प्रदान किया। न्यू इंग्लैण्ड

के प्रारम्भिक वस्त्र कारखानों में काम करने वाली महिलाओं की भांति एस्सेक्स काउंटी, मेसाचुसेट्स के कारखानों में लाई गईं जूता बनाने वाली महिलाओं ने कारखाना सुधार की मांग उठाई। इन दोनों समूहों ने 1860 के न्यू इंग्लैण्ड जूता मजदूरों की हड़ताल, गृहयुद्ध से पहले का मजदूरों की अशांति के सबसे शक्तिशाली प्रदर्शन, में भागीदारी की।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में होने वाले औद्योगीकरण की प्रक्रिया के दौरान घटित यह घटना घरों और जूता कारखानों में मजदूरी कर रही महिलाओं के मध्य जेंडर और वर्ग के बीच गठबंधन की शक्ति का प्रदर्शित करती है।

1938 की राष्ट्रीय डॉलर स्टोर्स हड़ताल का आयोजन करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय महिला परिधान श्रमिक संघ और चीनी परिधान श्रमिक मिलकर एकजुट हो गए।

यद्यपि कैलिफ़ोर्निया के मजदूर आंदोलन ने अप्रवासी चीनी मजदूरों को खलनायक बना दिया था, परन्तु इसके जवाब में बराबरी हेतु दबावों ने मजदूर संघ के नेताओं को चीनी श्रमिकों को संगठित करने की मांग करने का उपयुक्त कारण दे दिया। सैन फ्रांसिस्को विनिर्माण क्षेत्र में निम्न वेतन वाले चीनी मजदूरों के क्षेत्र का होना शहर के श्रमिक नेताओं के बीच चिंता का कारण था और यह चिंता विश्वव्यापी मंदी के दौरान उच्च बेरोजगारी की अवधि में बढ़ गई। एक समय ऐसा आया जब एक राष्ट्रीय संघ, अंतर्राष्ट्रीय महिला परिधान श्रमिक संघ (आईएलजीडब्ल्यूयू) और चीनी महिला वस्त्र कामगारों की आकांक्षाएं मिलकर एक हो गईं और परिणामस्वरूप पहला तो यह हुआ कि महिलाओं को संगठित करने का महत्वपूर्ण अभियान चला और दूसरा, सैन फ्रांसिस्को के चाइनाटाउन में सबसे बड़े वस्त्र निर्माता के विरुद्ध सफल हड़ताल का आयोजन हुआ। राष्ट्रीय डॉलर स्टोर्स की हड़ताल ने संयुक्त राज्य अमेरिका में चीनी और चीनी-अमेरिकी महिलाओं के श्रम इतिहास में महत्वपूर्ण बदलाव को चिन्हित किया। यह महत्वपूर्ण बदलाव था कि इस हड़ताल ने प्रदर्शित किया कि चीनी महिला वस्त्र कामगार महिलाएँ अपनी मजदूरी और कार्यदशाओं में सुधार लाने के लिए संगठित हो सकती थीं। एक बदलाव यह भी था कि इसने चीनी महिला वस्त्र कामगारों तथा महिलाओं के वस्त्र उद्योग में राष्ट्र की अग्रणी संघ के बीच एक संपर्क स्थापित किया।

मैरी वुलस्टोनक्राफ्ट की प्रकाशन विंडिकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ वीमेन (1792) और जॉन स्टुअर्ट मिल का प्रकाशन द सबजेक्शन ऑफ़ वीमेन (1869) जैसे साहित्यों की समीक्षा से लेकर आज तक यह पाया गया है कि सामाजिक आंदोलनों और व्यक्तिगत नारीवादियों ने, महिलाओं के अधिकारों की उन्नति के लिए नए शक्तिशाली संदर्भों को प्रस्तुत करने के लिए, भूमि और समुंदर के आर-पार अप्रवास किया।

आगे आने वाले अनुभागों में आप भारत में विशिष्ट मामलों के अध्ययन के साथ दुनिया भर के विभिन्न हिस्सों में महिलाओं की लामबंदी और प्रतिरोध के उदाहरणों के बारे में पढ़ेंगे।

महिला कामगारों द्वारा लामबंदी और संगठन की अपनी समझ का आंकलन करने के लिए निम्न गतिविधि को कीजिए।

गतिविधि

इंटरनेशनल डोमेस्टिक वर्कर्स नेटवर्क, ई-न्यूज़लेटर नं. 9 और 10 में सुजाता गोथोस्कर का पेपर "डोमेस्टिक वर्कर्स ऑर्गनाइजिंग" को गूगल में खोजकर पढ़ें।

इकाई में चर्चा की गई सैद्धांतिक धारणाओं के प्रकाश में इस लेख की समालोचना करें।

अब हम संगठित करने, लामबंदी करने और अपनी कार्यदशाओं में बदलाव लाने के लिए प्रतिरोध तैयार करने संबंधी महिलाओं के अनुभवों के बारे में पढ़ेंगे।

4.6 महिलाओं के अनुभव : लामबंदी एवं प्रतिरोध

अगर नारीवाद को, महिलाओं के एक द्वितीयक लैंगिक व्यक्तित्व के रूप में असमानताएं सहने और इन लिंग आधारित पदक्रमों को खत्म करने के लिए प्रतिबद्धता के रूप में पहचाना जाए तो वेतन समानताओं के लिए महिला मजदूर संघों के संघर्ष और काम तथा घर के दोहरे बोझ को कम करने के लिए व्यवस्थाओं के निर्माण की कोशिशों को 20वीं सदी के नारीवाद के केन्द्र में रखा जाएगा जो समान अधिकारों हेतु संशोधन के लिए लड़ता रहा। (मैक्क्लीन, 2011, पृष्ठ 181)।

निम्नलिखित मामलों के अध्ययनों से पता चलेगा कि कैसे महिला समूह खुद को संगठित करके न केवल अपने लिए स्थितियों को बदल सकती हैं, बल्कि अपने पेशों में बाद में आने वाली पीढ़ियों के लिए बेहतर श्रमिक अधिकारों के लिए मार्ग भी प्रशस्त कर सकती हैं।

सेवा (एसईडब्ल्यूए) - ग्रामीण भारत में महिलाओं की केस स्टडी

(**स्रोतः** एवरेट्ट और चैल्टन, 2014)

सूक्ष्म-वित्त कार्यक्रम, जो गरीबों को छोटे ऋण और बचत सेवाएं प्रदान करता है, 1970 के दशक में प्रारंभ हुआ जब भारत में स्वनियोजित महिलाओं के संघ (सेवा), कामकाजी महिलाओं के मंच और बांग्लादेश में ग्रामीण बैंक और बंगलादेश ग्रामीण उन्नति समिति (बीआरएसी) ने अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में मुख्य रूप से महिलाओं को लघु ऋण देने की शुरुआत की।

सेवा संस्था गरीब महिला श्रमिकों को उनके निष्पक्ष हितों के आधार पर संगठित करती है। गरीब महिलाओं तक सहकारी (लोकतंत्रात्मक) सिद्धांतों के प्रसार पर जोर देने तथा महिलाओं के राजनीतिक और कानूनी साक्षरता पर केन्द्रित रहने के प्रयास करने तथा महिलाओं के नाजुक और सामूहिक चेतना हेतु शिक्षा देने और सामूहिक संघर्ष हेतु रणनीतियों का विकास करने जैसे कार्य सेवा (एसईडब्ल्यूए) को एक नारीवादी लोकतांत्रिक और रूपांतरणकारी आंदोलन बनाते हैं। (मोहंती, 2011, पृष्ठ 176)।

सेवा संस्था के सदस्य अस्सी से अधिक व्यावसायिक समूहों से आती हैं, जिनके कामों को तीन कोटियों में बांटा जा सकता हैः 61 प्रतिशत कृषि या भवन निर्माण में काम करने वाली दिहाड़ी अनियकालिक मजदूर हैं, 28 प्रतिशत अपना काम करने वाली कामगार हैं (पटरियों पर रेहड़ी लगाने वाली, ग्रामीण छिटपुट उत्पादन करने वाली, कूड़ा बीनने वाली आदि) हैं, और 10 प्रतिशत उद्योगों में काम करने वाली बाह्य श्रमिकों में (रेडिमेड वस्त्रों के उद्योग में, बीड़ी उद्योग आदि में लगीं) से आते हैं। सेवा के सदस्य गरीब हैं, यद्यपि वे सबसे अधिक निराश्रित और दीन हीन नहीं हैं। सेवा ने अपने सदस्यों को सामूहिक शक्ति के द्वारा संपति अर्जन के योग्य बनाकर, खतरों के विरुद्ध स्वयं का संरक्षण करने और शक्ति अर्जित करने के योग्य बनाकर उनके जीवन में बड़ा बदलाव लाया है। 2007-2008 में किए गए एक अध्ययन में पाया गया है कि जो महिलाएँ सेवा संस्था की सदस्य नहीं हैं उनकी तुलना में सेवा के सदस्यों के पास अपना बचत खाता और स्वास्थ्य बीमा था, उनके पास कम ब्याज दरों पर ऋण सुविधा तक पहुंच थी और वे अधिक आत्मविश्वास का प्रदर्शन करती हैं।

सेवा, अपने सदस्यों के लिए विकास सेवाओं के साथ स्थानीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पक्षपोषण के प्रयासों को मिश्रित करता है। इसने अनियतकालिक दिहाड़ी मजदूरों के तमाम समूहों के लिए एक न्यूनतम मजदूरी के मुद्दे को आगे बढ़ाया है, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में सफलतापूर्वक याचिका दायर कर पुलिस और स्थानीय सरकार से पटरी और रेहड़ीवालों के उत्पीड़न को रोका है, औद्योगिक बाह्य कामगारों की स्थिति में सुधार हेतु सरकारी अधिकारियों के साथ बातचीत कर सफलता पाई है और भवन निर्माण मजदूरों के लिए एक पेंशन योजना हेतु राज्य सरकार में सफलतापूर्वक जोरदार पैरवी की है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, 1996 में गृह-आधारित कार्य के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संधि ा निर्मित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से सफलतापूर्वक पैरवी करने में सेवा संस्था की केन्द्रीय भूमिका थी। आज सेवा, व्यावसायिक सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रस्तुत करती है। सूक्ष्म-वित्तीयन से शुरुआत करते हुए सेवा ने 1975 में अपना खुद का बैंक बनाया और बचत को बढ़ावा दिया। इसने अपने सदस्यों के लिए बीमारी, मातृत्व, संपत्ति के नुकसान, मृत्यु जैसी आकस्मिकताओं को सम्मिलित करते हुए बीमा उत्पादों का एक एकीकृत पैकेज विकसित किया है। इसने ग्रामीण कढ़ाई कारों के लिए सहकारिताओं को संगठित किया और एक डिजायन तथा विपणन कार्यक्रम विकसित किया है। सेवा बच्चों की देखभाल और वयस्क साक्षरता हेतु कक्षाओं जैसी सामाजिक सेवाएं भी प्रदान करती है।

सेवा की गतिविधियों का प्रधान केंद्र-बिंदु अपने सदस्यों को संगठित करना और उनकी क्षमता निर्माण है। यह संगठन अपने सदस्यों की भर्ती स्थानीय प्राथमिक समूहों (व्यवसाय और स्थानीयता के आधार पर) में करती है, जो सदस्यों की आवश्यकताओं की पहचान करने और उनके समाधान हेतु रणनीतियों के निर्धारण हेतु नियमित तौर पर मिलती हैं, बैठकें करती हैं। इन समूहों से ही जमीनी स्तर के नेता उभरते हैं; वे प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं और संगठन में ही परा-पेशेवर बन जाते हैं और / या सेवा की शासकीय निकायों के प्रतिनिधि के रूप में चुन लिए जाते हैं। सेवा में आमतौर पर हर दो सौ सदस्यों के लिए एक निर्वाचित प्रतिनिधि होता है और संगठन के नेतृत्व में यथेष्ट विविधता रखी जाती है। उदाहरण के लिए, 2006 में सेवा की अध्यक्ष एक खेतिहर मजदूर थी और महासचित भी सेवा की सदस्य थी, जो एक तंबाकू श्रमिक की स्नातक-शिक्षित बेटी थी।

सेवा, महिला श्रमिकों का एक मजदूर संघ है, इसलिए महिलाओं का नेतृत्व हमेशा केंद्रीय रहा है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में गरीब श्रमिकों का एक मजदूर संघ कारखानों या कृषि व्यवसाय में होने वाले मजदूर संघों से बहुत अलग दिखता है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले पुरुषों और महिलाओं ने विभिन्न प्रकार के स्थानीय सहकारी संगठनों और मुद्दे आधारित संघों की स्थापना की है। सेवा अपने सदस्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए इनमें से कई संगठनात्मक रूपों को शामिल करता है।

सेवा स्वयं को एक सामाजिक आंदोलन और एक विकास संगठन के रूप में देखता है, जो गरीब कामकाजी महिलाओं के हितों को बढ़ावा देने के लिए संघर्ष करता है और अपने सदस्यों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सेवाएं प्रदान करता है। इस तरह से सेवा मजदूर आंदोलन और महिला आंदोलन के लक्ष्यों को एक साथ मिलाकर अपने लक्ष्य रखता है। इला भट्ट ने कहा है कि स्व-नियोजित महिलाओं को शामिल किए बिना, मजदूर आंदोलन "इस नाम के श्रेय लायक आंदोलन नहीं है"; और काम "रणनीतिक रूप से उन मुद्दों के अनुसार महिलाओं के बड़े सदस्यों को संगठित करने का प्रभावी तरीका है जो उनके लिए प्रासंगिक हैं।"

बॉक्स सं. 4.2

तृणमूल स्तर की लामबंदियां : जितनी सतह पर दिखती हैं उससे अधिक है भारतीय महिलाओं का आंदोलन।

जो यह महसूस करते हैं कि भारत में महिलाओं का आंदोलन अपनी पतन की अवस्था में है, उन सभी के लिए यह जानना जरूरी है कि इसका शायद अधिक सटीक आंकलन यह है कि यह अधिक तितर-बितर है, इसकी जड़ें अधिक गहरी हैं और अब यह शहरी और मध्यम वर्ग से आगे बढ़कर अधिक आंतरिक इलाकों और प्रायः और अधिक ग्रामीण इलाकों में स्थानांतरित हो गया है।

अगर 1980 और 1990 के दशकों को चेतना के उत्थान का समय थे तो 2000 का दशक समाज में अधिक अच्छे से न केवल कानूनों में बल्कि जमीनी स्तर पर बदलाव लाने के लिए सक्रिय रूप से काम करने का हो सकता है।

आंदोलन अब अधिक पुराना, अधिक परिपक्व है और वातावरण बदल चुका है। आज हम एक वैश्वीकृत और अधिक संयोजित भारत में रह रहे हैं और विरोध और लामबंदी को लेकर, सौदेबाजी और हस्तक्षेप या बिचौलिए के स्वरूप को लेकर भी इस बात को ध्यान में रखना होगा।

हमारे भारत जैसे विविधतापूर्ण और विशाल देश में कोई एक महिला आंदोलन नहीं हो सकता। देश के तमाम हिस्सों में तमाम प्रकार के आंदोलन हैं और महिलाएँ उन महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाएंगी जो उनके क्षेत्र के लिए और उनके लिए प्रासंगिक होंगे। पूर्वोत्तर भारत में महिलाओं ने वहां के संघर्ष की प्रकृति, सशस्त्र बलों की उपस्थिति और दीर्घावधि के उग्रवाद को देखते हुए राजनीतिक सौदेबाजियों में सीधे तौर पर हस्तक्षेप किया है। इसकी तुलना उदाहरणार्थ उस काम से कत्तई नहीं की जा सकती जैसा काम निरंतर (दिल्ली), उत्तर प्रदेश के नानाविध जिलों में ग्रामीण महिलाओं के साथ कर रहा है, जैसे कि उन्हें स्वयं का अखबार, खबर लहरिया प्रकाशित करने में सहायता कर रहा है या फिर मदुरई में शहरी गरीब महिलाओं को लेकर जो काम पेन्नुरिमई इयक्कम उनके आश्रय और आवास हेतु करती है। परन्तु ये सभी अंततः महिलाओं के सशक्तीकरण को अपने चरम लक्ष्य के रूप में रखे हुए हैं इसके लिए वे चाहे जिस भी रास्ते चल रहे हों।

स्रोतः http://feministsindia.com/tag/ritu-menon

आगामी पृष्ठों में घरेलू महिला कामगारों पर दो केस स्टडीज के बारे में चर्चा करेंगे, एक ब्राज़ील में और दूसरा बंगलौर में। आप पहले मामले में पढ़ेंगे कि कैसे उत्पीड़िता घरेलू कामगारों के समूह से नेतृत्व और प्रतिरोध का उद्भव हुआ और दूसरे मामले में पढ़ेंगे कि लामबंदी और संगठन गैर राज्य संस्थाओं द्वारा लाया गया।

घरेलू कामगारों पर मामलों के अध्ययन (केस स्टडीज)

घरेलू कामगारों को तमाम समूहों द्वारा विभिन्न संदर्भों में संगठित करने के अलग-अलग प्रयास किए जाते रहे हैं और यहां तक कि अपेक्षाकृत कुछ समान रूप से इसमें आंदोलन, संघ, छोटी सभाएं और समितियां रही हैं। इन्हें संगठित करने के तरीकों में विविधता के कारणों में से एक यह है कि इस क्षेत्र के भीतर अत्यधिक विविधता विद्यमान है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ नियोक्ता-कर्मचारी संबंध बहुत गतिशील, लचीले और मनमाने हैं। घरेलू श्रमिकों को अपना अधिकतर समय घर के 'निजी' क्षेत्र में बिताना पड़ता है जिससे उन तक पहुंच बनाने में मुश्किल होती है; और कुछ संदर्भों में नियोक्ता और श्रमिक के बीच समझौते

का गैर-मौद्रिक पहलुओं का विशेष महत्व हो सकता है। इन्हें संगठित करने की तमाम चुनौतियों में से ये कुछ प्रमुख चुनौतियां हैं। अब हम दो मामलों का अध्ययन करते हुए चर्चा करेंगे कि यथार्थपरक परिणामों के लिए घरेलू कामगारों को कैसे संगठित और लामबंद किया गया।

इन दोनों केस स्टडीज़ को "ऑर्गनाइज़िंग वीमेन वर्कर्स इन द इनफॉर्मल इकॉनमी : बियॉन्ड द वेपन्स ऑफ़ द वीक'' (4.9 के अंतर्गत संदर्भ देखें) से लिया गया है।

केस स्टडी 1

ब्राजील में घरेलू कामगारों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिरोध और लामबंदी

दासता की विरासत द्वारा आकार ग्रहण किए हुए और लिंग, नस्ल तथा वर्ग शोषण के विशिष्ट स्वरूपों से संबंधित घरेलू कामगारों का अपने अधिकारों और पहचान के लिए संघर्ष बहुत पेंचीदा और कठिन है।

ब्राज़ील के घरेलू कामगार, देश की कुल महिला श्रमिकों की 17 प्रतिशत हिस्सा निर्मित करती हैं; इनमें से 93 प्रतिशत महिलाएँ हैं और अधिकांश अश्वेत हैं। कामगारों की 7.23 मिलियन संख्या के साथ वे देश की सबसे बड़ी व्यावसायिक श्रेणी हैं, और सबसे कम वेतन पाने वाले, हाशिए पर छोड़ दिए गए और बेतरह उत्पीड़ित हैं।

अधिकांश, मासिक वेतन के लिए सप्ताह में 44 घंटे से अधिक काम करने के लिए तैयार रहती हैं। कुछ नगर निगम क्षेत्रों में सभी घरेलू कामगारों का पांचवा हिस्सा 'दैनिक' सफाईकर्मी हैं, जिनकी संख्या बढ़ती जा रही है और जो संकटपूर्ण रोजगार सुरक्षा का सामना करते हैं और बीमारी या मातृत्व वेतन जैसे श्रमिक अधिकारों तक उनकी कतई पहुंच नहीं है।

ब्राजील में घरेलू कामगारों के अधिकारों की तलाश 1920 के दशक में शुरू हुई। अश्वेत महिलाओं ने दूसरे कामों में मिलने वाले अधिकारों और कर्तव्यों की तरह सवेतन घरेलू काम की स्थिति और पहचान के लिए संघर्ष करती हुई स्वयं को ब्राजीलियन ब्लैक फ्रंट में संगठित किया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप 1936 में कैम्पिनास में पहली घरेलू कामगार संघ का निर्माण हुआ।

घरेलू कर्मचारियों के आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए, इन सहयोगियों ने महिलाओं के आंदोलन और अश्वेत आंदोलन को एक साथ जोड़ने का अवसर तैयार किया जो बदले में उससे प्रभावित भी हुईं और अधिकारों के लिए उनके संघर्ष को समर्थन भी प्रदान किया। परिणामस्वरूप वह सामने आया जिसे 'नागरिक का संविधान' कहा गया जो उस समय सबसे लम्बा और उस समय (1988 में) का दुनिया में सबसे प्रगतिशील संविधान था। इस संविधान में उन अधिकारों को अंकित किया गया था, जिनके लिए घरेलू कामगार संघर्ष करते रहे हैं।

हाल के वर्षों में, सरकार ने घरेलू कामगारों के नागरिकता कार्यक्रम को लागू करने के लिए एफईएनएटी आरएडी (फेनट्राड) के साथ काम किया है। घरेलू कामगारों द्वारा प्रस्तावित और घरेलू काम को पेशेवर बनाने और घरेलू कामगारों के अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से कार्यक्रम को एक नीति में रूपांतरित कर दिया गया है।

परिवर्तन को संयोजित करना :

ब्राजील में घरेलू कामगारों की सक्रियता को एक लम्बी छलांग या प्रक्षेपण के रूप में रेखांकित किया जा सकता है क्योंकि घरेलू कामगारों के नेतृत्व द्वारा विकसित पहली

गतिविधियां श्रमिक अधिकारों और सामाजिक कल्याण के इर्द गिर्द कामगारों को लामबंद करने तक केन्द्रित थीं। घरेलू कामगार आस पड़ोस, स्कूलों और चर्च में इकट्ठे होने लगे। ये बैठकें दरअसल प्रत्येक कस्बे और अलग-अलग राज्यों में संगठनों के निर्माण की रणनीति थीं। इन समूहों को विस्तृत किया गया और और संघर्षों को समेकित किया गया।

घरेलू कामगारों के अधिकारों के आंदोलन द्वारा संघों के निर्माण ने आंदोलन को एक स्थान प्राप्त करने में सक्षम बनाया, हालाँकि, केंद्रीय कामगार संघ के भीतर निरंतर हाशिए पर रहा।

इसके दो विशिष्ट पहलू यहाँ उल्लेख करने योग्य हैं।

- पहला है एक खास वर्ग के संघर्ष को अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए व्यापक संघर्ष के दायरे में स्थापित करने की ताकत। घरेलू कामगारों का संघर्ष अश्वेत, कामकाजी महिलाओं के संघर्ष का प्रतिनिधि बन गया और ब्राजील में विषमता और भेदभाव के खात्मे की तलाश वाले अन्य आंदोलनों से एकजुट होकर उनके साथ गठबंधन कर लिया।
- दूसरे ऐसे अवसर हैं जो विभिन्न आंदोलनों के एक दूसरे की एकजुटता और संबंध से आ सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्रों में हुए गठबंधनों के माध्यम से जो दूसरे सामाजिक आंदोलनों को साथ लेकर आए थे, ये घरेलू कामगार मध्यवर्गीय नारीवादियों से परिचित हो गए जो प्रस्ताव लिखने, वित्तीयन के स्रोतों, समर्थन के ठिकानों के बारे में जानते थे और अश्वेत आंदोलन कार्यकर्ताओं के साथ जो ऐसे राजनीतिक सहारे के स्रोत थे।

यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि बाहरी संगठनों ने इसमें भूमिका निभाई परन्तु घरेलू कामगारों ने स्वयं इस संघर्ष का नेतृत्व किया। अत्यधिक हाशिए की स्थिति से संचालन करते हुए घरेलू कामगारों ने यह समझ लिया कि उन्हें अपने संघर्ष में शक्तिशाली पदों पर बैठे लोगों को शामिल करने की आवश्यकता है, और खुद को सदैव उनकी नज़र में बनाए रखा। पुरुषों के वर्चस्व वाले संघ आंदोलन के भीतर उन्हें जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ा और साथ ही मज़दूरों की ऐसी श्रेणियों के चलते भी जो खुद घरेलू कामगारों को अपने यहां रोज़गार देते थे, और यदि घरेलू कामगार ज़्यादा से ज़्यादा अधिकार हासिल करते, तो उससे वे भी प्रभावित होते ऐसी स्थितियों को भी गहराई से समझने की जरूरत है।

केस स्टडी 2

बंगलौर में घरेलू कामगारों की लामबंदी

काम के सर्वाधिक असंगठित और अदृश्य श्रेणियों में से एक घरेलू काम है। काम के व्यक्तिगत, अंतरंग और निरंतर प्रकृति के कारण सवेतन घरेलू काम में, कामगारों तथा नियोक्ताओं और कार्यस्थल के बीच एक अद्वितीय संबंध शामिल रहता है। भारत में घरेलू कामगार अर्थव्यवस्था की अदृश्य रीढ़ बनाते हैं, और पिछले दो दशकों में भारत में इनकी संख्या में तेजी से इजाफा हुआ है। यह वृद्धि अर्थव्यवस्था का कृषि आधार से सेवाओं और विनिर्माण आधारित अर्थव्यवस्था में बदल जाने से जुड़ी है। शहरी क्षेत्रों में अधिक से अधिक अप्रवास के साथ घरेलू श्रमिकों की आमद बढ़ती जा रही है। उन्हें आमतौर पर 'नौकर' या 'नौकरानी' के रूप में उल्लिखित किया जाता है, यह ऐसा शब्द है जो 'कामगार' या 'श्रमिक' की बजाय बंधुआ और दासता से अधिक संबंधित है।

1970 के दशक के महिलाओं के आंदोलन से प्रेरित होकर, स्त्री जागृति समिति ने कर्नाटक घरेलू कामगार संघ (केडीडब्ल्यूयू) का आरम्भ एवं गठन किया। तब से, यह संगठन बंगलौर

की झुग्गियों में महिलाओं को लामबंदी करती आ रही है, उनके अधिकारों के बारे में उनकी जागरूकता बढ़ाती है और घरेलू हिंसा सहित विभिन्न मुद्दों के इर्द गिर्द उन्हें संगठित करने का काम कर रही है। केडीडब्ल्यूयू 2004 में महिलाओं के समूह के साथ प्रयासों को केंद्रित करने के लिए स्थापित किया गया था। संघ का लक्ष्य था घरेलू कामगारों के बुनियादी अधिकारों को हासिल करना; घरेलू कामगारों के बारे में व्यापक रूप से प्रसारित धारणा 'नौकर' की बजाय 'श्रमिक' में बदलना; और यह सुनिश्चित करना कि नियोक्ता और सरकार उन्हें सामाजिक सुरक्षा के लिए पात्रता वाले श्रमिकों के रूप में मान्यता प्रदान करें।

यद्यपि पुरुष भी घरेलू सेवाएँ प्रदान कर रहे थे, लेकिन घरों में काम करने वाली महिलाएँ उनसे कहीं अधिक थीं। इसके अतिरिक्त घरेलू काम को लेकर एक तयशुदा लैंगिक स्वरूप है, जिसमें पुरुष रसोइया/माली/सुरक्षा गार्ड का काम करते हैं, मगर शायद ही कभी फर्श, कपड़े धोने और बच्चों की देखभाल के कामों में शामिल होते हैं। यह पाया गया कि शुरुआत में महिलाएँ संघ में शामिल होने के लिए बहुत उत्साहित थीं, और उन्हें अपने पहचान पत्र पर गर्व था, लेकिन उनकी भागीदारी को बनाए रखना या उन्हें वेतन और काम की शर्तों जैसे मुद्दों के साथ सक्रिय रूप से संलग्न करना मुश्किल था। कामगारों के लिए जरूरत थी कि वे पहले से सीखी हुई बहुत सी बातों को भूल जाएं और इसमें समय लगना था। उदाहरण के लिए, वे नियोक्ता और घरेलू नौकरों के बीच एक संबंध की आदी थीं जो काफी लचीला होता था। इस तरह के लचीले संबंध में दोनों पक्ष लाभ की स्थिति में थे जैसे कि महिला कामगारों को अपने घरों में अनपेक्षित रूप से अधिक समय देने के बारे में वे इस संबंधों के द्वारा निबट लेती थीं; या फिर आवश्यकता के समय वे ऋण के लिए या वेतन के स्थान पर अग्रिम भुगतान के बारे में कह सकती थीं।

घरेलू कामगारों की भी कई अलग-अलग श्रेणियां थीं जैसे कि पूर्णकालिक या आवासीय श्रमिक जो अपने नियोक्ता के साथ नियोक्ता के परिसर में रहते थे, पूरे दिन के कामगार जो रात में घर जाते थे, अंशकालिक कामगार जो एक साथ कई घरों में काम करते थे। इसलिए इन सभी को लामबंद करना बहुत कठिन काम था।

संगठन नियमित रूप से घरेलू कामगारों से उत्पीड़न और उनकी शिकायतों के बारे में सुनता रहता था लेकिन कोई ऐसा कानून या निवारण तंत्र नहीं था जिससे कि घरेलू कामगारों को सुरक्षा प्रदान किया जा सके और इसी बात ने एक छतरी समिति का विचार दिया जो घरेलू कामगारों के अधिकारों के सवालों को लक्षित कर सके। तमाम गैर सरकारी संगठनों ने साथ आकर केडीडब्ल्ययू का गठन किया। केडीडब्ल्यूयू का मुख्य ध्यान समूहों के निर्माण पर केन्द्रित था। उनकी आवाजों पर सुनवाई हो सके इसके लिए सदस्यता शक्ति को बढ़ाते रहना आवश्यक था। केडीडब्ल्यूयू में भर्ती होने के लिए महिलाओं से स्वयं अपेक्षा थी कि वे इसके बारे में प्रचार प्रसार करें।

संघ में शामिल होने पर प्रत्येक व्यक्ति को फोटो और पते के साथ एक पहचान पत्र जारी किया जाता था और कामगारों, उनके कार्यस्थल और अन्य विवरणों पर आंकड़ा रखा जाता था। कार्ड का मूल्य यही था कि इससे पता चलता था कि अमुक व्यक्ति मजदूर संघ का सदस्य था और इसके व्यावहारिक उपयोगों जैसे कि महिला कामगार इसका प्रयोग करते हुए किसी स्थान, नियोक्ता और स्थानीय राजनीतिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों का सामना कर लेती थी जैसे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मालिकों के समक्ष इस पहचान पत्र से उनमें अधिक आत्मविश्वास आ जाता था, क्योंकि वह कोई कार्ड दिखाने में सक्षम थी और उनकी एक पहचान थी और आवश्यकता पड़ने पर केडीडब्ल्यूयू कार्यालय पदाधिकारियों को बुला सकती थी।

'संघ बनाने के' विचार ने एक स्तर पर बहुत अच्छे से काम किया क्योंकि यह उन महिलाओं के लिए एक कामगार के रूप में पहचान दिलाना शुरू कर दिया था, परन्तु यह भी पाया गया कि उनकी सदस्यता को बनाए रखने के लिए केवल यही काफी नहीं था। बल्कि बढ़ते हुए रूप में ऐसी भावना थी कि संघ बनाना और अधिकारों के लिए लड़ना ही किसी संघ की एकमात्र गतिविधि नहीं हो सकती। सदस्यों को आर्थिक लाभों का वितरण करना संभव नहीं था परन्तु कौशल प्रशिक्षण, स्थायित्व, काम की नियमावलियां और संविदा आधारित भर्ती जैसी सेवाओं की आवश्यकता थी। इन बातों ने केडीडब्ल्यूयू को एक भर्ती प्रकोष्ठ शुरू करने के लिए प्रेरित किया जिसे स्वयं सदस्यों द्वारा ही संचालित किया जाना था। भर्ती प्रकोष्ठ की स्थापना दरअसल एक रणनीति थी, जिससे महिलाएँ सौदेबाजी, घरेलू कामगारों के लिए नई प्रक्रियाओं और मानदंडों तथा परिस्थितियों के विचारों से रूबरू हो सकें।

केडीडब्ल्यूयू को अक्सर कामगारों द्वारा सामना किए गए प्रत्यक्ष स्वरूप के उत्पीड़न से निबटना पड़ता था। संघ के ध्यान में लाया गया सबसे आम मुद्दा चोरियों का था। केडीडब्ल्यूयू की उपस्थिति ने उन सौदेबाजियों में बदलाव पैदा किया जिसमें कामगार शामिल थे। यदि मजदूरी लंबित रहती थी सदस्य जाते थे और वेतन पर सौदेबाजी करते थे या कभी-कभार पुलिस के पास शिकायत दर्ज कराते थे।

जब यौन उत्पीड़न के मामले होते थे तो अगर महिला इसे आगे ले जाना चाहती थी तो मामले को पुलिस स्टेशन ले जाया जाता था। महिलाएँ परामर्श और सहायता देने वाली संस्थाओं के संपर्क में रहती थीं। नियोक्ताओं द्वारा सामान्य तौर पर जारी प्रथाओं को बदलने के लिए सफलता के साथ कुछ कार्रवाई भी की गई। इससे घरेलू कामगारों को दीपावली त्योहार के समय बोनस मिलना शुरू हो गया।

घरेलू कामगारों के पति हालाँकि संघ में होने से उनको होने वाले लाभों को देख सकते थे और जब उन्होंने अपनी पत्नियों को अच्छा और ज्यादा वेतन पाते हुए देखा, मगर जब महिलाएँ कुछ बड़े मुद्दों जैसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संघर्ष में उतरतीं, जहां अधिकारियों के साथ संघर्ष हो सकता था और दंडित किए जाने का जोखिम था, वहां वे अपनी पत्नियों का समर्थन करने से पीछे हट जाते या हिचकने लगते थे।

सबसे बड़ी स्थूल चुनौती तो वह सवाल बना रहा कि राज्य और राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर घरेलू काम को कानूनी और नीतिगत मान्यता मिले। केडीडब्ल्यूयू को यह बात स्पष्ट हो गई कि सरकार के स्तर पर प्रभावित् करने के लिए एक बहुत बड़ी ताकत की आवश्यकता थी, एक बड़ी भौगोलिक प्रसार की आवश्यकता थी और एक प्रभावी आवाज बनने के लिए बहुत बड़ी संख्या की आवश्यकता थी। इसलिए, सकारात्मक सामुदायिक कार्रवाई पर अपनी ऊर्जा केंद्रित करने का निर्णय लिया गया।

4.7 समकालीन दौर में लामबंदी

वैश्वीकरण के बाद की अवधि में भी लामबंदी और सामूहिक प्रतिरोध करने की रणनीति जारी रही। परन्तु हम रणनीति के स्वरूप में एक बदलाव देखते हैं जैसे कि महिलाएँ सीधे तौर पर उन राज्य एजेंसियों से भिड़ने के लिए तैयार हैं जो उनके उत्पीड़न को दीर्घजीवी बनाते हैं जैसा कि पोस्को और वेदांता के मामले में हुआ कि विकासात्मक गतिविधियों के नाम पर महिलाओं के लिए स्थायी आजीविका विकल्पों को मिटा रहे थे, आप इसे आगे आने वाले अनुभाग में पढ़ेंगे।

उड़ीसा की आदिवासी महिलाओं द्वारा पोस्को विरोधी प्रतिरोध

दोनों तरह की महिलाएँ– युवा और बुजुर्ग मगर सभी दुर्बल पुलिस की मार के सामने खड़ी रहीं और लाठीचार्ज में घायल हो गईं। उड़ीसा के गांवों की इन महिलाओं ने पुलिस कार्रवाई वापस न लेने पर सामूहिक रूप से निर्वस्त्र होने की धमकी दे डाली। ये महिलाएँ पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति (पीपीएसएस) से संबंधित थीं, जिन्होंने पिछले आठ वर्षों से अधिक समय से पोस्को विरोधी आंदोलन की अगुवाई की थी। यह उपद्रव राज्य सरकार की भूमि अधिग्रहण की उस मुहिम के लिए थी जिसमें गांव के सुपारी की बागवानी को साफ करना शामिल था। अधिकतर ग्रामीण मिर्च पाउडर, टूटी चूड़ियों से लैस थे और राज्य सरकार को बल प्रयोग करने से रोक दिया।

उड़ीसा के गोविन्दपुर गांव के हजारों हजार ग्रामीण जिसमें अधिकांशतया महिलाएँ और बच्चे थे, सरकार समर्थित स्टील के दिग्गज उद्यमी पोस्को द्वारा भूमि अधिग्रहण का विरोध कर रहे थे। जबकि सरकार ने अधिग्रहण को अस्थायी रूप से रोकने का फैसला किया है, ग्रामीणों ने अपनी जमीन के लिए अंतिम दम तक लड़ने की कसम खाई है।

(**स्रोतः** http://southasia.oneworld.net/news/india-women-children-lead-posco-protests#Mg)

छत्तीसगढ़ की महिलाओं द्वारा वेदांता के विरुद्ध उपद्रव

आदिम डोंगरिया कोंध आदिवासियों सहित सैकड़ों प्रदर्शनकारियों ने एल्यूमिना रिफाइनरी की स्थापना के विरोध में प्रदर्शन किया। वेदांता समूह कालाहांडी जिले के लांजीगढ़ में एक रिफाइनरी इकाई स्थापित करना और नियामगिरि पहाड़ी से बॉक्साइट अयस्क का खनन करना चाहता था, जो बहुत समृद्ध जैव-विविधता वाली पहाड़ी है।

नियामगिरी 36 बारहमासी धाराओं और दो नदियों का स्रोत है। इन जल संसाधनों ने कालाहांडी के साथ-साथ पश्चिमी उड़ीसा के दूसरे जिलों में खेती को समृद्ध किया है। प्रस्तावित खनन कार्यों से लाखों लोगों की आजीविका नष्ट हो जाएगी। परियोजना का विरोध करने के लिए बनाए गए एक मंच ग्रीन कालाहांडी ने इस उपद्रव का संचालन किया था। कई पर्यावरणविदों और वैज्ञानिक समुदायों ने नियामगिरी पर प्रस्तावित खनन के दुष्प्रभाव पर चिंता व्यक्त की थी। (http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-otherstates/primitive-tribal-join-stir-against-vedanta/article1870553.ece)

राज्य सरकार की पुलिस और केंद्रीय अर्धसैनिक बलों की भारी सुरक्षा साए में आयोजित एक सभा में अधेड़ उम्र की एक महिला, **लष्किया सिकता** ने कहा, "हम इतने समय से यहां रह रहे हैं, सरकार अब हमारे डोंगर (जंगल) को कैसे बेच सकती है?" एक अन्य ग्रामीण, रिकोटा भाली ने कहा, जंगल उनके देवता, नियाम राजा का निवास था और अगर जंगल उनसे छीन लिए गए तो उनकी संस्कृति नष्ट हो जाएगी समाप्त हो जाएगी। कुटरुका कुन्झी ने घोषणा की, "हमारे जंगलों पर किसी का कोई अधिकार नहीं है, न ही सरकार और न ही कंपनी का। हम अपने बाणों से उन लोगों को छलनी कर देंगे जो हमें अपना जंगल छोड़ने के लिए मजबूर करेंगे।" (http://businesstoday.intoday.in/story/Orissa-niyamgiri-rejects-vedanta-entry-impact-reasons/1/197972.html)

4.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ जाएंगे कि महिलाओं की लामबंदी और संगठित करने की क्षमता को आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा और श्रम बाजार में उनकी स्पष्ट भागीदारी

द्वारा भी अनुकूलित कर दी गई है। विद्वानों और विचारकों ने उत्पादन के विभिन्न आर्थिक तरीकों में काम के सामाजिक संबंधों पर दो प्रमुख कारणों से चर्चा की है, जो महिला श्रमिकों के सांस्कृतिक बाधाओं और अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिला श्रमिकों के संकेंद्रण के रूप में उन्हें निर्बल करने वाले कारक के तौर पर उभर रहा है। लेकिन सेवा (एसईडब्ल्यूए) जैसे आंदोलन भी हैं जिन्होंने बिल्कुल आधारभूत स्तर से नीतिगत स्तर तक स्थिति को बदल दिया है।

4.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

चर्चा करें कि महिला कामगार कैसे अपने काम के अधिकारों को बदलने में सहायक बनती हैं। अपने उत्तर के समर्थन में इकाई से उदाहरण उद्धृत करो।

4.10 संदर्भ

Custers, Peters **(2014).** Capital Accumulation and Women's Labour in Asian Economies, New Delhi: Aakar Books.

Everett, Jana and Chalton, Sue (2014). Women Navigating Globlisation Feminist Approach to Development. Maryland: Rowman and Littlefield.

ILO (2004). Organising for Social Justice paper prepared for IL Conference, 92nd session, Geneva: ILO.

Maclean, Nancy (2011). The Hidden History of Affirmative Action: Working Women's Struggle in the 1970s and the Gender of Class in Holmstrom, Nancy, The Socialist Feminist Project A Contemporary Reader in Theory and Politics, New Delhi: Aakar Books.

Mohanty , Chandra Talpade(2011) Women Workers and Capital Scripts: Ideologies of Domination, Common Interest and the Politics of Solidarity in Holmstrom, Nancy, The Socialist Feminist Project A Contemporary Reader in Theory and Politics, New Delhi: Aakar Books.

Kabeer, Naila; Sudarshan, Ratna and Milward, Kirsty (2013) (Eds) Organising Women Workers in the Informal Economy Beyond the weapons of the Weak, London/New York: Zed Books.

http://womhist.alexanderstreet.com/absV8N1.htm last accessed on 15th December, 2014.

http://feministsindia.com/tag/ritu-menon/ last accessed on 15th December, 2014.

http://southasia.oneworld.net/news/india-women-children-lead-posco-protests#.VI6uP9KUdMg last accessed on 15th December, 2014.

http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-otherstates/primitive-tribals-join-stir-against-vedanta/article1870553.ece last accessed on 15th December, 2014.

http://businesstoday.intoday.in/story/orissa-niyamgiri-rejects-vedanta-entry-impact-reasons/1/197972.html accessed on 15th December, 2014.

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Maclean, Nancy (2011) The Hidden History of Affirmative Action: Working Women's Struggle in the 1970s and the Gender of Class in Holmstrom, Nancy, The Socialist Feminist Project A Contemporary Reader in Theory and Politics, New Delhi: Aakar Books.

Kabeer, Naila; Sudarshan, Ratna and Milward, Kirsty (2013) (Eds) Organising Women Workers in the Informal Economy Beyond the weapons of the Weak, London/New York: Zed Books.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
जेंडर एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ

एम.डब्ल्यू.जी-011
अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

खण्ड

3

सहभागिता

इकाई 1
सहभागिता से संबंधित मुद्दे 143

इकाई 2
अवस्थितियाँ 163

इकाई 3
प्रक्षेत्र 187

इकाई 4
उपजीविका (व्यवसाय) 197

इकाई 1 सहभागिता से संबंधित मुद्दे

संरचना हर्षदा राठौड़

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 महिलाओं के कार्य का अभिग्रहण
1.4 महिलाओं की कार्य सहभागिता प्रस्थिति
1.5 श्रमबल और कार्यबल सहभागिता दरें
1.6 महिलाओं के श्रमबल की सहभागिता को निर्धारित करने वाले कारक
1.7 संगठित क्षेत्र की नौकरियों में महिलाएँ
1.8 असंगठित क्षेत्र की नौकरियों में महिलाएँ
1.9 विभिन्न व्यवसायों में सहभागिता
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न
1.13 सन्दर्भ
1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप वैतनिक कार्यों में महिलाओं की सहभागिता से संबंधित मुद्दों के बारे में पढ़ेंगे। वह कितना और किन किन तरीकों से अर्थव्यवस्था में अपना योगदान करती हैं तथा सांख्यिकीय रूप से महिलाओं को भारत के आर्थिक विकास के पायदान में किस स्थान पर रखा गया है। इकाई के आरम्भ में हम फिर से दोहराएंगे जो आप पीछे पढ़ आए हैं कि कैसे जनगणना और एनएसएसओ महिलाओं के कार्य का विवरण लेते हैं और यह भी कि कैसे कार्य को एक आर्थिक गतिविधि के तौर पर मापा जाता है और महिला कर्मकारों का सांख्यिकीय प्रतिनिधित्व क्या है। इसके पश्चात महिलाओं की श्रम सहभागिता को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा की गई है और उसके पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठित और असंगठित क्षेत्रों में श्रमिकों की तरह महिलाओं की सहभागिता पर चर्चा है। इकाई के अंत में कुछ अनुच्छेद चुने हुए व्यवसायों एवं पेशों में महिला कार्मिकों की स्थिति पर हैं जहां वे बहुत कठिन या चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में काम कर रही हैं। अब हम इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप सक्षम होंगे:

- सीमाओं और प्रभावित करने वाले कारकों को ध्यान में रखते हुए महिलाओं की कार्य सहभागिता की व्याख्या करने में;
- संगठित और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की कार्य सहभागिता पर चर्चा करने में; और
- विभिन्न व्यवसायों में महिला कर्मियों की परिस्थिति का विश्लेषण करने में।

1.3 महिलाओं के कार्य का अभिग्रहण

परम्परागत रूप से कुल श्रम-शक्ति में महिलाओं की सहभागिता एक तिहाई है। जब हम ईंधन या चारा इकट्ठा करने में लगी हुई महिलाओं या डेयरी, मुर्गीपालन या परिवार के लिए शाक वाटिका में उत्पादन में लगी महिलाओं को भी शामिल कर लेते हैं तो श्रम-शक्ति सहभागिता दर (एलएफपीआर) 39 प्रतिशत से बढ़कर 51 प्रतिशत हो जाता है (यह पुरुषों की सहभागिता दर 64 प्रतिशत से मात्र 13 प्रतिशत कम है)।

आर्थिक गतिविधि की परम्परागत परिभाषाएं कहेंगी कि अधिकांश भारतीय महिलाएँ गृहिणी हैं लेकिन जैसा कि परिभाषाएं और मापन के तरीके अब अधिक यथार्थ और सामयिक हो गए हैं यह परिदृश्य अधिक अच्छे से केन्द्र में आता है। 1981 की जनगणना के अनुसार, भारत में मात्र 20 प्रतिशत के लगभग महिलाएँ ही श्रमबल में थीं; जब कार्य की वृहत्तर और व्यापक परिभाषाओं और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएस) के गहनतर सर्वेक्षण तरीकों का उपयोग किया गया तो यह प्रतिशतता बढ़कर लगभग 39 प्रतिशत हो गई। फिर भी इस आँकड़े के बारे में भी स्वीकार किया जाता है कि इसमें निर्वाह के लिए काम करने वाली महिलाओं की लाभकारी आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण भाग को छोड़ दिया गया है।

भारत की जनगणना खेती में अपने उपभोग के लिए भी उत्पादन को आर्थिक गतिविधि के तौर पर मान्यता देती है। मगर जनगणना में 'खेती' शब्द के अर्थ में केवल कुछ फसलों जैसे कि अनाज, बाजरा, गन्ना इत्यादि की खेती को शामिल किया गया है। रोपण वाली फसलों, सब्जियों, फूलों एवं अन्य फसलों को उगाने को खेती में शामिल नहीं किया गया है। यह भी कि ऐसी फसलों के घरेलू उपभोग हेतु उत्पादन को जनगणना में आर्थिक गतिविधि के तौर पर शामिल नहीं किया गया है।

बहुत से सूक्ष्म-स्तरीय अध्ययनों ने महिलाओं के कार्य को अधिग्रहीत किया है और पाया है कि महिलाएँ कहां काम करती हैं। उनके कार्यों का अधिकांश हिस्सा अवैतनिक घरेलू कार्यों का होता है और इसीलिए इस पर गैर-श्रमबल गतिविधि-विशेष तौर से घरेलू कार्य के रूप में विचार किया जाता है। तर्क दिया जाता है कि यदि घरेलू कार्य को कार्य सहभागिता के संप्रत्यय में शामिल कर लिया जाए तो 5 वर्ष से अधिक उम्र की 55 प्रतिशत महिला जनसंख्या इस श्रमबल में शामिल हो जाएगी।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन ने 'कार्य' या 'लाभप्रद गतिविधि' को वेतन, लाभ या पारिवारिक लाभ हेतु विचारणीय गतिविधि के रूप में परिभाषित किया है या दूसरे शब्दों में ऐसी गतिविधि जो किसी 'तर्कसंगत उत्पाद' में कुछ मूल्यवर्धन करती हो। सामान्यतया यह एक ऐसी गतिविधि है जिससे विनिमय के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। हालाँकि कृषि क्षेत्र की सभी गतिविधियां जिसमें खेतिहर उत्पादों का एक भाग या पूरा उत्पाद अपने उपभोग के लिए प्रयुक्त होता है और बिक्री के लिए नहीं जाता, उसे भी लाभप्रद गतिविधि की तरह माना जाता है। संक्षेप में कार्य को बाजार या गैर-बाजार की किसी गतिविधि की तरह परिभाषित किया गया है जो कृषि क्षेत्र से संबंधित है। जनगणना और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन दोनों ही घरेलू कामकाज को कार्य या लाभप्रद गतिविधि की तरह शामिल नहीं करते। इसलिए एनएसएसओ ने 32वें राउण्ड के सर्वेक्षण (1977–78) हेतु एक नया अतिरिक्त कोड (कोड 93) अपने व्यावसायिक वर्गीकरण में शामिल किया है। इस नये कोड ने सर्वेक्षण में संभव बनाया है कि वह परम्परागत 'घरेलू गतिविधियों' और दूसरी गतिविधियों जैसे कि वस्तुओं का मुफ्त संग्रहण (सब्जियों, मूलों, ईंधन, मछली, गोबर, मवेशियों को चराने इत्यादि), घर की छोटी शाक वाटिका, बगीचे

इत्यादि का रखरखाव, घरेलू उपयोग के लिए मुर्गी पालन या डेयरी, सिलाई, दर्जी के काम, बुनाई इत्यादि, पानी का संग्रहण और बच्चों को पढ़ाने में अन्तर कर सके।

'कार्य' का मापन

1951 में हुई जनगणना तक लोगों की आर्थिक गतिविधि के बारे में आँकड़े 'आय' और 'निर्भरता' जैसी अवधारणाओं पर आधारित थे। 1961 और बाद की जनगणना में कार्य के संप्रत्यय को समय या श्रमशक्ति के आधार पर मापने की अवधारणा का अनुसरण किया गया। यह दरअसल अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (आइएलओ) की सिफारिशों के अनुसरण में था और सामान्य तौर पर अधिकांश देशों में माना जाता था। जनसंख्या का 'कामगार' और 'गैर-कामगार' में वर्गीकरण 1961 की जनगणना में शुरू किए गए कार्य की अवधारणा पर आधारित था।

इस प्रकार, 1971 की जनगणना में, प्रत्येक व्यक्ति से पूछा गया कि उनकी 'मुख्य गतिविधि' क्या थी अर्थात् वह अपने को अधिकांश समय में किस तरह से व्यस्त रखते थे/रखती थीं। इस प्रश्न के आधार पर जनसंख्या को मुख्य गतिविधि के दो व्यापक समूहों में 'कामगार' और 'गैर-कामगार' में वर्गीकृत किया गया था। व्यापार में नियमित कार्य के मामलों में संदर्भ अवधि को सूचीकरण की तिथि से एक सप्ताह पहले की तारीख से अंगीकृत किया गया। एक पुरुष/महिला मुख्य कामगार होता/होती यदि वह ऐसे किसी नियमित कार्य में सहभागी रहा होता/रही होती या फिर संदर्भ अवधि के दौरान किसी भी दिन में और उसे ही उसकी मुख्य गतिविधि मान लिया गया।

मौसमी या छोटी अवधि के कर्मकारों के मामले में किसी व्यक्ति की मुख्य गतिविधि का निर्धारण पिछले एक वर्ष के दौरान उसकी गतिविधि के आधार पर किया जाता था भले ही वह व्यक्ति सूचीकरण या आँकड़ा लेने वाले सप्ताह के दौरान आर्थिक रूप से सक्रिय न रहा हो।

1981 की जनगणना में, आर्थिक प्रश्नों को इस तरह से संविन्यस्त किया गया कि पहले तो जनसंख्या को निम्न तरीके से विभाजित कर लिया गयाः

अ) **कामगार -** जनगणना वाले वर्ष से ठीक पहले वाले वर्ष में उस व्यक्ति ने कोई भी कार्य किया हो; और

आ) **गैर-कामगार -** ऐसे व्यक्ति जिन्होंने उस पिछले वर्ष में कोई भी कार्य न किया हो।

जनसंख्या को इन दो व्यापक समूहों में वर्गीकृत करके, उन लोगों को फिर से दो उप-वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया जिन्होंने कभी-कभार काम किया था।

अ) 'मुख्य कामगार' अर्थात वे लोग जो उस वर्ष के दौरान अधिकांश समय में अर्थात कम से कम छः महीने की अवधि (183 दिन) या अधिक दिनों तक आर्थिक गतिविधि में लगे हुए थे, और

आ) 'सीमांत कामगार' अर्थात वे लोग जिन्होंने पिछले वर्ष के दौरान कुछ समय के लिए तो काम किया मगर वर्ष की अधिकांश अवधि तक नहीं।

यह पता लगाने के लिए भी एक प्रयास किया गया कि जो लोग गैर-कामगार या सीमांत कामगार थे, क्या वे अब भी काम की तलाश में या काम करने के लिए उपलब्ध थे।

1991 की जनगणना के समय आर्थिक प्रश्नों को प्रतिपादित करने के दौरान, 1981 की जनगणना में प्रयुक्त अवधारणाओं और परिभाषाओं के अतिरिक्त मौसमी और नियमित आर्थिक गतिविधियों के लिए भी वही एक वर्ष की लंबी संदर्भ अवधि को अंगीकृत करने का निर्णय लिया गया। इसके अतिरिक्त कार्य से संबंधित मुख्य प्रश्न में इन शब्दों 'खेत पर या पारिवारिक उपक्रम में गैर वेतन कार्य को भी शामिल करते हुए' को भी निगमित करना अंगीकृत किया गया। इसके पीछे यह विचार था कि पारिवारिक उपक्रम या पारिवारिक खेत में महिलाओं और बच्चों द्वारा किए गए गैर वेतन योगदान को भी अभिग्रहीत किया जाए।

श्रम सांख्यिकीविदों के 13वें अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के संकल्प संख्या 1 के अनुसार 'आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या में किसी भी जेंडर के व्यक्ति शामिल हैं, जो संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित आर्थिक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में श्रम की आपूर्ति करते हों।'

इस परिभाषा के अनुसार, बाजार गतिविधियां या गैर-बाजार गतिविधियां दोनों आर्थिक गतिविधियां हो सकती हैं। उन गतिविधियों को बाजार गतिविधियां कहा जाता है जिनमें लोग वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन वेतन या लाभ के लिए करते हैं। गैर-बाजार गतिविधियां हैं:

- स्वयं के उपभोग के लिए प्राथमिक माल-असबाब का उत्पादन करना।
- स्वयं के उपभोग के लिए प्राथमिक वस्तुओं को प्रसंस्कृत करना।
- अपने लिए अचल संपत्तियों का उत्पादन करना।

एनएसएसओ ने 'कार्य' या 'लाभप्रद गतिविधि' को ऐसी गतिविधियों के रूप में परिभाषित किया है जो वेतन, लाभ या पारिवारिक लाभ के लिए किया जाता है या दूसरे शब्दों में ऐसी गतिविधि जो 'राष्ट्रीय उत्पाद' में कुछ योग करे।

एनएसएसओ ने रोजगार और बेरोजगारी को मापने के लिए तीन अलग-अलग उपागमों को अंगीकृत किया है। ये तीन उपागम हैं:

- 'प्रचलित स्थिति' उपागम, जिसमें सर्वेक्षण वाली तिथि से 365 दिन पहले तक को सन्दर्भ अवधि के रूप में लिया जाता है;
- 'वर्तमान साप्ताहिक स्थिति' उपागम, जिसमें सर्वेक्षण वाली तिथि से सात दिन पहले तक की सन्दर्भ अवधि को लिया जाता है; और
- 'वर्तमान दैनिक स्थिति' उपागम, जिसमें सर्वेक्षण तिथि से पहले के सातों दिन को अलग-अलग सन्दर्भ अवधि के रूप में लिया जाता है।

दृढ़ता से कहा जाए तो यह उपागम मानव-दिनों को वर्गीकृत करने का प्रयास करता है न कि व्यक्तियों को।

उपरोक्त उपागमों में से 'प्रचलित स्थिति उपागम' के आधार पर रोजगार और बेरोजगार को मापना ही वह तरीका है जिसकी मोटे तौर पर जनगणना के वर्गीकरण से तुलना कर सकते हैं। 'प्रचलित स्थिति उपागम' में सन्दर्भ अवधि एक वर्ष की है। इस उपागम में, उस गतिविधि को, जिसमें व्यक्ति ने सर्वेक्षण वाली तिथि से पहले के 365 दिनों की अवधि में से अपेक्षाकृत लम्बी अवधि गुजारी होती है, व्यक्ति की प्रमुख स्थिति के तौर पर माना जाता है। इस तरह से, यदि वह व्यक्ति संदर्भ अवधि के 365 दिनों में अधिकतर किसी एक या अधिक कार्य गतिविधि में लगा रहता है तो व्यक्ति की मुख्य 'प्रचलित स्थिति' को कार्यरत या नियोजित मान लिया जाता है। यदि पुरुष या महिला उस निश्चित सन्दर्भ अवधि के

दौरान अपेक्षाकृत अधिकतर दिनों में काम की तलाश में रहे या काम करने के लिए उपलब्ध रहे तो उसे 'काम की तलाश में या काम के लिए उपलब्ध' व्यक्ति या 'बेरोजगार' व्यक्ति माना जाता है। यदि कोई पुरुष या महिला अपेक्षाकृत लंबी अवधि तक भी किसी एक या अधिक गैर-लाभप्रद गतिविधि में लगा रहे/लगी रहे तब भी उसे 'श्रमबल में शामिल नहीं' माना जाता है।

आने वाले अनुभाग में आप उन परिप्रेक्ष्यों के बारे में पढ़ेंगे जो भारत में महिलाओं की कार्य सहभागिता को प्रभावित करते हैं।

1.4 महिलाओं की कार्य सहभागिता प्रस्थिति

विश्व बैंक द्वारा संकलित किए गए विकास के संकेतकों (1994) के अनुसार विकसित देशों में प्रत्येक 100 पुरुषों पर 38 महिलाओं के अनुपात से उलट भारत में प्रत्येक 100 पुरुष श्रम बलों (आयु 15-65) पर मात्र 25 महिला श्रम बल हैं। उच्च दर और जनसंख्या में छः वर्ष से कम उम्र के बच्चों के अधिक अनुपात (18 प्रतिशत) के कारण, भारत की जनसंख्या का मात्र 57.8 प्रतिशत ही आर्थिक रूप से सक्रिय 15–59 वर्ष के आयुवर्ग में आता है। इसमें भी आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या में से वास्तविक श्रम शक्ति मात्र 56.5 प्रतिशत है। जबकि श्रम शक्ति में आर्थिक रूप से सक्रिय समूह में पुरुषों में से 78 प्रतिशत हैं जबकि मात्र 33 प्रतिशत महिलाओं को ही श्रम शक्ति समझा जाता है।

महिलाएँ भारतीय श्रम बाजार के एक बड़े और महत्वपूर्ण हिस्से को संघटित करती हैं। किसी भी बाजार के श्रमबल से तात्पर्य जनसंख्या के उस भाग से होता है जिसे काम मिला हो या न मिला हो मगर वह कार्य करने का इच्छुक हो। बिल्कुल इसी प्रकार से श्रम शक्ति सहभागिता दर (एलएफपीआर) जनसंख्या के प्रति 100 लोगों पर उन लोगों की संख्या का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी श्रम सेवाओं की आपूर्ति करते हैं (रस्तोगी, 2004)।

तालिका 1.1: श्रम शक्ति सहभागिता दर

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण चक्र	ग्रामीण		शहरी	
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
1987-88	54.9	33.1	53.4	16.2
1993-94	56.1	33.0	54.3	16.5
1999-2000	54.0	30.2	54.2	14.7

स्रोतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के विभिन्न चक्र

उपरोक्त तालिका एलएफपीआर के बारे में उन सूचनाओं को बताती है जो 'प्रचलित स्थिति' पद से दी गई हैं जिसमें एलएफआर की प्रमुख और अनुषंगी स्थिति शामिल है अर्थात सन्दर्भ अवधि के दौरान जिन व्यक्तियों ने नियमित तौर पर कुछ समय के लिए काम किया और वे भी जो उस दौरान काम की तलाश में थे या फिर काम करने के लिए उपलब्ध थे। तालिका यह भी दिखलाती है कि 1987–88 से लेकर 1999–2000 की अवधि तक, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में पुरुषों की एलएफपीआर महिलाओं की दर से काफी ज्यादा रही है। परन्तु 1993–94 से लेकर 1999–2000 तक की अवधि में सभी कोटियों में एलएफपीआर की दर में गिरावट आई है। हालाँकि उसी अवधि के दौरान महिलाओं के एलएफपीआर में

गिरावट पुरुषों के दर की अपेक्षा अधिक रही है। शहरी पुरुषों के लिए एलएफपीआर 1993–94 से 1999–2000 की अवधि में लगभग स्थिर रही है। लेकिन जहां तक शहरी महिलाओं के एलएफपीआर का संबंध है, अध्ययन अवधि के दौरान उसमें तेज गिरावट आई है। उपरोक्त तालिका से प्रकट सूचनाओं के आधार पर दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

- महिलाओं का एलएफपीआर शहरी के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों के लिए भी हमेशा पुरुषों से कम रहा है और उसमें गिरावट की प्रवृत्ति रही है, और
- ग्रामीण महिला श्रमबल शहरी महिला श्रमबल की अपेक्षा अधिक सक्रियता से श्रम बाजार में सहभागिता की है।

1.5 श्रमबल और कार्यबल सहभागिता दरें

यहां हम शहरी और ग्रामीण महिलाओं के एलएफपीआर के संबंध में स्थितियों का और आगे विश्लेषण करेंगे।

महिला सहभागिता : ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता की प्रवृत्ति, जिसकी चर्चा हिमांशु (2011) और अब्राहम (2013) द्वारा की जा चुकी है, में 2004–05 में मामूली वृद्धि के बाद तेज गिरावट देखी गई है। शहरी महिला सहभागिता में भी 2004–05 में वृद्धि हुई थी, 2009–10 में गिरावट आई और 2011–12 में बहुत मामूली तौर पर वृद्धि हुई परन्तु 2004–05 वाले स्तर से नीचे ही रही। सामान्य तौर पर श्रमबल में महिला सहभागिता कम रही है और कम हो रही है। श्रम बल में महिलाओं की सहभागिता में इस गिरावट, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, को **'अ-नारीकरण'** (de-feminisation) का नाम दिया गया है (अब्राहम, 2013)।

महिला सहभागिता की कम दर ग्रामीण महिला कामगारों की निरपेक्ष संख्या की कमी में झलकती है (इकाई के अंत में संलग्नक तालिका को देखें)। शहरी महिला कामगारों के मामले में 2004–05 और 2011–12 के बीच वृद्धि 2004–05 और 2009–10 में अभिलिखित वृद्धि से अधिक रही है (मुख्यतः 2009–10 और 2011–12 के बीच महिला कामगारों की संख्या में ऊँची वृद्धि के कारण)।

हालाँकि वृद्धि फिर भी 1999–2000 और 2004–05 में अभिलिखित स्तर से कम थी।

कृषि में लगे हुए कुल कामगारों के अनुपात में ग्रामीण महिला कामगारों की संख्या में 1999–2000 से गिरावट होती रही, परन्तु यह गिरावट 2004–05 और 2009–10 के बीच अधिक तीक्ष्ण थी और 2011–12 तक जारी रही (इकाई के अंत में संलग्नक तालिका 2 देखिए)। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में द्वितीयक क्षेत्र या तृतीयक क्षेत्र में महिला कर्मकारों के अनुपात में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई। इसके पीछे ग्रामीण भारत में महिलाओं की बहुत कम संख्या में कार्य करने की प्रवृत्ति उत्तरदायी है। अंतिम दशक में या ऐसे भी कुल कर्मकारों के अनुपात में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में शहरी महिला कर्मकारों की संख्या में वृद्धि हुई परन्तु यह वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमबल छोड़ने वाली महिलाओं की संख्या के सामने बहुत ही मामूली है। (इकाई के अंत में संलग्नक तालिका 3 देखिए)। ग्रामीण महिला स्व-रोजगार कोटि में आंकड़ा 1999–2000 में 11 प्रतिशत से थोड़ा-सा गिरकर 2011–12 में 9 प्रतिशत रह गया (2004–05 को छोड़कर जब यह 12 प्रतिशत था)। इस पूरी अवधि के दौरान अनियत मजदूरी पर रखी गई ग्रामीण महिलाओं के अनुपात में गिरावट होती रही है (तालिका 4)। इसके पीछे भी वही कारण हैं कि काम में महिला सहभागिता में सामान्य गिरावट की प्रवृत्ति रही है। शहरी क्षेत्रों में हालाँकि नियमित मजदूरी पर महिला कार्मिकों के अनुपात में अत्यल्प वृद्धि हुई है।

बॉक्स सं. 1.1

जनगणना 2011 के अनुसार, राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की कार्यबल सहभागिता दर पुरुषों की सहभागिता दर 53.26 प्रतिशत की तुलना में 25.51 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की कार्यबल सहभागिता दर पुरुषों के 53.03 प्रतिशत की तुलना में 30.02 प्रतिशत है। शहरी क्षेत्र में यह पुरुषों के 53.76 प्रतिशत की तुलना में महिलाओं के लिए 15.44 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (68वें चक्र) के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के लिए कार्मिक जनसंख्या अनुपात 24.8 प्रतिशत था। राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों में, ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के लिए सबसे अधिक कार्मिक जनसंख्या अनुपात हिमाचल प्रदेश के लिए 52.4 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में सबसे अधिक सिक्किम में 27.3 प्रतिशत था।

अनियत मजदूरी कार्य के भिन्न-भिन्न प्रकार के आंकड़े दिखलाते हैं कि पुरुष मजदूरों का अनुपात 1999–2000 और 2009–10 के बीच मामूली रूप से बढ़ा था और फिर 2011–12 में उस स्तर से भी नीचे गिर गया जो 1999–2000 में था (इकाई के अंत में तालिका 4 देखें)।

प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों में लगे हुए पुरुष कर्मकारों का अनुपात 1999–2000 और 2004–05 के बीच उल्लेखनीय बदलाव के साथ अंतिम दशक में काफी नीचे चला गया (इकाई के अंत में संलग्न तालिका 2)। ठीक उसी अवधि के दौरान द्वितीयक क्षेत्र की गतिविधियों में लगे पुरुष कर्मकारों के अनुपात में बढ़ोत्तरी हुई, जो लगातार बढ़ती रही। तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत कर्मकारों के अनुपात में भी वृद्धि हुई, परन्तु यह बदलाव कृषि से द्वितीयक क्षेत्र में हुए बदलाव से अधिक उत्तरोत्तर हुआ।

1.6 महिलाओं के श्रमबल की सहभागिता को निर्धारित करने वाले कारक

महिला सहभागिता का परिमाण प्राथमिक रूप से निम्न बातों पर निर्भर करता है:

- समाज में महिलाओं की प्रस्थिति पर।
- जिस सीमा तक उनकी गतिशीलता को अनुमति मिली है, उस सीमा पर।
- उनकी सहभागिता को आवश्यक बनाने वाली आर्थिक अनिवार्यता पर।
- उपयुक्त नौकरी/कार्य की उपलब्धता पर।
- महिलाओं की ओर से इन अवसरों का लाभ उठाने की इच्छा पर।

बॉक्स सं. 1.2

महिलाओं के श्रमबल की सहभागिता दर को निर्धारित करने वाले कारक

1) आर्थिक विकास का स्तर
2) विकास का तरीका
3) उपलब्ध अवसंरचना
4) महिलाओं के रोजगार से संबंधित सरकारी नीति
5) महिलाओं के रोजगार से संबंधित कानून
6) उपलब्ध कार्यों के प्रकार

7) परिवार की संरचना
8) स्त्रियों पर पुरुषों के प्रभुत्व वाली सांस्कृतिक परम्पराएं
9) महिलाओं की आर्थिक भूमिका और जिम्मेदारियों से संबंधित सांस्कृतिक परम्पराएं
10) मातृत्व स्तर और बच्चों के पालन पोषण को प्रभावित करने वाली सांस्कृतिक परम्पराएं
11) बच्चों की देखभाल करने वाली सुविधाओं की उपलब्धता
12) घरेलू कार्यों की प्रकृति और उसकी आवश्यकता के लिए सांस्कृतिक अपेक्षाएं
13) महिलाओं के संपत्ति अधिकार
14) महिलाओं का शैक्षणिक स्तर
15) विवाह के समय महिलाओं की उम्र और विवाह से पूर्व कार्यानुभव पाने के अवसर
16) प्रवास व्यवहार
17) तकनीकी तक महिलाओं की पहुंच

महिलाओं में श्रमबल दर को प्रभावित करने वाले कारक बहुत ही जटिल हैं और उन्हें सबसे कम समझा गया है। पिछले अनुभागों में हम लोगों ने देखा कि महिलाओं में श्रमबल दर पुरुषों में श्रमबल दर की अपेक्षा अधिक घटी है और यह कमी मुख्यतः द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में आयी है जहां आर्थिक गतिविधियां घर की बजाय कारखाने या कार्यालय की ओर स्थानान्तरित हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक गतिविधि में महिलाओं की सहभागिता को खेतिहर और घरेलू उद्यम के कार्यों द्वारा सुगम बनाया गया है जहां अधिकांशतः अवैतनिक पारिवारिक कामगार की तरह काम करती हुईं वे अपनी काम की गतिविधियों को घरेलू कार्यों के साथ संयुक्त कर सकें। इसलिए महिलाओं में श्रमबल सहभागिता दर के भविष्य के मार्ग को निर्धारित करते समय मस्तिष्क में यह बात बनाए रखनी होगी कि इस बात की प्रबल संभावना है कि आने वाली लगभग आधी शताब्दी तक महिलाओं के लिए खेती और घरेलू उद्योग ही महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों के रूप में बना रहने वाला है।

आगे पढ़ने से पहले अपनी प्रगति के मूल्यांकन हेतु निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) कार्यबल सहभागिता और श्रमबल सहभागिता को परिभाषित कीजिए।

2) महिलाओं के श्रमबल की सहभागिता को निर्धारित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कीजिए।

आगामी अनुभागों में भी कार्यबल में महिलाओं की सहभागिता पर अपनी चर्चा को हम जारी रखेंगे।

आर्थिक स्थिति और महिला कार्य सहभागिता दर

वर्तमान समय में महिलाएँ विश्व की खाद्य आपूर्ति के 50 प्रतिशत का उत्पादन करती हैं जो कुल कार्यबल का 60 प्रतिशत होता है और आधिकारिक श्रमबल के 30 प्रतिशत तक योगदान करती हैं। हालाँकि संयुक्त राष्ट्र के आंकलनों के अनुसार, वे केवल विश्व की आय का 10 प्रतिशत प्राप्त करती हैं और दुनिया की संपत्तियों के 1 प्रतिशत से भी कम भाग पर उनका अधिकार है।

तालिका 1.2 : भारत में कार्य सहभागिता दर (प्रतिशत में)

कामगारों की कोटि	वर्ष	कुल योग	पुरुष	महिला
मुख्य कामगार*	19911981	34.12(33.4)	51(51.6)	16(14.00)
सीमांत कामगार**	19911981	3.3(3.3)	0.6(1.3)	6.2(5.8)
गैर-कामगार***	19911981	38(36.7)	52(52.6)	22.3(19.7)
	महायोग	100.0	100.0	100.0

स्रोतः भारत की जनगणनाः 1981 और 1991

*मुख्य कामगार उन व्यक्तियों को संदर्भित करता है जो वर्ष भर में आधे से अधिक दिनों (न्यूनतम 183 दिन) के लिए आर्थिक रूप से उत्पादक गतिविधि में लगा रहे।

**सीमांत कामगार उन व्यक्तियों को संदर्भित करता है जो वर्ष भर में 183 दिनों से कम समय के लिए ऐसी उत्पादक गतिविधियों में लगे रहते हैं।

***गैर-कामगार वे लोग हैं जिन्होंने पूरे वर्ष भर कोई काम नहीं किया है।

उपरोक्त तालिका 1.2 से अवलोकन किया जा सकता है कि मुख्य कामगार में पुरुषों की प्रतिशतता महिला कामगारों की प्रतिशतता की अपेक्षा तीन गुना अधिक है। हालाँकि 1991 और 2001 की जनगणनाओं की तुलना से प्रकट होता है कि महिला मुख्य कामगारों की संख्या में 2.07 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की बढ़ी भागीदारी को उल्लिखित करता है। 2001 की जनगणना के अनुसार सीमांत कामगारों के मामले में महिला सहभागिता दर पुरुषों की सहभागिता दर का लगभग 6 गुना अधिक है।

2011 की जनगणना के अनुसार मुख्य और सीमांत महिला कामगारों का 41.1 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं, 24.0 प्रतिशत किसान हैं, 5.7 प्रतिशत घरेलू उद्योग के कामगार हैं और 29.2 प्रतिशत दूसरे कार्यों में संलग्न हैं।

1.7 संगठित क्षेत्र की नौकरियों में महिलाएँ

महिलाओं के कुल रोजगार में से संगठित क्षेत्र में रोजगार केवल 6 प्रतिशत है। यद्यपि प्रतिशतता में कम हैं परन्तु वे महिला श्रमबल के सबसे शक्तिशाली क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं क्योंकि वे राज्य द्वारा उनके हितों की रक्षा और उनके संरक्षण के लिए बनाए गए कानूनी प्रावधानों की लाभार्थी हैं। महिलाओं के कार्य, मजदूरी और कार्य की दशाओं के संबंध में इस क्षेत्र में रक्षात्मक श्रम कानून लागू होते हैं। वे अपने कौशलों में सुधार, आत्मविकास और तरक्की के अवसरों की हकदार होती हैं। इस क्षेत्र में महिलाओं को असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं की तुलना में काम की अच्छी दशाएं और मजदूरी मिलती है। नीचे की तालिका सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में महिलाओं के रोजगार के साथ ही संगठित क्षेत्र में महिलाओं और पुरुषों को मिले कुल रोजगार का आंकड़ा दिया गया है।

तालिका 1.3: संगठित क्षेत्र में रोजगार - सार्वजनिक/निजी (लाख व्यक्ति)

सार्वजनिक क्षेत्र	**1991**	**1995**	**2000**	**2001**	**2005**
पुरुष	167.1	168.8	164.57	162.79	150.86
स्त्री	23.47	25.65	28.57	28.59	29.21
योग	190.57	194.45	193.14	191.38	180.87
निजी क्षेत्र					
पुरुष	62.42	64.31	65.8	65.62	63.57
स्त्री	14.34	16.28	20.66	20.9	20.95
योग	76.76	80.59	86.46	86.52	84.52
संगठित क्षेत्र में रोजगार					
पुरुष	229.52	232.21	230.37	228.4	214.42
स्त्री	37.81	42.24	49.23	49.49	50.16
योग	267.33	275.25	279.60	277.89	264.58

स्रोतः श्रम और रोजगार मंत्रालय, रोजगार एवं व्यापार महानिदेशक

1991 में सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की कार्यबल सहभागिता दर मात्र 16.71 प्रतिशत थी। दो दशक के बाद यह बढ़कर 162.79 प्रतिशत तक चली गयी। इसी अवधि के दौरान निजी क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता 16.34 प्रतिशत से बढ़कर 20.09 प्रतिशत हो गयी। 1991 से 2001 के दौरान निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं के संयुक्त रोजगार में बढ़ोत्तरी की प्रवृत्ति रही और यह 37.81 प्रतिशत से बढ़कर 49.49 प्रतिशत हो गयी।

2011 में कुल 20.5 प्रतिशत महिलाएँ संगठित क्षेत्र में रोजगार पाए हुए थीं जिनमें से 18.1 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र में थीं और 24.3 प्रतिशत निजी क्षेत्र में।

2011 की जनगणना के अनुसार महिलाओं के रोजगार की दृष्टि से संगठित क्षेत्र में विनिर्माण क्षेत्र का पहला स्थान था जिसमें 9.7 लाख महिलाओं को नौकरी मिली हुई थी। द्वितीय और तृतीय स्थान पर क्रमशः 'सामुदायिक, सामाजिक और निजी सेवाएं' (8.5 लाख महिला कर्मचारी) और 'कृषि, वानिकी, मत्स्ययन और आखेट' (4.3 लाख महिला कर्मचारी) क्षेत्र हैं।

निरक्षर महिलाओं के मामले में संगठित क्षेत्र केवल निम्न वेतन वाले काम ही प्रस्तावित कर सकता है उसमें भी काम की लंबी अवधि, बेकार कार्य दशाएं, व्यावसायिक जोखिम और नौकरी की असुरक्षा हमेशा बनी रहती है। हालाँकि बढ़ते हुए निजी क्षेत्र के संगठनों के चलते, जो बड़ी संख्या में महिला कर्मियों को नियुक्त कर रहे हैं, शिक्षित, प्रतिभाशाली और कुशल महिलाओं के पास चुनौतीपूर्ण कॅरियर और उच्च वेतन वाली नौकरियां हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में, भारतीय रेलवे, दूरसंचार, ऊर्जा क्षेत्र, बैंकिंग, पर्यटन इत्यादि के विस्तृत होते जा रहे संजाल ने उच्च प्रतिशतता में महिला कर्मियों को नौकरी में रखा है। महिलाएँ इन संगठनों की कार्य संस्कृति और कार्मिक वातावरण में खुद को सुखी पाती हैं।

आइए, अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में स्थितियों का पुनरीक्षण करते हैं।

1.8 असंगठित क्षेत्र की नौकरियों में महिलाएँ

भारत में कामगार महिलाओं की कुल संख्या का एक बड़ा अनुपात असंगठित क्षेत्र में मुख्य तौर से कृषि, पशुधन, वानिकी इत्यादि क्षेत्रों में नियुक्त है। इन कामगार महिलाओं को कृषि से संबंधित गतिविधियों जैसे खेत तैयार करने, बीजों का श्रेणीकरण, बीजवपन, निराई, रोपण, सिंचाई, गाहने (थ्रेशिंग), ओसाई, फसलों के भण्डारण, पशुओं को चारा डालने, दुधारू पशुओं की देखभाल और मुर्गीपालन इत्यादि में काम करते हुए देखा जा सकता है। कृषि में जिन कार्यों में महिलाओं को लगाया जाता है उनकी प्रकृति को देखते हुए कहा जा सकता है कि उससे उन्हें विशिष्ट प्रकार के स्वास्थ्य जोखिमों का सामना करना पड़ता है। कई राज्यों में तो धान का पौधरोपण प्राथमिक रूप से महिला मजदूरों द्वारा ही किया जाता है। इससे कई बीमारियों के लिए महिलाओं की ग्राह्यता बढ़ जाती है जैसे कि आंत्र संबंधी और परजीवी संक्रमण, आर्थराइटिस, र्‍यूमेटिक ज्वाइंट्स, जोंक चिपकना इत्यादि।

साथ ही यह भी देखा गया है कि असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों की सहभागिता में वृद्धि होती जा रही है। जीवन में स्थिरता या प्रवास न कर पाने की समस्या महिलाओं के श्रम के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट है जिससे उन्हें निम्न भुगतान वाले, अनियमित और असंगठित क्षेत्र में भी रोजगार के केवल स्थानीय केन्द्रों पर काम करना पड़ता है। अनभिज्ञता, परम्परा से बंधा दृष्टिकोण, कौशलों की कमी, रोजगार की मौसमी प्रकृति, जटिल प्रकार के भारी श्रम वाले शारीरिक कार्य, जॉब सुरक्षा की कमी, काम के लंबे घंटे, कार्यस्थलों पर न्यूनतम सुविधाओं की भी कमी, बुरा बर्ताव और बंधुआ मजदूरी कुछ ऐसे लक्षण हैं जिन्हें असंगठित क्षेत्र में महिला कामगारों के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। उड़ीसा के जनजातीय जिलों में, निर्वनीकरण, भूमि पर अत्यधिक दबाव, सिंचाई की कमी और बार-बार पड़ने वाले सूखे की स्थितियों के चलते जनजातीय महिलाएँ अपने गांवों, अपने जिले और अपने राज्य से भी बाहर निर्माण परियोजनाओं, ईंट के भट्ठों और चाय-बागानों में आवधिक काम के लिए दो से छः महीने तक की अवधि के लिए प्रवास पर जाती रही हैं।

1.9 विभिन्न व्यवसायों में सहभागिता

इस अनुभाग में हम लोग विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता का पुनरीक्षण करेंगे।

नकदी फसलों की खेतीः कई नकदी फसलों की खेती में महिलाओं की भूमिका दुनिया भर में बहुत अच्छे से जानी जाती है। हम एक मामला केसर की खेती का लेते हैं। भारत में इसकी खेती श्रम-गहन खेती है और सभी स्तरों पर महिलाओं की संलग्नता बहुत अधिक है यद्यपि परम्परागत भारतीय खेतिहर तरीकों में पुनर्नवीकरण ऊर्जा, प्रदूषण मुक्त तरीकों का इस्तेमाल करते हैं और इसकी उत्तरजीविता अधिक होती है।

इसी प्रकार से भारत में अन्य नकदी फसलों की खेती में भी महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है क्योंकि मशीनीकरण बहुत व्यापक और प्रचलित नहीं है। यह बात आसाम, पश्चिम बंगाल और नीलगिरि के चाय बागानों और केरल तथा कर्नाटक के मसालों की खेती के मामलों में बिल्कुल सत्य है। अधिक संधारणीयता और पर्यावरण अनुकूल वृद्धि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हर स्तर पर महिलाओं को काम में लगाया जाए।

भारत के साथ-साथ तृतीय विश्व के देशों में अनेक प्रकार की घासों को बुनकर चटाइयाँ तैयार की जाती हैं। भारत के तमिलनाडु में कोरा घास के प्रयोग से केवल और केवल महिलाओं द्वारा बुनाई करके चटाइयाँ बनती हैं। बिल्कुल इसी तरह की परम्परा अनेक दूसरे स्थानों जैसे कि उड़ीसा में बालासोर, कटक और फुलबनी, पश्चिम बंगाल में मिदनापुर में भी मिलती है। क्वाइर या नारियल की जटाओं से चटाइयाँ की बुनाई और रस्सियों की बटाई अनन्य रूप से महिलाओं द्वारा ही की जाती है।

कृषि-संबंधी व्यवसायः कृषि संबंधी अनुसंधानों में महिला किसानों की समस्याओं का समाधान करने के बारे में बहुत ही कम ध्यान दिया है और नई तकनीकों के अभिकल्प में तथा निर्णय प्रक्रिया और श्रम आवंटन में महिलाओं के प्रभाव संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्नों की प्रायः अवहेलना कर दी जाती है। उच्च तकनीकों ने भी महिलाओं की भूमिका को नज़रअंदाज किया है।

वस्त्र उद्योग मेंः यदि कपड़ों का उत्पादन विकेन्द्रित क्षेत्र में किया जाए तो यह महिलाओं के लिए बहुत उत्तम आर्थिक कार्यक्रम हो सकता है। यह केवल आधुनिकीकरण, पूँजीकरण और कुछ हाथों में धन के संग्रह का ही परिणाम है जिसने हम लोगों के लिए समस्या खड़ी की है जिससे कपड़ा उद्योग में हमारी संधारणीयता को धीरे-धीरे नष्ट किया जा रहा है।

एक स्वयंसेवी संगठन, सुंदरबन खादी एवं ग्राम औद्योगिक समाज (एसकेवीआईएस), जो केवल महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा है, की अपनी विशिष्टता है। इन उत्साही महिलाओं ने बटिक प्रिंटिंग, ब्लॉक प्रिंटिंग, सिल्क स्क्रीन प्रिंटिंग और फैब्रिक प्रिंटिंग को अंगीकृत किया और उनकी गुणवत्ता में इस तरह सुधार किया कि उनके कपड़े वैश्विक बाजार में लोकप्रिय हो गए हैं। यह संगठन 950 महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा है और इसके सदस्यों के साथ-साथ सोसाइटी के कल्याण हेतु व्यापार से होने वाले लाभ को फिर से व्यापार को बढ़ाने में लगा दिया जाता है।

कुटीर उद्योगः यदि हम अपने अनेकानेक उद्योगों की पृष्ठभूमियों का गहराई से अध्ययन करें तो हम देख सकते हैं कि अधिकांश या कई उद्योग अपने मूल रूप में अनन्य रूप से महिलाओं के हाथ में रहे थे जिन्हें बाद में मशीनीकरण, आटोमेशन इत्यादि के चलते पुरुषों ने उनसे अपने हाथ ले लिया। इन उद्योगों में कई, उदाहरण के लिए, खाद्य उत्पाद इत्यादि, आज भी किसी विशिष्ट क्षेत्र में निवास करने वाली महिलाओं पर उनकी निर्भरता

के लिए जाने जाते हैं। जब पुरुषों ने इस प्रक्रिया को उद्योग के क्रियान्वयन के लिए अंगीकृत किया तो वे अनेकानेक गैर-उत्पादक निवेशों जैसे कि परामर्श या तकनीकी स्थानांतरण के लिए गए तो महिलाओं को शामिल नहीं किया। यह भी कि महिलाओं ने चूंकि परम्परागत तरीकों को अंगीकृत किया इसलिए उससे निकलने वाले रद्दी का इस्तेमाल कहीं और भी हुआ।

अचार उद्योग उत्तर प्रदेश में और आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में भी कई स्थानों पर बहुत अच्छे से स्थापित हैं। बंगाल और बांग्लादेश कई मीठे अचारों जैसे कि मुरब्बा, कासुन्दी इत्यादि के लिए जाने जाते थे। इन क्षेत्रों में यह घरेलू उद्योग था और औरतें जानती थीं कि स्थानीय और मौसमी उपलब्धता पर निर्भर रहते हुए तमाम सब्जियों से अनेकानेक प्रकार के अचार कैसे बनाए जा सकते थे। यह एक ऐसा उद्योग है जो महिलाओं के लिए शत-प्रतिशत रोजगार सुनिश्चित कर सकता है।

दालों से महिलाएँ परम्परागत रूप से अनेकों वस्तुएं बनाया करती थीं जो आज भी लोकप्रिय हैं। दालों को पीसकर उनके पाउडर की लोई को बेलकर बनाया जाने वाला 'पापड़' अत्यंत ही लोकप्रिय है। इसकी तकनीकी बहुत साधारण है और महिलाओं को उसके बारे में पता है। श्री महिला गृह उद्योग 'लिज्जत पापड़' महिलाओं द्वारा संचालित एक स्वयंसेवी संगठन है। वे बहुत ही मामूली तकनीकी से, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली महिलाओं को रोजगार पर रखकर उच्च गुणवत्ता के पापड़ का उत्पादन करती हैं।

विज्ञानः यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी के मध्य से ही महिलाएँ औपचारिक कार्यस्थलों में रिकार्ड संख्या में प्रवेश कर रही हैं, वे उसी समान दर से विज्ञान में होने वाले कामों में प्रवेश नहीं कर सकी हैं। यहां तक कि अमेरिका में भी जहां महिलाएँ अमेरिका के कुल श्रमबल में 46 प्रतिशत हिस्सा रखती हैं, गणित, विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में होने वाले कार्यों में उनकी सहभागिता केवल 25 प्रतिशत है। देखा जाए तो रास्ते के दौरान, सबसे पहले दिए जाने वाले प्रशिक्षण और श्रम बाजार में उनके प्रवेश के बीच, कहीं न कहीं जेंडर भेदभाव घटित होता है। विडम्बना यह है कि विज्ञान से संबंधित कार्य श्रम बाजार में सर्वाधिक वेतनदायी और उच्च पदस्थिति वाले कार्य माने जाते हैं।

श्रमबल के इस क्षेत्र के अंदर महिलाएँ केवल निचली पदस्थितियों पर काबिज हैं, और अपने पुरुष सहकर्मी की अपेक्षा कमतर वेतन पाती हैं और बेरोजगार होने या अल्परोजगारयुक्त होने अर्थात अपनी क्षमता से कम क्षमता वाले कार्यों को करने के लिए उनकी अपेक्षा अधिक अभिशप्त होती हैं। जब पुरुष और महिला वैज्ञानिकों की योग्यताओं पर विचार किया जाता है इनमें से कई भिन्नताएं कायम रहती हैं। उद्योगों की तरह से महिलाओं की भर्ती करने और उन्हें कायम रखने की पहलों और प्रस्तावों के बावजूद बाजार के औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के लिए महिला वैज्ञानिक, पुरुष वैज्ञानिकों की अपेक्षा कम पसन्द की जाती हैं।

मास मीडिया और संचार (कम्यूनिकेशन): भारत में संचार क्षेत्र में रोजगार के लंबे और प्रभावशाली इतिहास के बावजूद, इसने अपने केवल कुछ एकाध दरवाजे महिलाओं के लिए खोलने को तैयार हुआ है। पत्रकारिता, विशेष रूप से अखबारी पत्रकारिता, प्रमुखता से एक पुरुष व्यवसाय रहा है लेकिन रेडियो, टेलीविजन और विज्ञापनों ने शिक्षित महिलाओं के लिए कार्यक्षेत्र के अधिक अवसर प्रदान किए हैं। बहुत देर से, सार्वजनिक संबंधों में, डाक्यूमेंटरी फिल्मों (फिल्म पत्रकारिता का एक रूप) और मार्केटिंग एवं वितरण एजेंसियों में महिलाओं ने पूर्णकालिक या अंशकालिक पेशेवर कामगारों की तरह प्रवेश किया है।

संचार के क्षेत्र में कॅरियर शहरी केन्द्रों और वास्तव में तो मुख्यतः बड़े मेट्रोपॉलिटन शहरों में केन्द्रित हैं। अधिकांशत प्रमुख समाचार पत्रों में एक पृष्ठ महिलाओं के लिए या बच्चों के

लिए होता है और सामान्यतया ये पृष्ठ स्टॉफ के महिला सदस्यों द्वारा निर्मित या संपादित किए जाते हैं। महिलाओं के लिए पृष्ठ हेतु योगदान तो लगभग पूरी तौर पर अनन्य रूप से महिलाओं द्वारा होता है।

रेडियो और टेलीविज़न महिला पेशेवरों के लिए अधिक अच्छी सुविधाओं का प्रस्ताव करते हैं। आरंभ से ही महिलाओं को उद्घोषकों, समाचार वाचकों, फीचर या डॉक्यूमेंट्री निर्माताओं और यहां तक कि इंजीनियरों के पदों पर भर्ती किया जाता रहा है। रेडियो स्टेशन के सूचित कार्यक्रमों के कुछ हिस्से ऐसे होते हैं जो अनन्य रूप से महिलाओं के क्षेत्र के लिए होते हैं। विशिष्ट श्रोताओं जैसे कि ग्रामीण महिलाओं और कामगारों के परिवारों के लिए अभिकल्पित कार्यक्रमों के अतिरिक्त प्रत्येक स्टेशन पर महिलाओं के लिए और बच्चों के लिए एक घंटा होता है।

रेडियो प्रोग्रामिंग कैडरों और अनौपचारिक कलाकारों की कोटि में बहुसंख्या में महिलाएँ नियोजित हैं जिसमें स्क्रिप्ट-लेखक, फीचर-लेखक, समाचार वाचक और नाटकों एवं डॉक्यूमेंट्री में भाग लेने वाली महिलाएँ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी महिला फ्रीलांसरों के लिए भी कुछ अवसर उपलब्ध हुए हैं जो रेडियो के कार्यक्रमों के लिए कुछ योगदान करने को इच्छुक हैं। कुछ महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने साक्षात्कार विधा और चर्चा तकनीकों में विशिष्टताएं हासिल की और निजी टी. वी. और रेडियो चैनलों पर बहुत लोकप्रिय हुई हैं।

टेलीविजन, शिक्षित महिलाओं के लिए सबसे विस्तृत और सर्वाधिक विविधता वाले अवसर प्रस्तुत करता है। टेलीविजन के मामले में समाचार वाचकों, उद्घोषकों, कार्यक्रम निर्माताओं, सूत्रधारों और कलाकारों में अधिसंख्यक महिलाएँ हैं।

विज्ञापनः विज्ञापन में महिलाओं ने कुछ बढ़त हासिल करना शुरू कर दिया है। इस व्यवसाय के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के लिए उन्हें पुरुषों से भी अधिक तरजीह दी जाती है। रचनात्मक विज्ञापन मीडिया में, कॉपी राइटिंग और डिज़ायनिंग के लिए वास्तव में महिलाओं को वरीयता दी जाती है। महिलाओं में भी जो अधिक ऊर्जावान और सक्रिय व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं उन्होंने प्रबंधक या अधिशासी पदों तक अपनी पहुंच बनाई है। जटिल प्रश्नावलियों से तैयार सर्वेक्षणों के लिए बुद्धिमान और मनभावन महिलाएँ और लड़कियां किसी मूल्यवान रत्न से कम नहीं हैं। सामान्य तौर पर माना जाता है कि महिला साक्षात्कारकर्ताओं के सम्मुख प्रत्यर्थी अधिक स्पष्टवादी और सहयोग करने वाली भूमिका में आ जाता है। व्यावसायिक रेडियो, जिसे देश के सभी भागों में बहुत तेजी से प्रसारित किया जा रहा है, भी महिला कर्मियों के लिए अवसर प्रदान करता है।

1.10 सारांश

भारत में बाजार आधारित गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता एशिया के अन्य प्रमुख भागों की तुलना में काफी कम है। देश के भीतर भी व्यापक क्षेत्रीय विषमता व्याप्त है। श्रम बाजार में महिलाओं की अधीनता की स्थिति इसलिए नहीं है कि वे आवश्यक रूप से तुच्छ उत्पादों के उत्पादनों तक सीमित हैं या सिर्फ स्थानीय बाजार तक सीमित हैं। श्रम बाजार की प्रमुख अक्षमता यह है कि उनके कार्यों की पहचान निम्न तकनीकी क्रियाकलापों से की जाती रही है। इसका अर्थ होता है, एक तरफ तो वे जो कार्य करती हैं उसकी उत्पादकता निम्न बनी रहती है और दूसरी तरफ उन्हें अर्थव्यवस्था में कार्यक्षम उत्तरदायी भूमिकाओं से वंचित बनाए रखा जाता है। असंगठित क्षेत्रों और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में महिलाएँ अनेकानेक प्रकार के कार्य निष्पादित कर रही हैं और उनकी नियोजनीयता तथा संख्या में लगातार वृद्धि भी हो रही है।

1.11 शब्दावली

कार्य : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के अनुसार, कार्य या लाभप्रद गतिविधि वह गतिविधि है जिसे वेतन, लाभ या पारिवारिक लाभ के लिए उपयुक्त माना जाए या दूसरे शब्दों में ऐसी गतिविधि जो 'राष्ट्रीय उत्पाद' में कुछ मूल्यवर्धन करे।

कामगार : ऐसे लोग जिन्होंने जनगणना से पहले वाले वर्ष में किसी न किसी समय कुछ काम किया हो।

गैर-कामगार : ऐसे लोग जिन्होंने जनगणना से पहले वाले वर्ष भर में कोई भी काम न किया हो।

प्रमुख कामगार : ऐसे लोग जिन्होंने एक ही आर्थिक गतिविधि में वर्ष के अधिकांश हिस्से में काम किया हो अर्थात छः महीने की अवधि (183 दिन) तक या अधिक समय के लिए।

सीमांत कामगार : ऐसे लोग जिन्होंने पिछले एक वर्ष में कुछ दिनों के लिए काम किया हो परन्तु उसके अधिकांश हिस्से में नहीं किया हो।

श्रमबल : किसी देश का श्रम बल कार्यक्षम उम्र के उन सभी लोगों से मिलकर बनता है जो सहभागी कामगार होते हैं, अर्थात सक्रिय रूप से नियोजित लोग या काम की तलाश में लगे लोग।

श्रमबल सहभागिता दर : श्रमबल और उनके संगियों की कुल संख्या (समान आयुवर्ग की कुल राष्ट्रीय जनसंख्या) के मध्य अनुपात को श्रमबल सहभागिता दर कहा जाता है।

संगठित क्षेत्र : वह क्षेत्र जो पंजीकृत है, सरकारी नियमों एवं विनियमों का पालन करता है और जिसमें कर्मचारी संघ एवं नियोक्ता संघ होता है, संगठित क्षेत्र कहलाता है।

असंगठित क्षेत्र : वह क्षेत्र जो निर्धारित मानकों का पालन नहीं करता और मानकीकृत की गई कार्य-प्रणाली का पालन नहीं करता और बिल्कुल केन्द्रीकृत होता है।

अनियत श्रमिक : ऐसा कामगार या श्रमिक जिसे नियोक्ता द्वारा जरूरत पड़ने पर बुलाया जाता है और केवल उतने समय का भुगतान किया जाता है जितने समय वह काम करता है।

1.12 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारत में महिला कार्यबल सहभागिता की प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिए। विभिन्न तथ्यों की व्याख्या हेतु उदाहरण दीजिए।

2) संगठित और असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी पर चर्चा कीजिए।

3) परम्परागत और गैर-परम्परागत व्यवसायों में महिलाओं की भूमिका का वर्णन कीजिए।

1.13 सन्दर्भ

Banerjee, A. and Sen, R.K. (2000). Women and Economic Development, New Delhi: Deep and Deep Publications Pvt. Ltd.

Census of India, 1981, 1991, 2001

Desai, Neera and Thakkar, Usha (2001). Women in Indian Society, New Delhi: National Book Trust.

Ghosh G.K. (1995). Environment and Women Development: Lessons from Third World, New Delhi: Ashish Publishing House.

ILO (1978): Women's Participation in the Economic Activity of Asian Countries, ILO: Geneva

Mahapatra, Subhasini (2006). Working Women: Problems and Prospects, New Delhi: Rajat Publications.

Government of India, MHRD. (1987). Shram Shakti: Report of the National Commission of Self-Employed Women and Women Workers in the Informal Sector. New Delhi: Ministry of Human Resource Development.

NSSO Rounds.

OXFORD (2008). Economic Survey 2007-2008, New Delhi Government of India.

Rustagi, Preet (2004). Women and Development in South Asia, South Asian Journal, Vol 4, April-June.

Sen, Bimla (2008). Role of Women in India Society, Panatikala, Better Books.

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

OXFORD (2008): Economic Survey 2007-2008, New Delhi Government of India.

Rustagi, Preet (2004). Women and Development in South Asia, South Asian Journal, Vol 4, April-June.

तालिका 1: कामगारों की संख्या की तुलना (मिलियन में, 1999-2000 से 2011-12, यूपीएस)

कोटियां/सर्वेक्षण वर्ष	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000 और 2004–05 के बीच औसत वार्षिक परिवर्तन	2004–05 और 2009–10 के बीच औसत वार्षिक परिवर्तन	2009–10 और 2011–12 के बीच औसत वार्षिक परिवर्तन	2004–05 और 2011–12 के बीच औसत वार्षिक परिवर्तन
ग्रामीण पुरुष	199.53	213.6	226.75	230.97	2.81	2.63	2.11	2.48
ग्रामीण महिला	83.06	91.5	80.92	72.13	1.69	–2.12	–4.4	–2.77
शहरी पुरुष	78.65	90.76	102.54	108.28	2.42	2.36	2.87	2.50
शहरी महिला	16.52	20.68	20.97	23.26	0.83	0.06	1.15	0.37
कुल कामगार	377.76	416.54	431.18	434.64				
रोजगार प्राप्त लोगों में प्रति वर्ष निवल परिवर्तन					7.76	2.93	1.73	2.59

स्रोतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय, रोजगार एवं बेरोजगार सर्वेक्षण, विभिन्न चक्र; आँकड़ों की गणना शॉ (2013) में दी गई अनुसार।

संलग्नक

तालिका 2: कुल कामगारों की प्रतिशतता में क्षेत्रवार कामगारों की संख्या (यूपीएस)

कोटियां/सर्वेक्षण वर्ष	प्राथमिक				द्वितीयक				तृतीयक			
	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012
ग्रामीण पुरुष	37.91	33.15	33.11	31.69	6.73	9.99	9.95	11.43	8.56	9.53	9.56	9.93
ग्रामीण महिला	18.67	17.33	14.86	12.47	2.12	2.3	2.06	2.29	1.54	1.59	1.78	1.71
शहरी पुरुष	1.31	1.26	1.38	1.39	6.67	7.34	8.21	8.77	12.31	12.64	14.16	14.9
शहरी महिला	0.64	0.75	0.58	0.43	1.21	1.47	1.56	1.77	2.32	2.65	2.8	3.2
कुल कामगार	58.53	52.5	49.92	45.99	16.73	21.09	21.78	24.26	24.74	26.41	28.29	29.74

स्रोतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय, रोजगार एवं बेरोजगार सर्वेक्षण, विभिन्न चक्र।

तालिका 3: विभिन्न क्षेत्रों में कामगारों की सख्या (मिलियन में, यूपीएस)

कोटियां / सर्वेक्षण वर्ष	प्राथमिक				द्वितीयक				तृतीयक			
	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012
ग्रामीण पुरुष	139.26	141.73	141.88	136.42	24.71	42.72	42.65	49.22	31.44	40.72	40.96	42.74
ग्रामीण महिला	68.57	74.11	63.69	53.69	7.78	9.83	8.81	9.84	5.66	6.81	7.61	7.38
शहरी पुरुष	4.82	5.37	5.90	5.99	24.51	31.37	35.19	37.76	45.23	54.02	60.69	64.13
शहरी महिला	2.36	3.22	2.47	1.86	4.46	6.28	6.70	7.63	8.52	11.34	11.98	13.77
कुल कामगार	215.01	224.43	213.94	197.96	61.46	90.2	93.35	104.45	90.85	112.89	121.24	128.02

स्रोतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय, रोजगार एवं बेरोजगार सर्वेक्षण, विभिन्न चक्र, आँकड़ों की गणना शॉ (2013) में दिए विधि अनुसार।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

संलग्नक

तालिका 4: कुल कामगारों की प्रतिशतता में प्रत्येक कोटि के रोजगार (यूपीएस)

रोजगार के प्रकार / सर्वेक्षण वर्ष	स्व–रोजगार				नियमित वेतनभोगी				अनियत श्रमिक			
	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012	1999–2000	2004–2005	2009–2010	2011–2012
ग्रामीण पुरुष	28.99	28.86	28.35	28.99	4.80	4.58	4.68	5.42	19.40	19.24	20.09	18.66
ग्रामीण महिला	11.18	12.03	9.62	8.95	0.87	0.97	1.04	1.24	10.22	8.22	7.26	6.28
शहरी पुरुष	8.40	9.46	9.81	10.49	8.55	8.71	10.13	10.95	3.42	3.06	4.03	3.62
शहरी महिला	1.61	1.97	1.74	1.99	1.61	2.04	2.20	2.64	0.97	0.86	1.04	0.78
कुल कामगार	50.17	52.31	49.53	50.42	15.83	16.30	18.04	20.05	34.00	31.38	32.43	29.34

स्रोतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय, रोजगार एवं बेरोजगार सर्वेक्षण, विभिन्न चक्र।

इकाई 2 अवस्थितियाँ

संरचना

हर्षदा राठौड़

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शहरीकरणः पृष्ठभूमि

2.3.1 शहरीकरण की प्रक्रिया

2.3.2 शहरीकरण की प्रवृत्तियां

2.4 शहरीकरण के मुद्दे

2.5 शहरीकरण और प्रवसन

2.6 प्रवसन के कारण

2.7 प्रवसन के प्रभाव

2.8 महिलाएँ और प्रवसन

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

2.12 सन्दर्भ

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

वैतनिक श्रम में महिलाओं की सहभागिता से संबंधित मुद्दों के बारे में पढ़ने के बाद इस इकाई में आप उन शक्तियों के बारे में पढ़ेंगे जो महिलाओं की सहभागिता को प्रभावित करती हैं। इकाई शहरीकरण की व्याख्या करते हुए और भारत में शहरीकरण की क्या प्रवृत्तियां रही हैं से शुरू होती है। इसके आगे आप पढ़ेंगे कि कैसे शहरीकरण प्रवसन में परिणत हुआ और ग्रामीण तथा इसने शहरी क्षेत्रों में श्रम सहभागिता को प्रभावित किया। बाद में आप इसके कारणों, इसके प्रभावों और इस प्रवाह को रोकने के रास्तों के बारे में पढ़ेंगे और प्रवासी महिलाओं की आर्थिक भूमिका पर चर्चा करते हुए और उसके बाद शहरीकरण के घटकों और मुद्दों पर बात करते हुए इकाई समाप्त हो जाती है।

आइए, हम इस इकाई को पढ़ने के उद्देश्यों से अवगत हो लें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप सक्षम होंगेः

- शहरीकरण और प्रवसन को परिभाषित करने में;
- प्रवसन की प्रवृत्तियों, वृद्धि, कारण और प्रभाव पर चर्चा करने में; और
- शहरीकरण और प्रवसन के बीच संबंधों की व्याख्या करने में।

2.3 शहरीकरणः पृष्ठभूमि

तीव्र शहरीकरण बीसवीं शताब्दी में विश्वव्यापी परिघटना रही है। भारत जैसे विकासशील देशों में, शहरीकरण की चुनौती शहरी गरीबी के सन्दर्भ में बहुत गम्भीर हो जाती है जो कि वस्तुतः ग्रामीण गरीबी का विस्तार ही है। आंतरिक प्रवसन और विशेष तौर पर ग्रामीण-शहरी प्रवसन का विश्लेषण न सिर्फ शहरीकरण की प्रक्रिया बल्कि आर्थिक विकास की समग्र प्रक्रिया को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शहरीकरण का सुनियोजित अध्ययन यहां तक कि विकसित देशों में भी बिल्कुल हाल की परिघटना है। भारत में, कुछ चुने हुए शहरों में सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण का संचालन करने के प्रयास समय-समय पर किए गए हैं। नगर नियोजकों ने भी शहरी नियोजन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तमाम शहरों में विशिष्ट प्रकार के सर्वेक्षण करवाए हैं। परन्तु भारत में ऐतिहासिक, जनसांख्यिकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से शहरीकरण का एक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन करने का मुश्किल से ही कोई प्रयास कभी हुआ होगा।

सबसे पहले 1961 में आर्थिक वृद्धि संस्थान के जनसांख्यिकीय अनुसंधान केन्द्र ने इस मामले में पहल की और विशेष रूप से जनसांख्यिकीय दृष्टिकोण से आंतरिक प्रवसन और शहरीकरण पर अध्ययनों की एक श्रृंखला की शुरुआत की।

बोस (1973) के अनुसार प्रत्येक दशक में अकाल, प्लेग, इन्फ्लुएंजा महामारी, युद्ध और बंटवारे जैसे कारक रहे जो शहरी परिदृश्य पर हावी रहे। 1951-61 का दशक एक मायने में औद्योगिक विकास के सन्दर्भ में शहरीकरण का पहला सामान्य दशक था और फिर भी इस दशक के दौरान शहरी जनसंख्या की वृद्धि अधिकांश विद्वानों द्वारा पूर्वानुमानित दर से बहुत कम था, जिन्होंने भारी पैमाने पर ग्रामीण से शहरी प्रवसन और परिणामस्वरूप शहरी विस्फोट का अनुमान किया था (बोस में उद्धृत, 1980)।

जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर अपने आप में एक कारक है जो शहरों में जनसंख्या के प्रवसन को सीमित करता है; शहरी श्रम बाजार में लगातार बने रहने वाले बेरोजगार और अल्परोजगारयुक्त लोगों की संख्या के चलते ग्रामीण श्रम शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास करने की हिम्मत नहीं कर पाता।

औद्योगीकरण का प्रभाव 1961–71 के दशक में महसूस होना शुरू हुआ जो तेजी से हो रहे शहरीकरण से पता चला और विशेष रूप से औद्योगिक शहरों, पत्तन कस्बों और सभी दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या में तेजी से वृद्धि से। इसमें एकमात्र अपवाद कलकत्ता का था जो अपनी संतृप्ति की अवस्था में पहुंच चुका था।

बॉक्स सं. 2.1

> तीव्र शहरीकरण के सामने छोटे और मध्यम कस्बों की स्थिरता और विकासहीनता औपनिवेशिक काल से ही निरंतर चलती रहने वाली परिघटना है और उद्योगों के बिखराव, वृद्धि के केन्द्रों के विकास हेतु नई रणनीतियों इत्यादि के बावजूद शहरी परिदृश्य पर बड़े शहरों का दबदबा लगातार कायम रहा।

अब हम शहरीकरण की प्रक्रिया के बारे में पढ़ेंगे।

2.3.1 शहरीकरण की प्रक्रिया

जनसांख्यिकीय अर्थों में शहरीकरण, शहरी जनसंख्या (यू) का कुल जनसंख्या (टी) से अनुपात में एक निश्चित अवधि के दौरान बढ़ोत्तरी से है। जब तक यू/टी बढ़ता रहता है, तब तक शहरीकरण कहलाता है। हालाँकि, सैद्धांतिक रूप से यह संभव है कि यह अनुपात कुछ समयावधि तक स्थिर बना रहे वैसी स्थिति में जबकि ग्रामीण से शहर की ओर प्रवास निरपेक्ष तौर पर नहीं हो रहा हो और ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या दोनों समान दर से बढ़ रही हों। इस तरह के मामले में कहा जाएगा कि यह बिना शहरीकरण के शहर में वृद्धि है।

इस प्रकार, शहरीकरण की प्रक्रिया निरंतर या सतत चलने वाली प्रक्रिया है जो केवल औद्योगीकरण की सहगामी नहीं है बल्कि यह आर्थिक वृद्धि और सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में अन्तर्निहित कारकों के सम्पूर्ण विस्तार से संबद्ध है।

निःसंदेह नगर-नियोजन बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु शहरों के लिए मास्टर प्लान तैयार करना तब तक फिजूल का काम बन चुका है जब तक कि शहरीकरण के अर्थशास्त्र पर विचार न किया गया हो और शहरी अवसंरचना की लागत को ध्यान में न रखा गया हो। संक्षेप में शहरीकरण को निश्चित तौर पर आर्थिक वृद्धि के एक पहलू की तरह देखना पड़ेगा। हाउसिंग उपागम का एक प्रभाव यह भी है कि शहरीकरण का समाधान शहरों की ओर प्रवासन को हतोत्साहित करने में ढूंढ़ा जाता है, वह भी इस तथ्य की अवहेलना करते हुए कि मकानों की कमी केवल महत्वहीन मध्यम-वर्ग के लोगों को डरा सकती है, बड़ी तादाद में उन प्रवासियों को नहीं, जो ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर आते जा रहे हैं।

2.3.2 शहरीकरण की प्रवृत्तियां

भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त के कार्यालय ने वर्ष 2011 के लिए शहरी जनसंख्या का प्रक्षेपित आंकलन 35.8 करोड़ किया है और आंकलन किया था कि शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर 1991–2001 के दशक के दौरान रिकॉर्ड किए गए 2.75 प्रतिशत प्रति वर्ष से घटकर 2001–2011 के दौरान 2.23 प्रतिशत प्रति वर्ष रह जाएगा (महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त, 2006)। शहरी विशेषज्ञों का भी विश्वास है कि भारत के शहरीकरण की दर, इसकी अपवर्जीकरण प्रकृति और ग्रामीण से शहरी प्रवसन को प्रोत्साहित कर पाने की अक्षमता के चलते, धीमी हो जाएगी (कुण्डु 2007, 2011)। हालाँकि, 2011 की जनगणना ने कुछ अनपेक्षित परिणाम दिखलाए हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार, 2001–2011 के दौरान 2.8 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि दर दर्शाते हुए शहरी जनसंख्या बढ़कर 37.7 करोड़ हो गई है (तालिका 2.1)। समग्र तौर पर भारत में शहरीकरण का स्तर 2001 में 27.9 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 31.2 प्रतिशत हो गया। इस तरह से 1991–2001 दशक में 2.2 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में 2001–2011 दशक के दौरान 3.3 प्रतिशत की वृद्धि दर रही। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1990 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 6 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई जबकि इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के दौरान लगभग 8 प्रतिशत की दर से (अहलूवालिया, 2011, पृ. 85–105)। 2001–2011 के दौरान तेजी से शहरीकरण के पीछे आर्थिक वृद्धि की ताकत को यह आंकड़ा स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करता है।

तालिका 2.1: भारत में शहरीकरण की प्रवृत्ति (1961 -2011)

जनगणना का वर्ष	शहरी जनसंख्या (मिलियन में)	शहरी जनसंख्या का कुल जनसंख्या में हिस्सा (%)	घातांकी वार्षिक शहरी वृद्धि दर (%)
1961	78.94	17.97	-
1971	109.11	19.91	3.23
1981	159.46	23.34	3.79
1991	217.18	25.72	3.09
2001	286.12	27.86	2.75
2011	377.10	31.16	2.76

स्रोतः भारत की जनगणना, विभिन्न वर्षों में।

तालिका 2.2: शहरी-ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि अंतर (1971 -2011)

दशक	ग्रामीण	शहरी	शहरी-ग्रामीण वृद्धि अंतर (घातांकी वार्षिक वृद्धि दर (%)
1971-81	1.76	3.79	2.03
1981-91	1.80	3.09	1.29
1991-2001	1.69	2.75	1.06
2001-2011	1.15	2.76	1.61

स्रोतः भारत की जनगणना, विभिन्न वर्षों में।

इस बात पर ध्यान देना उपयुक्त होगा कि शहरी जनसंख्या में वृद्धि अकेले शहरीकरण को तीव्र नहीं कर सकती। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि यदि शहरीकरण की परिघटना घटती है तो शहरी जनसंख्या का वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होती है। इस प्रकार शहरी-ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि में अंतर ही शहरीकरण की प्रक्रिया हेतु महत्वपूर्ण है। तालिका 2.2 स्पष्टतः दिखलाती है कि शहरी-ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि अंतर 1991–2001 में 1.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2001–2011 के दौरान 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गयी था। तालिका 2.2 से यह भी प्रकट होता है कि 2001–2011 के दौरान ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि में पहले की अवधियों की अपेक्षा तेजी से कमी आई।

बॉक्स सं. 2.2

इस बात पर विचार करना पड़ेगा कि शहरी-ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि अंतर दरअसल ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के प्राकृतिक वृद्धियों के अंतर (जन्म-मृत्यु), निवल ग्रामीण वर्गीकरण और निवल ग्रामीण से शहरी प्रवसन का उत्पाद है।

शहरी-ग्रामीण प्राकृतिक वृद्धि अंतर जनगणना अवधियों 1991–2001 और 2001–11 के बीच लगभग स्थिर बना रहा है (प्रति 1000 की जनसंख्या पर चार व्यक्ति)। इसलिए यह निवल ग्रामीण-शहरी वर्गीकरण और निवल ग्रामीण से शहरी प्रवसन है जो उच्च शहरी-ग्रामीण वृद्धि अंतरों के लिए और परिणामतः 2001-2011 के दौरान शहरीकरण को गति प्रदान करने के लिए जिम्मेदार हैं।

अगले अनुभाग में आप शहरीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले प्रवसन के कर्ष-विकर्ष बलों के संबंध में विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

2.4 शहरीकरण के मुद्दे

भारत में शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या शहरी क्षेत्रों की ओर लोगों के प्रवसन के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की कमी के कारण और कुछ अन्य कारणों से बढ़ रही है। और यही नहीं मेट्रोपॉलिटन शहरों की जनसंख्या अन्य दूसरे कस्बों, छोटे शहरों की अपेक्षा अधिक तेज गति से बढ़ रही है जिससे तमाम सामाजिक-पर्यावरणीय समस्याएं जुड़ती जा रही हैं।

यह भी अच्छी तरह से विदित है कि बढ़ता हुआ शहरीकरण और शहरों की वृद्धि आर्थिक विकास से बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, जैसा कि इस पद के सबसे अद्यतन अर्थों से निर्णीत है। संयुक्त राष्ट्र (2008, पृ.1) के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में अपेक्षित जनसंख्या वृद्धि का अधिकांश भाग कम विकसित क्षेत्रों के शहरों और कस्बों में संकेंद्रित होगा। किसी भी भौगोलिक क्षेत्र की बात हो, एशिया ही शहरी जनसंख्या में सबसे अधिक वृद्धि का अनुभव करेगा। इसकी शहरी जनसंख्या के बारे में अनुमान लगाया गया है कि यह 180 करोड़ (1.8 बिलियन) तक बढ़ जाएगा। यहां तक कि आने वाले दशक में बड़े शहरों की संख्या अच्छी खासी बढ़ जाएगी। परिणामस्वरूप मेगा शहरों (1 करोड़ या अधिक की जनसंख्या वाले) में और 50 लाख से 1 करोड़ तक की जनसंख्या वाले छोटे शहरों में विश्व जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि हो जाएगी। 2007 में पूरे विश्व में 19 मेगा शहर थे परन्तु अनुमान है कि 2025 तक इनकी संख्या 25 हो जाएगी; और इनमें से अधिकांश मेगा शहर एशिया में थे।

भारत शहर प्रतिस्पर्धात्मकता रिपोर्ट (सीसीआर), 2011 ने 50 शहरों का मूल्यांकन किया था। इसने शहरों का उनके वित्तीय, सामाजिक, व्यवसाय निष्पादन, तकनीकी, विदेशी कंपनियों की उपस्थिति आदि के समग्र निष्पादन के आधार पर आंकलन किया था। प्रमुख अंग्रेजी दैनिक द टाइम्स ऑफ इंडिया, आईएमआरबी (भारतीय बाजार अनुसंधान ब्यूरो) ने देश के आठ सबसे वृहद शहरी संकुलों में 'जीवन की गुणवत्ता सर्वेक्षण' नाम से एक मतगणना आयोजित की थी। इसमें चुने गए शहरों में ऐसे शहर थे जिनकी जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 50 लाख या अधिक थी। इसके निकले परिणाम निम्नवत हैं:

तालिका 2.3: जीवन की गुणवत्ता

आधार/स्कोर	अहमदाबाद	पुणे	दिल्ली	मुम्बई	बेंगालुरु	हैदराबाद	चेन्नई	कोलकाता
सामाजिक अवसंरचना	3.2	3.1	3.3	3.0	3.2	3.0	3.1	2.5
पर्यावरण	2.6	2.8	2.8	2.1	2.9	2.5	2.2	2.1
भौतिक एवं नागरिक अवसंरचना	3.4	3.0	2.7	3.3	2.6	2.8	2.5	2.4
आराम की सुविधाएं	3.0	3.1	3.1	3.5	2.9	3.0	3.0	3.0
सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य	3.2	3.1	2.6	3.1	3.0	3.2	2.9	3.1
जीवन की गुणवत्ता	2.7	2.7	2.2	2.2	2.4	2.7	2.3	2.3
अभिगमन की सुगमता	2.2	1.9	2.5	2.5	2.1	2.3	2.3	2.3

स्रोतः इकोनॉमिक टाइम्स (टाइम्स ऑफ इंडिया), दिसम्बर 11, 2011

आइए, हम चर्चा करते हैं कि उपरोक्त तालिका 1 से 5 तक के स्केल पर हमें क्या दर्शाती है:

- **सामाजिक अवसंरचना:** भारत के आठ सबसे बड़े शहर, सभी औसत या उससे थोड़ी बेकार रेटिंग में ही समाप्त हो गए और कुछ बिल्कुल स्पष्ट कारण हैं कि ऐसा क्यों है। शुरुआत के लिए, यही देखना सही होगा कि अभिगमन उन सभी में समस्या का एक क्षेत्र है। कुछ मामलों में यह इसलिए है कि सार्वजनिक परिवहन अवसंरचना अनुपस्थित है और दूसरों में इसलिए कि भारी ट्रैफिक और पार्किंग का संताप जीवन को नरक बना देता है।

- **पर्यावरण:** समस्या का दूसरा क्षेत्र 'पर्यावरण' की व्यापक श्रेणी है। हालाँकि मौसम के बारे में प्रशासक कुछ नहीं कर सकते, वायु की गुणवत्ता प्रत्येक शहर के लिए एक चिंता की तरह उभरी है और यही हाल खुली जगहों और खेलकूद की सुविधाओं का है। यह व्यापक श्रेणी यह निर्णय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है कि लोग अपने शहर में जीवन की गुणवत्ता को किस तरह देखते हैं।

- **भौतिक और नागरिक संरचना:** बिजली और पानी आपूर्ति के मामले में हालाँकि भौतिक संरचना को काफी मजबूत किया गया है, नागरिक अवसंरचना– जैसे कि कानून और व्यवस्था, दक्ष और साफ सुथरा स्थानीय प्रशासन हमारे नागरिकों का केवल सपना भर रह गया है।

- **जीवन की गुणवत्ता:** ऐसी अवधि में जबकि मुद्रास्फीति की उच्च दर बनी हुई थी, विशेष रूप से खाद्यान्नों में, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जीवन की लागत एक ऐसा मानदण्ड है जिस पर हर शहर की रैंकिंग कम आई है। यह पूर्वानुमान गलत नहीं था कि हर शहर के निवासियों ने कहा कि उनके शहरों में जीवन आरामदायक की अपेक्षा तनावपूर्ण अधिक है। सिविक सेंस और बल्कि इसकी कमी को प्रत्येक शहर में एक समस्या की तरह माना गया है और उनमें से कोई भी 1 से 5 तक के स्केल में 2.5 से अधिक अंक नहीं प्राप्त कर सका।

- **आराम की सुविधाएं:** कुछ लचीले परिदृश्यों पर जवाब देने वालों से अच्छा स्कोर मिला है। उदाहरण के लिए, आराम की सुविधाओं के मामले में हर शहर को लगभग समान रूप से 'औसत' और 'अच्छा' के बीच का स्कोर मिला है, फिर भी रात्रि भ्रमण या रात की ज़िन्दगी एक अपेक्षा ही थी। 'सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य' एक और श्रेणी थी जहां जवाब देने वालों ने अपने शहरों को अपेक्षाकृत अच्छी रेटिंग दी है, राष्ट्रीय राजधानी हालाँकि इस नियम का एकमात्र अपवाद रहा।

- **सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य:** चेतावनी या विरोध यहां मान्य है। यह मत उन लोगों तक सीमित था जो सामाजिक-आर्थिक श्रेणियों में सबसे उच्च स्तर पर थे और उनके लिए जो 60 साल की आयु तक थे। आख्यान संबंधी सभी साक्ष्य यह प्रस्थापना करते हैं कि हमारे शहर बुजुर्ग लोगों और आर्थिक रूप से सबसे निचले पायदान पर रह रहे लोगों के लिए विशेष रूप से सख्त और कठिन हैं।

प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि, निवल ग्रामीण-शहरी वर्गीकरण और ग्रामीण से शहर की ओर प्रवसन शहरी जनसंख्या वृद्धि के घटक हैं। शहरी जनसंख्या वृद्धि की गतिकी को समझने के लिए उनके सापेक्षिक योगदान का आंकलन बहुत महत्वपूर्ण है। यह दिखलाता है कि निवल ग्रामीण-शहरी वर्गीकरण और ग्रामीण से शहरी प्रवसन का योगदान 1991–2001 में 42 से बढ़कर 2001–2011 में 56 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस क्षण उपलब्ध 2011 की

जनगणना के आंकड़े अभी इन दो कारकों को अलग करने की इजाजत नहीं देते परन्तु यह जरूर दिखलाते हैं कि 2011 में बड़ी संख्या में नए शहरों का उदय हुआ है। राष्ट्रीय स्तर पर शहरों की संख्या 5,161 से बढ़कर 7,935 हो गयी जिसका अर्थ है 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 में 2,774 नए शहर (2,532 जनगणना नगर और 242 वैधानिक नगर) जुड़ गए हैं।

चूंकि 2001 और 2011 की जनगणनाओं के बीच 'शहरी' की परिभाषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, इसने तेजी से होते शहरीकरण में महत्वपूर्ण रूप से योगदान दिया है इसके बावजूद कि इसी दौरान कई मेट्रोपॉलिटन शहर अपने वृद्धि दरों में तीव्र गिरावट दिखा रहे हैं (कुण्डु, 2011)। दूसरी ओर शहरी जनसंख्या वृद्धि में प्राकृतिक वृद्धि का योगदान 1981–91 के दौरान सर्वाधिक 62 प्रतिशत से घटकर 2001-2011 के दौरान 44 प्रतिशत रह गया है। फिर भी इस प्राकृतिक वृद्धि ने 4 करोड़ के लगभग भारी जनसंख्या को 2001-2011 के दौरान शहरी क्षेत्रों में जोड़ा है। भारत के शहरीकरण के अध्ययन में, प्राकृतिक वृद्धियों ने उतना ध्यान आकर्षित नहीं किया है जितना कि ग्रामीण से शहरी प्रवसन ने। इससे यह लोकप्रिय विश्वास बनता गया है कि शहरी जनसंख्या केवल प्रवसन के चलते बढ़ रही है।

2.5 शहरीकरण और प्रवसन

भारत में शहरीकरण की समस्याओं पर पहली बार विचारणीय रूप से विस्तृत चर्चा बर्कले (कैलिफ़ोर्निया) में 1960 में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में हुई थी। इस सेमिनार का भारत में शहरीकरण के अध्ययन में बहुत बड़ा योगदान यह रहा कि इसी के बाद 1962 में एक पुस्तक प्रकाशित हुई।

1961 की जनगणना के परिणाम दिखलाते थे कि 1951 से शहरीकरण बहुत तीव्र गति से नहीं हुआ। और दो भयंकर ताकतें भारत में उन्मुक्त कर दी गईं:

- जनसंख्या वृद्धि की अपेक्षाकृत तीव्र दर और
- शहरीकरण की बढ़ती हुई तेज दर।

1951–61 के दशक के लिए जनसंख्या वृद्धि की जो दर प्रकट हुई वह अनपेक्षित रूप से बहुत ऊँची 21.5 प्रतिशत थी। दूसरी ओर शहरी जनसंख्या के बारे में सारे अनुमान बहुत ही अधिक आंकने वाले साबित हुए। 1961 की जनगणना से शहरी वृद्धि की बहुत ही कम दर पता चली जो 1951–61 के दशक के लिए मात्र 26.4 प्रतिशत थी।

शहरी जनसंख्या का कुल जनसंख्या से अनुपात कच्छप गति से बढ़ता हुआ 1951 में 17.3 प्रतिशत से बढ़कर 1961 में सिर्फ 18.0 प्रतिशत (यदि नई परिभाषा के अनुसार समायोजन कर दिया जाता तो 19 प्रतिशत) तक पहुंच सका। इस प्रकार 1951–61 दशक के दौरान शहरीकरण स्तब्धकारी या भयंकर नहीं था। (मेहता, 1962)।

यह दर्ज करना बहुत आश्चर्यजनक है कि ग्रामीण-शहरी प्रवसन में लगभग 37 प्रतिशत की कमी उस समय आई जबकि देश ने दो पंचवर्षीय योजनाएं सफलतापूर्वक पूरी कर ली थीं और साथ ही साथ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों का साक्षी बना था।

शहरीकरण के संदर्भ में 1961 की जनगणना का विश्लेषण स्पष्ट करता है कि शहरीकरण का विषय और स्वरूप भी परिवर्तित तथा परिवर्धित हुए। शहर से शहर में प्रवास, विशेष रूप से छोटे कस्बों से बड़े शहरों की ओर प्रवास वर्धक तौर पर महत्वपूर्ण रहा। यह एक दूसरा कारक था कि ग्रामीण से शहरी प्रवसन की रफ्तार कम होती गई।

बॉक्स सं. 2.3

यह संभव है कि लोग ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर धकेले जाएं और उनमें से बहुत लोगों को पुनः वापस शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर या फिर दूसरे शहरी क्षेत्रों की ओर धकेल दिया जाए। 'धक्का' हमेशा कोई बहुत साफ-सुथरा एक दिशीय प्रवाह वाली कार्यवाही नहीं होती। यह आगे या पीछे या किसी और दिशा में भी हो सकता है।

भारत के कई क्षेत्रों में विकास योजनाओं, शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, सुधरी हुई परिवहन और संचार व्यवस्था इत्यादि के चलते हाल के वर्षों में प्रवसन की गति बढ़ी हुई हो सकती है। परन्तु इस बात पर तर्क दिया जाता है कि बड़े पैमाने पर उल्टा या विपरीत प्रवसन तीव्र जनसंख्या वृद्धि की स्थितियों के अधीन धीमी आर्थिक वृद्धि का पहचान है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसरों की कमी ने अनैच्छिक गतिशीलता की स्थितियां पैदा की हैं जिससे उल्टा या विपरीत प्रवसन भी हुआ है।

प्रवसन की प्रवृत्तियां और अनुमान

औपनिवेशिक अवधि के दौरान भारतीय लोगों का वर्णन उच्च रूप से गतिहीन जनसंख्या की तरह किया जाता था। शिक्षा का निम्न स्तर, प्रवसन से जुड़ी हुई अनिश्चितता का सामना करने की कमतर क्षमता, बेकार परिवहन और संचार सुविधाएं, परम्परागत मूल्य प्रणाली और अन्य सामाजिक कारकों को प्रायः भारतीयों के प्रवसन की निम्न दर के कारण की तरह माना जाता है। **किंग्सले डेविस** ने अपने पथप्रदर्शक कार्य ''द पॉपुलेशन ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान'' में इस गतिहीनता के लिए जाति प्रथा की व्यापकता, संयुक्त परिवार व्यवस्था, कम उम्र में विवाह की प्रथा, भाषा और संस्कृति की विविधता, शिक्षा की कमी और अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रधानता आदि कारणों को जिम्मेदार ठहराया है। उन्होंने तर्क दिया है कि जाति और परिवार प्रणाली और परम्परागत मूल्यों से बंधा हुआ एक समाज प्रायः प्रवसन के लिए निवारक या हतोत्साहित करने वाले की तरह काम करता है (मेहता में उद्धृत, 1962)।

हालाँकि बहुत से ऐसे जनसांख्यिकीविद हैं जो देश में सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता होने के बावजूद प्रवसन की इस दर को बहुत कम नहीं मानते हैं। व्यापक तौर पर यह महिलाओं में प्रवसन की उच्च दर के कारण है। वास्तव में देश के भीतर प्रवसन धाराओं में महिलाएँ अधिक प्रभावशाली रही हैं क्योंकि उनका विवाह हमेशा या अधिकांशतः गांव के बाहर होता था और महिलाएँ विवाह के पश्चात पति या उसके परिवार में ही जाकर रहती थीं। यहां तक कि प्राकृतिक आपदाओं जैसे कि अकाल के चलते पुरुषों में भी प्रवसन अपेक्षाकृत उच्च था, जिसने हजारों लोगों को भरण-पोषण की खोज में ग्राम्य प्रणाली से बाहर शहरों, कस्बों या अच्छे ग्रामीण क्षेत्रों की ओर खदेड़ दिया।

डेविस के तर्क द्वारा, कोई भी तर्क करेगा कि शिक्षा के स्तर, परिवहन और संचार सुविधाओं में सुधारों से, कृषि से उद्योगों की ओर कार्यबल के स्थानान्तरण से और तृतीयक क्षेत्र की बढ़ती गतिविधियों ने स्वातंत्र्योत्तर अवधि में गतिशीलता में वृद्धि की है। हालाँकि मजे की बात यह है कि भारत में जनसंख्या गतिशीलता की प्रवृत्तियों का विश्लेषण स्पष्ट करता है कि शिक्षा और संचार सुविधाओं में महत्वपूर्ण सुधारों, अर्थव्यवस्था के विविधीकरण और आदर्शों और मूल्यों में आधुनिकीकरण के बावजूद कम से कम 1960 के दशक के बाद से जनसंख्या की गतिशीलता में कमी आई है।

प्रवसन का ऐतिहासिक परिदृश्य प्रस्तुत करने के लिए, 1961–91 के दौरान आंतरिक प्रवसन का पैटर्न, पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए आजीवन के साथ-साथ दो जनगणनाओं के बीच के आंकड़े तालिका 2.3 में प्रस्तुत किए गए हैं। ये आंकड़े जनगणना स्रोतों से लिए गए हैं। इनसे उल्लिखित किया जा सकता है कि 1961–71 के दौरान निरपेक्ष प्रवसनों की संख्या में कमी आई थी। जनगणना प्रकाशनों ने इस कमी के लिए प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए आरम्भ किए गए सकारात्मक उपायों, खाद्यान्न और अन्य आवश्यकताओं के लिए बेहतर वितरण प्रणाली और शैक्षिक और स्वास्थ्य सुविधाओं की बेहतर व्यापकता को जिम्मेदार बताया है। यह बात का पता लगाने के लिए कि क्या 1960 के दशकों में आर्थिक विषमता में कमी आई थी और आधारभूत सुविधाओं का वितरण अधिक संतुलित हुआ था, कोई भी गम्भीर अध्ययन नहीं कराया गया था। वास्तव में, जब विभिन्न सामाजिक-आर्थिक आयामों में असमानता में वृद्धि का अवलोकन किया जाता है तो उपरोक्त निष्कर्षों को गम्भीरतापूर्वक प्रश्नगत किया जा सकता है, जो आंशिक रूप से हरित क्रांति के पहले दौर से जुड़ा था।

प्रवासी जनसंख्या की वृद्धि दर में 1971–81 के दौरान बहुत सीमांत रूप से बढ़ोत्तरी शुरू हुई थी जो प्रवासियों की प्रतिशतता में मामूली सुधार के रूप में प्रकट हुई। लेकिन यह वृद्धि महिला प्रवासियों की वृद्धि के कारण हुई थी जिसके लिए सामाजिक-सांस्कृतिक कारक जिम्मेदार थे। जहां तक पुरुषों का सवाल था, प्रवासियों की वृद्धि दर ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि दर से कम थी, जिसके परिणामस्वरूप 1961-91 के दौरान प्रतिशतता के आंकड़ों में लगातार गिरावट होती रही। महत्वपूर्ण रूप से, चूंकि महिला प्रवसन का बड़ा हिस्सा विवाह और अन्य सामाजिक कारकों के कारण था, इसलिए आर्थिक कारणों से श्रमिकों की गतिशीलता पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए सिर्फ पुरुष प्रवसन के पैटर्न पर ध्यान देना ही उचित होगा।

तालिका 2.3: भारत में आंतरिक प्रवसन का स्वरूप (1961-91)

श्रेणियां	प्रवासियों की संख्या(मिलियन में)				वृद्धि दरें (प्रतिशत में)		
	1961	1971	1981	1991	1961–71	1971–81	1981–91
कुल जनसंख्या	439.20	548.20	683.30	846.30	24.80	24.70	23.90
कुल प्रवासी							
अ. दो जनगणनाओं के मध्य	66.00 (15.00)	68.20 (12.40)	81.00 (12.30)	80.90 (9.70)	3.20	18.80	00
अ1. दो जनगणनाओं के मध्य अन्तर राज्यीय	8.70 (2.00)	8.50 (1.60)	10.90 (1.60)	11.10 (1.30)	.2.10	27.40	2.00
ब. पूरे जीवनकाल	134.60 (30.60)	157.40 (28.70)	195.80 (29.40)	222.60 (26.50)	16.90	24.40	13.70
ब1. पूरे जीवनकाल अन्तर राज्यीय	14.50 (3.30)	18.60 (3.40)	24.00 (3.60)	27.30 (3.30)	28.30	28.90	13.70
पुरुष जनसंख्या	226.30	284.0	353.30	439.20	25.50	24.40	24.60
पुरुष प्रवासी							
अ. अंतर जनगणनीय	25.60 (11.30)	26.80 (9.40)	30.40 (8.90)	26.70 (6.10)	4.70	13.70	12.30

अ1. अंतर जनगणनीय अंतर राज्यीय	5.10 (2.20)	5.10 (1.80)	5.50 (1.60)	5.20 (1.20)	1.50	7.60	.5.20
ब. जीवनकाल	41.50 (18.30)	48.80 (17.20)	57.20 (16.60(	60.00 (13.80)	17.60	17.10	5.00
ब1. जीवनकाल अंतर राज्यीय	7.80 (3.40)	9.60 (3.40)	11.50 (3.30)	12.20 (2.80)	22.90	19.90	5.80
महिला जनसंख्या	212.9	264.10	330.00	407.10	24.00	24.90	23.40
महिला प्रवासी							
अ. अंतर जनगणनीय	40.50 (19.00)	41.40 (15.70)	50.50 (15.70)	54.30 (13.50)	2.30	22.00	7.40
अ1. अंतर जनगणनीय अंतर राज्यीय	3.70 (1.70)	3.40 (1.30)	5.30 (1.70)	5.90 (1.50)	.7.00	57.40	9.50
ब. जीवनकाल	93.10 (43.70)	108.60 (41.10)	138.60 (43.10)	162.60 (40.30)	16.60	27.70	17.30
ब1. जीवनकाल अंतर राज्यीय	6.70 (3.20)	9.00 (3.40)	12.50 (3.90)	15.10 (3.80)	34.50	38.50	20.90
ग्रामीण पुरुष जनसंख्या	186.10	225.30	268.50	324.40	21.00	19.20	20.80
ग्रामीण पुरुष जनसंख्या							
अ. अंतर जनगणनीय	15.40 (8.40)	15.90 (7.10)	16.30 (6.30)	13.40 (4.20)	3.50	2.30	−18.00
अ1. अंतर जनगणनीय अंतर राज्यीय	1.70 (0.90)	1.80 (0.80)	1.80 (0.70)	1.50 (0.50)	9.10	.3.00	−15.80
ब. जीवनकाल	25.40 (13.90)	29.10 (12.90)	30.00 (11.50)	30.40 (9.40)	14.40	3.10	1.10
ब1. जीवनकाल अंतर राज्यीय	2.50 (1.40)	3.00 (1.30)	3.10 (1.20)	3.00 (0.90)	18.90	3.00	−2.30
शहरी पुरुष जनसंख्या	42.80	58.70	84.90	114.90	37.30	44.50	35.40
शहरी पुरुष जनसंख्या							
अ. अंतर जनगणनीय	10.20 (23.80)	10.80 (18.50)	14.10 (16.90)	13.30 (11.70)	6.40	30.50	−5.90
अ1. अंतर जनगणनीय अंतर राज्यीय	3.40 (7.90)	3.30 (5.60)	3.70 (4.40)	3.70 (3.30)	.2.40	13.20	0.20
ब. जीवनकाल	16.10 (37.50)	19.70 (33.60)	27.10 (32.40)	29.60 (26.00)	22.70	37.70	9.20
ब1. जीवनकाल अंतर राज्यीय	5.30 (12.30)	6.60 (11.20)	8.40 (10.00)	9.10 (8.00)	24.80	27.60	8.70

स्रोतः वर्ष 1961 के लिए डी-।।। तालिका और 1971, 1981 और 1991 की जनगणनाओं की डी-।। तालिका।

पिछले दो अनुभागों की अपनी समझ का आंकलन करने के लिए निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) 'शहरीकरण' को परिभाषित कीजिए। भारत में इसकी प्रक्रिया क्या है?

2) शहरीकरण के प्रमुख मुद्दे क्या हैं?

3) क्या आप सोचते हैं कि प्रवसन और शहरीकरण परस्पर संबंधित परिघटनाएं हैं?

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

आइए, प्रवसन के कारणों पर दृष्टिपात करें।

2.6 प्रवसन के कारण

पहली बार, 1981 की जनगणना ने प्रवसन के कारणों पर आंकड़े इकट्ठा करने का प्रयास किया जिसे मोटे तौर पर रोजगार, शिक्षा, विवाह, परिवार के प्रवास के चलते और अन्य कारणों में वर्गीकृत किया गया था। ये आंकड़े सिर्फ पिछले निवास से हटने को लेकर उपलब्ध थे। कारणों के आधार पर प्रत्येक प्रवसन धारा का प्रतिशत वितरण तालिका 2.4 में दिया गया है। तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुरुष अधिकांशतया रोजगार (32.0 प्रतिशत) के कारण प्रवसित हुए और महिलाएँ सर्वाधिक विवाह (73.4 प्रतिशत) के कारण। लगभग 30 प्रतिशत पुरुष अपने परिवारों की गतिशीलता के साथ-साथ प्रवसित हुए और 29.1 प्रतिशत पुरुष अन्य कारणों से। जबकि 2 प्रतिशत से भी कम महिलाएँ रोजगार के चलते प्रवसित हुईं और मात्र 0.9 प्रतिशत महिलाएँ शिक्षा के लिए। दूरी और मूलस्थान/गंतव्य के आधार पर भी प्रवसन के कारणों में अंतर रहा। पुरुषों के लिए जो लोग रोजगार के लिए स्थानांतरित प्रवासियों का अनुपात दूरी बढ़ने के साथ बढ़ता है। छोटी दूरियों के प्रवास में:

तालिका 2.4: प्रवास के कारणों द्वारा प्रवासियों का वितरण, भारत, 1981

प्रवास के प्रकार	पुरुषों के प्रवास के कारण (%)					महिलाओं के प्रवास के कारण (%)				
	रोजगार	शिक्षा	परिवार गमन	विवाह	अन्य	रोजगार	शिक्षा	परिवार गमन	विवाह	अन्य
अन्तःजनपदीय										
ग्रामीण–ग्रामीण	15.9	4.7	33.5	6.3	39.6	0.8	0.4	7.6	82.8	8.4
ग्रामीण–शहरी	35.4	11.5	27.6	1.8	23.7	3.5	2.8	24.6	57.0	12.1
शहरी–ग्रामीण	21.8	3.3	32.1	2.7	40.1	2.6	0.9	18.3	61.7	16.5
शहरी–शहरी	31.0	4.7	35.8	1.4	27.1	3.8	1.9	32.8	45.5	16.0
योग	21.7	6.0	32.4	4.7	35.2	1.3	0.7	10.5	78.2	9.3
अन्तर–जनपदीय										
ग्रामीण–ग्रामीण	25.7	4.0	35.1	4.2	31.0	1.7	0.5	10.5	79.6	7.7
ग्रामीण–शहरी	50.4	8.2	22.5	1.0	19.9	4.7	2.6	31.3	49.2	12.2
शहरी–ग्रामीण	28.9	4.2	31.6	2.1	33.2	3.6	1.3	22.6	58.2	14.3
शहरी–शहरी	40.2	6.0	31.9	0.9	21.0	4.5	2.4	35.2	44.1	13.8
योग	37.9	5.9	29.9	2.1	24.2	2.9	1.2	19.4	66.4	10.1
अन्तर–राज्यीय										
ग्रामीण–ग्रामीण	37.8	2.1	31.3	2.8	26.0	3.7	0.5	15.5	71.5	8.8
ग्रामीण–शहरी	61.4	4.0	18.0	0.6	16.0	5.6	2.0	37.3	42.0	13.1
शहरी–ग्रामीण	33.3	2.9	28.7	1.4	33.7	4.8	1.6	27.9	50.4	15.3
शहरी–शहरी	48.9	4.8	26.8	0.8	18.7	5.0	2.4	37.9	41.2	13.5
योग	50.5	3.8	24.3	1.1	20.3	4.7	1.5	28.4	53.6	11.8
कुल										
ग्रामीण–ग्रामीण	19.7	4.3	33.7	5.6	36.7	1.1	0.4	8.5	81.7	8.3
ग्रामीण–शहरी	27.6	8.3	23.3	1.2	19.6	4.3	2.6	29.00	51.9	12.2
शहरी–ग्रामीण	28.3	3.5	31.3	2.3	36.6	3.2	1.1	20.9	59.1	15.7
शहरी–शहरी	40.8	5.3	31.2	1.0	21.7	4.4	2.3	35.3	43.7	14.3
योग	32.0	5.6	30.1	3.2	29.1	1.9	0.9	14.1	73.4	9.7

स्रोतः भारत की जनगणना, 1981, श्रृंखला–1, भाग पांच–ए, और बी (।।), प्रवसन तालिका डी–3, महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त।

- केवल 21.7 प्रतिशत रोजगार उद्देश्यों से था;
- मध्यम दूरी या अन्तर जिला प्रवासियों के लिए वही प्रतिशतता 37.9 प्रतिशत थी;
- लंबी दूरी के प्रवासों में यही प्रतिशतता लगभग 51 प्रतिशत रही।

जब प्रवास की दूरी निश्चित होती है तो रोजगार के उद्देश्यों से ग्रामीण से शहरी और शहरी से शहरी प्रवास धाराओं का अनुपात अन्य प्रवासी धाराओं की तुलना में अधिक होता है।

- ग्रामीण से शहरी आवाजाहियों का 61 प्रतिशत से अधिक और
- शहरी से शहरी क्षेत्र में रोजगार हेतु अन्तरराज्यीय पुरुष प्रवास 48.9 प्रतिशत रहा।

महिलाओं के मामले में, सर्वाधिक प्रतिशतता (82.8 प्रतिशत विवाह के कारणों से) ग्रामीण क्षेत्रों के बीच छोटी दूरियों के प्रवासों में देखा गया। जब प्रवासियों की संख्या का विश्लेषण ग्रामीण/शहरी और मूलस्थान/गंतव्य के आधार पर किया गया तो अधिकांश पुरुष, जो रोजगार के उद्देश्यों से प्रवसित हुए थे, अन्तरराज्यीय प्रवासी थे। **कुल मिलाकर, महिलाओं के लिए विवाह और पुरुषों के लिए रोजगार और परिवार का प्रवास भारत में जनसंख्या प्रवसन के सबसे बड़े कारण हैं।**

भूतकाल की प्रवृत्तियों को देखते हुए 2007-08 में ग्रामीण महिला प्रवासियों का हिस्सा बहुत उच्च स्तर 47.1 प्रतिशत पर रहा उनके साथी पुरुषों के तुच्छ हिस्से 5.4 प्रतिशत की तुलना में। उसी अवधि के दौरान शहरी महिला प्रवासियों का हिस्सा 45.6 प्रतिशत रहा जबकि उनकी तुलना में पुरुषों का मात्र 25.9 प्रतिशत। 2007-08 में ग्रामीण महिला प्रवासियों का 60.8 प्रतिशत हिस्सा विवाह के चलते और उसके पश्चात 29.4 प्रतिशत उनके माता-पिता/अर्जक सदस्य के गमन के चलते हुआ। उसी अवधि के दौरान 55.7 प्रतिशत पुरुष प्रवासी रोजगार के कारणों से और उसके पश्चात 25.2 प्रतिशत माता पिता/अर्जक के गमन के चलते प्रवासी हुए।

2.7 प्रवसन के प्रभाव

ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवसन, औद्योगीकरण, तकनीकी प्रगति और अन्य सांस्कृतिक परिवर्तनों से नजदीकी क्रियात्मक संबंध रखता है जो विश्व के लगभग सभी भागों में आधुनिक समाज के विकास की विशेषता रही है। प्रवसन सिर्फ शहरों की तरफ आकर्षण या गांवों से विकर्षण के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह कई अन्य कारकों की मिलीजुली अन्तर्क्रिया है। जब ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई जनसंख्या शहरों की ओर फैलने लगी तो आने वाली यह अत्यधिक जनसंख्या इतने बड़े पैमाने पर विसरित हुई कि शहर उसे अपने में समाहित न कर सके। चूंकि गांवों से आने वाले कामगार लोगों का एक विचारणीय हिस्सा आधुनिक विनिर्माण द्वारा उठाई गई मांगों को पूरा करने में असमर्थ था क्योंकि उनके पास उतनी कुशलता नहीं थी और न उतना अनुभव। इसके अतिरिक्त नगरीय क्षेत्र और गांवों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर के कारण प्रवासियों के लिए शहरी वातावरण से अनुकूलन करने में बहुत कठिनाई हुई; शहर के प्रभाव का साधारणीकरण करके केवल शहर के आकर्षण और इसी तरह गांव के प्रभाव के विकर्षण तक सीमित नहीं कर सकते।

अब हम कुछ महत्वपूर्ण कारकों के बारे में पढ़ते हैं जो ग्रामीण से शहरी स्थितियों की ओर प्रवास को शासित करते हैं।

1) आर्थिक कारकः

अ) गांवों की तुलना में बढ़ते हुए शहरों में रोजगार अवसरों का विस्तृत होना

ब) ग्राम-शहर मजदूरी में अंतर और आय वितरण

स) संपत्ति को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखना

द) शहरों में बेहतर जीवन स्थितियां

2) सामाजिक कारकः

अ) पेशागत अवसर

ब) शैक्षणिक संभावना

स) जाति

3) व्यक्तिगत कारकः

अ) लिंग

ब) उम्र

स) निवास का स्थान

विद्रोहों या संघर्षों वाले स्थानों पर लोगों की सुरक्षा को भी प्रवास के एक महत्वपूर्ण कारक के तौर पर देखा गया है। अब हम पढ़ते हैं कि प्रवसन के प्रभाव क्या होते हैं।

प्रथम सर्वप्रमुख प्रभाव है **असमान क्षेत्रीय विकास**। शहरीकरण और औद्योगीकरण के लिए सुविधाओं का सृजन करने में अधिकांश संसाधन समाप्त हो जाते हैं जिससे कि देश के अन्य हिस्सों को अन्तहीन रूप से अधिकारियों से कुछ अनुग्रह और विशेषाधिकार की अपेक्षा करते हुए छोड़ देते हैं। इसलिए अनुग्रहीत और गैर-अनुग्रहीत क्षेत्रों के बीच संघर्ष उठ खड़ा होता है।

दूसरा प्रभाव शहरी क्षेत्रों का भौगोलिक अस्तित्व की तरह सृजन करने से संबंधित है। इससे दो प्रकार का निर्मूलन घटित होता है। पहला तो यह कि कुछ लोग अपने परम्परागत ग्रामीण स्थितियों से उखाड़ दिए जाते हैं जिससे कि वे शहरी क्षेत्रों में पुनः बस सकें और दूसरा यह कि शहरों के मूल निवासी भी उखाड़ दिए जाते हैं और उन्हें नए स्थानों पर बसने को मजबूर किया जाता है। विकास में क्षेत्रीय विषमता के कारण यह समस्या सर्वाधिक प्रासंगिक बन जाती है। ऐसे क्षेत्र जहां सुविधाएं सृजित की जाती हैं देश के दूसरे भागों से जनसंख्या के अविरल प्रवाह को आकर्षित करते हैं। इसलिए शहरी परिवृत्त का भौगोलिक क्षेत्रफल अनन्त तक बढ़ता चला जाता है जिससे अधिक गहन सामाजिक तनावों का उदय होता है। भारत में यह सभी औद्योगीकृत शहरी क्षेत्रों का सामान्य अनुभव है।

ग्रामीण जनसंख्या के शहरों में भारी संख्या में अन्तःप्रवाह का एक महत्वपूर्ण प्रभाव **आवास समस्या** का तीव्रता से गुरुतर हो जाना है, विशेष रूप से विकासशील देशों में। इसका परिणाम बड़े शहरों में सामान्य पारिस्थितिकीय संतुलन में विकृति होता है, जहां 30–50 प्रतिशत जनसंख्या जीर्ण-शीर्ण मकानों/झोपड़ियों में रहती है।

इन झुग्गी-झोपड़ी वालों के लिए **प्रवसन, स्वास्थ्य, पोषण और यहां तक कि शिक्षा** की समस्या का कारण बनता है और उन्हें दुखमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यह शहरों में रहने वाले लोगों के लिए शारीरिक एवं अन्य समस्याओं का कारण बनता है क्योंकि जनसंख्या का प्रवाह असंगत और अव्यवस्थित होता है।

शहरों में असंगत प्रवाह के साथ, स्वच्छता की समस्या इत्यादि बहुत भयंकर रूप से बढ़ती है और प्रदूषण बढ़ता है। यह उपयोगिताओं और परिवहन इत्यादि पर बोझ बढ़ाता है

जिसके लिए शहर का नियोजन भी नहीं किया गया होगा। लोगों का भारी प्रवाह इन क्षेत्रों में अस्थायी बेरोजगारी पैदा करता है और शहरों में सभी प्रकार के भ्रष्टाचार का उदय होता है।

ग्रामीण जनसंख्या के तेज अन्तःप्रवाह को समायोजित करने के लिए शहरों के आसपास बहुत सारी कृषि योग्य उपजाऊ भूमियों का अधिग्रहण किसानों से बहुत कम लागत पर किया जाता है। जब लोग अपनी भूमियों के बदले मुआवजा पाते हैं तो वे शहरी जीवन अंगीकार करने की कोशिश करते हैं और अपना धन विलासिता में खर्च कर देते हैं। वे अपनी परम्परागत खेती करने में असमर्थ हो जाते हैं और धीरे-धीरे आर्थिक रूप से असुरक्षित बन जाते हैं। जब उनके पास आय का कोई नियमित साधन नहीं होता तो आसानी से धन कमाने के लिए वे गैरकानूनी गतिविधियों तक में लग जाते हैं।

अधिकांशतया शहरीकरण दीर्घावधि योजनाओं के आधार पर नहीं होता और प्रवाह के दर के अनुसार होता रहता है, जो कभी-कभार आकस्मिक भी होता है। इसलिए सबसे अच्छी उत्पादक भूमियों का अधिग्रहण ऊँची-ऊँची इमारतें खड़ी करने के लिए किया जाता है। एक तरफ तो यह देश में खेतिहर उत्पादन को प्रभावित करता है और दूसरी ओर अच्छे किसानों को शहरों के लिए एक बोझ बनाकर विस्थापित करता है।

रोजगार अवसरों से आर्थिक लाभ के साथ, ग्रामीण शिल्पकार अपनी अच्छे कौशल के साथ शहरों की ओर चले जाते हैं परन्तु कई अपना व्यवसाय शहरों में जारी नहीं रख पाते। यह परम्परागत संस्कृति के साथ-साथ परम्परागत कुटीर उद्योग के लिए भी बड़े धक्के का कारण बनता है। यह आगे चलकर आर्थिक विषमता भी पैदा करता है।

प्रवासी लोग अधिकांशतः गांवों में अपने संबंधों को संजोकर रखते हैं और अक्सर गांव जाते हैं। उनका भव्य जीवन गांवों में मासूम जवान लड़कों और लड़कियों को आकर्षित करता है जो प्रवसन के लिए अवसरों की तलाश में लालायित हो जाते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) भारत में प्रवसन में क्या प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं?

2) प्रवसन के लिए कौन-कौन से कारक उत्तरदायी हैं?

3) प्रवसन के प्रभावों को सूचीबद्ध कीजिए।

निम्नलिखित अनुभाग में आप पढ़ेंगे कि प्रवसन महिलाओं को कैसे प्रभावित करता है।

2.8 महिलाएँ और प्रवसन

महिलाओं के बढ़ते प्रवसन के साथ, प्रवसन की प्रक्रिया के सिलसिले में तृतीय विश्व के देशों में जेंडर संबंधित मुद्दे बहुत महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इन देशों में से कई में ग्रामीण से शहरी प्रवसन में महिलाएँ हावी हैं। कुछ अन्य देशों में ग्रामीण से शहरी प्रवसन धारा में उनका हिस्सा बहुत तेजी से बढ़ रहा है। यह अवलोकन किया गया है कि बढ़ते हुए शहरीकरण के साथ शहरों की ओर महिलाओं की प्रवासी धारा उल्लेखनीय ढंग से बढ़ रही है।

ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर होने वाले इस भौतिक गमन में वृद्धि के साथ महिलाओं के लिए नई भूमिकाएं, शहरों में रहने से संबंधित नई समस्याएं और महिलाओं की स्थिति में आमूल परिवर्तन के दृश्य सामने आ रहे हैं। हालाँकि, इन भूमिकाओं में प्रवेश का तात्पर्य ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाली महिलाओं के लिए सिर्फ एक भिन्न स्थिति नहीं है बल्कि वह एक नए नीति परिदृश्य की मांग करती है जिसके महत्वपूर्ण आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और जनसांख्यिकीय आयाम हैं। (फॉसेट और अन्य, 1984)।

1981 की जनगणना तक, प्रवसन के आंकड़ों में कामकाजी स्थिति के साथ-साथ सभी कामगार प्रवासी महिलाओं की पेशेवर संरचना के बारे में आंकड़े इकट्ठा नहीं किए जाते हैं परन्तु ऐसे वर्तमान आंकड़े में केवल वही लोग शामिल किए गए हैं जिन्होंने अपने प्रवास के कारण में 'रोजगार' बताया है। ऐसे आंकड़े इन प्रवासी महिलाओं द्वारा निभाई जा रही आर्थिक भूमिकाओं की सच्ची तस्वीर को प्रदर्शित करने में असफल हैं परन्तु उनको हाशिए पर किए जाने के साथ-साथ इन महिलाओं में रोजगार की स्थिति के बारे में कुछ विचार दे सकते हैं। रोजगार के चलते प्रवसित होने वाली महिलाओं को जनगणना के समय 'मुख्य कामगार', 'सीमांत कामगार', 'गैर कामगार' और 'कार्य के लिए उपलब्ध' श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। यह पाया गया है कि सभी महानगरों में रोजगार से संबंधित प्रवासी पुरुषों के 85 प्रतिशत से अधिक 'मुख्य कामगार' की श्रेणी में थे।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रोजगार के कारण इन शहरों की ओर आने वाले अधिकांश पुरुष प्रवासी जबकि वैतनिक रोजगार में नियुक्त थे, वहीं ऐसी महिला प्रवासियों की बड़ी संख्या बेरोजगार रह गईं या छोटी अवधि के लिए सीमांत नियुक्ति पा सकी। ऐसी महिला प्रवासियों में गैर-कामकाजी महिलाओं के उच्च अनुपात का एक दूसरा संभावित कारण इस तथ्य के कारण हो सकता है कि उनमें से बड़ी संख्या बहुत कम उम्र में थी और अविवाहित थी। विवाहित हो जाने के बाद परिवार के उत्तरदायित्वों और बच्चों के पालन के चलते महिलाएँ स्वयं को श्रम बाजार से हटा लेती हैं।

1988 में शहरी मामलों के राष्ट्रीय संस्थान (एनआईयूए) द्वारा छः शहरों (बेंगालुरु, लखनऊ, विशाखापत्तनम, फरीदाबाद, त्रिचुर और पुरी) में कराए गए एक सर्वेक्षण में निम्न आय परिवारों, जिनमें से अधिकांशतः प्रवासी परिवार थे, में महिलाओं के लिए कार्यबल सहभागिता दर, बेंगालुरु और विशाखापत्तनम में बहुत ही उच्च 46.5 प्रतिशत तक था। 15 वर्ष से अधिक आयु समूह की महिलाओं के मामले में इन दोनों शहरों में कार्यबल सहभागिता दर क्रमशः 77.5 प्रतिशत और 59.8 प्रतिशत थी। इन निम्न आय परिवारों में इतनी उच्च कार्यबल सहभागिता दर, जैसा कि सूक्ष्मस्तरीय सर्वेक्षण में प्रकट हुआ, के दोनों कारण थे। एक तो यह कि परिवारों की गरीब स्थिति के कारण कार्य करने की अतीव आवश्यकता और दूसरे कार्य की ऐसी व्यापक परिभाषा ने जो, कार्यबल सहभागिता दरों में अदृश्यता के प्रभाव

को कम करते हुए, परम्परागत तौर पर 'कार्य' की परिभाषा में शामिल न किए गए व्यवसायों को भी रोजगार के तौर पर सम्मिलित कर लिया। संस्थान द्वारा छः शहरों में किए गए उस सर्वेक्षण ने यह भी दर्शाया कि सर्वे में शामिल किए गए निम्न आय के परिवारों में 62 प्रतिशत परिवारों में कम से कम एक महिला कामगार थी। बेंगालुरु में लगभग प्रत्येक निम्न आय परिवार (93.2 प्रतिशत) में एक कामगार महिला थी (एनआईयूए, 1988)।

शहरी मामलों के राष्ट्रीय संस्थान द्वारा कराए गए अध्ययन ने यह भी प्रकट किया कि निम्न आय परिवारों में 32 प्रतिशत से अधिक कामगार महिलाओं ने परिवार की आय में कुल आय के 26 से 50 प्रतिशत तक योगदान किया। यह आंकलित किया गया कि झुग्गी झोपड़ियों में निम्न आय परिवारों के मामले में परिवार के आय के हिस्से के रूप में महिलाओं का अर्जन काफी महत्वपूर्ण होता है और यदि इसे परिवार की आय से निकाल दिया जाए तो निम्न आय परिवारों में से कम से कम 23 प्रतिशत परिवार गरीबी की गहन अवस्था में डूब जाएंगे (एनआईयूए, 1988, पृष्ठ 28)। गरीब महिलाओं का अपने परिवार की आय में न केवल परिमाणात्मक योगदान बड़े महत्व का होता है बल्कि गुणात्मक योगदान भी उनके परिवारों के लिए अपरिमित रूप से मूल्यवान होता है। पुरुषों के विपरीत जो अपनी कमाई का एक हिस्सा स्वयं पर खर्च करते हैं, गरीब कामकाजी महिलाएँ अपनी सम्पूर्ण कमाई परिवार के सदस्यों के पालन-पोषण और बेहतरी के लिए खर्च करती हैं। (श्रमशक्ति, 1988, पृ. 24)।

भारत में महिलाओं की कार्यबल सहभागिता में महत्वपूर्ण उत्तर-दक्षिण के अंतर (अर्थात उत्तर भारत और दक्षिण भारत की परिस्थितियों का अंतर) पाए गए हैं। **बोसरप** ने उत्तर भारत में महिला कार्यबल सहभागिता के पैटर्न को पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीकी अरब देशों की महिलाओं से मिलता जुलता पाया जहां महिला कार्यबल सहभागिता दरें बहुत कम थीं। केन्द्रीय और दक्षिण भारत में, जहां मुस्लिम संस्कृति कभी उतनी गहराई तक प्रवेश नहीं कर सकी जितनी कि उत्तर में, महिला कार्यबल सहभागिता का पैटर्न दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से मिलता जुलता रहा और महिला कार्यबल सहभागिता दरें भी अपेक्षाकृत ऊँची थी। मुस्लिमों की अधिक आबादी वाले शहरों और कुलीन संस्कृति ने बहुत निम्न महिला कार्यबल सहभागिता दरों को प्रदर्शित किया (राजू, 1981)। उत्तर प्रदेश से महिला प्रवासियों की कार्यबल सहभागिता दर तमिलनाडु के दक्षिणी राज्य की अपेक्षा बहुत ही कमतर रही। (सिंह, 1978)।

महिला प्रवासियों में कार्यबल सहभागिता और शिक्षा के बीच ऋणात्मक संबंध देखा गया है अर्थात जो सबसे कम पढ़ी लिखी थीं उनके कार्य करने की संभावना सबसे अधिक थी और इसलिए उच्चतर कार्यबल सहभागिता प्रदर्शित करती हैं। रोजगार के लिए महिला प्रवासियों में से अनपढ़ और अर्द्ध-साक्षर महिला प्रवासियों ने महत्वपूर्ण रूप से अधिकतर हिस्से पर कब्जा किया हुआ है, विशेष रूप से कलकत्ता, मुम्बई और दिल्ली के मेट्रोपॉलिटन शहरों में।

हालाँकि इन संकेतों के साक्ष्य हैं कि जैस-जैसे विशेषाधिकार वर्ग की महिलाएँ उच्चतर शिक्षा तक पहुंच पा रही हैं, वे आधुनिक व्यवसायों के कार्यबल में बढ़-चढ़कर प्रवेश कर रही हैं। यद्यपि शहरों में महिलाएँ संगठित क्षेत्र में गम्भीरतापूर्वक बहुत ही कम प्रतिनिधित्व पा सकी हैं, उनकी पदस्थितियां हाल के वर्षों में सुधरी हैं, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में।

आंतरिक विस्थापन

जनजातीय और ग्रामीण क्षेत्रों में वृहद विकास परियोजनाओं, जैसे बांध और विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों (एसईज़ेड), के कारण विस्थापन से संबंधित समस्याएं हैं। इन परियोजनाओं को घेरकर किए जाने वाले अनेक अभियानों में महिलाओं ने बढ-चढ़कर हिस्सा लिया है। (आप पहले

ही महिलाओं द्वारा सामूहिक लामबंदी और प्रतिरोध के बारे में इस पाठ्यक्रम के खण्ड 2 की इकाई 4 में पढ़ चुके हैं।)

ऐसी परिस्थितियों में आजीविकाओं के छिन जाने से प्रवसन पर जनजातीय महिलाओं की निर्भरता बढ़ती जा रही है। परंपरागत अधिकारों के छिन जाने से काम का बोझ बढ़ा है। वे यौन हिंसा, शोषण और मानव व्यापार के अधीन आ गई हैं। राज्य संस्थाओं से लेकर बिल्डर्स और भूस्वामियों तक वे तमाम शक्तियों और हितों के संघर्षों में पिस रही हैं।

यह तर्क दिया जाता है कि आपदाओं (बाढ़, सूखा, दंगे) के प्रभाव पूर्णतया विभेदकारी होते हैं। जहां कहीं ये घटित होती हैं, पूर्ववर्ती संरचनाएं और सामाजिक परिस्थितियां निर्धारित करती हैं कि समुदाय के कुछ सदस्यों को ये अधिक महँगी पड़ेंगी। (उन अंतरों में, जो निर्धारित करते हैं कि ऐसी आपदाओं से लोग कैसे प्रभावित होंगे, से एक जेंडर है।) सामान्यतया महिलाओं की निम्नतर स्थिति, आपदा वाली परिस्थितियों में तमाम प्रकार के बहिष्करण और दुर्बलताओं में बदल जाती है। कम गतिशीलता और सूचनाओं तक निम्नतर पहुंच का तात्पर्य होता है कि राहत संसाधनों को प्राप्त करने वालों में महिलाएँ प्रायः आखिरी पायदान पर होंगी। अनौपचारिक और कृषि क्षेत्रों में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व गैर-आनुपातिक है, जबकि यही क्षेत्र आपदाओं से सबसे बुरी तरह प्रभावित होने वाले क्षेत्र हैं। यह बात राहत और पुनर्वास के उनके दावे को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। इस प्रकार महिलाएँ बेरोजगारी की उच्च दरों का अनुभव करती हैं जो आगे परिवार और समुदाय में उनकी सौदेबाजी की शक्ति को कम कर देता है। पुरुषों से भिन्न, वे प्राथमिक तौर पर परिवारों का देखभाल करने वाली होती हैं अतः कार्य के लिए प्रवास कर पाने में सक्षम नहीं होतीं। संरचनात्मक पक्षपात और जेंडर भेदभाव को शामिल करते हुए इन सभी कारकों का परिणाम यह होता है कि क्षतिपूर्ति और मुआवजे निरपवाद रूप से पुरुषों की ओर निर्देशित कर दिए जाते हैं।

कार्य के लिए लघु-अवधि (जो मौसमी भी हो सकता है) का आंतरिक प्रवास अब ग्रामीण भारत का व्यापक लक्षण बन चुका है जो ग्रामीण क्षेत्रों में अपर्याप्त आजीविका अवसरों के निरंतर संकट को दर्शाता है। महिलाएँ अब काम के लिए बहुत अधिक संख्या में बाहर जा रही हैं। वे न केवल अपने पति या परिवारों के पुरुष सदस्यों के साथ बल्कि काम की तलाश में अकेले या यहां तक कि समूहों में भी बाहर निकल रही हैं। प्रवासी मजदूर सामान्यतया जो भी काम पाते हैं वही करने लगते हैं, अधिकांशतया संविदा के कार्य या आकस्मिक कार्य। अपने घरों से दूर प्रवासी मजदूरों की स्थिति बहुत दयनीय होती है। उन्हें वेतन भी बहुत कम मिलता है। स्वच्छ पानी, शौचालयों, स्वास्थ्य सुविधाओं, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तक भी उनकी पहुंच नहीं बन पाती और उन्हें अपनी जरूरत के सामान भी खुले बाजार से बाजार मूल्य पर खरीदने पड़ते हैं। उनके बच्चे भी उनके साथ लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं जिससे वे शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते।

महिला प्रवासी कामगारों की अवस्थिति

अभाव का सामना करती हुई ग्रामीण तथा जनजातीय क्षेत्रों से महिलाएँ शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवसित होती हैं और असुरक्षित असंगठित क्षेत्र में काम करते हुए उनकी तलाश पूरी होती है। वह भी भवन निर्माण, पत्थर कटाई, खाद्य-प्रस्संस्करण, सब्जियां या फल बेचने और घरेलू श्रम जैसी गतिविधियों में काम करती हैं। उनके लिए औपचारिक क्षेत्र में प्रवेश कर पाना कठिन होता है क्योंकि उनके पास जरूरी कौशल नहीं होता या फिर कुशलता प्राप्त करने के लिए जरूरी संसाधन नहीं होता। उनकी प्रवृत्ति होती है कि जो भी कार्य उपलब्ध हो उसे ले लिया जाए और जिसे वे अपने गरीब घरों को चलाते हुए कर भी सकें। परिणामस्वरूप,

महिलाएँ अधिकांशतया घर आधारित, खाद्य पदार्थों या घरेलू उपयोग और यहां तक कि औद्योगिक उपयोग के सामानों के उत्पादन से संबंधित कार्यों में लगी हैं। वे बीड़ी, रोटी और पापड़ बेलती हैं; मसाले पीसती हैं; अचार और भोजन के पैकेट्स तैयार करती हैं; बिन्दी बनाती हैं और छोटी वस्तुएं या महिलाओं द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाली वस्तुएं बनाती हैं। वे वस्त्र उद्योग में भी लगी हुई हैं। फुटकर व्यापारी और निर्यातकों के लिए यह सुविधाजनक होता है कि सिलाई, कसीदाकारी और बुनाई के काम निम्न आर्थिक स्तर वाले मोहल्लों, जो प्रायः अत्यधिक काम की अपेक्षा में होता है, की महिलाओं को दे दें जिससे एक विशिष्ट समय सीमा में पूरा हो जाए।

यह समझने के लिए कि कैसे विकास प्रवसन को प्रेरित करता है और महिलाओं को प्रभावित करता है, निम्नलिखित केस-स्टडी को पढ़िए।

बॉक्स सं. 2.4

केस स्टडीः जनजातीय महिलाएँ और विकास

नाल्को द्वारा विस्थापित की गईं उड़ीसा की जनजातीय महिलाएँ राज्य की सीमाओं के पार आन्ध्र प्रदेश में जाने को मजबूर हुईं और जंगली भूमियों पर 'अवैध अतिक्रमणकारियों' की तरह रह रही हैं। जो सरकार द्वारा 'पुनर्वासित' कर दी गईं थीं उन्हें भी अभी उचित आवास या मुआवजा मिलना बाकी है। यह कहना पड़ेगा कि जनजातियों की परंपरागत प्रणाली ने, जबकि महिलाओं की पहचान श्रम और आय के वितरण के निश्चित जेंडर असंतुलनों, सामाजिक वर्जनाओं और सांस्कृतिक नाश द्वारा हुआ करती थी, उन महिलाओं को, अपनी आजीविका को बनाए रखने में सक्रिय भूमिका देकर और उन्हें ऐसी स्थिति में रखकर कि वे अपने अधिकारों और संसाधनों के लिए सौदेबाजी कर सकें, अधिक सुरक्षा प्रदान की। परम्परागत भूमि आधारित आजीविका प्रणाली ने भी महिलाओं को कृषि और जंगल उत्पादों के संग्रहण में, मवेशियों के प्रबंधन और संबंधित गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की।

उद्योगों ने महिलाओं को, भूमि स्वामित्व और खेतिहर श्रमिक समुदाय दोनों में उनकी बुनियादी आर्थिक भूमिकाओं से विमुख कर दिया है। यह स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी सुस्पष्ट है जैसे कि महानदी कोलफील्ड्स (उड़ीसा) के कोयला और लौह अयस्कों के खदान वाले क्षेत्रों में, झारखण्ड की कोल इंडिया खदानों में, महाराष्ट्र के पश्चिमी कोयला क्षेत्रों में, दामनजोड़ी (दक्षिण उड़ीसा) की बॉक्साइट खदानों में और सिंगरेनी कोयला क्षेत्रों (आन्ध्र प्रदेश) में।

जंगल उत्पादों की बिक्री और मवेशियों की देखभाल से जिस नकद प्रवाह तक जनजातीय महिलाओं की पहुंच थी, वह बहुत कम हो गई। इसके बदले, इन महिलाओं को अपने गांवों से मीलों दूर, अपने बच्चों को घरों पर छोड़कर, या तो जंगल उत्पादों का संग्रह करने या फिर मजदूरी की तलाश में जाने के लिए मजबूर होना पड़ा और उन्हें अपने सभी मवेशियों को बेचना पड़ा। बहुत-सी परिस्थितियों में, केवल मौसमी प्रवसन होता था जो कार्य की असुरक्षा, पारिवारिक संबंधों के बिखराव और तमाम सामाजिक खतरों का सामना करने की स्थितियों को बढ़ाता था।

पुनर्वास कालोनियों में और शहरी झुग्गियों में महिलाएँ निजता की कमी, उपयुक्त शौचालयों और शोषणात्मक सामाजिक प्रभावों जैसे कि शराबी पति, पति द्वारा पिटाई और परित्याग जैसे समस्याओं का सामना करती हैं। सांस्कृतिक प्रभावों जैसे कि दहेज प्रथा और बीमारियों के नए स्वरूपों जैसे कि एचआईवी-एड्स और कुपोषण ने जनजातीय महिलाओं को नीरस

कार्यों के विकट स्वरूपों, नकद या संसाधनों तक अप्राप्यता और निर्णय लेने की शक्तियों में उल्लेखनीय कमी तक ला छोड़ा है।

बॉक्स सं. 2.5

महिलाएं जिन्होंने एक समय पर परम्परागत भूमि और जंगल आधारित आजीविका प्रणाली में महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका निभाई थी, और परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत उच्च सामाजिक स्तर का जीवन जिया था, अब शहरों में घरेलू नौकरानियों, (अब तक जनजातीय समुदायों में ऐसा प्रचलन नहीं है), आकस्मिक भवन निर्माण मजदूरों, छिटपुट व्यापारियों और फेरीवाले और व्यावसायिक वेश्याओं की तरह काम कर रही हैं या फिर उन्हें 'व्यर्थ' गृहिणी की तरह घरों तक में सीमित कर दिया गया है। औद्योगिक विस्थापन के प्रभाव का तात्पर्य इस तरह जनजातीय महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक दोनों स्थितियों के सम्पूर्ण रूपांतरण और दुर्दशा की तरह आया।

विस्थापित आदिवासी महिलाएँ भी छोटे-मोटे व्यापारों या अन्य व्यवसायों में जाने को मजबूर हुईं लेकिन साक्षरता या कौशलों में उनकी कमी और इन क्षेत्रों में सहभागिता के प्रति सामाजिक वर्जना ने उन्हें अन्य शोषणात्मक स्थितियों में डाल दिया।

शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण की कमी के कारण महिलाएँ औपचारिक क्षेत्र में अपना स्थान नहीं बना सकीं लेकिन साथ के साथ इसने अनौपचारिक क्षेत्र में संविदा कर्मी या अनियत मजदूर के रूप में अत्यन्त शोषणात्मक स्थितियों में उनके समावेशन का रास्ता खोल दिया। महिलाओं की मजदूरी हमेशा पुरुषों की मजदूरी से कम रही है और उनके लिए सवेतन छुट्टियों का कोई प्रावधान नहीं होता, यहां तक कि गर्भावस्था या बच्चे के जन्म के समय भी। महिलाओं को कोई उपकरण भी नहीं दिए जाते और कार्यस्थलों पर शौचालयों और अन्य सुविधाओं की कमी होती है। महिला कामगार, खदान मालिकों, ठेकेदारों और अन्य पुरुषों द्वारा शारीरिक और यौन शोषण के प्रति भी भयभीत रहती हैं। उन्हें घर वापस आने में मीलों चलकर आना पड़ता है और रास्ते में वे दुराचरण के प्रति असुरक्षित होती हैं।

खदान उद्योग में महिलाएँ तमाम पेशेगत बीमारियों, जिसमें श्वास समस्याएं, सिलिकोसिस, ट्यूबरकुलोसिस, ल्यूकीमिया, आर्थराइटिस और प्रजनन संबंधी समस्याएं शामिल होती हैं, से घिर जाती हैं। वे विषैले और खतरनाक तत्वों के बीच, किसी सुरक्षा उपायों तक पहुंच के बिना, कार्य करती हैं। भूतकाल में महिलाएँ अपने शिशुओं को अपने साथ खेतों में या जंगलों में ले जा सकती थीं। अब खदानों में काम करने वाली महिलाओं को अपने बच्चों को, बिना किसी देखभाल के, पीछे घर छोड़कर आना पड़ता है। यदि वे किसी तरह अपने बच्चों को खदान तक ले भी जाती हैं तो उन्हें बच्चों को उच्च स्तर के धूल और ध्वनि प्रदूषण में छोड़ना पड़ता है और खदानों में होने वाले विस्फोटों में उनके बच्चे निरंतर दुर्घटना के जोखिम में होते हैं या खेलते हुए खदान के गड्ढों में उनके गिर जाने का डर होता है।

जब उद्योग बन्द हो जाते हैं और कर्मचारियों की छंटनी हो जाती है, पुरुष खाली हो जाते हैं और काम का पूरा बोझ आदिवासी महिलाओं पर आ गिरता है, तब उसे अपने परिवार को सहारा देने के लिए काम करना ही पड़ता है। खदान समुदायों में रहने वाली औरतें अवशेषों और बड़ी खदान कंपनियों के बेकार कचरे को उठाने के काम को भी अपनी आजीविका कमाने के रूप में अपना लेती हैं, प्रायः गैर कानूनी ढंग से, और लगातार कंपनी गार्डों, स्थानीय माफियाओं या पुलिस द्वारा उनका उत्पीड़न किया जाता है। अपने अयस्कों की बिक्री के लिए उन्हें स्थानीय व्यापारियों की दया पर भी निर्भर रहना पड़ता है।

आगे बढ़ने से पहले निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति जाँच कीजिए

1) प्रवासी महिलाओं की आर्थिक भूमिकाएं क्या हैं?

2) महिलाओं पर प्रवसन के प्रभावों पर एक टिप्पणी लिखिए।

इकाई के इस आखिरी अनुभाग में आप इस इकाई का सारांश पढ़ सकते हैं।

2.9 सारांश

इस इकाई ने शहरीकरण की प्रक्रिया, प्रवसन और शहरीकरण, प्रवसन के कारण, शहरी वृद्धि के प्रभाव और मुद्दों के बारे में गहन छानबीन की। यह अवलोकन किया गया कि भारत में जनसंख्या में वृद्धि हो रही है परन्तु अन्य शहरी क्षेत्रों की बजाय मेट्रोपॉलिटन शहरों की ओर लोगों के प्रवसन में वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में अधिक थी, जो कई सामाजिक-पारिस्थितिकीय समस्याओं में वृद्धि कर रही है। इसका प्रभाव न सिर्फ शहरी अवसंरचना और नागरिक सुविधाएं प्रदान करने पर पड़ा है बल्कि शहरी क्षेत्रों में प्रजनन संबंधी और बाल स्वास्थ्य सेवाओं पर भी पड़ा है।

2.10 शब्दावली

शहरीकरण : जनसांख्यिकीय दृष्टि से, शहरीकरण का अर्थ एक अवधि के दौरान शहरी जनसंख्या के कुल जनसंख्या से अनुपात में वृद्धि से है।

प्रवसन : मनुष्यों द्वारा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में किया जाने वाला शारीरिक गमन।

प्रवासी : कोई व्यक्ति जो एक देश के भीतर प्रवसित होता है; संभव है वे ऐसे लोग हों जो काम की तलाश में जैसे कि मौसमी काम की तलाश में प्रवसन करते हैं।

आजीवन प्रवासी : प्रवासी वे होते हैं जिनकी गणना उनके जन्म के स्थान से इतर कहीं और होती है। अंतर-जनगणनीय प्रवसन दिए गए वर्ष के लिए जन्म स्थान के संप्रत्यय पर आधारित है।

अंतर जनगणनीय प्रवासी : दिए गए वर्ष के लिए जन्म स्थान के संप्रत्यय पर आधारित।

मेट्रोपॉलिटन शहर : शहरी क्षेत्र का एक विशाल नगर जो किसी देश या क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र हो और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और संचार के लिए भी महत्वपूर्ण केन्द्र हो।

मेगापॉलिटन शहर : मेट्रोपॉलिटन क्षेत्रों के आसपास फैली हुई श्रृंखला। एक करोड़ या उससे अधिक की जनसंख्या वाला शहर।

आकर्ष कारक : जो प्रवासियों को किसी नई अवस्थिति के लिए आकर्षित करे जैसे कि रोजगार, शिक्षा के अवसर।

विकर्ष कारक : वह बल जो लोगों को किसी स्थान से जाने के लिए विवश करे जैसे कि रोजगार और शिक्षा के अवसरों की कमी।

2.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) संक्षेप में व्याख्या करें:
   - अ) शहरीकरण की प्रक्रिया
   - ब) प्रवसन और शहरीकरण
   - स) प्रवसन की प्रवृत्तियां
   - द) शहरीकरण की प्रवृत्तियां
2) प्रवसन के कारणों की गणना करते हुए व्याख्या कीजिए।
3) प्रवसन के परिणामों पर चर्चा कीजिए।
4) प्रवासी महिलाओं की आर्थिक भूमिका पर चर्चा कीजिए।

2.12 संदर्भ

Ahuliwalia, Montek (2011). Prospects and Policy Challenges in the Twelfth Plan, Economic and Political Weekly, May 46 (21).

Mehta, Ashok (1962). "The future of Indian Cities: National Issues and Goals" in Roy Turner (ed). in Urban Future, Berkeley: University of California Press.

Bhagat R.B. (2011). Emerging Pattern of Urbanisation in India: Economic and Political Weekly: Vol. XLVI No. 34, August 20.

Bose, Ashish (1980). India's Urbanisation – 1901, 2001, New Delhi: Tata McGraw – Hill Publishing Company Limited.

Business World – Dec 2011

Business World – Dec 2001

Census of India. 1961, 1971, 1981, 1991, 2001 and 2011

Economic Times (2011). Quality of Life Survey, December, 11

Fawcelt T.J, Slew- Ean K. and Peter C. (1984). Urbanization Migration and the Status of Women in Fawcelt T.J. et.al (eds) Women in the Cities of Asia: Migration and Urban Population: West View Press, Inc. Canada, U.S.A.

India City Competitiveness Report (2011). Institute for Competitiveness, India, www.competitiveness.in/2011/12/press-release-india-city-competitiveness-report-2011 (last accessed on 28th Nov. 2014).

Jain Devaki and Banerjee Nirmala (1985). Tyranny of the Household, New Delhi: Shakti Books.

Joshi, Heather (1976). Prospects and Case for Employment of Women in Indian Cities, Economic and Political Weekly, Vol. 11;Aug 7th.

Kundu A. (2007). Migration and Exclusionary Urban Growth in India: Sixth Dr. Chandra Sekaran Memorial Lecture, Mumbai International Institute for Population Sciences.

Kundu A. (2011). Methods in Madness: Urban Data from 2011 Census, EPW, Vol-XLVI No. 40, October 01.

National Institute of Urban Affairs (1988). Women Urban Poverty and Economic Development, Research Publications Study Series, No. 43, New Delhi.

Paul, Tinku (2009). Women Empowerment Through Work Participation, New Century Publications.

Raju, Saraswati (1981). Sita for the City a Socio Graphical Analysis of Female Employment in Urban India. Discussion Paper, New York; Syracuse, Syracuse University.

Registrar General and Census Commissioner (2006). Population Projects for India and States. (2001-2026); Report of the Technical Group on Population Projections Constituted by National Population Commission of the Registrar General and Census Commissioner, New Delhi.

Shramshakti (1988). Report of the National Commission on Self-Employed Women in the Informal Sector; New Delhi.

Singh (1978). Rural Urban Migration of Women among the Urban in India, Causes and Consequences Social Action 28(4): 326-56.

Times of India: IMRB Quality of Life Survey, Dec. 2011.

United Nations (2009). The World Urbanization Prospects, The 2009 Revision: New Yorks, Department of Economic and Social Affairs Population Division.

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Shramshakti (1988). Report of the National Commission on Self-Employed Women in the Informal Sector; New Delhi.

- Singh (1978). Rural Urban Migration of Women among the Urban in India, Causes and Consequences Social Action 28(4): 326-56.
- United Nations (2009). The World Urbanization Prospects, The 2009 Revision: New Yorks, Department of Economic and Social Affairs Population Division.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 3 प्रक्षेत्र

संरचना — मंदिरा दत्ता

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 पृष्ठभूमि

3.4 कार्यबल संघटन

3.5 असंगठित विनिर्माण उपक्रम

3.6 असंगठित विनिर्माण उपक्रमों की प्रकृति

3.7 निजी हाथों में प्रचालित विनिर्माण उपक्रम (ओएएमई)

3.8 सारांश

3.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

3.10 संदर्भ

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की तीसरी इकाई में, आप भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न प्रक्षेत्रों में महिला कामगारों के प्रतिनिधित्व और उनके समावेशन के बारे में पढ़ेंगे। इकाई की शुरुआत इस विवरण के साथ होगी कि कैसे प्रक्षेत्रों को परिभाषित किया जाता है और कैसे उनकी उद्भावना होती है, किस प्रक्षेत्र में कौन-कौन सी आर्थिक गतिविधियां सम्मिलित हैं और हमारी अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक प्रक्षेत्र का क्या महत्व है।

इसके बाद वाले हिस्से में आप भारत में कार्यबल संघटन के बारे में पढ़ेंगे और यह भी कि प्रत्येक खंड में कार्यबल के पदानुक्रम में कामगारों को किस प्रकार रखा गया है। इसके पश्चात राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ, आप इस संगठन की प्रकृति और कार्यक्षेत्र के बारे में खण्ड 1 के इकाई 1 में पहले ही पढ़ चुके हैं) द्वारा तैयार कार्यबलों के वर्गीकरण का लेखा देखेंगे। उसके बाद आप असंगठित विनिर्माण उपक्रमों के बारे में पढ़ेंगे और इस इकाई का आखिरी हिस्सा निजी हाथों में प्रचालित विनिर्माण उपक्रमों के बारे में है। आगे बढ़ने से पहले हम इस इकाई के उद्देश्यों को पढ़ते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- अर्थव्यवस्था के कार्यबल संघटन को समझ सकें;
- एनएसएसओ के अनुसार असंगठित क्षेत्र को, विशेषकर विनिर्माण प्रक्षेत्र को वर्गीकृत कर सकें;
- मजदूरी नियत करने पर चर्चा कर सकें; और
- असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत कामगारों के वितरण की व्याख्या कर सकें।

3.3 पृष्ठभूमि

अर्थव्यवस्था को मोटे तौर पर गतिविधि के तीन प्रक्षेत्रों में बांटा जा सकता है जिनके नाम हैं कच्चे माल का निष्कर्षण जिसे प्राथमिक क्षेत्र कहते हैं, विनिर्माण या द्वितीयक क्षेत्र और सेवाएं या तृतीयक क्षेत्र। एक अन्य प्रक्षेत्र जिसकी पहचान बहुत बाद में बनी, वह है अनुसंधान एवं प्रशासन जिसे चतुर्थ क्षेत्र कहते हैं। हालाँकि इन सभी गतिविधियों का एक बहुत बड़ा भाग अनौपचारिक अर्थव्यवस्था या असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

असंगठित क्षेत्र, प्राथमिक और द्वितीयक दोनों ही प्रक्षेत्रों से एक विशाल प्रसार में होने वाली आर्थिक गतिविधियों से मिलकर बना है। इसमें गृह-आधारित गतिविधियां जैसे कि इलेक्ट्रॉनिक एसेम्बली, वस्त्र मात्रानुपाती दर के कार्य, दस्तकारी, फेरी लगाने का काम, दैनिक मजदूरी के कार्य, कपड़ा बुनाई, ब्लॉक प्रिंटिग, कढ़ाई-कसीदाकारी, हस्तशिल्प उत्पादन, खाद्य उत्पादन इत्यादि सम्मिलित हैं। यह विकासशील देशों में गैर-कृषीय/कृषीय रोजगार का प्रमुख स्रोत है। ऐसी गतिविधियों के संकेन्द्रण के मेट्रोपॉलिटन शहरों की शहरी झुग्गियों में भी मौजूद होने की प्रवृत्तियां मिलती हैं।

इस क्षेत्र में कार्य करने वाले कामगारों में गृह-आधारित, स्वनियोजित, दैनिक मजदूरी कमाने वाले, फेरीवाले और इसी तरह के अन्य लोग सम्मिलित हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि गरीब और विकासशील देशों में कुल कामगार जनसंख्या का तीन चौथाई, असंगठित/अनौपचारिक क्षेत्र से संबंध रखते हैं जो इन समाजों के अंदर गरीबी के स्तर को प्रोत्साहित करने के लिए मोटे तौर पर उत्तरदायी हैं। ऐसे कामगार सामान्यतया बिना किसी सामाजिक सुरक्षा या पेंशन के रह जाते हैं। दुर्घटनाओं, लम्बी अवधि की बीमारी, बेरोजगारी या वृद्धावस्था के मामलों में कोई विकल्प नहीं बचता कि कामगार उससे उबरकर फिर काम पर आ सके।

इस अनौपचारिक क्षेत्र के महत्व का अंदाजा उस अध्ययन से लगाया जा सकता है जो राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा कराया गया था, उसमें अनुमान लगाया गया था कि राष्ट्रीय आय के लगभग 60 प्रतिशत का और घरेलू बचतों के भी लगभग 60 प्रतिशत का योगदान असंगठित क्षेत्र द्वारा किया जाता है। अनुमानों के अनुसार, भारत में, देश के कुल निर्यात में अनौपचारिक क्षेत्र का योगदान लगभग 40 प्रतिशत है। इस तथ्य के बावजूद कि अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में अतिशय सामर्थ्य है, यह क्षेत्र बहुआयामी समस्याओं से आक्रांत है; जैसे कि पुराने ढंग की तकनीक, असंगठित उत्पादन प्रणाली, निम्न उत्पादकता, अपर्याप्त कार्यशील पूँजी, परंपरागत उत्पाद संसार, कमजोर विपणन संबंध और कुल मिलाकर उत्पादन के साथ-साथ बिक्री में स्थिरता (आईआईएफटी, 1999)। अनौपचारिक क्षेत्र में लगने वाले कुल कार्यबल के 90 प्रतिशत से अधिक के साथ, परिस्थिति इससे भी भयावह है। दुर्भाग्य से महिलाएँ अधिकांशतः इसी क्षेत्र में संकेन्द्रित हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्य की दशाएं विशुद्ध रूप से उद्यमी द्वारा निर्धारित की जाती हैं और वेतन तो अधिकांशतया निर्धारित मानकों से कम ही दिए जाते हैं। यह मुख्यतः बिचौलियों और अन्य उद्यमियों द्वारा शोषण के कारण होता है। वैश्वीकरण और मिल क्षेत्र से मिली कठिन प्रतिस्पर्धा ने महिला कामगारों की आर्थिक स्थितियों को और खराब कर दिया है और वे सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से भी कम पर काम करने के लिए मजबूर हैं।

उच्च बेरोजगारी दर के साथ प्रच्छन्न बेरोजगारी बड़ी संख्या में कामगारों को अपने परिवारों के साथ बेहतर काम की संभावनाओं की तलाश में गहन ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवसित होकर शहरों की ओर जाने के लिए मजबूर करती है। पड़ोस के क्षेत्रों से भारी पैमाने पर शहरों की

ओर प्रवास को आकर्षित करते समय, अनौपचारिक क्षेत्र में काम ही रोजगार के लिए सर्वाधिक लचीला स्वरूप होता है, विशेष रूप से संविदा पर कार्य जो सामान्यतया घर बैठकर किए जाते हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था की पुनर्संरचना करने में यह एक प्रमुख घटक के तौर पर उभरा है और प्रायः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नेटवर्क में अंतिम कड़ी बनाता है। बड़े पैमाने पर फुटकर विक्रेताओं द्वारा बेची जा रही वस्तुओं का उत्पादन करते हुए यह नेटवर्क महाद्वीपों के आर-पार फैलता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार वर्तमान कानून और विधान यदि पूरी तरह नहीं, तो प्रधानतः संगठित क्षेत्र की आवश्यकताओं पर ध्यान देते हैं जिसमें कुल कार्यबल के 10 प्रतिशत से भी कम लोग लगे हुए हैं। बाकी के 90 से 93 प्रतिशत लोग आज भी सामाजिक संरक्षण प्रणाली के घेरे से बाहर हैं, जोखिमों से आसानी से प्रभावित होने वाले हैं, दुर्बल हैं और इसलिए उन्हें सामाजिक सुरक्षा हकदारियों की अधिक आवश्यकता है (भट्ट, और अन्य, 1988)।

परिस्थिति और भी भयानक है क्योंकि लाभों के केवल टपकन या बचे-खुचे भाग ही छनकर नीचे की ओर जाते हैं जो फिर से उसी जंगल में खो जाते हैं और 90 प्रतिशत कार्यबलों से बने तृणमूल स्तर तक पहुंचना असंभव हो जाता है।

एनएसएसओ परिणामों के 56 वें चक्र के साथ असंगठित विनिर्माण उपक्रमों के बड़े हिस्से को प्रकाश में लाया गया था। यथानुरूप असंगठित क्षेत्र के उपक्रमों का हिस्सा 98.18 प्रतिशत रहा जो उपक्रमों की संख्या के संदर्भ में बड़ा हिस्सा साबित हुआ। भारी भरकम भीमकाय स्थिति और संगठित क्षेत्र के साथ जटिल संपर्कों के बावजूद, असंगठित अर्थव्यवस्था, व्यापक तौर पर अदृश्य ही बनी रही।

गृह आधारित कामगारों के लिए कार्य की दशाएं, नियोक्ता-कर्मचारी संबंधों और पर्यवेक्षण के तरीकों सहित, फैक्ट्री में मिलने वाली कार्यदशाओं से बहुत ही भिन्न हैं। चूँकि असंगठित क्षेत्र में कोई भी सीधा नियंत्रण या पर्यवेक्षण नहीं है और न काम के नियत घंटे हैं, इसलिए वेतन निर्धारित करने का तरीका फैक्ट्रियों की तरह समय-दर आधारित नहीं हो सकता। व्यवहार में यह देखा गया है कि वास्तव में जितनी मजदूरी का भुगतान किया जाता है, उसकी गणना नियोक्ता द्वारा की जाने वाली विभिन्न कटौतियों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए और कामगार द्वारा काम के लिए किए गए खर्च को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसके चलते प्रतिदिन की आय बिल्कुल न्यूनतम स्तर पर आ जाती है। जनसंख्या का यह विशाल खण्ड जो इस वृहत्काय कार्य को अपने जीवन भर करते रहने के बावजूद भयंकर कष्ट का सामना करता है निश्चित रूप से विचारणीय मुद्दा है, जिसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) अर्थव्यवस्था के प्रमुख प्रक्षेत्रों के नाम लिखिए।

2) अनौपचारिक क्षेत्र का क्या महत्व है?

नीचे आने वाले अनुभागों में आप पढ़ेंगे कि भारतीय कार्यबल का संघटन क्या है।

3.4 कार्यबल संघटन

भारत के कार्यबल की संरचना को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसके एक सिरे पर **कुलीन सफेदपोश** कर्मचारी हैं जैसे कि सार्वजनिक क्षेत्र के वरिष्ठ अधिकारीगण और निजी क्षेत्र के प्रबंधकीय वर्ग के लोग जिनका कुल हिस्सा पूरे श्रम बल के 1 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। इस श्रेणी के लिए जॉब सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान उनके कार्य-संविदाओं के अनन्य हिस्से हैं। व्यापार उदारीकरण और बढ़ते वैश्वीकरण के वर्तमान युग में यह कुलीन समूह अपने लिए ऐसे क्षतिपूर्ति पैकेजों या पारितोषिक पैकेजों को अंगीकृत करवाने में सक्षम है जो अंतर्राष्ट्रीय मानकों के बिल्कुल बराबर हो।

इसके ठीक विपरीत बिल्कुल दूसरे सिरे पर **असंगठित क्षेत्र के कामगार** है जिसमें स्व-नियोजित, अनौपचारिक क्षेत्र के कामगार और अनियत श्रमिक सम्मिलित हैं जो कुल श्रम शक्ति के 92 से 93 प्रतिशत हिस्से का निर्माण करते हैं। इस समूह के लिए सिर्फ सबसे न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा प्रावधान उपलब्ध है। यह कुल कार्यबल का वह 93 प्रतिशत हिस्सा है जो असंगठित क्षेत्र के अंदर सीमित है, यही चिंता का सबसे प्रमुख कारण है।

इन दोनों के बीच **सार्वजनिक क्षेत्र और संगठित निजी क्षेत्र** के नियमित वेतन वाले कर्मचारी हैं, जो कुल श्रम शक्ति का मुश्किल से लगभग 6 से 7 प्रतिशत हिस्सा निर्मित करते हैं। श्रम बाजार के लिए ढेरों सरकारी कानून और सामाजिक बीमा की चिंताएं इसी विशिष्ट समूह के लिए होती हैं। राज्य की गतिविधियों का मुख्य जोर आधारभूत रूप से न्यूनतम मजदूरी कानून के गिर्द और रोजगार सर्जन के लिए कई प्रोत्साहन उपाय करने में रहता है जो कार्यान्वयन की समस्याओं के चलते उस स्तर तक प्रभावी नहीं रहता।

कार्यबल का वर्गीकरणः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण चक्र

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा प्रत्येक वर्ष किए जाने वाले इसके सर्वेक्षणों और रोजगार तथा बेरोजगारी के लिए पांच वर्ष पर किए जाने वाले व्यापक सर्वेक्षण के द्वारा संग्रहीत किए गए आंकड़े रोजगार और बेरोजगारी के कुछ प्रमुख मानदण्डों के संबंध में सूचनाएं देते हैं। इन सर्वेक्षणों के आधार पर यह कई रिपोर्टें निकालता है। कुछ महत्वपूर्ण एनएसएसओ चक्रों अर्थात 55वें और 56 वें चक्र के सर्वेक्षणों ने कामगारों से संबंधित विस्तृत सूचनाएं दी थीं। एनएसएसओ के 56वें चक्र के आंकड़ों ने असंगठित

विनिर्माण क्षेत्र की गहन तस्वीर विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रदान की थी। यह 56वां चक्र जुलाई 2000–जून 2001 के दौरान कराया गया था, जिसने असंगठित विनिर्माण उपक्रमों को, 1998 के दौरान हुए चौथे आर्थिक जनगणना की सहायता और उसके आंकड़ों की जांच के संदर्भ में, शामिल किया था। 55वें और 56वें चक्र के सर्वेक्षण के आधार पर एनएसएसओ के आंकड़ों का अध्ययन प्रकट करता है कि लगभग 7 प्रतिशत कामगार संगठित क्षेत्र में है और बाकी अर्थात 93 प्रतिशत रोजगार प्राप्त लोग असंगठित क्षेत्र से संबंध रखते हैं (दत्ता, 2010)।

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत लगे हुए कार्यबल को एनएसएसओ ने आगे भी तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। ये श्रेणियां हैं:

- निजी हाथों में चलने वाले विनिर्माण उपक्रम (ओएएमई) - कुटीर उद्यम जो उपयुक्त नियमित आधार पर किराए के कामगारों को नियुक्त नहीं करते बल्कि अनन्य रूप से परिवार के लोगों के श्रम से चलते हैं।
- गैर-संचालक विनिर्माण उपक्रम (एनडीएमई) - छोटी स्थापनाएं, जो 5 से अधिक कामगारों को काम पर नहीं रखतीं जिसमें परिवार के सदस्य भी सम्मिलित होते हैं।
- संचालक मंडली वाले विनिर्माण उपक्रम (डीएमई) - सबसे उच्च स्तर की स्थापनाएं जो परिवार के सदस्यों सहित 6 या अधिक कामगारों को नियुक्त करती हैं। इनकी बाकायदा एक संचालक मंडली होती है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 55वें और 56वें चक्र से प्राप्त सूचनाएं कार्यबलों और असंगठित क्षेत्र की उद्यमी गतिविधियों की समझ को बेहतर ढंग से प्रकट करती हैं।

3.5 असंगठित विनिर्माण उपक्रम

शहरी क्षेत्रों में कुल पंजीकृत विनिर्माण इकाइयाँ लगभग 20 प्रतिशत ही हैं, बाकी पंजीकरण रहित हैं। ओएएमई श्रेणी में पंजीकृत इकाइयाँ मात्र 10 प्रतिशत हैं।

तालिका 3.1: शहरी क्षेत्रों में असंगठित विनिर्माण क्षेत्र

पंजीकृत इकाइयों की कुल संख्या

श्रेणियां	पंजीकृत	अपंजीकृत
शहरी कुल प्रतिशत	20.1	79.9
ओएएमई (प्रतिशत)	10	90

स्रोतः एन एस एस ओ 56 वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

तालिका सं. 3.2 दिखलाती है कि विनिर्माण उपक्रमों का प्रमुख संकेन्द्रण ओएएमई श्रेणी (86 प्रतिशत) (संदर्भ चित्र 3.1) में है। इसका अर्थ है कि यहां होने वाली अधिकांश कार्य गतिविधियों का प्रबंधन एक अकेला व्यक्ति करता है। इन गतिविधियों में उचित रूप से नियमित आधार पर नियुक्त कोई कर्मचारी नहीं होता है।

इसके पश्चात एनडीएमई उपक्रमों का स्थान आता है। डीएमई श्रेणी में उपक्रमों का संकेन्द्रण सबसे कम है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विनिर्माण इकाइयों की प्रकृति मूल रूप से छोटी स्थापनाओं की है। जबकि ग्रामीण के साथ साथ शहरी दोनों क्षेत्रों में ही ओएएमई श्रेणी पहले स्थान पर है, एनडीएमई और डीएमई श्रेणियां ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक संकेन्द्रित हैं।

तालिका 3.2: असंगठित विनिर्माण उपक्रमों का वितरण 2000 -2001

उपक्रमों का प्रकार / (प्रतिशत)	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण + शहरी
ओएएमई	92.6	70.9	86.1
एनडीएमई	5.3	21.2	10.1
डीएमई	2.1	7.9	3.8
सभी (100 प्रतिशत)(हजार में)	11,934	5,089	17,024

स्रोतः एन एस एस ओ 56वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

ओएएमई - ओन एकॉउण्ट मैनुफैक्चरिंग एंटरप्राइजेज अर्थात ऐसे उपक्रम जो अनन्य रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा चलाए जाते हों और किसी को भी उचित रूप से नियमित आधार पर न रखा गया हो।

एनडीएमई - नॉन-डायरेक्ट्री मैनुफैक्चरिंग एंटरप्राइजेज अर्थात ऐसे उपक्रम जिसमें कम से कम एक कामगार और अधिकतम 5 कामगार काम पर रखे गए हों। इनका कोई बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स या डायरेक्ट्री नहीं होता।

डीएमई - डायरेक्ट्री मैनुफैक्चरिंग एंटरप्राइजेज अर्थात न्यूनतम 6 नियमित वेतनभोगी कर्मचारियों को रखा गया हो। इसकी अपनी डायरेक्ट्री या बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स होता है।

आगे बढ़ने से पहले अपनी समझ के आंकलन हेतु निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाच कीजिए

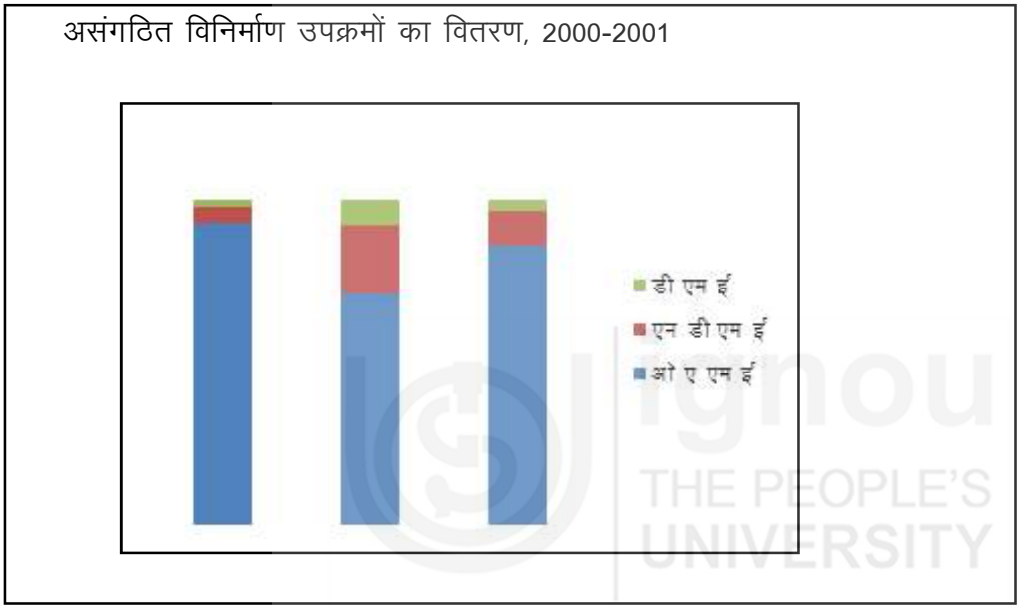
1) ओएएमई, एनडीएमई और डीएमई के क्या अर्थ हैं ?

2) महिला कामगारों का सबसे अधिक संकेन्द्रण कहां है और क्यों?

3.6 असंगठित विनिर्माण उपक्रमों की प्रकृति

सामयिकता के अनुसार असंगठित विनिर्माण उपक्रमों की प्रकृति के बारे में तालिका संख्या 3.3 में वर्णन किया गया है। यह कामगारों के लिए नियमित कामों की उपलब्धता को दर्शाता

है। तालिका से यह स्पष्ट है कि कार्य की प्रकृति अधिकांशतः स्थायी और सार्वकालिक है, अर्थात सभी प्रकार के विनिर्माण उपक्रमों में पूरे वर्ष के दौरान कार्य उपलब्ध रहता है। लगभग 93 प्रतिशत इकाइयाँ प्रकृति में स्थायी हैं। केवल 6 प्रतिशत उपक्रम अपनी प्रकृति में मौसमी हैं और मुश्किल से 1 प्रतिशत आकस्मिक। इसके बावजूद कामगार नियमित कार्य की उपलब्धता की शिकायत करते रहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि कार्य उपलब्ध हो सकते हैं परन्तु उन्हीं कार्यों को करने के लिए विशेषकर शहरों में इतने अधिक लोग होते हैं कि वही कामगार लगातार एक प्रकार का काम नहीं कर पाता। यही नहीं, काम भी सभी लोगों में बराबरी से वितरित नहीं होता। यह उन कामगारों के लिए उपलब्ध रहता है जो शहर में नहीं रहते बल्कि आंतरिक दूरस्थ क्षेत्रों में शहरी नगरपालिका से बाहर रहते हैं। इन क्षेत्रों में प्रति इकाई उत्पादन दर और भी कमतर होती जाती है और कामगारों में जागरुकता का स्तर इतना निम्न होता है कि वे अपने अधिकारों तक के लिए बोल नहीं पाते।



चित्र 3.1: ओएएमई उपक्रमों का संकेन्द्रण

स्रोतः एनएसएसओ 56वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

तालिका 3.3: असंगठित विनिर्माण उपक्रमों की प्रकृति (%)

प्रकृति	ओएएमई	एनडीएमई	डीएमई	कुल
स्थायी/चिरकालिक	92.8	95.6	83.8	92.7
मौसमी	6.0	4.2	16.1	6.2
आकस्मिक	1.2	1.0	1.0	1.1
कुल (हजार में)	14665	1711	6470	17024

स्रोतः एनएसएसओ 56वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र में कामगारः

आगे प्रदर्शित तालिका 3.4 में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में विभिन्न श्रेणियों में असंगठित विनिर्माण क्षेत्र में कामगारों की प्रतिशतता दिखायी गयी है। विनिर्माण उपक्रम के विभिन्न वर्गों के अनुसार कामगारों का जेंडर वितरण स्पष्ट है। ओएएमई श्रेणी में, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिला कामगार अधिक प्रभुत्व रखती हैं। जबकि एनडीएमई और डीएमई

श्रेणियों में आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि यह मुख्यतः पुरुषों के प्रभुत्व वाले क्षेत्र हैं। यह प्रदर्शित करता है कि महिलाएँ मुख्यतः उन विनिर्माण उपक्रमों का प्रबंधन करती हैं जो बिना कामगारों की नियुक्ति के चलाया जाता है। स्वनियोजित और गृह-आधारित प्रकार के कामगारों में से अधिकांश ओएएमई श्रेणी के विनिर्माण उपक्रमों में लगे हुए हैं।

तालिका 3.4: कामगारों का वितरण (%) (ग्रामीण/शहरी), 2000-2001

प्रकार	ग्रामीण			शहरी		
	पुरुष	महिला	दोनों	पुरुष	महिला	दोनों
ओएएमई	74.16	88.80	79.82	34.42	78.10	45.15
एनडीएमई	11.39	2.77	8.50	34.19	7.80	27.71
डीएमई	14.45	8.43	11.68	31.39	14.1	27.14
कुल (हज़ार में)	14,706	9,279	23,985	9,875	3,219	13,095

स्रोतः एनएसएसओ 56वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

तालिका 3.4 कामगारों के जेंडर वितरण के प्रभुत्व पैटर्न को स्पष्ट रूप से दिखलाता है। हम देख सकते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में जहां ओएएमई में महिला और पुरुष कामगारों की सहभागिता में अधिक अंतर नहीं है वहीं वह शहरी क्षेत्रों में बहुत अधिक है और उल्लेखनीय है। इस तरह से शहरी क्षेत्रों में महिला कामगारों को प्रमुख संकेन्द्रण ओएएमई श्रेणी के विनिर्माण उपक्रमों में है। अब आगे आने वाले अनुभागों में पाठ्यचर्चा शहरी क्षेत्रों में ओएएमई विनिर्माण उपक्रमों तक सीमित रखी जाएगी।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) अधिकांश असंगठित विनिर्माण उपक्रमों की प्रकृति स्थायी और चिरकालिक होने के बावजूद काम की उपलब्धता में कमी के कारणों पर प्रकाश डालिए।

2) असंगठित विनिर्माण क्षेत्र की श्रेणियों में से किस क्षेत्र में महिला कामगारों का प्रभुत्व सर्वाधिक है और क्यों?

3.7 निजी हाथों में प्रचालित विनिर्माण उपक्रम (ओएएमई)

विभिन्न श्रेणियों की वृद्धि दरों के अनुसार शहरी क्षेत्रों के ओएएम उपक्रमों को नीचे तालिका 3.5 में दिखाया गया है। वृद्धि की स्थिति उनके विस्तार, स्थिरता और संकुचन के आधार पर दर्शायी गयी है। ऐसे उपक्रम जो तब तक तीन वर्ष से कम अवधि के थे, इन आंकड़ों में उन पर विचार नहीं किया गया है। इन्हें एक अलग कॉलम 'उपयुक्त नहीं' में अलग करके दिखाया गया है। तालिका स्पष्ट रूप से दिखलाती है कि वृद्धि दरों के अनुसार ऐसे विनिर्माण उपक्रम जो विस्तृत होते दिख रहे हैं, खाद्य/पेयपदार्थों, तम्बाकू और रसायनों से संबंधित है। खाद्य/पेय पदार्थों के अतिरिक्त बाद वाली दो श्रेणियां खतरनाक उपक्रमों में आती हैं। संकुचन वाले उपक्रमों में अधात्विक खनिज, फर्नीचर और वस्त्र निर्माण से संबंधित उपक्रम हैं। हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश उपक्रम, प्रदत्त आंकड़ों के अनुसार अच्छा नहीं कर रहे हैं क्योंकि उनमें लगभग 60 प्रतिशत स्थिर या निष्क्रिय हैं।

तालिका 3.5: वृद्धि स्थिति के अनुसार ओएएमई उपक्रमों की प्रतिशतता (षहरी क्षेत्र)

कोड	उद्यम/वर्ग	वृद्धि की स्थिति			उपयुक्त नहीं (< 3 वर्ष)
		बढ़ती हुई	स्थिर	संकुचित होती हुई	
17	वस्त्र निर्माण	9.5	64.2	18.1	8.2
18	निर्मित परिधान	16.8	56.7	12.5	14
16	तम्बाकू	30.0	60.6	5.9	3.5
15	भोजन/खाद्य पदार्थ	18.7	56.3	12.2	12.9
36	फर्नीचर	12.8	59.5	14.0	13.8
24	रसायन	18.8	67.3	5.2	8.7
26	अधात्विक खनिज	9.0	66.3	20.5	4.1
21	कागज	8.2	62.3	12.7	16.8
कुल योग		16.6	59.6	13.1	10.6

स्रोतः एनएसएसओ 56वां चक्र, 2000-2001, रिपोर्ट संख्या 477

3.8 सारांश

यह ज़ाहिर है कि असंगठित क्षेत्र, न सिर्फ आर्थिक योगदान की दृष्टि से बल्कि चूंकि यह देश में 93 प्रतिशत कार्यबलों को रोजगार देता है, बहुत महत्वपूर्ण है। रोजगार सृजन की इसकी विशाल क्षमता, विशेष रूप से बेज़बान औरतों और हाशिए के अन्य सामाजिक समूहों के लिए, को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि वंचित समूहों द्वारा सामना की जा रही परेशानियों और कठिनाइयों को विशेष हस्तक्षेप से लक्षित किया जाए। जो प्रमुख परिदृश्य उभरकर सामने आए, वे हैं:

- ग्रामीण के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों में भी विनिर्माण उपक्रमों का प्रमुख संकेन्द्रण ओएएमई श्रेणी में है;

- शहरी क्षेत्रों की ओएएमई गतिविधियों के अन्तर्गत महिलाओं के उच्चतर संकेन्द्रण से स्पष्टतः ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में जेंडर-आधारित अंतर अधिक प्रतिस्थापित है;
- अधिकांश उपक्रम अपनी प्रकृति में स्थायी और चिरकालिक हैं, यह दर्शाते हुए कि कार्य कोई मौसमी गतिविधि नहीं है बल्कि इसकी जरूरत पूरे वर्ष भर बनी रहती है;
- विनिर्माण उपक्रम वृद्धि करने की क्षमता का प्रदर्शन नहीं करते, जैसा कि उनमें से अधिकांश एक स्थिर वृद्धि स्थिति को प्रदर्शित करते हैं;
- एनडीएमई और डीएमई उपक्रमों की तुलना में महिला कामगार ओएएमई उपक्रमों में अधिक प्रभावी हैं।

3.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

अ) अर्थव्यवस्था के प्रमुख प्रक्षेत्रों के नाम लिखिए।

ब) औपचारिक और अनौपचारिक प्रक्षेत्रों से आप क्या समझते हैं?

स) एनएसएसओ के अनुसार असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत कार्यबल को वर्गीकृत कीजिए।

द) भारत के संदर्भ में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

3.10 संदर्भ

Bhatt, Ela R. et all (1988). Shramshakti, A Report of the National Commission on Self Employed Women and Women in the Informal Sector, Ministry of Labour, Government of India, New Delhi.

Dutta Mondira (2010). Capturing Women's Work, New Delhi: Pentagon Press.

Indian Institute of Foreign Trade, (1999): 'Informal sector: A Contribution to India's Exports', A Consultancy project for Self- Employed Women's Association,New Delhi.

NSSO, (2000-2001): Report on Unorganized Manufacturing Activities in Delhi, 56th Round, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India, New Delhi.

http://en.wikipedia.org/wiki/Three-sector_hypothesis

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhatt Ela R. et all (1988): Shramshakti, A Report of the National Commission on Self Employed Women and Women in the informal Sector, Ministry of Labour, Government of India, New Delhi.

Dutta Mondira (2010): Capturing Women's Work, New Delhi: Pentagon Press.

इकाई 4 उपजीविका (व्यवसाय)

संरचना

तृप्ति शाह

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 उपजीविका की परिभाषा

4.4 सवेतन कार्य का उद्भव

4.4.1 बाजार अर्थव्यवस्था का विकास

4.4.2 भारतीय स्थिति

4.5 कामगार के तौर पर अभिलिखित महिलाएँ

4.6 महिलाओं की कार्यवृत्तिः उपजीविका मानचित्रण

4.6.1 महिलाओं हेतु वैश्विक कार्य बस्तियां

4.6.2 पेशेगत संरचना

4.7 वृत्तिक पृथक्करण

4.8 वृत्तिक पृथक्करण के प्रकार

4.8.1 क्षैतिज पृथक्करण

4.8.2 क्षैतिज पृथक्करण को चुनौती देती महिलाएँ

4.8.3 लंबवत पृथक्करण

4.9 वृत्तिक पृथक्करण के कारण

4.9.1 श्रम का जेंडर आधारित विभाजन

4.9.2 जेंडर मानक और जेंडर आधारित अधिमानताएँ

4.9.3 मानव पूँजी सिद्धांत

4.9.4 नारीवादी व्याख्याएँ

4.10 अर्जित आय एवं मजदूरी में फ़ासला

4.11 सवेतन कार्य के लाभ

4.12 नीतिगत उपाय

4.13 सारांश

4.14 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

4.15 संदर्भ

4.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता को कई तरीके से वर्गीकृत किया जा सकता है। पिछली इकाइयों में हमने विभिन्न उद्योगों, ग्रामीण शहरी क्षेत्रों और अर्थव्यवस्था के औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र में, के संदर्भ में महिलाओं की सहभागिता पर चर्चा की है। इस इकाई में हम अर्थव्यवस्था के तमाम व्यवसायों में महिलाओं की सहभागिता पर चर्चा करेंगे।

अर्थव्यवस्था में अपने को विभिन्न व्यवसायों में लगाते हुए महिलाएँ बहुत पुरातन काल से ही सहभागिता करती आई हैं। उनमें से कुछ को वेतन मिलता है कुछ को नहीं। सवेतन कार्य

तक महिलाओं की पहुंच, आर्थिक समानता के लिए उनके प्रयासों और उनके स्वाभिमान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु विडम्बना यह है कि महिलाओं के सवेतन कार्य को सामान्यतया पुरुषों के कार्य से कम महत्वपूर्ण माना जाता है।

दुनिया भर में अध्यापक और सचिव से लेकर वेल्डर्स और डाक्टर, मशीन प्रचालकों, पायलटों, इंजन चालकों और अंतरिक्ष यात्रियों से लेकर बच्चों के देखभाल करने की अनेकानेक किस्म की उपजीविकाओं में काम करती हुई महिलाओं ने अर्थव्यवस्था में अद्‌भुत योगदान किया है। इनमें से प्रत्येक और हरेक व्यवसाय में कुछ महिलाएँ प्रबंधन के सर्वोच्च पायदानों पर पहुंचने में कामयाब हुई हैं जबकि दुनिया भर में कामगार महिलाओं का बहुमत थोड़े से व्यवसायों में संकेन्द्रित है। उन्हें वृत्तिक पृथक्करण का सामना करना पड़ता है।

महिलाएँ स्वयं को अक्सर निम्नस्तरीय, थोड़े लाभों के साथ असुरक्षित कार्यों में लगी हुई पाती हैं। संगठित महिलाओं के अपवाद को छोड़ दें तो महिलाएँ अभी भी पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक कम अर्जित करती हैं और सभी क्षेत्रों में गरीब कामगारों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वे कार्यस्थलों पर बहुत से खतरों का सामना करती हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ती भी हैं। दुनिया भर में महिलाएँ नीतिगत स्तर पर परिवर्तनों के लिए लड़ रही हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- सवेतन और बिना वेतन वाले कार्यों में महिलाओं की सहभागिता पर समालोचनात्मक चर्चा कर सकें;
- उपजीविका के अर्थ और वर्गीकरण की व्याख्या कर सकें;
- वृत्तिक पृथक्करण की अवधारणा, उसके प्रकार, कारणों और प्रभावों के बारे में चर्चा कर सकें;
- वृत्तिक पृथक्करण को खत्म करने के उपायों पर सुझाव दे सकें।

4.3 उपजीविका की परिभाषा

साधारण शब्दों में, 'उपजीविका' किसी व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला, विशेषकर जीविकोपार्जन के साधन के रूप में, सामान्य या प्रमुख कार्य है। **उपजीविका को अक्सर अन्य नामों जैसे कि व्यवसाय, पेषा, रोजगार, जॉब, वृत्ति, उद्यम या नौकरी से संदर्भित किया जाता है।** मूल रूप से यह गतिविधि है जिसमें व्यक्ति नियमित रूप से अपने को समर्पित करता है। उपजीविका सवेतन या बिना वेतन के हो सकती है।

सवेतन और बिना वेतन या अनुत्पादक और उत्पादक कार्यों का यह अन्तर निर्वाह अर्थव्यवस्था में नहीं होता। यह अंतर अभी बहुत नया और हाल का है और इसे औद्योगिक बाजार अर्थव्यवस्था के साथ व्यवहार में लाया जाने लगा है।

निर्वाह अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से भूमि संबंधी या ग्राम्य आधारित अर्थव्यवस्था है जिसमें उत्पादन, विनिमय की बजाय उपभोग के लिए किया जाता है। यह ऐसी अर्थव्यवस्था है जो रुपये/धन पर आधारित नहीं है। खरीद और बिक्री बिल्कुल न्यूनतम और केवल वस्तु विनिमय द्वारा होता है।

निर्वाह अर्थव्यवस्था में उत्पादन गृह आधारित कारखानों और खेतों में होता था। परिवार उत्पादन, उपभोग और पुनरूत्पादन की एक इकाई होता था। पूरा परिवार और समुदाय के सभी सदस्य, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के उत्पादन के लिए काम करते थे। किसी भी कार्य को काम के घण्टे या साप्ताहिक दिनों में संरचित नहीं किया गया था बल्कि सामाजीकरण और खेल से अन्तर्मिश्रित था; और मौसमों के आवर्तन से जुड़ा हुआ था। उत्पादन भी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए होता था न कि बाजार में बिक्री के लिए। अर्थव्यवस्था की पुरानी पद्धति निर्वाह अर्थव्यवस्था का बाजार आधारित औद्योगिक अर्थव्यवस्था में रूपांतरण हो जाने के बाद यह सब कुछ परिवर्तित हो गया।

4.4 सवेतन कार्य का उद्‌भव

औद्योगिक युग के विकास के साथ, घर और खेत से होने वाले कार्य कारखानों और कार्यालय के इमारतों में स्थानांतरित हो गए। अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए काम करने की बजाय लोगों ने धनार्जन हेतु बाजार में बिक्री के लिए उत्पादन करना शुरू कर दिया। इस धन का विनियमन बाद में लोग अपने लिए भोजन, आवास और अन्य आवश्यकताओं से करते थे। इस तरह से समाज वस्तु-आधारित अर्थव्यवस्था से धन-आधारित अर्थव्यवस्था या बाजार अर्थव्यवस्था में बदल गया। बाजार अर्थव्यवस्था में परिवार को मात्र उपभोग और प्रजनन की एक इकाई के तौर पर देखा जाने लगा। ये गतिविधियां बिना वेतन वाले कार्य ही बने रहे। अब उत्पादन भी घर से बाहर किसी स्थान पर होना था। केवल उत्पादक कार्य सवेतन कार्य बने। इसी तर्क को आगे बढ़ाया गया और घर में होने वाले किसी भी प्रकार के कार्य को गैर-उत्पादक गतिविधियों की तरह माना जाने लगा। घर में और बाहर भी किए जाने वाले इस तरह के उत्पादक गतिविधियों के अल्प मूल्यांकन के पीछे यही तर्क सैद्धांतिक आधार बना।

4.4.1 बाजार अर्थव्यवस्था का विकास

आज अधिकांश आर्थिक प्रणालियां बाजार द्वारा प्रभावित हैं। बाजार दरअसल वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय (खरीद और बिक्री) को संदर्भित करता है। परन्तु बाजार अर्थव्यवस्था साधारण विनिमय के बारे में नहीं है। बल्कि यह लाभ अर्जित करने, पूँजी अर्जित करने, विस्तार और वृद्धि के बारे में है।

पश्चिमी देशों में औद्योगिक, बाजार अर्थव्यवस्था की शुरुआत के साथ, उत्पादक और अनुत्पादक के बीच, सवेतन और अवैतनिक कार्य के बीच अंतर उभरकर सामने आया। पुरुष लोग कारखानों और कार्यालयों में गए और जो भी सेवाएं प्रदान कीं उसके लिए वेतन प्राप्त किया; महिलाएँ घर पर रहीं और प्रजनन, घर और समुदाय की देखभाल संबंधी कार्यों में लगी रहीं परन्तु उन्हें इसके बदले कोई वेतन नहीं मिला।

अर्थशास्त्र ने जीवन को दो अलग कोटियों में विभाजित कर दिया: आर्थिक विभाग और पारिवारिक विभाग। आर्थिक विभाग बाजार पर ध्यान केन्द्रित करता है: उत्पादकों, क्रेताओं और विक्रेताओं पर; जबकि पारिवारिक विभाग उन सभी प्रकार के अवैतनिक कार्यों को समाहित करता है जो जीवनयापन के लिए आवश्यक हैं। चूंकि अर्थव्यवस्था सिर्फ उत्पादनों की गणना करती है जो वस्तुओं का उत्पादन करती है जिन्हें बाजार में बेचा जा सकता है, इसलिए परिवार को आर्थिक विभाग से बाहर होने की तरह से देखा जाने लगा और इसीलिए उसे **'अनुत्पादक'** करार दिया गया। इसके विपरीत, खरीद एवं बिक्री और व्यापार जो आर्थिक विभाग में घटित होता था, उन्हें **'उत्पादक'** कह दिया गया।

जब महिलाओं ने सवेतन कार्यबल में प्रवेश किया तो उनकी आय को उनके पति या पिता के आय के सम्पूरक के तौर पर और उनके कार्य को घर पर किए जाने वाले अनुत्पादक कार्य के विस्तार की तरह देखा गया। इसके परिणामस्वरूप महिलाएँ जो भी काम करती थीं उसे पुरुषों के कार्यों से कमतर मौद्रिक मूल्य दिया गया। आज भी, महिलाओं का सवेतन कार्य समय और व्यवस्था के तराजू पर अस्थिर और कमतर वेतन वाला है, और उनके कार्य का बहुत अधिक भाग पूरी तरह से अवैतनिक बना हुआ है। महिलाओं का बच्चों को पालने और बड़ा करने का कार्य, घर को संभालने का कार्य, सभी के लिए भोजन प्रदान करने और भावनात्मक सहारा प्रदान करने के कार्यों को सामान्यतया अनुत्पादक समझा जाता है, इस तथ्य के बावजूद कि अर्थव्यवस्था निरपेक्ष रूप से इस पर निर्भर है। बच्चों के योगदान को भी बिना मूल्य का मान लिया गया है।

पश्चिमी औद्योगीकृत देशों ने उद्योगों और बाजार अर्थव्यवस्था के साथ ठीक यही प्रक्रिया अपने उपनिवेशों में प्रारम्भ की। आइए हम भारत के संदर्भ में इसे देखते हैं।

4.4.2 भारतीय स्थिति

भारत में जनगणना अभिलेखों की प्रणाली को ब्रिटिश शासकों द्वारा आरम्भ किया गया था। जब 1871 में जनगणना का आरम्भ हुआ तो एक बहुत ही रुचिकर वाद-विवाद चला। (कलपगम, 1994 पृ. 17)। डा. फर्र, जो पहले ब्रिटेन की जनगणना पर कार्य कर चुके थे, से उपजीविकाओं के वर्गीकरण पर सहायता के लिए कहा गया। उनके पास एक विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी उपजीविका के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उन्होंने ''घरेलू उपजीविका'' नाम से एक श्रेणी की शुरुआत की जिसके पीछे यह विचार था कि जो महिलाएँ सिर्फ घरेलू कार्य करती हैं उन्हें भी उपजीविका तालिकाओं में समाहित किया जाना चाहिए। डॉ. फर्र के विचार का प्रबलता एवं प्रचण्डता से इस तर्क के साथ विरोध किया गया कि महिलाओं और बच्चों के पास उपजीविका नहीं हो सकती। वे अपने आराम और सहारे के लिए पुरुषों पर निर्भर हैं और पुरुष लोग उन्हें यह सब प्रदान करने के लिए उपजीविकाओं में लगे हुए हैं। जनगणना का यह सैद्धांतिक आधार जिसे ब्रिटिश लोगों ने आरम्भ किया था, स्वतंत्रता के बाद भी ज्यों का त्यों जारी है। स्वतंत्रता के बाद नियोजन की प्रक्रिया से जुड़े हुए नेताओं और बुद्धिजीवियों के पास भी महिलाओं को लेकर वही उच्च और मध्यमवर्गीय विश्व दृष्टि थी जो महिलाओं को पुरुषों पर निर्भर देखती थी। उन्होंने गरीब और शहरी परिवारों में भारी संख्या में कार्यरत कामकाजी महिलाओं की वास्तविकता को बड़ी आसानी से नज़रअंदाज कर दिया। नारीवादी अर्थशास्त्रियों ने इस समझ को चुनौती दी और जेंडर चिंताओं को समाहित करते हुए पंचवर्षीय योजनाओं और आंकड़ा इकट्ठा करने की प्रणाली प्रगति पर है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) उपजीविका की परिभाषा लिखिए।

2) बाजार अर्थव्यवस्था क्या है?

नीचे आने वाले अनुभाग में महिलाओं और सवेतन कार्य से उनके जुड़ाव पर अपनी चर्चा हम जारी रखेंगे।

4.5 कामगार के तौर पर अभिलिखित महिलाएँ

प्रत्येक महिला एक कामकाजी महिला है क्योंकि बिना उनके कार्य के अर्थव्यवस्था कार्य नहीं कर सकती। हालाँकि श्रमबल सांख्यिकी यह नहीं दर्शाती क्योंकि महिलाओं की श्रमबल सहभागिता का आंकलन कामगारों की गणना करने की विधियों में पक्षपातों से विशेष रूप से संवेदनशील है। इसलिए किस गतिविधि की गणना काम के तौर पर की गई है, इससे आंकड़ों में भिन्नता है। जैसे कि क्या यह ऐसी गतिविधि है जिसे बेचा जा सके और बदले में आय हो अर्थात लाभप्रद आर्थिक गतिविधि; या फिर यह ऐसी गतिविधि है जो, इस बात की परवाह किए बिना कि इसे बेचा जा सकता है या नहीं, परिवार या समाज के संसाधनों में कुछ जोड़ता है। भारत की जनगणना में जो विधि प्रयोग की गई है वह लाभप्रद आर्थिक गतिविधियों की गणना वाली है।

सवेतन कार्य में महिलाओं का अनुपात वर्षानुवर्ष बढ़ रहा है परन्तु दुनिया भर में श्रमबल सहभागिता में अंतर का अवलोकन हम तालिका 4.1 में कर सकते हैं। इस तालिका में दुनिया भर में 15 वर्ष और अधिक आयुवर्ग की महिलाओं में से 59 प्रतिशत महिलाओं को सवेतन श्रमबल के तौर पर अंकित किया गया है। इसका विस्तार भी देखा जा सकता है जैसे कि 92 प्रतिशत के साथ बुरुण्डी सर्वोच्च स्थान पर और 22 प्रतिशत के साथ पाकिस्तान सबसे अंतिम स्थान पर है।

तालिका 4.1: श्रम बल सहभागिता*

देश	महिला	पुरुष	महिला-से-पुरुष अनुपात
बुरुण्डी	92	88	1.04
घाना	75	76	0.99
तुर्की	26	74	0.35
मैक्सिको	46	84	0.55
स्विट्जरलैण्ड	76	87	0.88
चीन	74	85	0.88
अमेरिका	68	80	0.85
ब्राजील	64	85	0.75
भारत	35	85	0.42
पाकिस्तान	22	88	0.26

*इस तालिका में श्रमबल सहभागिता दर 15 से 64 वर्ष आयुवर्ग को संदर्भित है।

स्रोतः द ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2011, वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम द्वारा इनसाइट रिपोर्ट, पृ. 42

4.6 महिलाओं की कार्यवृत्तिः उपजीविका मानचित्रण

सवेतन कार्य में महिलाओं का अनुपात पिछले कुछ दशकों के दौरान बढ़ा है और महिलाओं ने कई ऐसे क्षेत्रों में भी कार्य करना आरम्भ किया है जो कभी पुरुष-प्रभुत्व वाले क्षेत्र समझे

जाते थे। हालाँकि महिला कामगारों में बहुसंख्यक लोगों के लिए श्रम का जेंडर (लैंगिक) विभाजन अभी भी बहुत वास्तविक तथ्य है। यहां तक कि सवेतन कार्यों में भी महिलाएँ फिर भी अपने को परंपरागत उपजीविकाओं में अधि-प्रतिनिधित्व करती पाती हैं जो दरअसल एक तरह से घर पर उनके अवैतनिक कार्यों का विस्तार होता है, उदाहरणार्थ घर और दुकान की देखभाल, बच्चों की देखभाल और कपड़ों की सिलाई। ऐसी निम्न-पदस्थिति वाली, निम्न वेतन वाली, महिलाओं के प्रभुत्व वाली उपजीविकाओं जैसे कि सचिव, बिक्री क्लर्क और भोजन परसने वाले बैरे के कार्यों को **'पिंक-कॉलर'** जॉब कहा जाता है।

कई महिलाओं के लिए काम का विकल्प उनके कॅरियर विकल्पों की बजाय आर्थिक आवश्यकता के चलते निर्धारित होता है। इस प्रकार के कार्यों को अपनाने के पीछे एक और कारण यह भी है कि उन्हें बीच-बीच में अपने कार्यस्थलों को छोड़ने की सुविधा मिल जाती है जबकि उनके बच्चे छोटे होते हैं और फिर बच्चों के बड़े हो जाने पर काम पर लौट आती हैं।

4.6.1 महिलाओं हेतु वैश्विक कार्य बस्तियां

दुनिया भर में कुछ उपजीविकाएं महिलाओं के लिए **'जॉब बस्तियों'** की तरह समझे जाते हैं क्योंकि उन उपजीविकाओं में महिलाएँ बहुलता से संकेन्द्रित हैं। विभिन्न देशों में महिलाओं के लिए जॉब बस्तियां समझे जाने वाली कुछ उपजीविकाएं निम्न प्रकार हैं।

- आस्ट्रिया - चिमनी की सफाई
- चीन - कपास और धान की खेती
- हंगरी - इलेक्ट्रॉनिक्स एसेम्बली
- भारत - लेस के काम, खाद्य एवं मत्स्य प्रसंस्करण, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग
- ईरान - बुनकरी
- निकारागुआ - कॉफी बीन्स संग्रह
- नाइजीरिया - स्ट्रीट फूड की फेरी
- नेपाल - सड़क निर्माण
- तुर्की - तम्बाकू प्रसस्करण
- ब्रिटेन - कार्यालयों की सफाई

स्रोतः यूएनपीएसी की वेबसाइट

जबकि महिलाएँ पूरी दुनिया में बहुविध प्रकार की उपजीविकाओं में पाई जाती हैं, पिंक-कॉलर जॉब्स और जॉब बस्तियां प्रत्येक देश में पाए जाते हैं, चाहे वह विकसित हो या फिर विकासशील।

4.6.2 पेशेगत संरचना

आइए हम लोग संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे एक विकसित देश और भारत जैसे विकासशील देश में पेशेगत संरचना का परीक्षण करते हैं। हम तालिका 4.2 से अवलोकन कर सकते हैं कि सचिवों और सहायकों, नर्सों, स्कूल अध्यापिकाओं, नौकरानियों और साफ सफाई के कार्यों, रिसेप्शनिस्टों, बच्चों के देखभाल के कार्यों, बही लेखन के कार्य, अध्यापक सहायकों के कार्य इत्यादि जैसे उपजीविकाओं में 80 प्रतिशत से अधिक महिला कर्मचारी हैं। भारत

में भी स्थिति कुछ अलग नहीं है। तालिका 4.3 पर एक नज़र डालिए। भारत में कुल महिला कामगारों का 40 प्रतिशत कृषि और मत्स्ययन कार्यों में लगा हैं और 37 प्रतिशत प्राथमिक स्तर की उपजीविकाओं में।

तालिका 4.2: अमेरिका में नियोजित महिलाओं की प्रमुख उपजीविकाएं (2010)

	उपजीविका	महिलाओं की प्रतिशतता
1.	सचिव और प्रशासनिक सहायक	96.1
2.	पंजीकृत परिचारिकाएं (नर्सें)	91.1
3.	प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल अध्यापिकाएँ	81.8
4.	नर्सिंग, मनोविश्लेषक और घरेलू स्वास्थ्य सहायिकाएँ	88.2
5.	घरेलू नौकरानी एवं सफाई क्लर्क	89.0
6.	रिसेप्शनिस्ट और सूचना क्लर्क	92.7
7.	बच्चों के देखभाल वाली कार्यकर्ताएँ	94.7
8.	बही लेखन, लेखांकन एवं लेखापरीक्षक क्लर्क	90.9
9.	अध्यापक सहायिकाएँ	92.4
10.	व्यक्तिगत और घरेलू सहायक	86.1
11.	कार्यालय क्लर्क, सामान्य	84.2

स्रोतः संयुक्त राज्य श्रम विभाग, ब्यूरो ऑफ लेबर सांख्यिकी।

तालिका 4.3: उपजीविकाओं के आधार पर भारत में महिला कर्मचारियों का वितरण - 2010

	उपजीविका का विवरण	कुल कर्मचारियों में महिलाओं का प्रतिशत	कुल महिला कर्मियों का प्रतिशत
1.	विधायिकाएं, वरिष्ठ अधिकारी एवं प्रबंधक	14	2.63
2.	पेशेवर	20	2.51
3.	तकनीशियन और सहायक पेशेवर	30	3.06
4.	क्लर्क	16	1.07
5.	सेवाकर्मी और दुकान एवं बाजार सेल्सकर्मी	15	3.62
6.	कुशल कृषि एवं मत्स्यन कर्मी	35	40.36
7.	शिल्प एवं संबंधित व्यापार कर्मी	21	8.55
8.	प्लांट एवं मशीन प्रचालक एवं संयोजक	6	0.77
9.	प्राथमिक उपजीविकाएं	33	37.10
10.	उपजीविकाओं में अवर्गीकृत कामगार	11	0.06

स्रोतः एनएसएसः प्रमुख संकेतकों से गणना किया हुआ। भारत में रोजगार एवं बेरोजगारी के प्रमुख संकेतक, जुलाई 2009-जून 2010, तालिका पी 9, पृ. 176

इस प्रकार भारत में 77 प्रतिशत महिला कर्मचारी बागवानी और फसल उपजाने वाली, मवेशियों की उत्पादक और संबंधित कर्मी, वानिकी एवं संबंधित कर्मी, मत्स्यन कर्मी, निर्वाह कृषि और मत्स्यन कर्मी, फेरी वाली, घरेलू सहायिकाएँ और संबंधित सहायिकाएँ, सफाई कर्मी और धुलाई वाली, कूड़ा उठाने वाली और संबंधित मजदूर हैं।

तकनीशियनों और सहायक पेशेवरों में से मात्र 30 प्रतिशत पदों पर महिलाएँ हैं। यदि हम इस श्रेणी का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि इस श्रेणी में महिलाएँ मुख्यतः माध्यमिक एवं प्राइमरी, प्री-प्राइमरी और विशेष शिक्षा में सहायक अध्यापिकाओं के रूप में संकेन्द्रित हैं। इसी प्रकार से सभी पेशेवरों में से मात्र 20 प्रतिशत महिलाएँ हैं। वे कौन हैं? फिर इस श्रेणी में भी 39 प्रतिशत अध्यापन पेशे में और 29 प्रतिशत स्वास्थ्य पेशे में जिसमें नर्सिंग, परिचारिका, परंपरागत औषधि अभ्यासी और विश्वास उपचार भी सम्मिलित हैं। ये सभी महिलाओं के लिए परम्परागत उपजीविकाएं हैं। इस श्रेणी में जो नई उपजीविका है वह है सूचना तकनीकी पेशेवरों की। यह भी एक वृद्धिकारक पेशा है जिसने अच्छी खासी संख्या में महिलाओं को रोजगार दिया है।

बॉक्स सं. 4.1

भारत में उपजीविकाओं का वर्गीकरण

भारत में उपजीविकाओं का वर्गीकरण उपजीविकाओं के राष्ट्रीय वर्गीकरण (एनसीओ) के आधार पर किया गया है। ये वर्गीकरण स्वतंत्रता के समय से धीरे-धीरे विकसित हुए हैं और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के वर्गीकरण के अनुसार संशोधित किए गए हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय तुलना संभव हो सके। भारत में वर्तमान में प्रयुक्त वर्गीकरण एनसीओ-2004 है। उपजीविकाओं का समूहन 'निष्पादित कार्य के प्रकार' के आधारभूत मानदण्ड पर आधारित है। समान प्रकार के कार्य में संलग्न कर्मियों को एक साथ समूह में रखा गया है बिना इस बात पर ध्यान दिए कि जहां वे कार्य कर रहे हैं उनकी स्थापनाओं का औद्योगिक वर्गीकरण क्या है? उदाहरण के लिए, क्लर्क का काम करने वाले सभी कर्मियों को एक ही समूह में रखा गया है; चाहे वे किसी कारखाने में नियोजित हों, सरकारी कार्यालय में हों या यहां तक कि किसी दुकान में। इसी प्रकार से ड्राइवरों को भी एक समूह में रखा गया है और उन्हें भी जो सेवाओं में हैं इत्यादि।

निष्पादित कार्य के प्रकार के साथ ही साथ एक दूसरा मानदण्ड है अपनी उपजीविका के निष्पादन हेतु आवश्यक कुशलता का स्तर। यहां ''कौशल'' या ''कुशलता'' की परिभाषा उस योग्यता से दी गई है जो दिए गए कार्य और कर्तव्य को पूरा करने के लिए आवश्यक हो।

2945 उपजीविकाओं को एनसीओ के अन्तर्गत पहचाना गया है और उन्हें निर्धारित कोड दिए गए हैं। प्रत्येक उपजीविका के लिए एक छः अंकीय कोड, एक स्पष्ट शीर्षक और एक परिभाषा नियत की गई है।

उपजीविकाओं को उनके जॉब विवरण के आधार पर पहले 10 पेशागत विभागों में नियत किया है। फिर हर विभाग को 30 उप-विभागों 116 समूहों और 439 परिवारों में संयुक्त किया गया है। तालिका 4.3 भारत में महिला कर्मियों के पहले 10 विभागों का विवरण देती है।

इस प्रकार आज तक भी संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में और भारत जैसे विकासशील देशों में महिलाएँ सवेतन कार्यों में कुछ ही उपजीविकाओं में संकेन्द्रित हैं, जो कम या अधिक उनके घरेलू कार्यों के विस्तार मात्र हैं। कुछ खास उपजीविकाओं में ही

महिलाओं के इस संकेन्द्रण को समझने के लिए हमें पहले वृत्तिक पृथक्करण की अवधारणा समझनी होगी।

4.7 वृत्तिक पृथक्करण

वृत्तिक पृथक्करण, सभी उपजीविकाओं को उत्तरदायी लक्षणों, खासकर जेंडर, द्वारा परिभाषित समूहों में वर्गीकृत करना है। मूल रूप से यह एक समान समूह के लोगों (पुरुष, महिला, श्वेत, अश्वेत किसी भी आधार पर गठित) का किसी एक जॉब में संकेन्द्रण है। वृत्तिक पृथक्करण के स्तर पूर्ण पृथक्करण और समेकन के बीच स्थित होते हैं। पूर्ण पृथक्करण तब घटित होता है जब उपजीविका और समूह सदस्यता बिल्कुल सही-सही अलग होते हैं, अर्थात जहां कोई भी जॉब एक निश्चित समूह से बाहर के लोगों से आबाद नहीं रहता। दूसरी ओर, पूर्ण समेकन इसके ठीक विपरीत वहां घटित होता है जहां प्रत्येक समूह किसी उपजीविका में समान अनुपात में श्रम बल में पदों को धारित करता है। (वीडेन, 2008)।

बॉक्स सं. 4.2

पूर्ण पृथक्करण को चुनौती देती महिलाएँ

अक्टूबर 2011 में, शांति टिग्गा, शारीरिक परीक्षणों में असाधारण रूप से बहुत अच्छा करने के बाद भारतीय सेना में लड़ाकू सैनिक बनने वाली पहली महिला बनीं। उन्होंने प्रादेशिक सेना, के एक रेजीमेंट में ज्वाइन किया, जो नियमित सेना की सहायता करने के उद्देश्य से स्वयंसेवकों की भर्ती करती है। प्रादेशिक सेना के स्वयंसेवक कभी-कभार बमुश्किल ही युद्धों या संघर्षों में सीधे भेजे जाते हैं। टिग्गा कुछ स्वयंसेवक लोगों में से पहली थीं और पुरुषों के साथ, मानकों में बिना किसी ढिलाई दिए, शारीरिक परीक्षा पास करने वाली पहली महिला बनीं। परन्तु इस बात की संभावना बहुत ही कम है कि सुश्री टिग्गा को किसी युद्ध, लड़ाई या संघर्ष में भाग लेने का जल्दी मौका मिले। अभी के लिए वह मुख्यतः सहायक के रूप में रहेंगी। फिर भी, सुश्री टिग्गा को लड़ाकू सैनिक की पहचान मिलनी बड़ी बात है और भारतीय सेना के लिए बड़ा कदम है, जहां महिलाएँ कभी भी युद्धक कर्तव्यों के लिए भर्ती नहीं की जाती थीं/ न की गईं थीं और जहां कहीं दूसरी जगहों पर उनकी भर्ती होती थी, अधिकांशतः उन्हें जल्दी सेवानिवृत्त होने को मजबूर किया जाता था (मेहता, 2011)।

भारतीय सेना पूर्ण पृथक्करण का एक अच्छा उदाहरण था। सीमा पर सेना की कई गतिविधियों में महिलाओं को अनुमति नहीं है। 1992 में पहली बार महिलाओं को नियमित सेना में भर्ती होने की अनुमति दी गई। परन्तु फिर भी, इज़रायल और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों के विपरीत उन्हें लड़ाकू इकाइयों में अनुमति नहीं है। इसकी बजाय उनकी भर्ती सिर्फ चिकित्सा सेवा, इंजीनियरिंग और अन्य सहायक इकाइयों में होती है।

अधिकांश उपजीविकाओं में पूर्ण से थोड़ा कम ही पृथक्करण है। उदाहरण के लिए, महिलाएँ घरेलू सेवाओं में प्रमुखता से प्रतिनिधित्व करती हैं। एनएसएसओ के 2004-05 में किए गए अनुमानों के अनुसार, निजी परिवारों में रोजगार प्राप्त कामगारों, जिनमें व्यापक तौर पर घरेलू नौकर हैं, की संख्या 47.5 लाख है। इनमें से 30.5 लाख महिलाएँ हैं। सभी प्रकार के घरेलू नौकरों में से 87 प्रतिशत घरेलू नौकरानियां महिलाएँ हैं। (नीता, 2009)।

वृत्तिक पृथक्करण, परम्परागत या पुरानी उपजीविकाओं में तो देखा ही गया है और जिन्हें नई अर्थव्यवस्था माना गया है, उन उपजीविकाओं में भी पृथक्करण मिलता है। परम्परागत

मत्स्यन समुदायों में, यद्यपि महिलाएँ मत्स्यपालन, जाल बनाने और पकड़ी हुई मछलियों को बेचने में सक्रिय रूप से लगी होती हैं, फिर भी 'जाल फेंकना' या मछली पकड़ना उनके लिए पूर्णतया निषिद्ध है। नीचे बॉक्स में लिखा वक्तव्य एक जानी-मानी कार्यकर्ता और नारीवादी मजदूर संघ की सदस्या जो मत्स्यन का काम करने वाली महिलाओं के बीच काम करती हैं, ने 'भारतीय मत्स्य पालन में महिलाएँ' विषय पर आयोजित कार्यशाला में अपने प्रमुख भाषण में दिया था।

बॉक्स सं. 4.3

'मत्स्य पालन - एक नारीवादी परिप्रेक्ष्य से उद्धृत'

'....यह जानी-मानी बात है कि महिलाएँ हमेशा से मत्स्य उद्योग के तमाम कार्यों में लगी रही हैं। ऐसे तमाम उदाहरण हैं जहां महिलाएँ परंपरागत तौर पर अपने साथी पुरुषों की समान भागीदार रही हैं, यहां तक कि मछलियों को पकड़ने में भी, जैसे कि वियतनाम, श्रीलंका और दक्षिण अमेरिका, पश्चिमी अफ्रीका, कैरीबियन और दक्षिणी प्रशांत के कुछ देशों में होता है। इनमें से कुछ देशों में उनकी प्रशंसा कुशल नाविकों के रूप में और कुछ दूसरे देशों में वे समुद्र में जाने वाले जहाजों के निर्माण में भी भाग लेती हैं।''

हालाँकि मानक यही है कि इस उद्योग में जेंडर आधारित श्रम विभाजन मौजूद है। यद्यपि कहा जा सकता है कि इस तरह का श्रम विभाजन ऐतिहासिक रूप से (कुछ हद तक जरूरी विशेषज्ञता अन्ततोगत्वा जेंडर विशिष्ट होती गयी।) विकसित हुआ है, परन्तु अन्य कारण भी हैं (हालाँकि इतने तार्किक नहीं हैं) जिसने इसमें अपना योगदान दिया है। इस तरह से केरल में महिलाओं को समुद्र में जाने की अनुमति नहीं है क्योंकि माना जाता है कि उनकी ''अशुद्धता'' समुद्र को ''अपवित्र'' कर देगी। दूसरे देशों में भी ऐसी वर्जनाएं एवं मिथक देखे गए हैं। महिलाएँ इस प्रणाली में सामान्यतः मछलियों के विपणन और जालों के निर्माण में अपनी भूमिका निभाती रही हैं। बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऐसा श्रम विभाजन निरपवाद रूप से संकेत करता है कि महिलाओं का योगदान कम कीमती है। हालाँकि जैसा एलिस श्लीगेल (1977) कहती हैं:''....निर्वाह की स्थितियों में, अलग-अलग पुरुष और महिला कार्यक्षेत्रों की अंतर-निर्भरता और पूरकता, विविधता पर आधारित इसका अभिलाक्षणिक अंदाज है, न कि असमानता पर आधारित।'' 'मत्स्य पालन - एक नारीवादी परिप्रेक्ष्य', द्वारा नलिनी नायक से उद्धृत (1992, पृ. 9)

अब हम सूचना एवं संचार तकनीक (आईसीटी) और सूचना तकनीक समर्थित सेवाओं (आईटीईएस) में वृत्तिक पृथक्करण का परीक्षण करेंगे, जिन्हें नई अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से वृद्धि करने वाले क्षेत्रों के रूप में माना जाता है। यह अपेक्षा की गई थी कि नई अर्थव्यवस्था का उदय उत्पादकता और विशेष रूप से महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि करेगा। (उन्नी, 2008)।

सूचना तकनीक औद्योगिक श्रेणी में महिलाओं की हिस्सेदारी 1999-2000 में 14.5 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 17.7 प्रतिशत हो गयी। परन्तु सूचना तकनीक उद्योग के अन्तर्गत हार्डवेयर परामर्श के कार्यों में कुल कर्मचारियों में महिलाओं की हिस्सेदारी घटी है जबकि आंकड़ा प्रसंस्करण और आंकड़ा आधारित गतिविधियों में उनकी हिस्सेदारी उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। इस प्रकार वृत्तिक पृथक्करण न केवल परंपरागत उपजीविकाओं में देखा गया है बल्कि 'नई अर्थव्यवस्था' में भी दिखता है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) जॉब बस्तियां क्या हैं? वैश्विक स्तर पर महिलाओं के लिए जॉब बस्तियां क्या हैं?

2) ऐसी कौन सी उपजीविकाएं हैं जिनमें महिलाओं का संकेन्द्रण अधिक है?

3) पुरानी और नई उपजीविकाओं में वृत्तिक पृथक्करण के उदाहरण दीजिए।

4.8 वृत्तिक पृथक्करण के प्रकार

वृत्तिक पृथक्करण के अन्तर्गत दो प्रमुख प्रकार हैं:

(1) क्षैतिज पृथक्करण और (2) लंबवत पृथक्करण

4.8.1 क्षैतिज पृथक्करण

क्षैतिज पृथक्करण ऐसी जगहों पर होता है जहां कार्यबल अधिकांशतः एक ही जेंडर, जाति या अन्य उत्तरदायी अभिलक्षण से निर्मित हुआ हो।

उदाहरण के लिए, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों जैसे कि पापड़ बेलने, मत्स्य प्रसंस्करण इत्यादि में अधिकांश कर्मचारी महिलाएँ हैं। इसी तरह से अधिकांश प्राथमिक अध्यापक, नर्स, रिसेप्शनिस्ट, ब्यूटीशियन इत्यादि भी महिलाएँ हैं जबकि दूसरी ओर सिविल इंजीनियर्स, कारपोरेट, प्रबंधक इत्यादि अधिकांशतया पुरुष होते हैं। यह सभी क्षैतिज पृथक्करण के उदाहरण हैं।

4.8.2 क्षैतिज पृथक्करण को चुनौती देती महिलाएँ

भारतीय महिलाओं ने ऐसी विभिन्न उपजीविकाओं, जिन्हें पुरुषों का गढ़ समझा जाता था, में प्रवेश कर क्षैतिज पृथक्करण को जोरदार चुनौती पेश की है। हम कुछ उदाहरणों को देखते हैं। **हरिता कौर देओल** भारतीय एयर फोर्स में, 1994 में एक अकेली उड़ान भरके पहली भारतीय महिला पायलट बनीं। केन्द्रीय रेलवे की **सुरेखा यादव** एशिया में पहली महिला ट्रेन चालक बनीं और मुम्बई की जीवन रेखा पर लाखों यात्रियों को लेकर प्रतिदिन चलती हैं। महिलाएँ न केवल सार्वजनिक परिवहन में चालक और परिचालक बनीं बल्कि निजी परिवहन में भी हाथ आजमाने लगी हैं। **सुसीबेन शाह**, जो मुम्बई में प्रियदर्शिनी टैक्सी सेवा चलाती हैं, ने कई महिला टैक्सी ड्राइवरों को नौकरी पर रखा है। **सुनीता चौधरी** दिल्ली की पहली महिला ऑटोरिक्शा चालक 2004 में ही बन गईं थीं। अब तो तमाम महिलाएँ अपने बच्चों को उनके स्कूल पहुंचाने के लिए चालक के तौर पर काम करती हैं। उन्होंने पुरुष प्रभुत्व वाले ट्रक चालन के क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है।

4.8.3 लंबवत पृथक्करण

लंबवत पृथक्करण बिल्कुल 'शीशे की छत' (सीलिंग) जैसा है, जहां किसी विशेष जेंडर या अन्य उत्तरदायी लक्षणों के लिए कॅरियर में आगे बढ़ने के अवसर कम होते जाते हों। इस प्रकार यह एक प्रकार की रुकावट या अवरोध के बारे में है जिसका सामना महिलाएँ किसी उपजीविका में ऊपर के पायदानों तक पहुंचने में करती हैं।

अर्थशास्त्र में **'शीशे की छत'** यानी **'ग्लास सीलिंग'** पद का तात्पर्य होता है, ''अदृश्य, फिर भी अगम्य अवरोध जो अल्पसंख्यकों और महिलाओं को, जरूरी योग्यताओं और उपलब्धियों के बावजूद, कारपोरेट सीढ़ी में ऊपरी सोपानों पर चढ़ने से रोकता है।'' (यूएसडीएल, 1995)।

शीशे की छत उपमा का प्रायः उपयोग ऐसे अदृश्य अवरोधों को वर्णित करने में किया जाता है जिससे महिलाएँ कुलीन और सभ्रांत पदों को देख (''शीशा'') तो सकती हैं परन्तु वहां तक पहुंच (''छत'') नहीं सकतीं। ऐसे अवरोध भारी संख्या में महिलाओं और नस्ली अल्पसंख्यकों को कार्य बल में सर्वाधिक शक्तिशाली, सम्मानजनक और सर्वाधिक वेतन वाले जॉब्स को पाने में और उस पर बने रहने से रोकते हैं। इतना ही नहीं, यह अवरोध बहुत सी महिलाओं

को यह एहसास करने पर मजबूर कर सकता है कि वे उन उच्च-स्तरीय पदस्थितियों को पाने के लिए पर्याप्त योग्य नहीं हैं बल्कि वे ऐसा भी महसूस करती हैं कि उनके अधिकारी उन्हें गम्भीरता से नहीं लेते या वास्तव में उन्हें समर्थ उम्मीदवार की तरह नहीं देखते।

शीशे की छतों का अस्तित्व तो है यद्यपि ऐसी स्पष्ट बाधाएं नहीं हैं जो महिलाओं और अल्पसंख्यकों को उन्नत जॉब पदों को ग्रहण करने से रोकती हों– कोई भी ऐसा विज्ञापन नहीं होता जो विशिष्ट रूप से कहता हो कि 'इस स्थापना में महिलाओं की भर्ती नहीं की जाएगी'। परन्तु ऐसी बातें सतह के नीचे निश्चित रूप से विद्यमान रहती हैं। ये अदृश्य बाधाएं विकसित देशों में भी हैं और भारत जैसे विकासशील देशों में भी।

कम्युनिटी बिजनेस द्वारा एक अध्ययन **जेंडर डायवर्सिटी बेंचमार्क फॉर एशिया** 2011 में, एशिया के छह बड़े देशों चीन, हांगकांग, भारत, जापान, मलेशिया और सिंगापुर में स्थित 21 विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सर्वेक्षण यह देखने के लिए किया गया कि प्रबंधन के कनिष्ठ, मध्यम और वरिष्ठ स्तरों पर महिलाएँ किस तरह काम कर रही हैं। इस अध्ययन के अनुसार महिलाओं का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व कनिष्ठ स्तर पर मिला, उससे कुछ कम मध्यम स्तर पर और वरिष्ठ स्तर पर सबसे कम प्रतिनिधित्व मिला।

भारत में इन कंपनियों में महिलाएँ कनिष्ठ स्तर पर कुल कार्यबल के 29 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करती हैं जो मध्यम स्तर पर घटते हुए 15 प्रतिशत से कुछ कम पर पहुंच गया और कुल कार्यबल के 10 प्रतिशत से भी कम भाग वरिष्ठ स्तर पर उनका प्रतिनिधित्व रह गया था।

इसी प्रकार द **ग्रांट थार्नटन इंटरनेशनल बिजनेस रिपोर्ट** पूरी दुनिया में फैले हुए निजी हाथों में संचालित व्यवसायों में कार्यरत 6000 वरिष्ठ प्रबंधकों के दृष्टिकोणों का वार्षिक सर्वेक्षण है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में स्थित कंपनियों में प्रबंधन के सर्वोच्च स्तर पर मात्र 14 प्रतिशत पर महिलाएँ काबिज हैं। यद्यपि यह पिछले कई वर्षों की अपेक्षा बहुत अधिक है फिर भी बाकी दुनिया के 21 प्रतिशत के उच्च स्तर की तुलना में बहुत कम है। प्रकार्यात्मक क्षेत्रों के संदर्भ में मानव संसाधन (एचआर) का क्षेत्र भारतीय महिलाओं के बीच सबसे पसंदीदा क्षेत्र बनकर उभरा जिसमें वरिष्ठ प्रबंधकीय पदों के 23 प्रतिशत पदों पर महिलाएँ काबिज हैं इसके बाद वित्तीय पदों का क्षेत्र रहा जिसमें 16 प्रतिशत उच्च प्रशासकीय पदों पर महिलाएँ काबिज हैं और फिर नंबर आता है सेल्स का जिसमें मात्र 10 प्रतिशत उच्च प्रबंधकीय पदों पर महिलाएँ काबिज हैं।

यह लंबवत के साथ साथ क्षैतिज पृथक्करण का उदाहरण है क्योंकि महिलाएँ न सिर्फ सर्वोच्च पदों पर बहुत कम संख्या में है बल्कि वे भारी संख्या में मानव संसाधन विभाग में संकेन्द्रित हैं।

बॉक्स सं. 4.4

शीशे की छत को तोड़ना

जब भी महिलाओं के सफलता की सीढ़ी पर चढ़ने की बात आती है, प्रत्येक कारपोरेट के वातावरण के बारे में कहा जा सकता है कि उसमें 'शीशे की छत' होती है। हालाँकि कुछ ऐसी भी भारतीय महिलाएँ हैं जो शीशे के इस छत को तोड़ सकी हैं। इन्द्रा नूयी, पेप्सिको की मुख्य कार्यकारी अधिकारी और अध्यक्ष उनमें से एक हैं। नैना लाल किदवई ने अपनी क्षमताओं के बूते 1982 से 1994 तक एएनज़ेड ग्रिंडलेज में इन्वेस्टमेंट बैंकिंग की अध्यक्ष रहकर फिर जेएम मोरगन स्टेनली की उपाध्यक्ष तक का मार्ग प्रशस्त किया। वह आज की सर्वाधिक सफल और सबसे प्रसिद्ध भारतीय महिला व्यवसायी हैं। वह कंट्री हेड और एचएसबीसी ग्रुप इंडिया की ग्रुप जनरल मैनेजर हैं। किरण मजूमदार शॉ ने

बायोकॉन को भारत में प्रमुख बायोफार्मास्यूटिकल फर्म के तौर पर स्थापित किया। इन्दु जैन टाइम्स ग्रुप की अध्यक्षा हैं। सुलज्जा फिरोदिया मोटवानी, काइनेटिक मोटर्स की संयुक्त प्रबंध निदेशक और काइनेटिक फायनेंस की प्रबंध निदेशिका, कुछ सफल महिला उद्यमियों में से एक हैं।

अब हम वृत्तिक पृथक्करण के कारणों पर एक नज़र डालते हैं।

4.9 वृत्तिक पृथक्करण के कारण

नीचे आने वाले उप-अनुभाग में आप उन ताकतों और कारकों के बारे में पढ़ेंगे जो जेंडर के आधार पर वृत्तिक पृथक्करण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

4.9.1 श्रम का जेंडर आधारित विभाजन

वृत्तिक पृथक्करण के प्रमुख कारणों में से एक जेंडर के आधार पर श्रम का विभाजन है जिसमें महिलाओं और पुरुषों को अलग-अलग कार्यों के लिए उत्तरदायी माना जाता है। इस विभाजन के अन्तर्गत महिलाओं को घर और परिवार से संबंधित गतिविधियों के लिए प्राथमिक तौर पर उत्तरदायी समझा जाता है जबकि पुरुषों को गैर-घरेलू कार्यों के लिए, जैसे कि अर्थव्यवस्था और राजनीति में। पुरुषों और महिलाओं में होने वाले जैविक अंतरों का उपयोग कार्यों के जेंडर आधारित विभाजन में किया जाता है जो कि प्राकृतिक नहीं है, बल्कि समाज द्वारा सृजित किया गया है। जैविक अंतरों के सामाजिक निर्वचनों का प्रयोग महिलाओं को कुछ कार्य करने से या किसी कौशल को सीखने से रोकने में किया जाता है। उदाहरण के लिए, कई खेतिहर समाजों में हल जोतने के काम को पुरुष का काम समझा जाता है और महिलाओं के लिए उसे छूना भी वर्जित है यद्यपि वे खेती की बाकी सभी गतिविधियों में हाथ बंटाती हैं।

जेंडर आधारित श्रम के विभाजन का एक दूसरा पहलू **जेंडर तत्ववाद** है। यह ऐसा दृष्टिकोण है जो मानता है कि हर किसी में प्राकृतिक तौर पर एक सार/तत्व होता है जो उसकी पहचान बनता है। इस दृष्टिकोण में माना जाता है कि पोषण और देखभाल जैसे क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक सक्षम हैं जबकि प्रदाता बनने जैसे क्षेत्रों में पुरुष अधिक सक्षम है। इस प्रकार जब भी कोई महिला श्रम बाजार में प्रवेश करती है तो यह उपयुक्त समझा जाता है कि वह कोई ऐसा ही काम हाथ में ले जो उसके घरेलू जिम्मेदारियों का विस्तार हो जैसे कि पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापक, नर्स इत्यादि और पुरुष जैसे कि प्रबंधक, नेता इत्यादि। ये विचार आगे चलकर पुरुष प्रधानता के दृष्टिकोण में बदल जाते हैं जो पुरुषों को प्राकृतिक तौर पर एक अधिकारी के रूप में महिलाओं की अपेक्षा अधिक उपयुक्त मानते हैं। यही पुरुष प्रधानता भेदभाव, समावेशी स्व-मूल्यांकन और जेंडर आधारित अपेक्षाओं के द्वारा क्षैतिज और लंबवत दोनों प्रकार के पृथक्करणों में रूपांतरित हो जाती है।

बॉक्स सं. 4.5

सांस्कृतिक प्रतिमानों को महिलाओं की चुनौती

टेंस्यू गेब्रे-मेधिन, इथियोपिया के केन्द्रीय तिगरे में 30 वर्षीय महिला किसान है। दो बैलों से खेतों की जुताई की इथियोपिया में सदियों पुरानी परंपरा है परन्तु हमेशा से यह पुरुषों का कार्यक्षेत्र रहा है। 1981 में टी पी एल एफ (तिगरे पीपुल्स लिबरेशन फ्रंट) के कृषि विभाग ने टेंस्यू को दो बैलों से खेत जोतने का प्रशिक्षण दिया। जबकि उसके पति जब

तक जिंदा थे, उसने अपने प्रशिक्षण में जो कुछ सीखा था, उसे अनुप्रयोग में लाने का कोई मौका नहीं मिला। उनकी मृत्यु के बाद उसके पास केवल एक बैल बचा और उसने एक दूसरे पुरुष के साथ साझी खेती शुरू की जिसके पास भी केवल एक बैल था। इसका अर्थ था कि उसे अपनी फसल का आधा उसे पुरुष को देना पड़ता। इतना ही नहीं, वह पुरुष अपने खेतों में तो हर दूसरे दिन अपने खेतों को जोतता था जबकि उसके खेतों में केवल एक बार जुताई की।

तब टेंस्यू ने खुद जुताई करने का निर्णय लिया। उसके पिता भी उसे यह करते देखकर खुश नहीं थे क्योंकि यह स्थानीय संस्कृति के विरुद्ध था। इसके बावजूद उन्होंने उसकी यह बात मान ली कि अपने बैलों के साथ काम करने के लिए एक गधे को खरीदने के लिए उधार दे दें। महिलाओं द्वारा जुताई करने की वर्जना को तोड़ने के अतिरिक्त टेंस्यू ने एक बैल-एक गधे की भारवाही टीम का नया विचार भी प्रस्तुत किया। यह उनके क्षेत्र के लिए बिल्कुल नई बात थी, लेकिन उसने अपने इस नवोन्मेष में कुछ फायदे भी देखे। हालाँकि अपने इस नवोन्मेष में टेंस्यू को कुछ तकनीकी समस्याओं का सामना भी करना पड़ा जैसे कि गधे की पीठ पर कोई कूबड़ नहीं था और वह बैल से कद में छोटा भी था, परन्तु उन सभी के लिए उसने अपने समाधान ढूंढ़ निकाले।

जब टेंस्यू ने जुताई शुरू की कई लोग उस पर हंसे और कइयों ने, उसे बुरा चाहने वाली कहकर उसे भला बुरा कहा। चूंकि यह प्रथा उनके पूर्वजों के समय से कभी प्रचलन में नहीं थी इसलिए कई गांव वालों ने टेंस्यू की आलोचना की। हालाँकि स्थानीय विकास एजेंट ने उसका समर्थन किया और उसे प्रोत्साहित भी किया। दूसरे क्या कहते हैं इसकी चिंता न करते हुए अपने नवोन्मेषों से विश्वास लेकर टेंस्यू ने अपनी जुताई जारी रखी। पिछले वर्ष कुछ औरतों ने टेंस्यू से अनुरोध किया कि उन्हें भी जुताई में प्रशिक्षित करे। उसे अपने खेतों की जुताई करने के लिए उन परिवार वालों ने भी बुलाया जिनके पुरुष लड़ाइयों में चले गए थे। समुदाय एक किसान के रूप में और अपने अधिकारों में नवोन्मेषक के तौर पर उसे स्वीकार करने लगा है।

- मामुषा लेम्मा और फेतिएन एबे

(http://www.agriculturesnetwork.org/magazines/global/grassroots-innovation/women-challenge-culture-norms)

4.9.2 जेंडर मानदण्ड और जेंडर आधारित अधिमानता

बहुत ही नाजुक उम्र से बालकों और बालिकाओं को विशिष्ट जेंडर भूमिकाओं के लिए उनका समाजीकरण किया जाने लगता है जिसमें उन्हें बताया जाता है कि अपने जेंडर के अनुसार उन्हें कैसे होना चाहिए, कैसे व्यवहार करना चाहिए। ये जेंडर भूमिकाएं फिर पुरुषों और महिलाओं के मनों में कार्य के लिए जेंडर आधारित अधिमानताओं का कारण बनती हैं या फिर उनका समाजीकरण इस तरह किया जाता है कि वे जेंडर आधारित अधिमानताओं को स्वीकार कर लें। ये जेंडर आधारित अधिमानताएं फिर जेंडर आधारित विकल्पों की ओर ले जाती हैं जिसमें महिलाएँ प्राथमिक रूप से ऐसी उपजीविकाएं चुनती हैं जो वेतन और स्थिति दोनों में कमतर हो।

4.9.3 मानव पूँजी सिद्धांत

मानव पूँजी सिद्धांत, महिलाओं और पुरुषों में अंतरों की व्याख्या उनके शैक्षणिक भिन्नताओं, कार्य अनुभव की विषमताओं के आधार पर करता है। उनके अनुसार बाजार-पूर्व कमतर वृत्तियां ही श्रम बाजार नतीजों में भिन्नताओं का कारण हैं।

उदाहरण के लिए, पुरुषों और महिलाओं के शैक्षणिक स्तरों में अंतर ही अनवरत वृत्तिक पृथक्करण के लिए उत्तरदायी है। हालाँकि समय के साथ शैक्षणिक अंतरों में विचारणीय रूप से कमी आई है परन्तु वृत्तिक पृथक्करण स्थायी है। अधिक मूलभूत सवाल यह है कि महिलाओं की शिक्षा का स्तर पुरुषों की तुलना में निम्न क्यों है?

मानव पूँजी सिद्धांतवादी यह भी व्याख्या करते हैं कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुष उच्चतर पदों के लिए अधिक उपयुक्त, जेंडरों में कार्यानुभव को लेकर होने वाले अंतर के चलते होते हैं। समय के साथ वर्षों में कार्यबल में यह विषमता और बढ़ती है क्योंकि ज्यादा संभावना होती है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ बच्चों को पालने पोसने के लिए अपने कॅरियर में रुकावट करेंगी। तर्क यह है कि घरेलू जिम्मेदारियों के कारण महिला अपने काम में अंतराल लेने को अधिक वरीयता देती है। ऐसे विकल्पों के लिए जेंडर आधारित श्रम विभाजन को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जो घरेलू कर्तव्यों के लिए प्राथमिक रूप से महिलाओं को उत्तरदायी ठहराता है।

4.9.4 नारीवादी व्याख्याएँ

नारीवादी अर्थशास्त्री वृत्तिक पृथक्करण की व्याख्या महिलाओं द्वारा परिवार में अवैतनिक घरेलू और प्रजनक कार्यों और श्रम बाजार में वैतनिक कार्य के बीच अन्तर्संबंधों के विश्लेषण द्वारा करते हैं। (सेन, 2010)। उनके अनुसार, महिलाएँ श्रम बाजार में अवैतनिक पारिवारिक उत्तरदायित्वों का बोझ लेकर प्रवेश करती हैं। इस प्रकार वे केवल वही उपजीविकाएं स्वीकार करने के लिए मजबूर रहती हैं जो उन्हें उनके घरेलू कर्तव्यों के निष्पादन में सक्षम रखती है। उन्हें घर आधारित कार्य को तरजीह देनी पड़ती है या ऐसे कार्य को जो उन्हें काम के घण्टों में समायोजन की सहूलियत देता है जिससे कि वे अपनी वैतनिक और अवैतनिक जिम्मेदारियों को संयुक्त कर सकें। बच्चों के देखभाल की सुविधाओं की अनुपस्थिति में वे बच्चों के पालन पोषण के दौरान काम में अंतराल लेने को मजबूर होती हैं।

शिक्षा, कौशलों, पूँजी तक उनकी पहुंच बहुत सीमित होती है क्योंकि वे प्राथमिक तौर पर गृहिणियों की तरह देखी जाती हैं। परिवार भी लड़कियों की शिक्षा में निवेश नहीं करता क्योंकि पितृसत्तात्मक समाजों में लड़कियां विवाह के बाद अपने माता-पिता को सहारा नहीं दे पातीं और श्रम बाजार में भी पुरुषों की तुलना में महिला शिक्षा का प्रतिदान कमतर ही रहता है।

महिलाओं के पास अपने नाम से संपत्ति नहीं होती और इसलिए अपना व्यवसाय शुरू करने या उसमें वृद्धि करने के लिए पूँजी तक उनकी पहुंच और वित्तीय संस्थानों से उधार लेने की क्षमता कम रह जाती है। इस विश्वास के कारण कि महिलाएँ प्राथमिक तौर पर गृहिणी होती हैं, नियोजनकर्ताओं द्वारा उनकी उत्पादकता को सुधारने के लिए प्रभावी नीतियां तक विकसित नही की गईं।

इस तरह अर्थव्यवस्था में महिला कामगारों के लिए एक दुष्चक्र पैदा करने के लिए परिवारों, नियोजनकारों और श्रम बाजार द्वारा जेंडर विचारधारा को मजबूत किया गया। कमतर योग्यताएं, कमतर कौशल, पूँजी की कमी, निम्न उत्पादकता और कमतर लाभ के इस दुष्चक्र ने महिलाओं को अकुशलता, निम्न उत्पादकता और परिणामतः निम्न वेतन वाली उपजीविकाओं में जकड़ दिया।

आगे पढ़ने से पहले निम्न अभ्यास को कीजिए:

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) वृत्तिक पृथक्करण के प्रकार कौन से हैं? उदाहरणों सहित व्याख्या कीजिए।

2) वृत्तिक पृथक्करण के कारण क्या-क्या हैं?

आगे आने वाले अनुभाग में आप पढ़ेंगे कि कैसे वृत्तिक पृथक्करण आय और मजदूरी के अंतर को प्रभावित करता है।

4.10 अर्जित आय एवं मजदूरी में फ़ासला

वृत्तिक पृथक्करण आय असमानता के प्रमुख कारणों में से एक है। जेंडर विचारधारा के परिणामस्वरूप, महिलाओं द्वारा प्राथमिक तौर पर किए जाने वाले कार्य का मूल्य प्राथमिक रूप से पुरुषों द्वारा किए जाने वाले कार्य की अपेक्षा कम होता है। महिलाओं के कौशलों और उपजीविकाओं को कमतर प्रतिष्ठा देने के अतिरिक्त महिलाओं के कार्य से नजदीकी से जुड़े हुए कौशलों को जानबूझकर वेतन के संदर्भ में निम्न प्रतिफल दिया जाता रहा है। जॉब्स के अन्तर्गत मजदूरी में भेदभाव की बजाय जॉब्स में पृथक्करण को मजदूरी में जेंडर अंतर का कारण बनाया गया।

महिला-वर्चस्व वाले कार्यों में महिलाएँ दोहरा हर्जाना भरती हैं: उनके कामों की औसत मजदूरी पुरुष-वर्चस्व वाले उसी तरह के कार्यों की अपेक्षा कमतर होती है और वे पुरुषों की अपेक्षा उसी काम के लिए कम अर्जित करती हैं। इतना ही नहीं, क्राउडिंग हाइपोथेसिस (बर्गमान, 1974) के अनुसार महिलाओं की मजदूरी किसी कार्य में महिलाओं की प्रतिशतता से ऋणात्मक रूप से प्रभावित होती है। क्राउडिंग हाइपोथेसिस यह अभिधारणा करती है कि वृत्तिक पृथक्करण, प्राथमिक तौर पर पुरुष उपजीविकाओं से महिलाओं के बहिष्करण और बड़ी संख्या में प्रधान रूप से महिला-वर्चस्व वाली उपजीविकाओं में पृथक्करण के परिणाम स्वरूप, सभी महिलाओं की कमाई को कमतर करती है। महिला वर्चस्व वाली उपजीविकाओं में महिलाओं की अधिक संख्या में आपूर्ति उनकी मजदूरियों को निम्न कर देती है। इस बात

को ध्यान में रखते हुए कि नारी सुलभ कौशलों को परंपरागत तौर पर वेतन और सम्मान में कमतर आंका जाता है, कुछ पेशों में महिलाओं की भीड़ उन पेशों को और भी कम मूल्यवान बना देती हैं।

तालिका 4.4 में दुनिया भर के विभिन्न देशों में पुरुषों और महिलाओं की अनुमानित आय का ब्यौरा और महिलाओं पुरुषों की मजदूरियों का अनुपात भी इन देशों में दिया गया है।

तालिका 4.4: अर्जित आय और मजदूरी में अनुमानित फ़ासला

देश का नाम	अनुमानित अर्जित आय		मजदूरी समता सर्वेक्षण महिला-पुरुष अनुपात
	महिला	पुरुष	
घाना	1,324	1,774	0.75
नार्वे	49,498	63,007	0.75
कनाडा	30,005	45,763	0.73
स्विट्जरलैण्ड	35,577	55,328	0.63
चीन	5,331	8,215	0.69
संयुक्त राज्य अमेरिका	35,346	56,918	0.66
ब्राज़ील	7,865	12,946	0.51
जापान	20,572	44,892	0.60
भारत	1,518	4,960	0.62
पाकिस्तान	-	-	0.58

स्रोतः ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2011, तालिका डी3 : संलग्नक डी, पृ. 44 और तालिका डी2 : संलग्नक डी पृ. 43

4.11 सवेतन कार्य के लाभ

सभी कठिनाइयों और भेदभावों के बावजूद सवेतन कार्य बहुत सारी महिलाओं के जीवन का महत्वपूर्ण भाग है। यह तमाम लाभ प्रस्तुत करता है। अपनी आय स्वयं अर्जित करने से मिलने वाली आर्थिक सुरक्षा महिलाओं को किन्हीं अत्याचारपूर्ण संबंधों से स्वयं को निकालने की ताकत, अपने बच्चों को पूर्णतया प्रदान करने के अवसर, और अपने जीवन की दिशा चुनने की स्वतंत्रता और आत्मविश्वास प्रदान करती है। सवेतन कार्य महिलाओं को बुद्धिमत्तापूर्ण और शारीरिक चुनौतियां, एक सामाजिक वातावरण और वह अर्थव्यवस्था में अपना योगदान कर रही हैं और बदले में उन्हें वेतन दिया जा रहा है, ऐसी संतुष्टि प्रदान कर सकता है। जबकि महिलाएँ सवेतन कार्यबल के अन्तर्गत अवरोधों का सामना करती हैं वे इससे बाहर निकलने के रास्ते भी तलाश रही हैं। पिछले कुछ दशकों से पुरुषों की आय की तुलना में महिलाओं की आय में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है और साथ ही उनके लिए कॅरियर के विकल्पों में भी। महिलाओं ने अपना व्यवसाय चलाने में भी असाधारण और आश्चर्यजनक सफलताओं की कहानी प्रस्तुत की है।

केवल महिलाएँ ही नहीं बल्कि सवेतन कार्य से अर्थव्यवस्था भी लाभान्वित होती है। यू. एन. विमेन की सहायक महासचिव लक्ष्मी पुरी ने 2011 में अंकित किया था कि यदि महिलाओं को अधिक अवसर दिए जाएं तो भारत की वृद्धि दर 4.2 प्रतिशत तक उछल सकती है।

4.12 नीतिगत उपाय

दुनिया भर में महिलाएँ कार्य के बेहतर अवसरों, बेहतर कार्य दशाओं और बेहतर मजदूरी के लिए लड़ी हैं। जैसा पहले ही चर्चा की जा चुकी है महिलाओं की क्षमताओं के कमतर उपयोग के कारण न केवल महिलाओं को बल्कि अर्थव्यवस्था को भी काफी सहना पड़ा है। परिणामस्वरूप अब सरकारें और नियोजनकर्ता ऐसे नीतिगत उपायों के लिए तैयार हुए हैं जो अर्थव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता का समर्थन करें। कार्यबल और विभिन्न उपजीविकाओं में महिलाओं की सहभागिता का समर्थन करने के लिए ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत उपायों के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

लैंगिकवाद के साथ-साथ वंशवाद, जातिवाद और योग्यतावाद (विकलांग लोगों के विरुद्ध भेदभाव) जैसी विचारधाराएं भी अच्छा रोजगार पाने में महिलाओं की योग्यता को सीमित करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएँ सीमित अवसरों का सामना करती हैं। कार्यस्थलों में भी महिलाएँ यौन उत्पीड़न के और कुछ मामलों में यौन दुर्व्यवहार के भी खतरे में रहती हैं।

इस स्थिति में परिवर्तन के लिए आवश्यक कुछ नीतिगत उपायों की चर्चा नीचे की गई है।

1) समानता कानूनों का क्रियान्वयन

महिलाएं कुछ बाधाओं और अवरोधों का सामना करती हैं जो उन्हें कार्यस्थलों से दूर रखता है। वे कार्यस्थलों पर भी चुनौतियों और खतरों का सामना करती हैं जिसका परिणाम महिलाओं के काम छोड़ देने में होता है। इन बाधाओं की प्रकृति सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हैं। इनके प्रभावों को निरस्त करने के लिए आवश्यक है कि कुछ विधिक प्रावधानों का क्रियान्वयन किया जाए।

विधिक प्रावधानों जैसे कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' और 'जेंडर के आधार पर कार्य अवसरों में भेदभाव नहीं' को कठोरता से लागू करना पड़ेगा। इन कानूनों के क्रियान्वयन हेतु सरकार को पर्यवेक्षण मशीनरी का भी प्रावधान करना चाहिए। महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को खत्म करने के लिए महिलाओं के लिए आरक्षण/कोटा का क्रियान्वयन भी एक महत्वपूर्ण नीतिगत उपाय है।

2) महिलाओं के लिए शिक्षा, कौशल और प्रशिक्षण

एक दूसरा अवरोध जिसका सामना महिलाओं को करना पड़ता है, वह है शिक्षा और प्रशिक्षण तक उनकी कम पहुंच। अच्छे वेतन वाली जॉब्स पाने में यह एक प्रमुख बाधा है। महिलाओं की उत्पादकता और मानव पूँजी सुधारने के लिए औपचारिक शिक्षा, कौशल निर्माण और प्रशिक्षण में महिलाओं की सहायता करने वाले उपाय महत्वपूर्ण हैं। लड़कियों के लिए मुफ्त शिक्षा और छूट प्राप्त उच्चतर शिक्षा, तकनीकी शिक्षा उनकी उत्पादन क्षमता में सुधार करने के लिए अनिवार्य है।

3) पारिवारिक अवकाश और बच्चों की देखभाल

अर्थव्यवस्था में सहभागिता के लिए महिलाओं में सभी के लिए मातृत्व, पितृत्व और अभिभावकीय (पैरेन्टल) अवकाश अनिवार्य है। मानव के प्रजनक के तौर पर महिलाओं की

भूमिका न सिर्फ वैयक्तिक परिवार बल्कि भविष्य की कार्यशील जनसंख्या के जनन हेतु महत्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सरकार और कर्मचारियों का उत्तरदायित्व है कि इसके लिए प्रावधान करें। शिशु की देखभाल के लिए माता और पिता दोनों उत्तरदायी होने चाहिए, इसलिए केवल मातृत्व अवकाश ही नहीं बल्कि पितृत्व अवकाश और अभिभावकीय अवकाश प्रदान करना आवश्यक है।

सबसे बड़ी बाधाओं में से एक बाधा जो महिलाओं को कार्यबल से दूर रखती है, वह है गुणवत्तापूर्ण और खर्च वहन करने योग्य बच्चों की देखभाल। यह महिलाओं के लिए विशेष रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण होता है कि वे सवेतन और अवैतनिक कार्य की मांग में अपने को कैसे समायोजित करती हैं। महिलाओं को अपने पेशेवर और पारिवारिक दायित्वों में सामंजस्य बिठाने की अनुमति देने में बच्चों की देखभाल की सुविधाओं का होना एक महत्वपूर्ण कारक होता है। समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति को देखते हुए महिलाएँ ही बच्चों के पालन पोषण के उत्तरदायित्व का अधिकांश भाग वहन करती हैं। इस प्रकार देखा जाए तो अच्छी तरह से स्थापित छोटे बच्चों के लिए शिशु पालन केन्द्र (क्रेच या डे केयर सेंटर) महिलाओं के रोजगार में सहायक होगा।

4) संपत्ति और वित्तीय संसाधनों तक पहुंच

महिलाओं के लिए अपना व्यवसाय शुरू कर पाना बहुत कठिन होता है क्योंकि अधिकांश परिसंपत्तियां या तो पुरुषों के नाम से होती हैं या उन पर पुरुषों का नियंत्रण होता है। परिणामस्वरूप महिलाएँ बैंकों से ऋण नहीं ले पातीं। स्वयं को उद्यमियों के रूप में स्थापित करने के लिए महिलाओं को परिसंपत्तियों और वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। वित्तीय संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच में वृद्धि करने के लिए सरकार को आवश्यक उपाय करने चाहिए।

5) कार्यस्थल पर जेंडर भेदभाव और यौन उत्पीड़न का निवारण

महिलाओं को कार्यस्थलों पर जेंडर आधारित भेदभाव और यौन उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। यौन उत्पीड़न के कारण बहुत बार उन्हें मजबूर होकर काम छोड़ना पड़ता है या फिर निम्न उत्पादकता और अक्षमता वाले कामों में लगना पड़ता है। कार्यस्थल पर लिंग (सेक्स) आधारित भेदभाव और यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए किसी मशीनरी की स्थापना ऐसी स्थितियों से निबटने में महिलाओं की सहायता करेगा। विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य के मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 13 अगस्त, 1997 को दिए अपने निर्णय में कार्यस्थल पर महिलाओं के विरुद्ध यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए विशिष्ट निर्देश दिए। इन निर्देशों का मजबूती से क्रियान्वयन और यौन उत्पीड़न के विरुद्ध सख्त कानून समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

4.13 सारांश

इस इकाई में हमने अर्थव्यवस्था की विभिन्न उपजीविकाओं में महिलाओं की सहभागिता की व्याख्या की। बाजार अर्थव्यवस्था और सवेतन कार्य के उद्भव के साथ महिलाओं के कार्य को अनुत्पादक के रूप में पारिभाषित किया गया और उसे अवैतनिक या कम मूल्यवान आंका गया। वर्षों की समयावधि में सवेतन कार्य में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है परन्तु वे मुख्यतया पिंक कॉलर (महिलाओं के लिए अनुकूल माने जाने वाले) जॉब्स में संकेन्द्रित हैं। दुनिया भर में वैश्विक जॉब बस्तियां हैं और महिलाएँ कुछ जॉब्स में ही संकेन्द्रित हैं जो मुख्यतया उनके अवैतनिक घरेलू कार्यों का विस्तार हैं। कार्य बाजार में अधिकांश महिलाएँ उपजीविकाओं में क्षैतिज और लंबवत पृथक्करण का सामना करती हैं परन्तु कुछ ऐसी

महिलाएँ भी हैं जो पुरुष वर्चस्व वाले कार्यों में प्रवेश करने में सफल हुई हैं और वे उन पेशों के सर्वोच्च स्तर तक पहुंचने के लिए शीशे की छत को तोड़ने में भी सफल हुई हैं। हमने वृत्तिक पृथक्करण को समझने के लिए विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या की। पुरुषों और महिलाओं के बीच मजदूरी और आय में अंतर के प्रधान कारणों में से वृत्तिक पृथक्करण एक कारण है। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की क्षमताओं की कम उपयोगिता न सिर्फ महिलाओं की समस्या है बल्कि यह अर्थव्यवस्था की वृद्धि को प्रभावित करती है। सरकार और नियोक्ता महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव रोकने और समानता को मजबूत करने, पारिवारिक अवकाश प्रदान करने, बच्चों की देखभाल और वित्तीय संसाधनों तक पहुंच बढ़ाने और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकन के लिए कई कदम उठा सकते हैं।

4.14 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) सवेतन और अवैतनिक काम के बीच अंतर बाजार अर्थव्यवस्था के विकास के साथ उभरकर सामने आया। उदाहरणों की सहायता से व्याख्या कीजिए।

2) अर्थव्यवस्था में महिलाओं के सवेतन कार्य की पुरुषों के सवेतन कार्य से अंतर पर चर्चा कीजिए।

3) वृत्तिक पृथक्करण क्या है? वृत्तिक पृथक्करण के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

4) वृत्तिक पृथक्करण की व्याख्या के लिए विभिन्न सिद्धांत कौन से हैं? वृत्तिक पृथक्करण के बारे में नारीवादी दृष्टिकोण की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

5) वृत्तिक पृथक्करण में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक नीतिगत परिवर्तनों पर चर्चा कीजिए।

4.15 संदर्भ

Banerjee, N. (1985) "Women's Work and Discrimination," in D. Jian and N. Banerjee (eds.) ,Tyranny of the household, Vikas Publishing House, New Delhi. and Sen, G. (2010), Beyond a segmented Economics of Work" Indian Journal of Labour Economics, Vol. 53, No. 1, 2010.

Global Gender Gap Report 2011, Table D3 : Appendix D, P. 44 and Table D2: Appendix D P. 43.

Bergmann, Barbara R. (1974). Occupational Segregation, Wages and Profits When Employers Discriminate by Race or Sex. *Eastern Economic Journal* 1 (2): 103–110.

Central Statistical Organisation, Ministry of Statistics and Programme Implementation. (2004).*Proceedings of the National Seminar on Gender Statistics and Data Gaps,* New Delhi, Government of India.

Cotter, David A., Joan M. Hermsen, Seth Ovadia, et al (2001). The glass ceiling effect. *Social Forces*.Vol. 80 No. 2, 655–81. http://blogs.wsj.com/indiarealtime/2011/10/10/is-the-indian-army-really-open-to-women

(http://www.agriculturesnetwork.org/magazines/global/grassroots-innovation/women-challenge-cultural-norms). Accessed on 24th July, 2013

Karl F. Inderfurth and Persis Khambhatta, U.S. India Insight, Vol. 2, Issue 2, Center for Strategic & International Studies, U.S.A.

Mehta, Nikita. (2011). Is the Indian Army Really Open to Women?. *Wall Street Journal*. Retrived March 31st, 2012.

Nayak, Nalini (1992) Fisheries – A Feminist Perspective. (http://www.agriculturesnetwork.org/magazines/global/grassroots-innovation/women-challenge-cultural-norms)

Neetha. N. (2009).Contours of Domestic Service : Characteristics, Work Relations and Regulations. *Indian Journal of Labour Economics,* Vol. 52,no.3,. 489-506.

S. D Rupa, (2011) Why Do Indian Women Drop Out of the Workforce?, *Wall Street Journal, Economics Journal.* September 12, 2011. Retrived on 31 March 2012 from http://www.communitybusiness.org/images/cb/publications/2011/GDBM_2011.pdf

Sudhindra R. Gadagkar edited, Women in Indian Fisheries (Proceedings of the Workshop on Women in Indian Fisheries, 27 May 1990.) published by Asian Fisheries Society, Indian Branch, Mangalore, India.

U.S. Department of Labor, Federal Glass Ceiling Commission (1995). *Solid Investments: Making Full Use of the Nation's Human Capital*. Washington, D.C Retrieved 31 March 2012 from http://www.dol.gov/oasam/programs/history/reich/reports/ceiling.pdf

Unni, Jeemol (2008). Women Workers in the new Economy. *The Indian Journal of Labour Economics*, Vol. 51, No. 4,

Weeden, Kim. (2007). *Occupational Segregation*. Blackwell Encyclopedia of Sociology. Ritzer, George (ed). Blackwell Publishing.

4.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Kalpagam, U. (1994). *Labour and Gender*. New Delhi: Sage

Beneria, L. and Sen Geeta. (1981). Accumulation, Reproduction and Women's Role in Economic Development" : Boserup Revisited, The University of Chicago Press.

इग्नू
जन–जन की विश्वविद्यालय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
जेंडर एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ

एम.डब्ल्यू.जी.-011
अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

खण्ड

4

प्रवासन

इकाई 1

प्रवासन के सिद्धान्त और प्रारूप वर्गीकरण 221

इकाई 2

प्रवासन, विषमता और सामाजिक परिवर्तन 239

इकाई 3

प्रवासन एवं तस्करी हेतु सुभेद्यता 255

इकाई 4

प्रवासन और विकास 271

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 1 प्रवासन के सिद्धान्त और प्रारूप वर्गीकरण

संरचना मोंदिरा दत्ता

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्रवासन की परिभाषा और कार्यक्षेत्र

1.4 प्रवासन के मॉडल और सिद्धांत

1.5 प्रवासन के निर्धारक तत्त्व

1.6 प्रवासन का वर्गीकरण

1.7 जेंडर और प्रवासन

1.8 सारांश

1.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1.10 सन्दर्भ

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

प्रवासन पर इस खण्ड की पहली इकाई प्रवासन की परिघटना से आपको परिचित कराएगी अर्थात, प्रवासन का अर्थ क्या है, यह कैसे होता है और प्रवासन उस स्थान को कैसे प्रभावित करता है जिस स्थान से लोग चले जाते हैं। इस इकाई में यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्रवासन उस नई जगह को कैसे प्रभावित करता है, जहाँ लोग बस जाते हैं। साथ ही, आप उन कारकों के बारे में पढ़ेंगे जो इस परिघटना को नियन्त्रित करते हैं। अन्त में, आप प्रवासन का महिलाओं के साथ सम्बन्ध और उन पर इसके प्रभाव के बारे में पढ़ेंगे।

आइए हम इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्यों पर नजर डालें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि :

- प्रवासन प्रक्रिया को परिभाषित कर सकें और उसके कार्यक्षेत्र पर चर्चा कर सकें;
- प्रवासन की प्रवृत्तियों से सम्बन्धित विविध सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकें;
- किसी आवागमन के घटित होने के लिए मूल स्थल एवं गन्तव्य स्थल पर प्रभावी कारकों की पहचान कर सकें; और
- प्रवासन की प्रक्रियाओं पर जेण्डर के सन्दर्भ में चर्चा कर सकें।

1.3 प्रवासन की परिभाषा और कार्यक्षेत्र

पाठ्यक्रम के खण्ड की इकाई 2 में शहरीकरण के सम्बन्ध में प्रवासन के बारे में आपने पहले पढ़ा था। इस इकाई में जेंडर पर इसके प्रभाव के साथ-साथ प्रवासन और इसके विभिन्न पहलुओं के बारे में हम विस्तार से पढ़ेंगे।

प्रवासन या आबादी का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवागमन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और/या भौतिक परिस्थितियों का एक परिणाम है। प्रवासन की सबसे खास बात यह है कि यह आबादी के आकार को बढ़ा या घटा सकता है और एक निश्चित समय में इसकी संरचना को काफी बदल सकता है। किसी स्थान की प्रजनन शक्ति और मृत्यु-दर पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब पुरुष आबादी पलायन करती है, तो महिलाएँ अकेली रह जाती हैं जिससे प्रजनन दर में कमी आ जाती है। जनसंख्या के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Union for the Scientific Study of Population & IUSSP) के सहयोग से बहुभाषी जनसांख्यिकी शब्दकोश (Multilingual Demographic Dictionary) स्थानिक गतिशीलता के रूप में प्रवासन का वर्णन करता हैं, जिसमें निवास के सामान्य स्थान में परिवर्तन शामिल है जो प्रशासनिक सीमा से परे एक आवागमन को सूचित करता है।

एक प्रवासी वह व्यक्ति है जिसने अपने सामान्य निवास स्थान को प्रवास अन्तराल के दौरान कम से कम एक बार बदल दिया हो (आम तौर पर, अन्तराल एक वर्ष, पाँच वर्ष, दस वर्ष या दो जनगणनाओं के बीच की अवधि हो सकती है)।

बॉक्स सं. 1

प्रवासन को आमतौर पर एक भौगोलिक आवागमन के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें सामान्य निवास स्थान में परिवर्तन शामिल होता है। प्रवासन में स्थानों के दो समूहों – उद्गम स्थान और गन्तव्य स्थान – के साथ-साथ आबादी के भी दो समूह शामिल होते हैं। स्थान का कोई भी परिवर्तन उद्गम स्थान के सम्बन्ध में एक बाह्य-प्रवासन (out-migration) और गन्तव्य स्थान के सम्बन्ध में एक अन्तः प्रवासन (in-migration) होता है।

सामान्य निवास स्थान में परिवर्तन स्थायी, अर्द्ध-स्थायी अथवा अस्थायी आधार पर हो सकता है। क्षेत्रीय सीमाओं के पार लोगों के अपेक्षाकृत स्थायी आवागमन का एक प्रशासनिक सीमा के अन्तर्गत आन्तरिक प्रवासन और बाह्य-प्रवासन के रूप में उल्लेख किया जाता है। जब सीमाएँ अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार होती हैं तो इसे आप्रवासन (immigration) और उत्प्रवासन (emigration) कहा जाता है। आन्तरिक प्रवासन या आप्रवासन के स्थान को प्राप्तकर्ता आबादी (receiver population) और बाह्य–प्रवासन या उत्प्रवासन के स्थान को प्रेषक आबादी (sender population) कहा जाता है। प्रवासन में दो वर्ग शामिल हैं क्योंकि इसमें आबादी के दो वर्ग शामिल हैं, उद्गम स्थान और गन्तव्य स्थान। उद्गम स्थान वह स्थान है जहाँ से व्यक्ति हमेशा चलना शुरू करता है, अर्थात प्रस्थान बिन्दु। प्रवासियों के लिए उद्गम स्थान या तो निवास का क्षेत्र है या ऐसे निवास का क्षेत्र जहाँ से अन्तिम बार प्रस्थान किया गया था। गन्तव्य स्थान आम तौर पर वह क्षेत्र होता है, जहाँ पर यात्रा समाप्त हो जाती है। प्रवासियों के लिए गन्तव्य स्थान प्रवास अन्तराल के अन्त में निवास क्षेत्र है। 'प्रवासन धारा' (Migration Stream) किसी दिए गए प्रवास अन्तराल के दौरान की गयी यात्राओं की कुल संख्या है जिनके उद्गम और गन्तव्य का क्षेत्र साझा होता है। व्यवहार में, हालाँकि, यह उद्गम और गन्तव्य के साझा क्षेत्रों वाले प्रवासियों की एक इकाई है।

साधारण शब्दों में 'प्रवासन' लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवागमन हो सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रवासन एक नए अथवा अर्द्ध-स्थायी निवास की स्थापना के उद्देश्य से एक निर्दिष्ट सीमा के पार लोगों का आवागमन है। संयुक्त राष्ट्र बहुभाषी जनसांख्यिकी शब्दकोश (संयुक्त राष्ट्र, 1956) 'प्रवासन' को एक भौगोलिक इकाई और दूसरी भौगोलिक

इकाई के बीच की भौगोलिक गतिशीलता या स्थानिक गतिशीलता के रूप में परिभाषित करता है। इसमें प्रायः उद्‌गम स्थान से लेकर गन्तव्य स्थान या आगमन स्थान तक का परिवर्तन शामिल होता है। इस प्रकार के प्रवास को स्थायी प्रवासन (permanent migration) कहा जाता है और इसे आवागमन के अन्य प्रकारों से अलग किया जाना चाहिए जिसमें निवास का स्थायी परिवर्तन शामिल नहीं है।

दूसरी ओर प्रवासन और शरणार्थियों के लिए संघीय कार्यालय (Federal Office for Migration and Refugee) की परिभाषा में कहा गया है कि प्रवासन तब होता है जब कोई व्यक्ति अपने सामान्य निवास स्थान की अवस्थिति को परिवर्तित करता है। प्रवासन के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन (International Organization for Migration & IOM) के अनुसार, 'प्रवासन' किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का आवागमन है, चाहे वह दो देशों के बीच हो या एक ही देश के भीतर उसके दो स्थानों के बीच हो।

बॉक्स सं. 1

अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन संगठन (International Organization for Migration) एक अन्तर-सरकारी संगठन है। द्वितीय विश्व युद्ध द्वारा विस्थापित लोगों की मदद करने के लिए इसे प्रारम्भ में 1951 में यूरोपीय प्रवासन के लिए अन्तर-सरकारी समिति (Intergovernmental Committee for European Migration & ICEM) के रूप में स्थापित किया गया था।

यह प्रवासन के क्षेत्र में अग्रणी अन्तर-सरकारी संगठन है। आईओएम (IOM) सबके हित में मानवीय और व्यवस्थित प्रवासन को बढ़ावा देने के प्रति समर्पित है। इसके लिए वह सरकारों और प्रवासियों को सेवाएँ और सलाह देता है।

आईओएम प्रवासन का व्यवस्थित और मानवीय प्रबन्धन सुनिश्चित करने, प्रवासन के मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने, प्रवासन की समस्याओं के व्यावहारिक समाधानों की तलाश में मदद करने तथा शरणार्थियों, देश के भीतर विस्थापित लोगों सहित जरूरतमन्द प्रवासियों को मानवीय सहायता देने का काम करता हैः चाहे वे शरणार्थी हों, विस्थापित व्यक्ति हों या अन्य उजड़े हुए लोग हों। आईओएम के संविधान में प्रवासन और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ आवाजाही की स्वतन्त्रता के अधिकार के बीच सम्बन्ध को मान्यता दी गई है।

आईओएम मोटे तौर पर प्रवासन प्रबन्धन के चार क्षेत्रों में काम करता हैः प्रवासन और विकास; प्रवासन को सुगम बनाना; प्रवासन का विनियमन करना और बाध्य प्रवासन को सम्बोधित करना। क्रॉस-कटिंग गतिविधियों में अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन कानून का प्रचार-प्रसार, नीतिगत बहस और मार्गदर्शन, प्रवासियों के अधिकारों की सुरक्षा, प्रवासन स्वास्थ्य और प्रवासन का जेंडर आयाम शामिल हैं।

इसके अलावा, आईओएम ने अक्सर अपनी मातृभूमि से बाहर शरणार्थियों के लिए निर्वाचनों का आयोजन किया है, जैसा कि 2004 में अफगानिस्तान के निर्वाचनों और 2005 में इराक के निर्वाचनों के समय हुआ था।

प्रवासन की अवधारणा में सभी प्रकार की आबादी के आवागमन को शामिल किया गया है, जिसमें निवास स्थान का परिवर्तन शामिल है, चाहे उसका कारण, उसकी संरचना या अवधि कुछ भी हो तथा उसमें विशेष रूप से मजदूरों, शरणार्थियों, विस्थापितों और उजड़े हुए लोगों का आवागमन शामिल है।

अधिकांश देशों में यह देखा गया है कि बड़े पैमाने पर लोगों के खेती वाले क्षेत्रों से कस्बों, कस्बों से दूसरे शहरों और एक देश से दूसरे देश (बोग्यू, 1961) में स्थानान्तरण के साथ औद्योगीकरण और आर्थिक विकास हुआ है। सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में उछाल के बाद अधिकांश एशियाई और लैटिन अमेरिकी देशों ने ऐसी स्थिति का अनुभव किया। इसके विपरीत, विलियम पैटर्सन का विचार है कि ऐसी अवधारणा अनुचित है क्योंकि इसका मतलब यह है कि मनुष्य गतिहीन है और वह हर जगह तब तक स्थिर (Fixed) बना रहता है जब तक कि उसे स्थानान्तरित होने के लिए किसी बल द्वारा प्रेरित न किया जाए (पीटरसन, 1969 पृष्ठ, 289)।

जिन लोगों ने प्रवास की घटनाओं के बारे में सामान्यीकरण करने की कोशिश की है या आन्तरिक प्रवासन आवागमन को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने का प्रयास किया है, उन्होंने दो अलग-अलग दृष्टिकोण (भेंडे और कानिटकर, 1978) अपनाए हैं।

- पहला दृष्टिकोण मुख्य रूप से 'धक्के' (push) और 'खिंचाव' (pull) के कारकों के सन्दर्भ में देखी जाने वाली स्थितियों से सम्बन्धित है। यह घर पर स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास करता है जो एक व्यक्ति को अपने मूल स्थान से बाहर जाने के लिए विवश करती है और साथ ही यह बाहर की उन स्थितियों और दशाओं का, जो किसी व्यक्ति को निवास के वर्तमान स्थान से बाहर जाने के लिए आकर्षित करती हैं, अध्ययन करने की कोशिश करता है।
- दूसरा दृष्टिकोण आनुभविक सामान्यीकरण तैयार करने का प्रयास करता है और प्रवासन के पैटर्न का वर्णन करता है, विशेष रूप से, सार्वभौमिक कानूनों के रूप में मान्य गणितीय मॉडलों के रूप में।

बॉक्स सं. 1.3

प्रवासन एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसे किसी अन्य प्रकार के मानव स्थानान्तरण से अलग करना कठिन हो जाता है। कम्पाला कन्वेंशन, जिसे कन्वेंशन फॉर द प्रोटेक्शन एण्ड असिस्टेंस ऑफ इण्टरनली डिसप्लेस्ड पर्सन्स (Convention for the Protection and Assistance of Internally Displaced Persons & IDP), 2009 के रूप में भी जाना जाता है, प्रवासन को इस तरह परिभाषित करता है : "ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का ऐसा समूह जिन्हें पलायन करने या अपने घरों या पारम्परिक जगहों को छोड़ने के लिए कहा जाता है या बाध्य किया जाता है, विशेषकर सशस्त्र संघर्ष के प्रभाव, सामान्यीकृत हिंसा की स्थितियों, मानव अधिकारों के उल्लंघन या प्राकृतिक अथवा मानव-निर्मित आपदाओं से बचने के लिए, और जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त राज्य की सीमा को पार नहीं किया हो "।

शरणार्थियों की स्थिति से सम्बन्धित कन्वेंशन और प्रोटोकॉल के अनुच्छेद 1 (2) के अनुसार शरणार्थी की परिभाषा है, "वह व्यक्ति जो जाति, धर्म, राष्ट्रीयता, किसी सामाजिक समूह की सदस्यता या किसी राजनीतिक राय के कारण, अपने मूल देश से बाहर होने के उत्पीड़न से स्थापित डर के कारण अथवा उस देश की सुरक्षा का लाभ उठाने में असमर्थ या अनिच्छुक; या वे व्यक्ति जिनके पास ऐसी अवांछित घटनाओं के कारण कोई राष्ट्रीयता नहीं है और अपने पहले के पारम्परिक मूल देश से बाहर हैं, जो असमर्थता अथवा भय के कारण वापस होने में अनिच्छुक हैं" (संयुक्त राष्ट्र, 1956)।

पिछले अनुभाग के प्रति अपनी समझ का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित अभ्यास करने का प्रयत्न कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) सरल तरीके से 'प्रवासन' को परिभाषित कीजिए।

2) निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं :

- आन्तरिक और बाह्य प्रवासन (in and out migration)
- प्राप्तकर्ता और प्रेषक आबादी (receiver and sender population)

आइए, अब प्रवासन की परिघटना को शासित करने वाले विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में पढ़ें।

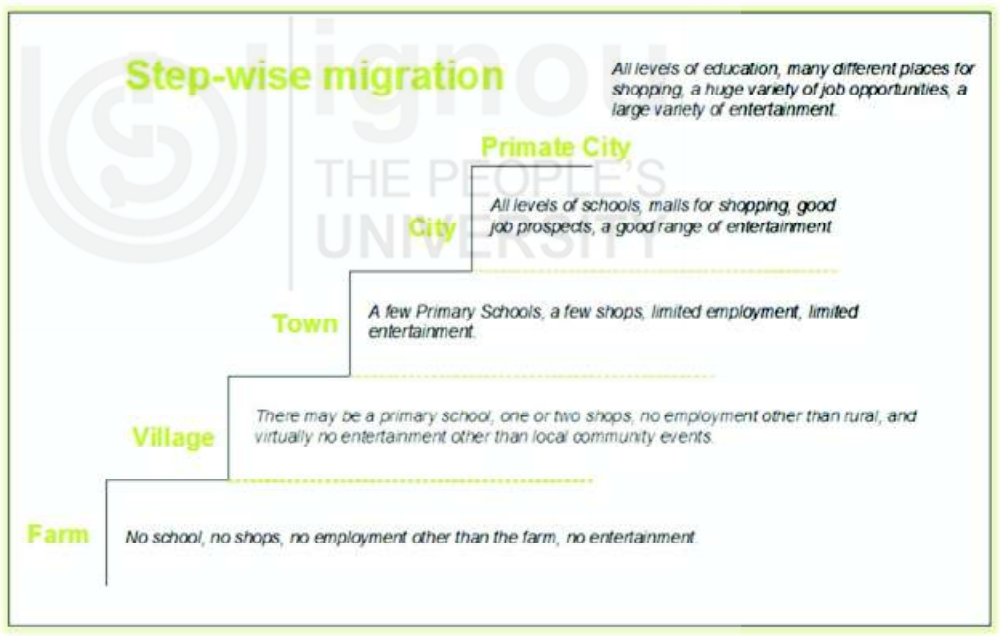
1.4 प्रवासन के मॉडल और सिद्धान्त

आइए, हम पहले प्रवासन के मॉडलों पर चर्चा करें।

विश्लेषणात्मक मॉडल के आधार पर प्रवासन को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – समष्टि और व्यष्टि विश्लेषणात्मक मॉडल। समष्टि विश्लेषण में शामिल कुछ प्रमुख मॉडल रेवेन्स्टाइन मॉडल (ग्रेविटी मॉडल), ज़िपफ मॉडल (मॉडल ऑफ लीस्ट एफर्ट) और स्टॉफर मॉडल (इंटरवीनिंग अपॉर्चुनिटी मॉडल) हैं। प्रमुख व्यष्टि विश्लेषणात्मक मॉडल ली का मॉडल है। इनमें से कुछ मॉडल बुनियादी मॉडलों का विस्तृत और अद्यतन रूप हैं, जैसे रेवेन्स्टाइन, ज़िपफ, ली, टोडारो, आदि।

1880 के दशक में रेवेन्स्टाइन ने जन्म स्थान के जनगणना वाले आँकड़े का उपयोग करके ब्रिटेन में प्रवासन के ढाँचे का अध्ययन किया। इस मॉडल में रेवेन्स्टाइन ने 'प्रवासन परिघटना' (migration phenomena) के बारे में बताया जो प्रवासन की धाराओं के इर्द-गिर्द घूमती है। उनके अनुसार प्रवासन एक सतत प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का अधिक संतुलित पुनर्वितरण होता है। हालाँकि, प्रत्येक प्रवासन धारा के लिए एक विरोधी धारा है। वास्तव में यह मॉडल भविष्यसूचक अभिकथनों की श्रृंखला पर आधारित है। प्रवासन की धाराओं का मौलिक उदाहरण यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने उद्गम स्थान से किसी विशिष्ट गन्तव्य की ओर पलायन करता है तब वह उन दो स्थानों के बीच एक कड़ी बनाता है और फिर उस स्थान से अन्य लोग उस गन्तव्य स्थान पर आने लगते हैं, जिससे सामाजिक केशिका संचलित होती है।

- अधिकांश प्रवासी अपेक्षाकृत कम दूरी तय करते हैं जिससे प्रवासियों की संख्या और यात्रा की दूरी के बीच एक विपरीत सम्बन्ध बनता है।
- लम्बी दूरी की यात्रा करने वाले लोग गन्तव्य स्थानों पर उपलब्ध अवसरों से काफी हद तक अनजान रहते हैं और बड़े शहरी केंद्रों की ओर रुख करते हैं।
- प्रवासन विभिन्न चरणों में होता है, जिससे प्रवासन चरणबद्ध हो जाता है। रेवेन्स्टाइन प्रवासन विभिन्न चरणों में होता है, जो चरणबद्ध प्रवासन की दिशा में जाता है।
- चरणबद्ध प्रवासन को समझने के लिए निम्नलिखित को देखें।



चित्र 1.1

स्रोतः http://geographybylizz.wikispaces.com/file/view/stepwise_migration.jpg /30549045/ Stepwise_migration.jpg

शहरों की चरघातांकी वृद्धि के आधार पर, ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के पलायन की सम्भावना, शहरी केन्द्रों के लोगों की तुलना में, अधिक होती है। तकनीकी प्रगति के साथ-साथ प्रवासन का परिमाण बढ़ता है। रेवेन्स्टाइन के अनुसार पुरुषों की तुलना में महिलाओं की, अपेक्षाकृत कम दूरी के लिए अपने देश के भीतर, पलायन करने की सम्भावना अधिक होती है। महिलाओं की तुलना में पुरुषों का उत्प्रवास अधिक होता है। अधिकतर प्रवासी वयस्क होते हैं।

एवरेट ली ने प्रवासन के निर्णय से जुड़े कारकों और प्रवास के उद्देश्य को निम्नलिखित चार श्रेणियों में संकल्पनाबद्ध किया है (ली, 1969):

1) उद्‌गम क्षेत्रों से जुड़े कारक
2) गन्तव्य क्षेत्रों से जुड़े कारक
3) बाधाओं में हस्तक्षेप
4) व्यक्तिगत कारक

ली इन सभी चार श्रेणियों की ओर संकेत करते हुए बताते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे कई कारक हैं जो उस क्षेत्र से लोगों के दूर जाने या उस क्षेत्र में लोगों के रुके रहने या उस क्षेत्र की तरफ लोगों के आकर्षित होने के सम्बन्ध में कार्य करते हैं। (भेंडे और कानितकर, 1978)।



चित्र 1.2

स्रोतः Everett S Lee, (1969), "A Theory of Migration"

बाधाओं में हस्तक्षेप प्रवासन को घटित होने से रोक सकता है या पलायन करने वाले लोगों की संख्या को कम कर सकता है। बाधाओं में हस्तक्षेप करने वाले कारक नकारात्मक और सकारात्मक होने के साथ-साथ तटस्थ भी हो सकते हैं; जैसे कि धर्म, सेवा, गलत जानकारी, राजनीतिक मतभेद, सरकारी नीतियाँ, नौकरी के शीघ्रतापूर्ण अवसर, यात्रा की लागत, भाषा आदि। ली ने पाया कि उद्‌गम स्थान के साथ-साथ गन्तव्य स्थान पर भी हस्तक्षेप करने वाली बाधाएँ, जीवन चक्र, व्यक्तियों की सामाजिक और साथ ही साथ व्यक्तिगत विशेषताएँ ऐसे मुख्य कारक हैं जो प्रवासन या स्थानिक गतिशीलता के लिए अग्रणी हैं। उनकी परिकल्पना थी कि प्रवासन, प्रवासन की धारा और परिमाण के साथ-साथ प्रवासियों के अभिलक्षणों पर भी निर्भर करता है।

किसी दिए गए क्षेत्र में 'प्रवासन का परिमाण (Volume of Migration)' उस क्षेत्र की विविधता के साथ बदलता रहता है। विविधता की उच्च कोटि (स्थानिक/नस्लीय/जातीय) का परिणाम उच्चतर प्रवासन के रूप में सामने आता है। यह परिमाण व्यापार-चक्रों में मन्दी या तेजी के बीच की कठिनाइयों एवं प्रवृत्तियों के द्वारा प्रभावित होता है। इसलिए प्रगति की अवस्था के साथ प्रवासन का परिमाण और प्रवासन की दर परिवर्तित होती रहती है। दूसरी तरफ, यदि प्रवासन में योगदान देने वाले मुख्य कारक 'धक्का देने वाले कारक (Push Factors)' हैं तो 'प्रवासन की धारा (Stream of Migration)' बहुत ऊँची हो जाती है, और विशेषकर तब, जब लोगों को 'धक्का देने वाले कारक (Push Factors)', 'खींचने वाले

कारकों (Pull Factors)' की तुलना में अधिक विवश करते हों। प्रत्येक मुख्य धारा के लिए एक प्रतिधारा भी विद्यमान होती है। धाराओं की दक्षता इस बात पर निर्भर है कि हस्तक्षेप करने वाली बाधाएँ कितनी मजबूत या कमजोर हैं तथा इस दौरान क्या आर्थिक परिस्थितियाँ बेहतर हैं अथवा नहीं। धाराओं और प्रतिधारा की दक्षता कमजोर होगी यदि मूलस्रोत और गन्तव्य का क्षेत्र एक जैसा ही है।

प्रवासियों के अभिलक्षण मूलस्रोत और गन्तव्य स्थलों की जनसंख्या के अभिलक्षणों की तरह होने की तरफ प्रवृत्त होते हैं। प्राथमिक रूप से आकर्षित करने वाले कारकों (Pull Factors) के प्रति अनुक्रिया करने वाली प्रवासी प्रवास के लिए विवश नहीं होते हैं। ऐसे मामले में प्रवासन की तरफ झुकाव बहुत अधिक नहीं होता है। हालाँकि धक्का देने वाले कारकों के प्रति सशक्त अनुक्रिया की स्थिति में प्रवास करने की तरफ झुकाव अधिक हो जाता है। इसलिए, प्रवासन धक्का देने वाले और आकर्षित करने वाले कारकों के बीच 'द्वि-प्रारूपी (bi-model)' अन्तर्क्रिया हो जाने की तरफ अग्रसर होता है।

अपने 'हस्तक्षेपकारी अवसर मॉडल (Intervening Opportunity Model)' में स्टोफर ने तर्क दिया है कि हस्तक्षेपकारी अवसरों के प्रभाव के लिए दूरी एक प्रतिनिधि तत्व है। यह माना जाता है कि स्रोत-स्थल से गन्तव्य-स्थल तक प्रवासन की धारा हस्तक्षेपकारी अवसरों के साथ व्युत्क्रमानुपाती सम्बन्ध रखती है। दूसरे शब्दों में, किसी दी गयी दूरी के लिए गति या पलायन करने वाले लोगों की संख्या गन्तव्य-स्थल पर उपलब्ध अवसरों की संख्या के साथ सीधे समानुपाती होती है तथा हस्तक्षेपकारी अवसरों की संख्या के साथ व्युत्क्रमानुपाती होती है। इसलिए, स्थान का चरित्र दूरी की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है। स्टोफर ने अपने इस मॉडल को, आगे चलकर, 'प्रतिस्पर्धी प्रवासन मॉडल (Competing Migrant Model)' के रूप में स्वयं परिमार्जित किया।

टोडारो मॉडल (1971) ऐसे आर्थिक कारकों की बात करता है जो धक्का देने वाले और आकर्षित करने वाले कारकों के बीच सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। वैयक्तिक रूप से प्रवासी अनिवार्यतः आर्थिक लागत और लाभ का विश्लेषण करते ही हैं। इस प्रकार, नीति-निर्माता लोग, ग्रामीण क्षेत्रों में निवेष और रोज़गार के नवीन अवसरों का सृजन करके ग्रामीण प्रवासन को धीमा कर सकते हैं।

गुरुत्व मॉडल न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम पर आधारित है और इसका विस्तार विलियम जे. रेली द्वारा सन् 1931 में किया गया था। इस मॉडल के अनुसार, 'क' और 'ख' स्थलों के बीच आने-जाने वाले लोगों की संख्या 'क' स्थल की जनसंख्या और 'ख' स्थल की जनसंख्या के गुणनफल में उनके बीच की दूरी के वर्ग से भाग देने पर प्राप्त संख्या के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, दो शहरी केन्द्रों के बीच लोगों की गतिशीलता उनकी जनसंख्या के गुणनफल के समानुपाती होगी और उनके बीच की दूरियों के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होगी। प्रवासी लोगों की सम्भावित संख्या वहाँ अधिक होगी, जहाँ प्रस्थान वाले स्थल और गन्तव्य वाले स्थल की जनसंख्या विशाल है। सामाजिक कारकों को सम्मिलित करने के लिए इस मॉडल को आगे परिष्कृत किया गया।

प्रवासन के प्रतिमानों को शासित करने वाले विभिन्न मॉडलों के बारे में पढ़ने के बाद, इस बिन्दु पर यह महत्वपूर्ण है कि पिछले अनुभाग में आपने जो पढ़ा है, उसका मूल्यांकन किया जाए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

क) रैवेन्सटाइन के प्रवासन के सिद्धान्त में शामिल प्रमुख अभिलक्षण क्या हैं?

ख) स्टोफर द्वारा प्रस्तावित हस्तक्षेपकारी अवसर मॉडल क्या है?

आइए, अब प्रवासन को निर्धारित करने वाले कारकों के बारे में सीखें।

1.5 प्रवासन के निर्धारक तत्व

प्रवासन अनेक प्राकृतिक और मानव-निर्मित कारकों को प्रभावित करता है और उनसे प्रभावित भी होता है और इसका परिणाम धक्का देने वाले और आकर्षित करने वाले कारकों के रूप में सामने आता है। मूलस्रोत वाले स्थल पर कार्यरत धक्का देने वाले कारक जनसंख्या वृद्धि की उच्च प्राकृतिक दर के रूप में हो सकते हैं जो विद्यमान संसाधनों पर जनसंख्या का दबाव पैदा करते हों; प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति के रूप में हो सकते हैं; सूखे, बाढ़ या भूकम्प और दुर्भिक्ष जैसी प्राकृतिक आपदाओं के रूप में हो सकते हैं; तथा उन रूपों में हो सकते हैं जहाँ तीव्र सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संघर्षों के कारण सुरक्षा की

दृष्टि से लोग दूसरे स्थानों की तरफ प्रवासित हो जाने के लिए विवष हो जाया करते हैं। भारत जैसे विशाल देश में प्राकृतिक आपदाओं के कारण प्रत्येक वर्ष बहुत सारे लोगों का प्रवासन आम बात है। आकर्षित करने वाले कारक गन्तव्य स्थलों पर कार्य करते हैं और नवीन उद्योगों की स्थापना के कारण, लाभकारी रोज़गार के नवीन अवसरों के प्रावधान के कारण, शहरों में उच्च शिक्षा की बेहतर सुविधाओं आदि के कारण ये कारक लोगों को आकर्षित करते हैं। हर साल मुम्बई और नई दिल्ली जैसे बड़े शहरों की तरफ हज़ारों लोग खिंचे चले आते हैं जो पूरे देश में प्रवासियों की सर्वोच्च प्रतिशतता है।

कुछ चर ऐसे हैं जो या तो धक्का देने वाले या आकर्षित करने वाले कारकों के रूप में कार्य करते हैं, उदाहरण के लिए, तकनीकी परिवर्तन का चर, जिसका परिणाम शहरी क्षेत्रों में असंख्य आकर्षक कारकों की स्थापना के रूप में सामने आता है या जो ग्रामीण क्षेत्रों को कृषि के आधुनिक उपकरण उपलब्ध कराता है और व्यक्ति को कृषिगत भूमि से उसके बन्धन से मुक्त करता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय कारकों के आधार पर इन दोनों कारकों को आगे भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

जो सामाजिक कारक प्रवासन को प्रभावित करते हैं, वे हैं – सांस्कृतिक समृद्धि, बेहतर कल्याणकारी कार्यक्रम, बेहतर विद्यालय, आधारभूत संरचना, मजबूत सामाजिक नेटवर्क (जैसा कि बांग्लादेशी प्रवासियों के मामले में है), ऐसे मित्रों या सगे-सम्बन्धियों की उपस्थिति जो पहले ही प्रवासन करके उस गन्तव्य-स्थल तक आ गए हैं, धार्मिक समुदाय निर्मित करने की प्रेरणा, विवाह इत्यादि। ये सभी आकर्षित करने वाले कारक हैं जो किसी व्यक्ति को प्रवास करने के लिए आकर्षित करते हैं। दूसरी तरफ, सांस्कृतिक कलह, और धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने पर प्रतिबन्ध जैसे कारक धक्का देने वाले कारक के रूप में कार्य कर सकते हैं जिसके कारण कोई व्यक्ति अपने निवास स्थान से पलायन करने का निर्णय ले सकता है।

किंग्सले डेविस के अनुसार, भारतीय जनसंख्या की गतिशीलता के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारक निम्नलिखित रहे हैं – कृषि की प्रधानता, जाति व्यवस्था, कम उम्र में विवाह और संयुक्त परिवार की प्रणाली, भाषा और संस्कृति की विविधता, शिक्षा का अभाव और अन्य कारक (डेविस, 1968)। स्वयं के लिए और अपने बच्चों के लिए कृषिगत भूमि हासिल करने के बेहतर आर्थिक अवसर, कृषिगत भूमि की सस्ती खरीद, तात्कालिक सम्पत्ति, नौकरी के अधिक अवसर, उच्चतर वेतन, पूर्व-भुगतान (प्रीपेड) यात्रा (सम्बन्धियों से) कुछ प्रमुख आर्थिक कारक हैं जो आकर्षित करने वाले कारकों के रूप में कार्य करते हैं, जबकि रोजगार या उद्यमिता के अवसरों का अभाव, कृषिगत भूमि की कमी, नया उद्यम शुरू करने में कठिनाई आदि धक्का देने वाले कारकों के कुछ उदाहरण हैं।

राजनीतिक स्वतन्त्रता, जैसे सरकार चुनने का अधिकार, सभी मूल अधिकारों के प्रवर्तन का अधिकार आदि भी लोगों को प्रवास करने के लिए प्रेरित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। किन्तु विपरीत राजनीतिक परिस्थितियों में, जैसे दमनकारी कानूनी स्थितियों, सैन्य प्रारूप, युद्ध, सैनिकों द्वारा लोगों को हटाये जाने या उन पर बल प्रयुक्त करने, राजनीतिक या धार्मिक स्वतन्त्रता के अभाव जैसी दशाएँ जन-प्रवासन को प्रेरित करती हैं जैसाकि समय-समय पर अनुभव किया गया है और अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों के मामले में भी ऐसा ही अनुभव रहा है। ऐसे प्रवासन का एक उदाहरण अफगानिस्तान से अफगानियों का पड़ोसी देशों में चले जाना है। ऐसी परिघटनाएँ राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रियाओं के दौरान भी अनुभूत होती हैं। उदाहरण के लिए, भारत की स्वतन्त्रता के समय पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं और भारत में रहने वाले मुसलमानों, दोनों, ने क्रमशः भारत और पाकिस्तान में प्रवास किया।

पर्यावरणीय कारकों से उपजा पर्यावरणीय प्रवासन प्राकृतिक आपदाओं और संकटों के कारण होता है, जैसे – अकाल या सूखा, बाढ़, सुनामी, भूकम्प आदि। कभी-कभी मानव-निर्मित आपदाएँ भी समान रूप से जिम्मेदार रही हैं। विकास के नाम पर लगातार बाँधों, सड़कों, नहरों, रेलमार्गों आदि के निर्माण ने भी लोगों को विस्थापित किया है और उन्हें अपनी मातृभूमि को छोड़ने के लिए विवश किया है।

किसी क्षेत्र की वहन क्षमता जैसे जनांकिकीय कारक भी उन महत्वपूर्ण कारकों में शामिल हैं जो प्रवासन की दिशा में ले जाते हैं। जब किसी भौगोलिक क्षेत्र की वहन क्षमता अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर संतृप्त हो जाती है तो प्रवासन प्रारम्भ हो जाता है और अगर ऐसा होना जारी रहता है तो अन्ततः यह जनसंख्या के आकाशीय पुनर्वितरण की तरफ ले जाता है। जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि में उच्च दर के कारण जनसंख्या का दबाव बहुत बढ़ जाता है और इस कारण प्रवासन घटित होता है ताकि सन्तुलन कायम रहे। बीमारियों (सर्वव्यापी रोगों और महामारियों) का विस्फोट भी प्रवासन के लिए उत्तरदायी है।

अब, अपनी समझ का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित अभ्यास को करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) प्रवासन–अध्ययनों में धक्का देने वाले और आकर्षित करने वाले कारकों का क्या तात्पर्य है? इसका एक उदाहरण दीजिए।

2) भारत में अन्तः और बाह्य प्रवासन (In and Out Migration) के उदाहरण दीजिए।

आगे आने वाले अनुभागों में आप प्रवासन के विभिन्न प्रकारों के बारे में पढ़ेंगे।

1.6 प्रवासन का वर्गीकरण

प्रवासन का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन कारकों पर निर्भर करता है। ये तीन कारक हैं – प्रेरणा, दूरी और समय। प्रेरणा और दूरी परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं। लम्बी दूरी और छोटी दूरी के प्रवासन के आधार पर प्रवासन को दो प्रकारों में उप-विभाजित किया जा सकता है। प्रवासन को निम्नलिखित रूपों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है–

आन्तरिक प्रवासन वह है जिसके अन्तर्गत किसी भौगोलिक या प्रशासकीय परिसीमा के दायरे के भीतर मूल निवास-स्थान को परिवर्तित करने वाली कोई गतिशीलता शामिल होती है, चाहे यह गतिशीलता अस्थायी इरादे से की गयी हो या स्थायी इरादे से। आन्तरिक प्रवासन में अन्तःराज्यीय/अन्तःजनपदीय और अन्तरराज्यीय/अन्तरजनपदीय दोनों प्रकार के प्रवासन शामिल होते हैं, जहाँ अन्तरराज्यीय/अन्तरजनपदीय प्रवासन का तात्पर्य लोगों का एक राज्य या एक जिले की सीमा से आर-पार जाकर प्रवासन करने से है। दूसरी तरफ, अन्तःराज्यीय या अन्तःजनपदीय प्रवासन क्रमशः राज्य या जिले के भीतर ही घटित होता है। भारतीय महिला का विवाह के उपरान्त पति के घर चले जाना आन्तरिक प्रवासन का एक अच्छा उदाहरण है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय सीमाएँ पार नहीं की जातीं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन तब घटित होता है जब लोगों की गतिशीलता में राष्ट्रीय सीमाओं का पार किया जाना शामिल होता है। नौकरियों की तलाश में भारतीय युवाओं के संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय देशों और खाड़ी के देशों में जाने को इस श्रेणी के प्रवासन में वर्गीकृत किया जा सकता है। आप्रवासन (immigration) और उत्प्रवासन (emigration) शब्द क्रमशः किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के भीतर या बाहर की जाने वाली गतिशीलता को वर्णित करता है, और इन शब्दों का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के सन्दर्भ में ही किया जाता है। किसी प्रवासी के दृष्टिकोण से देखें, तो आप्रवासन किसी ऐसे देश की यात्रा करने को कहेंगे, जिसकी नागरिकता हासिल नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त यह भी, कि इस आप्रवासन में प्रवासी का इरादा बस जाने का नहीं होता है। दूसरे देशों में अपेक्षाकृत अल्प-अवधियों के लिए जाने वाले पर्यटको और विद्यार्थियों को इसी श्रेणी के अन्तर्गत रखा जाता है। उत्प्रवासन किसी व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे देश या क्षेत्र में बसने के लिए उसके अपने देश या क्षेत्र को छोड़ देना है।

अन्तः प्रवासन (In-migration) किसी विशिष्ट क्षेत्र के भीतर की गतिशीलता को बताता है, जबकि बाह्य प्रवासन (Out-migration) किसी विशिष्ट क्षेत्र से बाहर की गतिशीलता से सन्दर्भित है। इन दोनों तरह के प्रवासनों का सम्बन्ध किसी देश के भीतर ही किए जाने वाले प्रवासनों से है यानी ये आन्तरिक प्रवासन हैं। गन्तव्य-स्थल के सन्दर्भ में प्रत्येक गतिशीलता या तो आप्रवासन है या फिर अन्तः प्रवासन तथा मूल स्थान या प्रस्थान के सन्दर्भ में प्रत्येक गतिशीलता या तो उत्प्रवासन है या फिर बाह्य प्रवासन।

प्रवासन–अध्ययनों में जिस चीज का आमतौर पर बहुतायत में उल्लेख किया जाता है, वह कृषि के श्रम चक्रों से जुड़ी हुई है और इसे मौसमी प्रवासन कहते हैं। इसका तात्पर्य अल्प अवधि के लिए मवेशियों और परिवार के साथ किए जाने वाले प्रवासन से है। 'गुज्जर' और 'बकरवाल' जैसी घुमन्तू आबादी अपनी बकरियों और भेड़ों के साथ घाटी से पहाड़ों पर ऊँचे स्थानों पर चली जाया करती हैं। मौसमी प्रवासन को अल्पावधि प्रवासन के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। इस तरीके के प्रवासन में कोई व्यक्ति अपने सामान्य निवास वाले देश से इतर किसी दूसरे देश में कम से कम तीन महीने तथा अधिक से अधिक बारह महीने (एक वर्ष) के लिए चला जाता है। लेकिन मनोरंजन या छुट्टी के लिए तथा मित्रों या

सगे-सम्बन्धियों के पास जाने के लिए की गयी यात्राएँ; व्यापार, चिकित्सकीय उपचार या धार्मिक तीर्थयात्राओं के लिए की जाने वाली यात्राएँ इसमें शामिल नहीं होतीं। ऐसी यात्राएँ इस प्रवासन के लिए अपवाद मानी जाती हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) के अनुसार दीर्घकालिक प्रवासन ऐसा प्रवासन है जिसमें कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का कोई समूह अपने सामान्य निवास वाले देश से इतर किसी अन्य देश में कम से कम बारह महीने (एक वर्ष) के लिए प्रवास करता है ताकि गन्तव्य-देश प्रवास करने वाले व्यक्ति के लिए प्रभावशाली रूप से उस व्यक्ति का सामान्य निवास ही बन जाए।

क्रमबद्ध प्रवासन प्रवासन का एक ऐसा रूप है जहाँ प्रवासी व्यक्ति के निर्णय को विचार में लिया ही नहीं जाता। प्रवास करने वाले परिवारों के अधिकांश बच्चों को इसके सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है जहाँ उनसे बड़े लोगों द्वारा लिए गए निर्णयों में उन बच्चों की कोई सहभागिता या भूमिका ही नहीं होती। इसका दूसरा उदाहरण वह पत्नी है, जो अपने पति के साथ जाती ही है।

ग्रामीण–ग्रामीण प्रवासन ग्रामीण विकास की शक्तियों के बीच असमानता के कारण पैदा होता है, जहाँ प्रवासन का प्रवाह कम विकसित ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक विकसित ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ होता है; उदाहरण के लिए, असम में चाय बागान में कार्य करने वाले श्रमिक, पंजाब और हरियाणा में काम करने वाले उत्तर प्रदेश और बिहार के कृषि मजदूर। किन्तु यह हमेशा सत्य नहीं होता क्योंकि किसी ग्रामीण महिला का विवाह के बाद अपने जन्मस्थल से अपने पति के घर जाने को भी ग्रामीण–ग्रामीण प्रवासन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

हालिया समय में, ग्रामीण से शहरी प्रवासन बहुत प्रचलित हो गया है क्योंकि बहुत सारे लोग नौकरियों की तलाश में शहरों की तरफ चले जाते हैं। ग्रामीण से शहरी प्रवासन नगरीकरण के लिए एक सम्भावित कारक बन गया है। ग्रामीण–शहरी प्रवासन तीव्र औद्योगीकरण प्रक्रिया के कारण होता है।

आर्थिक और कल्याणकारी आवश्यकताओं के कारण किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूहों की गतिशीलता शहरी–शहरी प्रवासन की तरफ ले जाती है। नौकरियाँ और बेहतर आधारभूत संरचनाएँ जैसे आवास, विद्यालय आदि छोटे कस्बों में रहने वाले लोगों को मेट्रो या विशाल नगरों की तरफ आकर्षित करते हैं। यह विकासशील देशों में बढ़ते नगरीकरण के साथ-साथ अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। शहरी-शहरी प्रवासन को 'चरणबद्ध प्रवासन' के आलोक में भी देखा जा सकता है, जैसाकि रैवेन्स्टाइन ने प्रस्तावित भी किया है :

छोटा कस्बा – शहर – बड़े शहर/ मेट्रोज़

दरभंगा – पटना – दिल्ली

शहरी–ग्रामीण प्रवासन का तात्पर्य शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण इलाकों की तरफ लोगों की गतिशीलता से है। इसे शहरी–विरोधी प्रवासन या वापसी प्रवासन भी कहा जाता है। यह परिघटना उन्नत राष्ट्रों में अधिक प्रचलित है, हालाँकि हालिया समय में इसे विकासशील देशों के सन्दर्भ में भी प्रेक्षित किया गया है। ऐसा प्रवासन तब होता है जब लोग किसी शहरी स्थल (शहरों, निर्मित क्षेत्रों, जैसे दिल्ली) से किसी ग्रामीण स्थल (गाँव की तरफ, अन्य बिखरे-बिखरे आबादी वाले स्थानों, जैसे नोएडा, ग्रेटर नोएडा) की तरफ प्रवास करते हैं।

बॉक्स सं. 1.4

प्रवासन की प्रमुख प्रवृत्तियों में शामिल हैं –

i) ग्रामीण–ग्रामीण प्रवासन

ii) ग्रामीण–शहरी प्रवासन

iii) शहरी–ग्रामीण प्रवासन

iv) शहरी–शहरी प्रवासन

v) अन्तः और बाह्य प्रवासन

vi) दीर्घकालिक प्रवासन

vii) क्रमबद्ध प्रवासन

viii) कुशल/अर्द्ध/अकुशल प्रवासन

इन सबके अतिरिक्त, प्रवासन के दो और भी प्रकार हैं – 'कुशल' और 'अर्द्ध-अकुशल प्रवासन'। इनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। उदाहरण के लिए, प्रबन्धकों और सूचना तकनीकी से जुड़े उच्च शिक्षित पेशेवर लोग रोजगार की तलाश में विदेश चले जाते हैं और श्रमिक रोजगार की तलाश में अपेक्षाकृत बड़े शहरों की तरफ चले जाते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) प्रवासन के निम्नलिखित रूपों के बीच अन्तर स्थापित कीजिए :

- आप्रवासन और उत्प्रवासन

- अन्तः प्रवासन और बाह्य प्रवासन

- दीर्घकालिक प्रवासन और अल्पकालिक प्रवासन

- चरणबद्ध और वापसी प्रवासन

इस इकाई के अन्तिम अनुभाग में आप प्रवासन के जेंडर–आयामों के बारे में पढ़ेंगे।

1.7 जेंडर और प्रवासन

आइए, अब इस बारे में पढ़ते हैं कि जेंडर किस प्रकार प्रवासन को प्रभावित करता है तथा इस सम्बन्ध में विविध विमर्श क्या हैं जो जेंडर और प्रवासन के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को समाहित करते हैं।

जेंडर, अन्तरिक्ष और गतिशीलता के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को समझना नारीवादी अनुसन्धान में अन्वेशण का एक हाल-फिलहाल का ताजा क्षेत्र है। विशेषकर, जेंडर और विकास के विमर्श में जेंडर, प्रवासन और आजीविका पर विशेष जोर दिया गया है। नारीवादी अन्तरप्रतिच्छेदनीयता को अनुसन्धान के एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं ताकि प्रवासन के क्षेत्र में एक जेण्डर–परिप्रेक्ष्य की रचना की जा सके। नारीवादी समाजशास्त्रियों, दार्शनिकों और मनोविज्ञानियों ने अन्तरप्रतिच्छेदनीयता को एक विश्लेषणात्मक औजार के रूप में प्रयुक्त किया है ताकि जेंडर को सामाजिक संस्थाओं, व्यवहारों और प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में समझा जा सके। अन्तरप्रतिच्छेदनीयता का लक्ष्य वह प्रतिमान है जिसके अन्तर्गत पदसोपानीय सामाजिक व्यवस्थाएँ, जैसे जाति, प्रजाति, जेंडर, नृजातीयता आदि समाज में असमानता पैदा करने में अपना योगदान देती हैं। रीता अफसर (2011) के अनुसार, अन्तरप्रतिच्छेदनीयता के तीन अभिलक्षण जेंडर, अन्तरिक्ष और गतिशीलता के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को व्याख्यायित करने के लिए बहुत उपयोगी होंगे। अन्तरप्रतिच्छेदनीयता के तीन संकल्पनात्मक अवयव इस प्रकार हैं :

- सामाजिक विभेद का प्रमुख रूप होने के कारण जेंडर सम्बन्ध प्रवासन को प्रभावित करते हैं।
- अपने आप में एक तरल श्रेणी होने के कारण जेंडर अन्तरिक्ष के सन्दर्भ में विविध अनुभवों को सामने लाता है; और
- प्रवासन के अध्ययन में अन्तरप्रतिच्छेदनीयता का ढाँचा जेंडर को एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में मानता है।

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जेंडर सम्बन्ध प्रवासन की प्रक्रिया, कारण और परिणाम को प्रभावित कर सकते हैं। यह विभिन्न अन्तरिक्षों में संस्कृतियों और व्यक्तित्वों को उत्पन्न कर सकता है और अन्ततः जेंडर सम्बन्ध प्रवासन–अनुसन्धान में संस्थाबद्ध हो चुकी असमानता का विरोध कर सकता है और उनको चुनौती दे सकता है। अधिकांश प्रवासन–अध्ययनों में जेंडर दमन और सुभेद्यताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं हालाँकि प्रवासी महिलाओं को सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ताओं के रूप में प्रक्षेपित करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। दमनकारी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में महिलाओं पर अभिकरण के रूप में जोर देना और प्रवासी महिलाओं की प्रतिवादी रणनीतियों पर ध्यान देना जेंडर–प्रवासन अनुसन्धान का विषय-क्षेत्र है।

सेसिला टकोली और रिचार्ड मबाला (2010) का तर्क है कि जेंडर और पीढ़ी ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो ग्रामीण और शहरी सन्दर्भों में प्रवासन और गतिशीलता की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। प्रवासन और गतिशीलता निहित या छिपे हुए रूप में जटिल प्रक्रियाएँ हैं जिनमें गतिशीलता के प्रकार, जनांकिकी और सांस्कृतिक अनुभव सम्मिलित हैं। वे सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूपान्तरणों को स्थानीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तरों पर प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरण के लिए, नगरीकरण में वृद्धि से आर्थिक संरचना, जनसंख्या के आजीविका के प्रतिमानों, शहरी आधारभूत संरचना की पुनर्संरचना आदि की दिशा में चीजें अग्रसर हो जाती हैं और इसके साथ जेंडर इन प्रक्रियाओं को आकार देने के लिए एक

महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। यदि संक्षिप्त में कहें तो, "जेंडर और पीढ़ीगत सम्बन्ध मुख्य तत्व हैं जो इन रूपान्तरणकारी प्रक्रियाओं को आकार भी देते हैं और इनसे आकार ग्रहण भी करते हैं। (टैकोली और मबाला, 2011 पृ. 390)।"

बॉक्स सं. 1.5

प्रवासन और गतिशीलता की जेण्डरीकृत समझ अनुसन्धान के विषय-क्षेत्र को अनेक दिशाओं तक विस्तृत करती है, जिसमें संसाधनों और राजनीतिक निर्णय-निर्माण तक परिवार के सदस्यों की पहुँच; आजीविका रणनीतियों की प्रकृति; जेंडर-सम्बन्धों का विकास करना तथा जाति, वर्ग और नृजातीयता के आधार पर अन्तर-पारिवारिक संघर्षों का विश्लेषण करना शामिल है।

अपने लेख 'परिवार, जेंडर और ग्रामीण–शहरी प्रवासन : अन्तर्सम्बन्धों पर विचार और नीति के लिए चिन्ताएँ' में सिल्विया चैण्ट (1998) जेंडर–चयनात्मक (selective) प्रवासन की अवधारणा पर बात करती हैं। वे इस पर चर्चा करती हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या की जेंडर–चयनात्मक गतिशीलता किस प्रकार परिवारों में विविधता लेकर आती है, उदाहरण के लिए, दक्षिण एशियाई क्षेत्र में ऐसे परिवारों का बढ़ते जाना जिनमें परिवार की मुखिया महिलाएँ होती हैं। वे उन दोनों स्थितियों में अन्तर करती हैं जहाँ महिलाएँ परिवार की विधि-अनुसार (de-jure) मुखिया हैं और जहाँ महिलाएँ परिवार की तथ्य-अनुसार (de-facto) मुखिया हैं। परिवारों के ये दोनों रूप ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की तरफ महिलाओं के प्रवासन के लिए निर्धारक-कारक हैं।

महिलाओं का परिवार की विधि-अनुसार (de-jure) मुखिया होना विधवा हो जाने, अलगाव हो जाने या अविवाहित रह जाने की स्थिति में घटित होता है। जिन परिवारों में महिलाएँ विधि-अनुसार (de-jure) मुखिया होती हैं, उनमें महिलाओं को प्रायः शहरों में अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए प्रवासन का सहारा लेना पड़ता है। परिवारों में महिलाओं का तथ्य-अनुसार (de-facto) मुखिया होना तब घटित होता है जब पुरुष शहरी क्षेत्रों की तरफ प्रवास कर जाते हैं। ऐसे मामलों में महिलाएँ घटिया आर्थिक संसाधनों, साख और प्रशिक्षण तक कम पहुँच तथा निर्णय-निर्माण के निम्न स्तर जैसी स्थितियों के साथ पीछे छूट जाया करती हैं। ये स्थितियाँ इन महिलाओं को और अधिक सुभेद्य बना देती हैं। इस सन्दर्भ में, महिलाओं के तथ्य-अनुसार मुखिया वाले परिवारों में महिलाएँ प्रवासन को कभी-कभी गरीबी से निकलने के एक मार्ग के रूप में देखती हैं। प्रवासन और गतिशीलता को जेंडर-परिप्रेक्ष्य में समझने से आप अनेक नवीन बहुमुखी क्षेत्रों से परिचित होंगे, जिनमें शामिल हैं – अनुसन्धान के एक उपकरण के रूप में अन्तरप्रतिच्छेदनीयता, सामाजिक-सांस्कृतिक रूपान्तरण, राजनीतिक निर्णय-निर्माण और नीतिगत हस्तक्षेप। इस खण्ड की अगली इकाइयों में आप इनमें से कुछ मुद्दों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

1.8 सारांश

प्रवासन लोगों की अस्थायी या स्थायी गतिशीलता को शामिल करने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण मूलस्रोत-स्थल और गन्तव्य-स्थल दोनों में परिवर्तन आ जाता है। इन परिवर्तनों के कुछ चरों पर निर्भर होते हैं। प्रवासन दो क्षेत्रों को शामिल करता है, स्रोत और गन्तव्य। इसका प्रभाव गन्तव्य-स्थलों पर सकारात्मक हो सकता है, जबकि स्रोत-स्थलों पर नकारात्मक हो सकता है या स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है या यह भी सम्भव है कि स्रोत और गन्तव्य दोनों स्थलों पर इसका प्रभाव सकारात्मक हो या दोनों स्थलों पर इसका प्रभाव नकारात्मक ही हो। यह प्रभाव सकारात्मक होगा या नकारात्मक, यह क्षेत्रों की

सामाजिक-आर्थिक, जनांकिकीय और राजनीतिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त यह निवल (net) प्रवासन के परिमाण पर तथा उस सीमा पर भी निर्भर करता है, जिस सीमा तक निवल गतिशीलता विशिष्ट आयु-लिंग और व्यावसायिक समूहों को लेकर चयनात्मक है। ऐसी कोई भी जनसंख्या जो प्रवासन (अन्तः या बाह्य) की ऊँची दरों से गुजरी हो, भविष्य में उस जनसंख्या की आयु-लिंग संरचना में बदलाव आता ही है। विभिन्न अभिलक्षणों वाले लोगों के लगातार अन्तः और बाह्य प्रवासन के कारण जनसंख्या का नृजातीय, प्रजातीय और सांस्कृतिक संघटन परिवर्तित होता रहता है। यह परिवार और गोत्र की संरचना के साथ-साथ सामाजिक भूमिकाओं और मूल्यों को भी प्रभावित करता है।

1.9 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) प्रवासन को परिभाषित कीजिए और उदाहरण सहित इसके मुख्य अभिलक्षणों पर चर्चा कीजिए।

2) प्रवासन के प्रमुख प्रकार कौन-कौन से हैं? इसे किस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है?

3) प्रवासन की प्रक्रियाओं का अध्ययन करने में शामिल मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

4) वे कौन से कारक हैं जो प्रवासन को प्रभावित करते हैं? उदाहरणों की सहायता से चर्चा कीजिए।

1.10 सन्दर्भ

Afsar, Rita (2011). Contextualising gender and migration in South Asia: Critical Insights. Gender, Technology and Development. 15:389, D01: 10.1177/097185241101500304.

Bhende, Asha A. and Kanitkar Tara (1978), op cit, Pp 390.

Bogue, Donald J., (1961) "*International Migration*", in Philip M. Hauser and Otis Dudley Duncan (Eds.), The study of Population.

Cecilia Tacoli and R.Mabala (2010). Euploring Mobility and Migration in the Content of Rural Urban Linkages: Why Gender and Generation Matter. Environment and Urbanisation. 22(389). D01: 10.1177/0956247810379935.

Chant, Sylvia (1998). Households, gender and rural urban migration: reflections on linkages and Considerations for policy. Environment and Urbanisation, Vol 10, No.1.

D avis, Kingsley (1968). The Population of India and Pakistan, Principles of Population Studies. New Delhi: Himalaya Publishing House. Princeton University.

Lee, Everett S. (1969), "*A Theory of Migration"* in J. A. Jackson (Ed.). *Migration,* Cambridge: Cambridge University Press.

Peterson, William, (1969), *Population,* New York: MacMillan.

United Nations, (1956), *Multilingual Demographic Dictionary*, ST/SOA/SER. A/29, Population Studies No. 29, New York.

http://geographybylizz.wikispaces.com/file/view/Stepwise_migration.jpg/30549045/Stepwise_migration.jpg

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Afsar, Rita (2011). Contextualising gender and migration in South Asia: Critical Insights. Gender, Technology and Development 15:389, D01: 10.1177/097185241101500304

Chant, Sylvia (1998). Households, Gender and Rural Urban Migration: Reflections on Linkages and Cousideratious for Policy. Environment and Urbanisation, Vol 10, No.1.

Cecilia Tacoli and R.Mabala (2010). Euploring Mobility and Migration in the Content of Rural Urban Linkages: Why Gender and Generation Matter. Environment and Urbanisation. 22(389). D01: 10.1177/0956247810379935.

इकाई 2 प्रवासन, विषमता और सामाजिक परिवर्तन

संरचना

मोंदिरा दत्ता

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रवासन और विषमता

2.4 भारत में मौसमी श्रमिक प्रवासन और विषमता

2.5 प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन

2.6 जेंडर, सामाजिक परिवर्तन और विषमता: एक अन्तर्सम्बंध

2.7 सारांश

2.8 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

2.9 संदर्भ

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

प्रवासन, किसी व्यक्ति का किसी क्षेत्र की प्रशासनिक सीमा के आर-पार आवागमन है जो संबंधित व्यक्ति की इच्छा या बिना उसकी इच्छा के घटित होता है। आधुनिक समय में प्रवासन एक सार्वत्रिक परिघटना बन चुका है। परिवहन और संचान के साधनों के विस्तार के कारण यह शहरीकरण और औद्योगीकरण की विश्वव्यापी प्रक्रिया का एक अंग बन चुका है। अधिकांश देशों में, यह देखा गया है कि औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के साथ बहुत बड़े पैमाने पर लोगों का गांव से कस्बों की ओर, कस्बों से अन्य कस्बों की ओर और एक देश से दूसरी देश की ओर आवागमन जुड़ा हुआ है।

जनांकीय दृष्टिकोण से प्रवासन किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि की तीन मूलभूत घटकों में से एक है, और अन्य दो घटक जन्मदर और मृत्युदर हैं। परन्तु जहां जन्मदर और मृत्युदर दोनों जैविक ढांचे के अन्तर्गत प्रचालित होते हैं, प्रवासन इसके अन्तर्गत घटित नहीं होता। यह जनसंख्या के आकार, उसके संघटन और उसके वितरण को प्रभावित करता है। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि प्रवासन, उस स्थान के सांस्कृतिक संघटन को परिवर्तित करते हुए लोगों के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करता है।

शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त (UN High Commissioner for Refugees - UNHCR) के अनुसार, लगभग 4.2 करोड़ प्रवासी अपने गृह समुदायों से बाहर जीवन जी रहे हैं जो संघर्ष, शोषण और हिंसा से कुछ राहत पाने के लिए भागने को मजबूर हुए हैं। शरणार्थियों के प्रवासन के बहुतेरे कारण हैं और उनका स्वरूप भी कई प्रकार का है। इसमें ऐसे लोग भी शामिल हैं जो शरण की तलाश में अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते हैं और उनके साथ-साथ ऐसे भी हैं जो आंतरिक तौर पर अपने ही देश में विस्थापित होते हैं। राज्यविहीन लोग, प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन से प्रभावित या भविष्य में प्रभावित हो सकने वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोग और विकास परियोजनाओं के परिणामस्वरूप अनैच्छिक रूप से पुनर्स्थापित हो जाने वाले लोग भी इन चिंताओं में शामिल रहते हैं।

विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले लोगों के प्रवासन पैटर्न पर किसी भी राष्ट्र की सामाजिक प्रणाली का महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है। यह लोगों की आर्थिक स्थितियों का निर्धारक भी हो सकता है जो बदले में विषमता को बढ़ावा देता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वैश्विक विषमता मजदूरियों, श्रम बाजार में अवसरों और जीवन शैलियों पर आधारित है। अपने देश में अपनी स्थिति और अन्य अपेक्षाकृत धनी देशों या विकसित स्थानों में अपने जैसे लोगों की स्थितियों में अंतर को कम करने की तलाश में लाखों लाख श्रमिक और उनके परिवारीजन प्रति वर्ष सीमाओं के आर पार, महाद्वीपों के आर पार आवागमन करते हैं। बदले में, विकास के क्षेत्र में यह बढ़ती हुई सहमति है कि प्रवासन, दुनिया के सबसे गरीब राष्ट्रों में बहुत से लोगों के लिए महत्वपूर्ण आजीविका विविधीकरण रणनीति (livelihood diversification strategy) का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें न केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन शामिल हैं बल्कि अपेक्षाकृत गरीब देशों के अन्तर्गत ही होने वाले स्थायी, अस्थायी और मौसमी प्रवासन भी शामिल हैं। पूरे अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका में बहुतायत से होने वाली यह बाद वाली परिघटना भी महत्वपूर्ण रूप से विचारणीय है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि प्रवासन और सम्भवतः विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन एक ऐसी गतिविधि है जो महत्वपूर्ण खतरे (risks) और लागतें (costs) धारित करता है। वैसे तो प्रवासन का कुछ हिस्सा निश्चित रूप से भेजने वाले और अभिग्राही क्षेत्रों के आय और धन असमानताओं में गहरे से जमा हुआ है, परन्तु यह विषमता को आवश्यक रूप से उसी तरीके से कम नहीं करता जिस तरह से अधिकांश प्रवासियों का अभिप्रेत रहता है। बहुत कुछ तो भेजने वाले और अभिग्राही देशों और क्षेत्रों के अन्तर्गत और उनके बीच दोनों में इनकी लागतों और लाभों पर निर्भर करता है। भेजने वाले समुदायों पर प्रवासन के समस्त प्रभाव के रूप में महत्वपूर्ण बात प्रवासन की चयनात्मकता (selectivity) स्वयं भी है। स्पष्ट रूप से यदि अधिकांश प्रवासी, समाज के सबसे गरीब वर्गों से आते थे और उन्हें प्रवासन से निवल (net) लाभ पाना था तो कम से कम इसे आर्थिक विषमता को कम करने के तौर पर काम करना चाहिए था, भले ही अन्य सभी चीजें समान रहतीं। परन्तु प्रवासी हमेशा सबसे गरीब लोग ही नहीं रहे और वे हमेशा लाभ की स्थिति में भी नहीं रहे तथा अन्य कारक भी समान नहीं रहे।

अब हम इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पूर्णतया पढ़ लेने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि:

- मानव प्रवासन के तमाम स्वरूपों की पहचान कर सकें;
- प्रवासन के कारणों और उसके प्रभावों पर चर्चा कर सकें; और
- प्रवासन में विभिन्न एजेन्सियों की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डाल सकें।

2.3 प्रवासन और विषमता

यह इकाई विषमता के मुद्दों की पड़ताल करती है और श्रम बाजार के लिए जाति और सामाजिक पहचान की भूमिका को अपने अन्तर्गत लाने के लिए उसके विश्लेषण को विस्तृत करती है। ग्रामीण–शहरी प्रवासन का बड़ा कारण है– लोगों के बीच असमानता जो गांवों के बीच और एक गांव में भी अन्तर्वैयक्तिक और अन्तर-पारिवारिक असमानता पर आधारित है। भेजने वाले क्षेत्रों के बीच भी असमानताएं प्रवासन को पैदा करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं– अधिक विषमता वाले गांव अधिक प्रवासियों को बाहर भेजते हैं। ये प्रवासी भी

सर्वाधिक उत्पादक आयु समूह से आते हैं जिसके परिणामस्वरूप गांवों के अन्दर असमान शक्ति संरचनाओं को कोई चुनौती नहीं मिलती। अधिक धनी पृष्ठभूमि से आने वाले प्रवासी भी अच्छा करते हैं। इन तथ्यों से यही सुनिश्चित होता है कि प्रवासन विषमता को बढ़ावा देता है।

विभिन्न प्रकार के प्रवासों के विस्तार के आधार पर और विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भों में जिसके अन्तर्गत प्रवासन घटित होता है; विषमता पर इसके प्रभाव के बारे में कोई अति महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल पाना कठिन है। वास्तव में ऐसे दोनों उदाहरण मिल सकते हैं जिसमें देखा जा सके कि प्रवासन विषमता को बढ़ाता और घटाता भी है। दरअसल विषमता को ही व्यापक संदर्भों में पारिभाषित करने की जरूरत है बजाय साधारण रूप से आय और धन की विषमता को एकमात्र आधार मानने के। विषमता भी गरीबी की तरह बहु-आयामी है और इसे भी व्यक्तिगत, पारिवारिक, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर मापा जा सकता है। विषमता के सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम तो हैं ही साथ ही शक्ति साधनों तक पहुंच में भी विषमताएं हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि विषमता के सभी पहलू उच्च रूप से जेंडरीकृत हैं। दूसरे शब्दों में विषमता विभिन्न प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा निभाई गई भूमिका है, क्योंकि ये सभी प्रायः उन तरीकों के लिए उत्तरदायी हैं जिससे समाजों के अन्तर्गत धन, शक्ति और अवसर का वितरण किया जाता है।

स्पष्ट रूप से विषमता प्रवासन का एक प्रमुख प्रचालक (driver) है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन वैश्विक असमानता का एक शक्तिशाली प्रतीक है चाहे वह मजदूरियों, श्रम बाजार के अवसरों या जीवन शैलियों के मामले में ही हो। लाखों लाख मजदूर और उनके परिवार वाले सीमाओं और महाद्वीपों के आर-पार उस स्थिति की तलाश में आवागमन करते हैं, जो उनकी अपनी स्थिति और अन्य दूसरे अपेक्षाकृत धनी देशों में उनके समान मजदूरों की स्थिति में अंतर को कुछ कम कर सके। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार 2005 में कुल 19.10 करोड़ अंतर्राष्ट्रीय प्रवासी थे जो बढ़ते हुए अनुपात में दुनिया के अधिक विकसित क्षेत्रों में संकेन्द्रित थे। इसी प्रकार अपेक्षाकृत गरीब देशों में आन्तरिक प्रवासन चाहे वह स्थायी, अस्थायी या मौसमी हो, दरअसल उन स्थानों के बीच अवसर की वास्तविक असमानता को प्रदर्शित करता है। यह असमानता सिर्फ भेजने वाले और अभिग्राही क्षेत्रों के बीच नहीं होती, जो प्रवासन को प्रोत्साहित करती है। भेजने वाले क्षेत्रों के अन्तर्गत असमानता भी प्रवासन को जन्म दे सकती है, क्योंकि अधिक असमान गांव, अपेक्षाकृत कम असमान गांवों की अपेक्षा अधिक प्रवासियों को पैदा करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

अब हम प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंधों का परीक्षण करेंगे। वास्तव में प्रवासन अपने आप में परिवर्तन है और बदले में यह आगे भी भेजने वाले तथा ग्रहण करने वाले दोनों समाजों में रूपांतरण करता है। यहां पर हम इस विश्लेषण के क्षेत्र को राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार होने वाले प्रवासन तक सीमित रखेंगे यद्यपि नीचे आने वाले कई बिन्दु लम्बी दूरी वाले घरेलू आवागमनों पर भी लागू हो सकते हैं। परिवर्तन के एक स्वरूप के रूप में, अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन को भेजने वाले और अभिग्राही – दोनों देशों में कारणों के एक विविध सेटों के परिणामों के रूप में विश्लेषित किया गया है।

विभिन्न क्षेत्रों के बीच अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन पर एकबारगी नज़र डालते हुए, पाकिस्तान और बांग्लादेश दोनों से मिलने वाले साक्ष्य यह सुझाते हैं कि विषमताएं बढ़ी हैं, क्योंकि अपेक्षाकृत धनी व्यक्तियों और गांवों जिनकी पहुंच लम्बी दूरी के प्रवासन तक अधिक थी उन्होंने गरीब क्षेत्रों की अपेक्षा अपनी स्थिति को अधिक समृद्ध किया है। हालाँकि बांग्लादेश के सिलहट के एक गांव तालुकपुर से ब्रिटेन को होने वाले आवागमन के मानव जाति विज्ञान संबंधी

अध्ययन (ethnographic study) में प्रवासन और विषमता के बीच संबंध के गहरे साक्ष्यों ने अधिक जटिल कहानी बयान की है। इसमें गार्डनर (2001) तर्क देते हैं कि 'विदेशों तक पहुँच बढ़ते हुए रूप में ऐसा केन्द्र बन गया जिसके आसपास विषमताएं जुटती गईं। इसने न केवल उन्हें पैदा करने में सहायता दी बल्कि उनके बारे में सोचना भी उसके लिए एक रूपक बन गया है।' उनकी चर्चाएं न सिर्फ आर्थिक विषमताओं से संबंधित करती हैं बल्कि व्यापक तौर पर सामाजिक और सांस्कृतिक अंतरालों से भी प्रवासन को जोड़ती हैं और यह भी कि प्रवासन, विश्लेषणात्मक रूप से स्थिति और ताकत के स्पष्ट उपायों में से एक बनता जा रहा है। फिर भी यद्यपि अपेक्षाकृत धनी परिवारों और अधिक गरीब परिवारों के बीच असमानता बढ़ गई लेकिन यह सबसे धनी – वह कुलीन वर्ग जो शक्ति वाले पदों पर आसीन हैं– और तमाम अपेक्षाकृत गरीब परिवारों – जो पहले प्रायः इस कुलीन वर्ग पर आर्थिक और सामाजिक सहायता के लिए निर्भर रहते थे, लेकिन अब बहुत अच्छे हो चुके हैं, के बीच यह कम हुआ है।

इसके लिए एक कारण यह है कि मूलतः तालुकपुर से प्रवास करने वाले किसी भी तरह सबसे धनी नहीं थे– बल्कि वास्तव में कुछ तो भूमिहीन तक थे, क्योंकि परम्परागत तौर पर भूमि को ग्रामीण बांग्लादेश में धन के प्रमुख संकेतक के तौर पर देखा जाता रहा है। व्यवहार में, तालुकपुर में प्रवासन अपने साथ भूस्वामित्व में उल्लेखनीय परिवर्तनों को लेकर आया। जो लोग पहले से भूमि पर अधिकार रखते थे वे प्रायः और अधिक खेत पर कब्जा कर लिए और छोटे से बड़े भूस्वामी बन गए, जबकि जो लोग बिल्कुल भूमिहीन थे उनमें से कुछ किसी तरह गांव के सबसे समृद्ध परिवारों की स्थिति में स्वयं को लाने में सफल हो गए। इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन तक पहुंच, विशेषकर लंदन तक पहुंच, इस तरह के सामाजिक और आर्थिक ताकत के परिणाम में भूस्वामित्व के रूप में सामने आया। प्रवासन, साधारण तौर पर सिर्फ पैसे की बजाय, विदेश से आने वाले धन के रूप में और भी बहुत कुछ लेकर आया; अपने साथ यह 'सांस्कृतिक पूँजी' और सामाजिक प्रतिष्ठा लेकर आया। बदले में, विदेश से आने वाले धन को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ताकत पर व्यापक प्रभाव के साथ जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी प्रवेश मिला। वास्तव में, अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मुद्रास्फीति (श्रम, वस्तु और तकनीकी) ने भूमि के छोटे टुकड़ों को आर्थिक रूप से जीवनयापन के लिए कठिन बना दिया है।

बांग्लादेश में जैसा कि अन्य जगहों पर, तमाम सिलहटियों ने अपनी भूमि खो दी और यह परिघटना 'लंडोनी गांवों' में ज्यादा तीव्र रही। फिर भी जैसा कि प्रवासियों और गैर-प्रवासियों के बीच ध्रुवीकरण बढ़ता है, वह स्पष्ट तौर पर आर्थिक स्थिति (economic position) और पदस्थिति वर्गीकरण (status classification) के बीच सुसंगत ढंग से प्रतीत नहीं होता। गांव में प्रवासी और गैर-प्रवासी परिवारों के बीच प्रमुख अंतर – सहज रूप से दिखाई देने वाले विदेशी वस्तुओं का उपभोग था, जो गार्डनर के अनुसार 'सहायता और विदेश से आने वाले धन पर देश की आर्थिक निर्भरता और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के आधिपत्यशील ताकत को प्रदर्शित करता है।' इस ताकत के कुछ भाग पर दावा करते हुए प्रवासी अनिच्छापूर्वक या अनजाने में ही उस वृहत्तर विषमताओं की ओर इशारा करते हैं जो हमारी दुनिया की संरचना करता है।

अन्तर-ग्रामीण विषमताओं के अतिरिक्त, सिलहट में प्रवासी और गैर-प्रवासी गांवों के बीच बढ़ती विषमताओं के बारे में भी कुछ अवलोकन किए जा सकते हैं। विशेष रूप से, जिन गांवों ने उच्च स्तर पर 'लंडनी' प्रवासन का अनुभव किया है अब आश्चर्यजनक रूप से अलग हैं। वहां सभी मकान पत्थरों के बने हुए हैं, कभी-कभी तो दो या तीन मंजिले ऊंचे हैं और बाकी ग्रामीण बांग्लादेश के अधिकतर भागों की गरीबी के विपरीत विस्तीर्ण भौतिक

समृद्धि का प्रदर्शन कर रहे हैं। गांवों के बीच बढ़ती हुई विषमता का एक दूसरा स्पष्ट संकेत शिक्षा है, जैसा कि तालुकपुर में 'आधुनिक' शिक्षा प्रतिष्ठा का प्रमुख संकेत हैं और गांव में साक्षरता का स्तर अपेक्षाकृत बहुत अधिक है– पुरुषों के लिए राष्ट्रीय औसत से दोगुने से भी अधिक और महिलाओं के लिए राष्ट्रीय औसत से डेढ़ गुना– मुख्यतः प्रवासी परिवारों के बढ़े हुए धन के परिणामस्वरूप है। खाड़ी के देशों की ओर बढ़ता हुआ अस्थायी प्रवासन का भी विषमता पर समान प्रभाव है क्योंकि व्यापक तौर पर गरीब लोग इस प्रकार के प्रवासों से बाहर ही हैं।

अगर केरल की ओर नज़र डालें तो अपेक्षाकृत एक अलग शोध परियोजना– *केरल प्रवासन अध्ययन*– भी अंतर्राष्ट्रीय और आंतरिक प्रवासन और भेजने वाले क्षेत्रों में विषमता के बीच संबंध के विभिन्न पहलुओं पर काफी साक्ष्य प्रदान करती है। 1998 में आयोजित 10,000 परिवारों पर प्रतिदर्श सर्वेक्षण (sample survey) पर आधारित, यह इस क्षेत्र में अपनी तरह का सम्भवतः सबसे बड़ा अध्ययन है। यह दिखलाता है कि केरल ने प्रवासन में बड़े पैमाने पर वृद्धि का अनुभव किया, जो राज्य में सर्वाधिक समृद्ध 'उद्योगों' में से बन चुका है। लेखकों (जकारिया, मैथ्यू और राजन, 2000) का दृढ़ता से कहना है कि 'केरल में किसी और कारक की अपेक्षा प्रवासन ने गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी में कमी लाने में अधिक योगदान दिया है।' इसने गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की संख्या में 12 प्रतिशत की कमी लाई है और बेरोजगारी दर 30 प्रतिशत की दर से गिरा है। इसके समर्थन में कुछ बातें इस तथ्य से भी आती हैं कि 1998 में विदेश से आने वाला धन राज्य की कुल जीडीपी के 10 प्रतिशत के बराबर था, जो राज्य द्वारा केन्द्र से बजट सहायता के रूप में पाए धन का भी दोगुना था और राज्य के दो प्रमुख उद्योगों– समुद्री भोजन और मसालों के सम्मिलित निर्यात से भी अधिक था।

केरल प्रवासन अध्ययन (Kerala Migration Study), गैर-प्रवासी परिवारों, भारत में रह गए अन्तर-राज्य प्रवासियों और अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों, जिनमें से अधिकांश खाड़ी देशों में चले गए, के बीच अवसरों और जीवनयापन के स्तरों में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अन्य मामलों के समान यह दिखलाता है कि प्रवासन भी सामान्यतया नौजवान, शिक्षित पुरुषों के प्रति चयनात्मक रहा है यद्यपि उत्प्रवासियों और अन्तर-राज्यीय प्रवासी प्रवाहों दोनों में महिलाओं का अनुपात बढ़ता हुआ पाया गया। मजे की बात यह है कि यह ऐसे प्रवासन पैटर्न को प्रदर्शित करता है जो विभिन्न धार्मिक और नृजातीय समुदायों के बीच उल्लेखनीय रूप से अंतर करता है– और इस तरह खाड़ी देशों की ओर प्रवास करने वालों में मुस्लिमों की संभावना औसत की अपेक्षा दोगुना होता है जबकि भारत के अन्तर्गत ही प्रवास करने में सीरियाई ईसाइयों की संभावना दोगुनी होती है। इसके विपरीत, अनुसूचित जातियों से दोनों ही जगहों प्रवास करने वालों की संभावना बहुत कम है। इसी तरह यद्यपि स्नातकधारी, गैर स्नातकों से अधिक संभावी प्रवासी हैं परन्तु जिनके पिता शिक्षित हैं उनमें इसका ठीक उल्टा भी सत्य है।

दुर्भाग्य से यह अध्ययन हमें परिवर्तित होते आर्थिक विषमताओं पर प्रत्यक्ष रूप से देखने की सलाहियत नहीं देता क्योंकि प्रवासन से पहले प्रवासियों और प्रवासी परिवारों के आर्थिक हालात के बारे में कुछ दर्ज ही नहीं किया गया है। हालाँकि अध्ययन यह दिखलाता है कि जिन्होंने प्रवास कर लिया वे उनकी अपेक्षा अधिक अच्छा कर सके जिन्होंने प्रवास नहीं किया। उदाहरण के लिए, प्रवासी परिवारों में खाद्य पदार्थों के उपभोग का स्तर उच्चतर था, उनके पास बिजली होने की, अपनी भूमि होने की और भूमि सुधार में निवेश करने की संभावना अधिक थी, और निजी अस्पतालों में इलाज करवाने की संभावना भी अधिक थी। हालाँकि, प्रति व्यक्ति विदेश से आने वाले धन से विस्थापन से पूर्व प्रवासियों के शैक्षणिक

स्तर का अनुगमन करते हुए प्रतीत होता है, जिसका निष्कर्ष यह है कि सर्वाधिक शिक्षित व्यक्ति घर पर सबसे अधिक राशि भेजता है। यह बात सीरियाई ईसाइयों के आंतरिक प्रवासियों में अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होती है जिनमें खाड़ी देशों की ओर प्रवास करने वाले मुस्लिमों, जिनका शैक्षणिक स्तर कमतर थे, की अपेक्षा बेहतर शिक्षित होने की प्रवृत्ति थी।

2.4 भारत में मौसमी श्रमिक प्रवासन और विषमता

आगे उल्लिखित केस स्टडी, पश्चिम बंगाल और पश्चिमी भारत में आंतरिक प्रवासों के बारे में हाल में हुए अध्ययनों से जटिल और कुछ मामलों में परस्पर विरोधी कहानी सामने आने पर चिंता प्रकट करती है। **पश्चिम बंगाल में** मौसमी श्रमिक प्रवासन के संबंध में यह पाया गया कि 'कुल मिलाकर श्रम बाजार के इस हिस्से की कार्यप्रणाली नियोजकों के रूप में विषमता बढ़ाने की संभावना वाली होती है' अधिक-संग्रहकारी उत्पादन को सुविधा प्रदान करती है– विशेष रूप से बड़े स्तर के नियोजकों का जबकि अधिकांश प्रवासी मजदूर उसी स्थान पर बने रहने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं।' बाहर से आने वाला धन विषमता बढ़ाने– विशेष रूप से भूमिहीन परिवारों के लिए – के संदर्भ में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उल्लेखनीय है कि ऐसे बहुत ही कम मामले हैं जिसमें मौसमी प्रवासन ने किसी व्यक्ति विशेष को उपरि आर्थिक गतिशीलता की ओर बढ़ाया हो। विशेष तौर पर मुर्शिदाबाद जिले में, पुरुष साधारणतया अयाचित तरीके से गमन करते हैं और किसी नियोजक के साथ बिना किसी पूर्व समझौते के भी – और इस तरह वे बड़ी अनिश्चितता का सामना करते हैं। लगभग सभी प्रवासी परिवार बाहर से आने वाले नकद धन का उपयोग भोजन और कर्ज चुकाने में करते हैं। मौसमी प्रवासी मजदूर, जब काम के लिए बाहर जाते हैं तो एक तरह से स्वास्थ्य सेवाओं के सरकारी प्रावधानों और शिक्षा से बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। जीवन की स्थितियों और कार्य की तीव्रता तथा प्रकृति को मिलाकर एक साथ देखने से अर्थ निकलता है कि प्रवासियों का स्वास्थ्य उनसे अधिक खराब होता है जो पीछे वहीं रह जाते हैं।

हालांकि पश्चिम बंगाल में इस स्वरूप वाले मौसमी प्रवासन ने भी श्रम बाजार में प्रवासियों की समग्र ताकत को बढ़ाया और लम्बे समय से अनछुए ताकत के संबंधों को स्वयं श्रमिकों के पक्ष में परिवर्तित किया। उदाहरण के लिए, पुरुलिया जिले में जमींदार और श्रमिक वर्गों के बीच संबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। खेतिहर और अन्य मजदूरों के लिए मौसमी रूप से बाहर प्रवास करने के लिए बढ़े हुए अवसरों ने इन मजदूरों द्वारा आजीविका के विविधीकरण में बहुत योगदान दिया और परिणामस्वरूप जमींदार वर्ग के प्रति उनकी मजबूरियों को कम किया। एक परिणाम यह भी हुआ कि खेती के लिए व्यस्ततम समय में मजदूरों की कमी हो गई, जिससे क्षेत्र में जमींदार और मजदूरों के बीच होने वाली संविदाओं में मजदूरों के लिए लाभदायक परिवर्तन किए गए। इस श्रमिक बाजार समायोजन ने मजदूरों के लिए उनके नियोजकों को लेकर अधिक विकल्प दिए परिणामस्वरूप उन्हें अधिक लाभ पाने या उच्चतर मजदूरी पाने के लिए ज्यादा शक्ति मिल गई।

इसके विपरीत पश्चिमी भारत में, इस प्रकार के मजदूरों के विकल्प के अवसर बहुत ही सीमित रहे क्योंकि नियोजक प्रायः संगठित होकर कार्य करते थे। दक्षिण गुजरात के बारदोली तालुका के मामले में जहां गन्ना उत्पादक नियोजकों ने 'अत्यधिक संगठित भर्ती प्रक्रिया' बनाए रखी, मजदूरों द्वारा व्युत्पन्न लाभों की सीमा बहुत कमतर रही। इस दौरान जनजातीय पश्चिमी भारत में भील प्रवासी परिवारों के एक छोटे अल्पसंख्यक समूह के लिए यही बात बचत, निवेश और आकस्मिकताओं को पूरा करने के तौर पर लाभ ही लाभ की

रही। लेकिन दूसरी ओर बहुसंख्यक गरीबों के लिए प्रवासन फिर से एक बार रक्षात्मक समायोजन की रणनीति बना जो साधारण तौर पर उन्हें चरम आर्थिक सुभेद्यता (economic vulnerability) से लड़ने की सलाहियत प्रदान करती है। भील गांवों का समान रूप से गरीब रूप-रंग का दिखावा उनके बीच धन, पदस्थिति और ताकत के महत्वपूर्ण अंतरों को छिपा लेता है जो संगठन पर एक तरह से देनदारी की तरह होता है और मजदूरों के मौसमी प्रवासन का सीधा परिणाम होता है।

इस क्षेत्र में प्रवासन की सफलता, भर्ती करने वाले नेटवर्क तक पहुंच या भाई-भतीजावाद तक पहुंच पर अत्यधिक निर्भर करती है और बिना इन नेटवर्क के प्रवासी लोग प्रायः अत्यल्प मजदूरी, कमतर विश्वसनीयता वाले काम कर पाते हैं और शोषण हेतु सर्वाधिक सुभेद्य स्थिति में होते हैं। वास्तव में अधिक साधारण रूप में यहां भर्ती तंत्र (system of recruitment) कर्ज और निर्भरता को बहुत बढ़ा देता है और अधिकांश प्रवासियों को उनके कर्ज से बाहर निकलने के अतिरिक्त कहीं और काम करने से रोक देता है। इस संदर्भ में, ठीक उतने ही समय तक काम करने वाले भील प्रवासी बहुत ही अलग परिणामों पर पहुंच जाते हैं। अधिकांश मजदूरों के लिए कई वर्षों तक मौसमी प्रवास के बावजूद उनकी संपत्तियों में कोई दीर्घावधि वृद्धि नहीं होती और न ही उनकी गरीबी में कोई कमी आती है।

यदि प्रवासी बहुत लम्बे समय तक अपने जन्मस्थान या स्थायी गांव से अनुपस्थित रहे और गांव के महत्वपूर्ण घटनाओं में भाग लेने में असफल रहे तो प्रवासन, विभिन्न प्रकार की सामाजिक स्थितियों और पदस्थितियों से हानि के रूप में भी आगे ले जाता है। यह स्थिति कर्ज और सामाजिक समूहों से बहिष्करण को भी बढ़ावा देता है। हालांकि कुछ थोड़े मामलों में प्रवासन एक परिवार की आय क्षमता और कर्ज पाने की उसकी योग्यता को बढ़ा सकता है और उन्हें मशीनरी, भूमि या सामाजिक समूहों में निवेश करने की छूट देता है जिससे उसकी सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। बहुत ही कम परिवारों के लिए प्रवासन ऊपर की ओर गतिशीलता के साधन प्रदान करता है और कुछ परिवारों के लिए वृहत्तर आजीविका सुरक्षा (greater livelihood security) प्रदान करता है। रिपोर्ट कहती है कि प्रवासन उन श्रमिकों की स्थिति को मजबूत करता है जो विशेष रूप से समूह के नेता और 'भरती करने वाले' (सगे संबंधियों की मंडली के माध्यम से) बन सकें।

पश्चिम बंगाल में ग्रामीण–ग्रामीण प्रवासन और पश्चिमी भारत में ग्रामीण–शहरी प्रवासन के दो अध्ययनों के बीच विषमता के संदर्भ में अलग-अलग परिणाम मिलने के दरअसल बहुतेरे कारण हैं। पश्चिम बंगाल में प्रवासी लोग श्रमिक भरती वाले क्षेत्रों में समूहों में यात्रा कर सके जहां नियोजक और मजदूर इकट्ठा होते हैं और फिर मजदूरी तथा अन्य लाभों पर सौदेबाजी संभव होती है। यदि प्रवासी इस मामले में भाग्यशाली रहें और किसी ऐसे दिन वहां आएं जब नियोक्ताओं की संख्या अधिक हो परन्तु मजदूरों की कम तो मजदूरों की सौदेबाजी की ताकत एकाएक बहुत बढ़ जाती है। वास्तव में ऐसे भी मामले होते हैं जब प्रवासी मजदूर किसी काम को छोड़कर भागने की धमकी देते हैं या फिर काम छोड़कर निकल जाते हैं जिसका एक अर्थ यह भी होता है कि वहां वैकल्पिक अवसर भी उपलब्ध हो सकते हैं।

इसके विपरीत, पश्चिमी भारत में जनजातियों के लिए मौसमी प्रवासन ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर होता है। शहरी अनौपचारिक श्रम बाजार के अन्तर्गत काम 'नृजातीय' (ethnic) प्रकार में अत्यधिक विभेदित होता है और भील लोग इस सुस्पष्ट रोजगार क्षेत्र में कब्जा कर लेते हैं जो अल्प वेतन वाला और अकुशल काम वाला होता है। वे लोग स्पष्टतया दूसरे श्रम बाजारों में प्रतियोगिता करने में अनिच्छुक या अयोग्य होते हैं और उसकी बजाय अपने गांवों

से सीधे भरती कर लिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में, पश्चिम बंगाल के मामले की अपेक्षा यहां पास पड़ोस और रिश्तेदारों का नेटवर्क बड़ी मात्रा में रोजगार की संरचना में शामिल होते हैं और यह तथ्य नियोजकों के बीच प्रतियोगिता को कम करता है और मजदूरी को कमतर रखता है। यह गतिशीलता के अवसर को भी खत्म कर देता है जो पश्चिम बंगाल वाले मामले में दिखता है और नियोजकों के लिए विचारपूर्वक चयनित, जिम्मेदार और सहजता से निर्भर कार्यबल सुनिश्चित करता है।

पश्चिम बंगाल के श्रम बाजार में मजदूर लोग जिस हद तक विकल्पों को अपना सकते थे वह पश्चिमी भारत जैसे सामाजिक और आर्थिक रूप से निर्भर कार्यबल वाले संरचित आकस्मिक श्रम बाजार (structured casual labour market) में संभव नहीं थी। इस प्रकार पश्चिम बंगाल से भिन्न भील प्रवासियों के लिए अनियत दिहाड़ी मजदूरों की उच्च मांग भी उनके मजबूत सौदेबाजी वाली शक्ति में नहीं बदल सकी। इसका अर्थ है कि इस बात की भी कम ही संभावना है कि स्वयं प्रवासन में मजदूरों के उद्धारकर्ता वाला प्रभाव भी हो सकता है। इसके विपरीत मोस्से तर्क देती हैं कि 'प्रवासन के माध्यम से ये मजदूर एक ऐसी दुनिया में चले जाते हैं जिसमें वर्गीकृत भेदभाव (भील/गैर–भील; जनजातीय/गैर-जनजातीय) अधिक तीव्रता से महसूस की जाती है, उसे सामान्यीकृत किया जाता है और बढ़ाया भी जाता है; एक ऐसी दुनिया जिसमें गरीबी की संस्कृति को *जातिगत* (जाति/'नृजातीय') भेदभाव की तरह नए रूप में अनुभूत किया जाता है।'

बॉक्स सं. 2.1

पश्चिम भारत के मामले में महसूस होता है कि प्रवासन ने भील महिलाओं के उत्थान के लिए बहुत ही थोड़ा काम किया। जेंडर संरचनाओं की प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बने रहने की थी और महिलाएं सवेतन मजदूरी के साथ-साथ घरेलू भूमिका में बनी रहीं। श्रमिक प्रवासन में महिलाओं और वृद्ध लोगों की भागीदारी सीमित होती है और प्रवासियों की आय पर बढ़ी हुई निर्भरता परिवारों में पुरुष सत्ता को बढ़ाती है, क्योंकि पुरुषों पर नकद और स्वास्थ्य देखभाल के लिए निर्भरता बढ़ जाती है। इस मामले में प्रवासन जेंडर विषमताओं को बढ़ा सकती है।

ऐसी परिस्थिति में भरती करने वालों और उनके सगे संबंधियों से संबंध अति महत्वपूर्ण होता है और मजदूरों की भरती प्रक्रिया आय तक असमान पहुंच को सुनिश्चित कर सकती है। जिनके पास नियमित काम पाने के लिए स्थिर संबंध या नेटवर्क नहीं होते, उन्हें सर्वाधिक अनियत और सबसे कम वेतन वाले कार्यों में धकेल दिया जाता है। और ऐसे नेटवर्क के बिना प्रवासियों के पास जीवन की व्यवस्थाएं करने में समस्याएं भी आ जाएंगी, वे धमकियों के प्रति अधिक सुभेद्य भी हो जाते है और उन्हें कम वेतन मिलता है या बिल्कुल भी वेतन नहीं मिलता और अंततः वे अलगाव और अकेलेपन के शिकार हो जाते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) प्रवासियों के मध्य विषमता से आप क्या समझते हैं?

2) मौसमी श्रमिक प्रवासन और विषमता की सुस्पष्ट विशेषताओं को लिखिए।

3) भारत से ऐसे उदाहरण दीजिए जहां से लोग विषमता के चलते प्रवसित हुए हैं।

अब हम प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध के बारे में चर्चा करेंगे।

2.5 प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन के कारण के रूप में प्रवासन को एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है जो मूल्य/मानदण्ड रूपांतरण के लिए इसकी संभाव्यता पर जोर देता है और दूसरे संरचनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है जो इसके जनांकिकीय और आर्थिक महत्व को रेखांकित करता है। परिवर्तन का अध्ययन, विषय क्षेत्र के आधार पर बदलता रहता है जैसे कि व्यक्तियों और परिवारों के सूक्ष्म स्तर (micro-level) पर केन्द्रित रहते हुए; समुदायों और क्षेत्रों के मध्यम स्तर (meso-level) पर; और राष्ट्र–राज्य और वैश्विक अर्थव्यवस्था के स्थूल स्तर (macro-level) पर केन्द्रित रहते हुए। जैसे विश्लेषण का विषय क्षेत्र परिवर्तित होता है, ठीक उसी तरह प्रवासन के चलते परिवर्तन की प्रक्रियाओं की गहराई भी परिवर्तित होती है। साधारण रूप से प्रभाव सिर्फ समाज के ऊपरी सतह को छू सकते हैं या शक्ति के वितरण का रूपांतरण करते हुए सामाजिक संरचना में हेरफेर कर सकते हैं। ऐसे गम्भीर रूपांतरण शुद्ध रूप से वही हैं जिससे अभिग्राही समाजों में प्रवासन के विरोधी डरते हैं और परम्परागत तौर पर जिसके विरुद्ध निंदा करते हैं।

परिवर्तन को लाने के लिए प्रवासन की शक्ति या तो भेजने वाले या अभिग्राही क्षेत्रों और देशों में तीन प्रमुख कारकों पर निर्भर करती है:

अ) प्रवासन में भागीदार संख्या;

ब) आवागमन की अवधि;

स) इसका वर्ग संघटन।

यदि प्रथम कारक पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट है कि छोटे विस्थापनों की बहुत थोड़ी कारणात्मक शक्ति होती है, जो कदाचित ही प्रवासन में भागीदार लोगों और उनके निकट संबंधियों से बाहर कहीं असर डालती हो।

अमेरिका और यूरोप में आज, आप्रवासन (immigration) के विरोधियों द्वारा अभिव्यक्त किया गया भय प्रवासन को सामान्यतया इस तरह चित्रित करता है कि जैसे गरीब देशों से उभरते हुए लोग पूरी दुनिया में और खासतौर से विकसित दुनिया की सामाजिक प्रणाली और संस्कृति को कुचल डालेंगे। ऐसे भयों को सीधे तौर पर संख्याओं के आंकड़ों के बल पर खारिज कर दिया जाता है– 6 अरब की धरती पर मुश्किल से 20 करोड़ प्रवासी हैं और उनमें भी उन्नत देशों में जाने वाले अल्पसंख्यक ही हैं। दूसरी ओर इसे अभिग्राही समाजों की तीव्र परिवर्तन से अपने को बचा लेने की क्षमता के बल पर भी इसे खारिज किया जा सकता है। दूसरे कारक पर ध्यान देते हुए कहा जा सकता है कि स्थायी विस्थापनों की अपेक्षा छोटी समयावधियों का वर्तुल प्रवाह (circular flow) कम टिकाऊ परिवर्तन को उत्पन्न करने की ओर प्रवृत्त होता है। कुछ शर्तों के अधीन, वर्तुल आवागमन (cyclic movement) वर्तमान सामाजिक संरचनाओं को बदलने की अपेक्षा उन्हें ही प्रबलित कर सकती हैं। ऐसा घटित हो सकता है, उदाहरण के लिए जब प्रवासी मजदूरों की आय घर पर ग्रामीण उत्पादक संरचनाओं के विकास को सहारा देती है तो यह उनकी लम्बी अवधि की व्यवहार्यता को भी मजबूत करती है। ठीक इसी प्रकार 1960 के दशक और 1970 के दशकों में पश्चिमी यूरोप में हुए अस्थायी श्रमिक प्रवासन ने इसके आर्थिक विस्तार को महत्वपूर्ण ढंग से सहायता दी थी– वह भी यूरोपीय सामाजिक संरचनाओं या संस्कृतियों में बिना अधिक क्षति पहुंचाए– जब तक कि उस कार्यक्रम के अनिवार्य अन्त ने अस्थायी कामगारों को स्थायी प्रवासियों में नहीं बदल दिया।

स्थायी बाह्य-प्रवासन (permanent out-migration) भेजने वाले समाजों की जनांकिकीय संरचना को महत्वपूर्ण ढंग से पलट सकती है, जैसे कि जब पूरा क्षेत्र ही अनिवेषित रह जाए। स्थायी प्रवासियों का भी भेजने वाले क्षेत्रों पर अधिक मजबूत प्रभाव हो सकता है। स्थायी प्रवासी स्थानीय उत्पादन प्रणालियों को कमजोर करते हुए और संस्कृति को बाह्य-प्रवासन की दिशा में इस तरह परिवर्तित कर सकते हैं कि ऊपर की ओर गतिशीलता के लिए एकमात्र मानक रास्ता वही हो, जो प्रवासियों ने अपनाया। किसी भी आकार का एक बसे हुए स्थायी आप्रवासी जनसंख्या (permanent immigrant population) के पास भी मेजबान समाजों की संस्कृति और सामाजिक संरचना में वृहत्तर प्रभाव हो सकता है, जैसे कि तुर्कों, मोरक्को वासियों और अल्जीरिया वासियों का पश्चिमी यूरोप में वर्तुल प्रवासन से स्थायी आप्रवासन में रूपांतरण से और अमेरिकी-मेक्सिकन सीमा के आर पार होने वाले आवर्ती श्रमिक प्रवासन (cyclical labour migration) का अंत हो जाने से बिल्कुल स्पष्ट है; जिसने अमेरिका में स्थायी अनाधिकृत प्रवासी जनसंख्या (permanent unauthorised migrant population) के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

प्रवासियों के प्रवाह का संघटन भी प्रवासन के परिवर्तन सामर्थ्य को अनपेक्षित तरीकों से प्रभावित करता है। कोई तर्क दे सकता है कि उच्चतर मानव पूँजी (higher human capital) से लैस व्यक्तियों से संघटित आवागमनों का, अपने को अभिव्यक्त करने और अपने सांस्कृतिक लक्षणों को संरक्षित करने की ऐसे प्रवासियों की वृहत्तर क्षमता के चलते, अभिग्राही समाजों पर वृहत्तर प्रभाव हो सकता है। वास्तव में इसका विपरीत भी घटित होने को प्रवष्त्त होता है क्योंकि शिक्षित प्रवासियों में वृहत्तर नम्यता और अभिग्राही संस्कृति को अंगीकृत करने की वृहत्तर क्षमता होती है, क्योंकि वे प्रायः इनकी भाषा में धारा प्रवाह होते हैं। वृहत्तर मानव पूंजी श्रम बाजार में बेहतर अवसरों और अभिग्राही समाज के आर्थिक

मुख्यधारा में आसान प्रवेश के रूप में रूपायित होता है। इसके विपरीत, कमतर शिक्षित कामगारों से संघटित प्रवाहों में मेजबान भाषा और संस्कृति और प्रवृत्ति के प्रति प्रारम्भिक अनजानेपन के चलते, विशेषकर ग्रामीण मूल से आने वाले प्रवासियों के मध्य जो अपने प्रथाओं से बहुत गहराई से जुड़े होते हैं, अधिक स्थायी प्रभाव हो सकता है। प्रवासी मजदूरों का विशालकाय प्रवाह प्रत्यक्ष सांस्कृतिक-भाषायी संकेन्द्रणों (cultural-linguistic concentrations) को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति रखता है सामान्यतया मेजबान समाजों के हाशिए वाले क्षेत्रों में। ऐसी 'बस्तियां' (ghettos) देशी लोगों के प्राकृतिक लक्ष्य बनते रहते हैं जो उन्हें प्रवासियों के घटिया सांस्कृतिक या जैविक प्रतिभा के मूर्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

अंततः, ऐसे प्रवाह जो वर्ग-विविध (class-diverse) होते हैं जिसमें उच्च और निम्न दोनों मानव पूंजी प्रवासी शामिल होते हैं, अभिग्राही देशों में संस्थागत रूप से पूर्ण नृजातीय अन्तःक्षेत्रों (ethnic enclaves) की वृद्धि की संभावना रखते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि कुशल आप्रवासी अपने सह-नृजातियों (co-ethnic) की बड़ी संख्या का उपयोग करते हुए ऐसे उद्यम स्थापित करने में सक्षम होते हैं जो बाजार और श्रम का स्रोत दोनों हो; बदले में इन नृजातीय उद्यमों (ethnic enterprises) में कमतर शिक्षित आप्रवासी रोजगार अवसरों का वैकल्पिक स्रोत पा जाते हैं और यहां तक कि छोटे व्यावसायिक प्रबंधन के गुर सीखने के लिए एक ''प्रशिक्षण मशीनरी (training mechanism)''।

संस्थागत रूप से पूर्ण अन्तःक्षेत्र, प्रवासन द्वारा मेजबान समाजों पर काढ़े गए परिवर्तन के सर्वाधिक स्पष्ट स्वरूपों का प्रतिनिधित्व करता है। हालाँकि ऐसी रचनाओं की अवधि महत्वपूर्ण ढंग से भिन्न-भिन्न होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में उनकी प्रवृत्ति दो या तीन पीढ़ियों से अधिक की नहीं होती क्योंकि आप्रवासी उद्यमियों (immigrant enterpreneurs) की सफलता उनकी संततियों को मेजबान देश की आर्थिक मुख्यधारा में लाभ की स्थितियों की ओर धक्का दे देती हैं। जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों में कुछ लेखाओं के अनुसार, आप्रवासी अन्तःक्षेत्र कुछ अधिक लम्बी अवधि तक चलते प्रतीत होते हैं।

बॉक्स सं. 2.2

सबसे पहली आद्यप्ररूपीय अन्तःक्षेत्र (archetypical enclave) जारकालीन रूस से निकाले गए यहूदियों द्वारा न्यूयार्क शहर में निर्मित किया गया था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लगभग 20 लाख रूसी यहूदी पेल ऑफ सेटलमेंट (Pale of Settlement) से अमेरिका प्रवसित हुए थे। पेल ऑफ सेटलमेंट में उन्हें जार शासन द्वारा बंदी बनाकर रखा गया था, जहां वे बारम्बार होने वाली सामूहिक हत्याओं के दहशत में जी रहे थे। उस समय के इटालियन और अन्य प्रवासी मजदूरों से भिन्न रूसी यहूदी वर्ग-विविध थे। उनके बीच भी कुशल कलाकार और व्यापारी बहुतायत से थे और उन्होंने अपने को व्यवसाय में स्थापित करने के लिए अपने संसाधनों का प्रयोग किया। पहले उन्होंने उदार फेरीवालों की तरह काम करना शुरू किया और धीरे-धीरे पूंजीवादी पदसोपान तक पहुंच गए। 1930 के दशक के मध्य तक, संस्थागत रूप से पूर्ण एक यहूदी अन्तःक्षेत्र निचले पूर्वी मैनहट्टन क्षेत्र में विकसित हुआ जहां धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाएं कुकरमुत्तों की तरह उग आईं। एक नृजातीय प्रेस अंग्रेजी में और एक यिद्दिस (Yiddish) में पल्लवित हुआ और जहां सूईयों का व्यापार 'महान यहूदी धंधा (great Jewish metier)' बनकर उभरा।

कुछ थोड़े से वर्षों के बाद, उस समय समृद्ध प्रवासियों के बच्चे पूर्व-तटीय विश्वविद्यालयों में धावा बोलकर प्रवेश पाने लगे और उसमें भी न्यूयार्क की सिटी यूनिवर्सिटी उनकी

शैक्षणिक और व्यावसायिक महत्वाकांक्षाओं के मुख्य केन्द्र में रहती थी। 1960 के दशक तक यहूदी निचला पूर्वी तट (Jewish Lower East Side) एक याद बनकर रह गया था परन्तु यहूदियों की तीसरी पीढ़ी के सदस्य तब तक शहर के उच्चतर व्यावसायिक और व्यवसाय पदस्थिति में अच्छे से स्थापित हो चुके थे। उनकी शिक्षा और आय ऐंग्लो-अमेरिकन सहित अन्य दूसरे नृजातीय समूहों (ethnic groups) की अपेक्षा कहीं बहुत अधिक हो चुकी थी।

एक अधिक समकालीन उदाहरण क्यूबा से मिआमी को निष्क्रमण (Cuban exodus to Miami) द्वारा मिलता है। यहूदियों की तरह क्यूबा द्वीप से बाहर होने वाला यह उत्प्रवासन (emigration) वर्ग-विविध था, जिसका नेतृत्व पुराने उच्च और मध्यम वर्ग द्वारा किया गया था जो राजनीतिक क्रांति से बचना चाहते थे। बाद में द्वीपीय जनसंख्या के निम्नतर स्तरों ने भी कुलीनों का अनुगमन किया, और सभी दक्षिण फ्लोरिडा में जाकर इकट्ठा हुए। कुछ वर्षों में एक नृजातीय अन्तःक्षेत्र ने नियंत्रण लेना शुरू कर दिया था और 1990 के दशक तक यह 72,000 क्यूबाई मालिकाना फर्मों द्वारा पुष्ट किया हुआ एक सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक संकुल के रूप में उभर चुका था। वर्ष 2000 तक 1960 के दशक और 1970 के दशक में पहुंचे क्यूबाई प्रवासियों की आय देशीय गोरे लोगों और उन क्यूबाई व्यवसाय मालिकों के बराबर हो चुकी थी जो उस क्षेत्र में सबसे ऊंचे थे। क्यूबाई निर्वासित, उस क्षेत्र में किसी अन्य नृजातीय समूह की अपेक्षा स्व-रोजगार में सबसे ऊँचे दर वाले थे। दूसरी पीढ़ी के क्यूबाई, उच्च औसत आय का प्रदर्शन करते हुए भी, व्यवसाय के मालिकाना हक में निम्नतर स्तरों पर थे, जो इस बात का संकेत था कि यहूदियों की दूसरी पीढ़ी की तरह वे लोग भी मुख्यधारा के व्यवसायों में गतिशीलता की तलाश में मूल अन्तःक्षेत्र (original enclave) को छोड़ रहे थे।

क्यूबाई लोगों की सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्थान की गति, यदि कुछ थी, तो निचले मैनहट्टन के आरम्भिक यहूदियों की अपेक्षा अधिक तेज थी। आज, मिआमी में दैनिक बोलचाल और व्यवसाय की भाषा के रूप में अंग्रेजी के साथ स्पेनिश भी जुड़ गई है। मूल मिआमी और मिआमी-डाडे काउंटी (Miami proper and Miami-Dade County) सहित सभी बड़े शहरों के मेयर क्यूबाई हैं और क्षेत्र के तीन संघीय कांग्रेसजन भी हैं; फ्लोरिडा राज्य विधायिका के लिए मिआमी के प्रतिनिधि मंडल लगभग समरूप से क्यूबाई है जिसमें भूतपूर्व निर्वासित और उनके बच्चे दोनों शामिल हैं।

अब तक पढ़े हुए को पुनर्ग्रहीत करने के लिए निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) लिखिए कि कैसे प्रवासन सामाजिक परिवर्तन पर आधारित है और बदले में यह अभिग्राही जनसंख्या के समाज को परिवर्तित करता है।

आगे आने वाले अनुभाग में हम लोग सामाजिक परिवर्तन और प्रवासन से जेंडर के अन्तर्संबंधों के बारे में पढ़ेंगे।

2.6 जेंडर, सामाजिक परिवर्तन और विषमताः एक अन्तर्सम्बंध

चूंकि हम लोग प्रवासन और विषमता के बीच संबंध पर पहले ही नज़र डाल चुके हैं, अब महिलाओं और उनके सामाजिक वातावरण पर प्रवासन के प्रभाव को समझना महत्वपूर्ण होगा। प्रवासन, विषमता की ओर ले जा सकता है या महिलाओं के लिए सामाजिक गतिशीलता की सीढ़ी में परिवर्तन ला सकता है। माइकल बी. व्हाइटफोर्ड (1978) के अनुसार प्रवासन एक मुक्तकारी प्रक्रिया (liberating process) है क्योंकि सामाजिक अवरोधों के एक स्वरूप से हटना महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को खोल देती है। यद्यपि प्रवासन, महिलाओं के लिए उनकी भौतिक और सामाजिक स्थितियों में सुधार हेतु अवसरों को उत्पन्न करके महिलाओं के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, लेकिन जब जेंडर भूमिकाओं को बदलने की बात आती है तो इसके परिणाम में बहुत सारी जटिलताएं शामिल हो जाती हैं। जैसा कि इस खण्ड की दूसरी इकाइयों में तुम पढ़ चुके हो, प्रवासन से संबंधित ग्रंथ मुख्यतया पुरुष अनुभवों पर केन्द्रित हैं और प्रवासन प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका को उपेक्षित किया गया है।

वसुधा भट्ट (2008) के अनुसार, ''तमाम गरीब प्रवासी परिवारों में प्रधान आय अर्जक होने के बावजूद महिलाओं को आश्रितों की भूमिका तक पदावनत किया गया (संयुक्त राष्ट्र 2005)। इसलिए महिला प्रवासन को समझने की अत्यधिक आवश्यकता है, न केवल गरीबी-उन्मूलन की रणनीति के तौर पर बल्कि आर्थिक विविधीकरण के माध्यम, उर्ध्वमुखी गतिशीलता और व्यक्तिगत वृद्धि और कल्याण के आवश्यक प्रवेश द्वार के तौर पर भी'' (पृष्ठ 90)।

''आर्थिक बनाम सामाजिक मीमांसा (economic vs. Social consideration)'' पर चर्चा में वसुधा भट्ट प्रवासन प्रक्रिया के जेंडर पहलू को विश्लेषित करती हैं। उन्होंने दिखलाया कि प्रवासन की संस्कृति भारत के सामाजिक तानेबाने का अपरिहार्य अंग बन चुकी है। आगे उन्होंने परिवार संरचनाओं के बिखरने और सामाजिक विषमता के गहरे होते जाने जैसे पहलुओं को भी सामने लाया। उदाहरण के लिए, ग्रामीण से शहर की ओर बाह्य-प्रवासन (out-migration) के चलते अब आगे गांवों को सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ बिन्दु के तौर पर नहीं देखा जाता बल्कि गांवों ने भी विश्वजनीनता या सार्वभौमिकता (cosmopolitan) के चरित्र को ओढ़ लिया जिसने गांव के स्तर पर पहले से चली आ रही विषमता को और गहरा किया। ग्रामीण से महानगरों की ओर प्रवासन उड़ीसा और राजस्थान जैसे राज्यों में बहुत विकट है; परिणामस्वरूप अधिक से अधिक प्रवासी मजदूर असुविधाजनक कामों में लगते गए। ऐसी परिस्थिति में महिलाओं की स्थिति बहुत सुभेद्यता की हो जाती है क्योंकि अन्य संबंधित समस्याओं के साथ ही वे यौन शोषण का भी सामना करती हैं।

ग्रन्थों का एक ऐसा निकाय भी है जो पुरुष प्रवासन और उसके परिणामस्वरूप महिलाओं के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डालता है। विकासशील देशों में होने वाले प्रवासन की एक प्रवृत्ति पुरुषों का बढ़ता हुआ प्रवासन है जो अपने परिवारों और पत्नियों को अपने पीछे घर छोड़ जाते हैं। सोनाबल देसाई और मंजिष्ठा बार्तर (2014) लिखती हैं कि पुरुष प्रवासन पर लिखी पुस्तकों ने महिलाओं पर दो वर्षों में इसके प्रभाव का विश्लेषण किया है। तमाम महिलाएँ पुरुष सदस्य की अनुपस्थिति में निर्णय निर्माण, गतिशीलता और आजीविका के विकल्प तलाशने जैसे मामलों में अधिक स्वायत्तता का अनुभव करती हैं। पुरुष प्रवासन की स्थिति ने महिलाओं की स्वायत्ता, उनके आत्मसम्मान और पतियों की अनुपस्थिति में उनकी भूमिकाओं के विस्तार को पोषित किया है। पुरुषों ने भी घरेलू जिम्मेदारियों का निर्वहन किया है। जेंडर भूमिकाओं के परस्पर विनिमय की इस प्रवृत्ति को

अस्थायी प्रवृत्ति के तौर पर देखा जाता है और केवल तभी काम करता है जब पुरुष सदस्य वस्तुतः परिवार के प्रधान की तरह कार्य करता है और साथ ही खेतिहर कार्यों के पर्यवेक्षण को शामिल करते हुए अतिरिक्त जिम्मेदारियों का निर्वहन करता है (देसाई एवं बार्टर, 2014, पृष्ठ 338)। इसके विपरीत अन्य अध्ययन महिलाओं के वित्तीय बोझ और बढ़ते हुए कार्य के बोझ पर केन्द्रित हैं। एक अध्ययन ने दिखलाया कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के धान उत्पादन क्षेत्र में पुरुष प्रवासन के चलते, अपने पतियों के हिस्से की मेहनत की पूर्ति करने के कारण महिलाओं के लिए काम का बोझ बढ़ जाने की संभावना रहती है (पेरिस उपरोक्त, 2005 देसाई और बार्टर में)।

जब बाहर से भेजा गया धन गांव में पीछे छोड़ दिए गए परिवार की आवश्यकताओं के लिए पूरा नहीं पड़ता तो परिवार में महिलाओं को अकेले आजीविका कमाने की भूमिका निभाने के लिए आगे आना पड़ता है। प्रवासन पर हुए अध्ययन सामाजिक परिवर्तन के तमाम आयामों की चर्चा करते हैं जिसमें महिलाओं का सशक्तीकरण, उनके लिए विस्तृत होते आजीविका के विकल्प, स्त्रियों के अकेलेपन का अस्वीकरण और जेंडर के आधार पर अलग किए गए भूमिकाओं में आंशिक बदलाव आदि शामिल रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन और प्रवासन के संदर्भ में न केवल स्त्रियों के प्रवासन पर केन्द्रित रहना महत्वपूर्ण है बल्कि पुरुषों के बाह्य-प्रवासन और महिलाओं के जीवन पर उसके प्रभाव को भी शामिल करना महत्वपूर्ण है। समकालीन समय में महिला प्रधान परिवारों की बढ़ती हुई संख्या को पुरुषों के बाह्य-प्रवासन के स्पष्ट प्रभाव के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। यह भी सामाजिक अन्वेषण का विषय है कि पुरुषों की अनुपस्थिति में महिलाएं विभिन्न जेंडर भूमिकाएं कैसे निभाती हैं।

अब हम लोग जेंडर, प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन के बीच गतिकी (dynamics) को समझने के लिए कुछ मामलों पर नज़र डालते हैं। जेंडर, प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन के संबंध में अधिकांश अध्ययनों ने बदलती हुई जेंडर भूमिकाओं और मातृत्व की धारणाओं के पहलुओं पर अवलोकन किया है। मैक्सिको से प्रवासन माताओं और पिताओं पर डर्बी (2006) के अध्ययन ने पाया कि लालन-पालन और मातृत्व के मामलों में जेंडर भूमिकाओं में यहां तक कि पारदेशीय प्रवासनों (transnational migration) के संदर्भ में भी कोई परिवर्तन नहीं आया। फिलीपीन्स के प्रवासियों के प्रसंग में भी अध्ययनों में ठीक ऐसे ही अवलोकन किए गए हैं। यहां तक कि यदि प्रवासी स्त्री पैसा कमाकर घर भेजे तब भी पुरुष पितृत्व की संकल्पना को पुनर्परिभाषित करने में किसी तरह से सफल नहीं हुए। मैक्सिको के प्रवासियों के मामले में अपने बच्चों से उनके पिताओं का संबंध पालनकर्ता की तरह ही उनकी आर्थिक स्थिति से निर्देशित होता है जबकि माताओं का मूल्यांकन उनकी भावनात्मक संबंधों से किया जाता है बेशक वह संबंध दूर रहकर बनाया गया हो (ट्रास्क, 2014 को देखो)। इस मामले में महिला प्रवासन भी, मातृत्व की पुनर्संकल्पना करने में सहायक नहीं हो सका हालाँकि प्रवासी महिलाओं के लिए मातृत्व की संकल्पना में एक और पहलू पालनकर्ता तथा आय अर्जक की उनकी जेंडर भूमिका की तरह शामिल कर ली गई। प्राथमिक देखभालकर्ता के रूप में महिलाओं की भूमिका को मातृत्व की मूल संकल्पना के तौर पर अब भी देखा जाता है। हांडेग्न्यू-सोटेलो और अविला (1997) को उद्धृत करें तो मातृत्व की देखभाल और पालन-पोषण परिभाषा को बदलने की बजाय ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मातृत्व की परिभाषाओं को और विस्तृत कर दिया जिसमें आय-अर्जक की भूमिका को भी सम्मिलित किया जा सके जिसके लिए लम्बी अवधि के भौतिक अलगाव की जरूरत होती है। इन महिलाओं के लिए, एक मूलभूत विश्वास यह होता है कि वे परम्परागत देखभाल की जिम्मेदारियों को संयुक्त राज्य अमेरिका में आजीविका कमाते हुए सबसे अच्छी तरह से निभा सकती हैं जबकि उनके बच्चे पीछे घर पर ही रहें। (उद्धृत ट्रैस्क 204, पृष्ठ

133)। मातृत्व की परम्परागत संकल्पना महिलाओं के सवेतन कार्य में लगने पर भी परिवर्तिन नहीं हो सकी परन्तु निश्चित रूप से मातृत्व की संकल्पना में उनकी नई पहचानों को शामिल करने को परिवर्तन की तरह वर्णित किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार से निकोल्सन (2006) कहती हैं कि प्रवासी माताएं न सिर्फ अपने परिवारों को वित्तीय सहारा प्रदान करती हैं बल्कि अपने अनुभवों से वे नए विज़न भी उत्पन्न करती हैं। प्रवासी माताएं अपने बच्चों के लिए आशा, अवसर और परिवर्तन के आधार पैदा करती हैं। जब हम प्रवासी महिलाओं के संबंध में सामाजिक परिवर्तन के बारे में बात करते हैं तो इसका एक अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि निर्णय निर्माण, सूचित विकल्प और जेंडर भूमिकाओं के संबंध में परिवार और विवाह जैसी तमाम सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत परिवर्तन आए हैं।

2.7 सारांश

आप्रवासन (immigration), संसाधनों के अधिक दक्षतापूर्ण आवंटन में सहायता करता है और इस तरह से राष्ट्रों के कल्याण में सुधार करता है। हालाँकि आवंटन करने की दक्षताओं में वृद्धि प्रायः बहुत ही कम होती है। आप्रवासन के वितरणीय प्रभावों के बारे में चिंता करने से विवाद शुरू होता हैः (1) क्या आप्रवासन नुकसानदेह है अर्थात क्या आप्रवासी लोग मजदूरियों को कम करते हैं और और स्थानीय देशीय लोगों में बेरोजगारी को बढ़ाते हैं, क्या वे प्रायः अभिग्राही देशों में गरीबी में प्रवेश करते हैं और भेजने वाले क्षेत्रों को उनके सर्वाधिक उत्साही और प्रतिभाशाली मजदूरों से वंचित करते हैं? (2) क्या यह संभव है कि आप्रवासन इतना व्यापक और बड़े पैमान पर नहीं हुआ है कि ऐसी क्षतियों को काबिले गौर मानने के लिए पर्याप्त हो? या (3) क्या आप्रवासन वस्तुतः लाभकारी होता है क्योंकि अधिकांश व्यावहारिक अध्ययन देशीय लोगों पर किसी नकारात्मक प्रभाव की पहचान करने में असफल रही हैं बल्कि आप्रवासी औसतन अपने घरों की बजाय दूरस्थ अभिग्राही देशों में बेहतर करते हैं और भेजने वाले देशों की जनसंख्या उनके भेजे पैसों से लाभान्वित होती है और क्या इनके चले जाने से घरेलू श्रम बाजार में होने वाली कमी से स्थानीय कार्यबल लाभान्वित होती है? और (4) वस्तुतः उद्देश्य क्या है देशीय लोगों के बीच समानता या देशीय और अप्रवासियों में एक साथ समानता?

ऐसे बहुत से संगठन हैं जो तमाम रिपोर्टों और प्रकाशनों के माध्यम से उपरोक्त सवालों का जवाब देने की कोशिश करते हैं जिससे कि प्रवासियों की स्थिति को सबसे अच्छे संभव तरीके से समझा जा सके।

2.8 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित कीजिए और जेंडर, प्रवासन तथा सामाजिक परितर्वन में अन्तर्संबंधों पर चर्चा कीजिए।

2) विषमता, जेंडर और महिलाओं का प्रवासन एक दूसरे से कैसे संबंधित है? उपयुक्त उदाहरणों या केस स्टडीज के साथ चर्चा कीजिए।

2.9 संदर्भ

Bhatt, Wasudha (2009). 'The Gender Dimension of Migration in India: The Politics of Econtemporary space in Orissa and Rajasthan'. *Development in Practice,* Volume 19(1).

Black, R., Ammassari, S., Hilker, L.M., Mouillesseaux, S., Pooley, C., and

Rajkotia, R. (2004). *Migration and Pro-poor policies in sub-Saharan Africa*, Department for International Development. London, Nyberg-Sorensen N, Hear NV, Engberg-Pedersen.

Desai Sonalde and Banerji Manistha (2014). Negotiated Identities: Male Migration and left-behind wives in India. Journal of Population Research, Vol. 25(3), New Approaches to Household Diversity and Change (October, 2008).

Gardner, Katy (2001). Global Migrants, Local Live: Travel and Transformation in Rural Bangladesh Oxford University Press: Oxford

Portes, A. (2006). Institutions and Development: A Conceptual Re-Analysis. Population and Development Review 32 (June):

Singh, D.P. (1998). Internal Migration in India: 1961-1991, *Demography India* 27(1).

Trask, B.S. (2004). Women, Work and Globalisation: Challenges and Opportunities. New York, London: Routledge.

United Nations High Commissioner for Refugees (1951) Convention and Protocol relating to the Status of Refugees.

Whileford Michal, B. (1978). Women, Migration and Social Change: A Columbian Case Study International Migration review Vol 12, No.2.

Zachariah, K., Mathew, E., and Rajan S.I. (2000). *Socio-Economic and Demographic Consequences of Migration in Kerala*, Centre for Development Studies, Kerala.

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhatt, Wasudha (2009). 'The Gender Dimension of Migration in India: The Politics of Econtemporary space in Orissa and Rajasthan'. *Development in Practice,* Volume 19(1).

Desai Sonalde and Banerji Manistha (2014). Negotiated Identities: Male Migration and left-behind wives in India. Journal of Population Research, Vol. 25(3), New Approaches to Household Diversity and Change (October, 2008).

इकाई 3 प्रवासन एवं तस्करी हेतु सुभेद्यता

संरचना मंदिरा दत्ता

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जेंडर, प्रवासन और तस्करी : पृष्ठभूमि

3.4 पलेर्मो प्रोटोकॉल

3.5 मानव तस्करी के सुभेद्यता संकेतक

3.6 सारांश

3.7 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

3.8 संदर्भ

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण ने तीव्र आर्थिक विकास का और विशेष रूप से दक्षिण एशियाई क्षेत्र के लिए महान अवसरों को खोलने का काम किया है। ठीक उसी समय इसने अवसंरचनात्मक सुविधाओं जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा और निर्णयन की प्रक्रिया में भागीदारी तक असमान पहुंच को बढ़ावा दिया। आय और धन का यह असमान वितरण न सिर्फ क्षेत्रों के बीच पाया जाने लगा बल्कि एक ही क्षेत्र की जनसंख्या के विभिन्न समूहों में भी असमानता बढ़ी। मध्य-वर्ग के बीच बढ़ने वाली समृद्धि ने असमानता, बहिष्करण और भेदभाव को बहुत गहारा किया जो किसी अर्थपूर्ण सामाजिक संरक्षण (meaningful social protection) की कमी से मिलकर गरीबों और वंचितों को ज्यादा ही पीछे छोड़ दिया। दूसरी ओर जेंडर आधारित भेदभाव, हिंसा और महिलाओं तथा लड़कियों की निम्न अवस्था के साथ मिलकर इसने लैंगिक शोषण और तस्करी के लिए विकट सुभेद्यता (severe vulnerabilities) की स्थिति पैदा कर दी जो ऐसी स्थिति के अकेले सबसे बड़े लक्षण के रूप में उभरा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- यह परिभाषित कर सकें कि तस्करी क्या है;
- जेंडर, प्रवासन और मानव तस्करी में अन्तर्सम्बद्धता को स्थापित कर सकें; और
- मानव तस्करी के संदर्भ में महिला प्रवासियों के लिए सुभेद्यता के स्वरूपों और प्रकृति की व्याख्या कर सकें।

3.3 जेंडर, प्रवासन और तस्करी : पृष्ठभूमि

दक्षिण एशियाई क्षेत्र मानव अधिकारों की कुरीतियों के तमाम स्वरूपों से ग्रसित है। यह महिलाओं की सुरक्षा और मानव अधिकारों के संदर्भ में और भी स्पष्ट है जो क्षेत्र के सम्पूर्ण सामाजिक बुनावट को छिन्न-भिन्न करता है। यह क्षेत्र आज भी नागरिक अराजकता, राजनीतिक अस्थिरता और भयानक गरीबी का सामना कर रहा है। इसमें भी यौन शोषण

के लिए लड़कियों और महिलाओं की तस्करी घृणित अपराधों में से एक है। महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा (Violence Against Women and Girls-VAWG वीएडब्ल्यूजी) के ऐसे दृष्टांतों को मानव अधिकारों के सर्वाधिक प्रचलित उल्लंघनों में शुमार किया जाता है। इसमें शारीरिक, यौन, मानसिक और आर्थिक शोषण शामिल हो सकते हैं और यह उम्र, जाति, वंश, संस्कृति, धनी-निर्धन और भूगोल की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करता है। ऐसी जघन्य घटनाएं घरों में, गलियों में, सड़कों पर, स्कूलों में, खेतों में, शरणार्थी शिविरों में, संघर्षों और संकटों के दौरान हर जगह घटित होती हैं।

आइए हम लोग जेंडर, प्रवासन और मानव तस्करी के मध्य अन्तर-संबद्धताओं को समझते हैं। मानव तस्करी के ऐतिहासिक आंकड़े और सामाजिक मानचित्रण (social mapping) हमें दिखाते हैं कि कैसे प्रवासन, महिलाओं की तस्करी हेतु प्राथमिक निर्धारकों में से एक है। भूतकाल में पश्चिमी यूरोप के अनुभव प्रदर्शित करते थे कि महिलाओं और जवान लड़कियों की तस्करी शोषणात्मक कार्यों के लिए होती थी। थान-दाम ट्रुंग (Thanh-dam Truong) ने यौन-तस्करी में तीन प्रवृत्तियों पर चर्चा की है जो विभिन्न समयावधियों में पश्चिमी यूरोप में प्रचलित रहे थे।

- यौन तस्करी के पहले दौर में दक्षिण एशिया, लैटिन अमेरिका, कैरीबियन देशों और पश्चिमी अफ्रीका से वयस्क महिलाएँ शामिल थीं।
- दूसरे दौर में चीन, बाल्टिक देशों और केन्द्रीय तथा पूर्वी यूरोप से जवान औरतें और कई बार तो अल्पायु लड़कियां शामिल रहीं।
- तीसरे दौर में बाल्कन देशों और स्कैन्डिनेवियन देशों की महिलाएँ शामिल रहीं जो यौन तस्करी की शिकार और स्वयं उसकी अभिकर्ता भी रहीं।

इन प्रवृत्तियों ने दिखलाया कि कैसे यौन-तस्करी ने महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन को बढ़ावा दिया जिसने उन्हें समान रूप से शोषणात्मक कोटि में स्थान दिया। ''इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि यौन तस्करी के कारणों, परिणामों और उनकी संरचनात्मक भेदों को पहचाना जाए और उन्हें निर्धारित किया जाए, जो वैश्विक पूंजीवाद के इतिहास से अभिन्न प्रतीत होती हैं परन्तु अभी हाल तक इसमें शोध कार्य बहुत कम हुए हैं'' (ट्रुंग, 2003, पृष्ठ 33)। इन अन्तरसंबद्धताओं का विश्लेषण सम्भवतः महिलाओं की सुभेद्यता की प्रकृति को समझने में सहायता कर सकती है। अब हम महिला प्रवासियों के लिए सुभेद्यता की प्रकृति को समझते हैं।

बॉक्स सं. 3.1

सर्वाधिक सार्वत्रिक रूप से प्रचलित घरेलू और यौन हिंसा के स्वरूप से लेकर हानिकारक व्यवहारों, गर्भावस्था के दौरान दुर्व्यवहार, तथाकथित ऑनर किलिंग और बालिका हत्या के अन्य प्रकारों तक मानव तस्करी अपने तमाम स्वरूपों में प्रकट होता है। हिंसा के साथ मिलकर जेंडर आधारित भेदभाव ने ऐसी स्थितियों की ओर धकेला है जहां महिलाएं और लड़कियां विशेषरूप से शोषण के प्रति सुभेद्य हैं। मानव तस्करी इस प्रकार ड्रग्स और हथियारों के धंधे के बाद अकेला सबसे बड़ा गैर कानूनी व्यापार बनकर उभरा है।

मानव तस्करी एक विश्वव्यापी अपराध है जिसमें पुरुषों, महिलाओं और बच्चों का शोषण किसी अन्य के वित्तीय लाभ के लिए किया जाता है। यह विशेष रूप से बच्चों तथा महिलाओं के मूलभूत मानव अधिकारों का प्रमुख संस्थात्मक उल्लंघन है। यह किसी भी सीमा को नहीं मानता। मानव तस्करी सिर्फ यौन शोषण तक सीमित नहीं है बल्कि व्यापक

सामाजिक क्षेत्र को शामिल करता है जैसे कि 'जबर्दस्ती (forced)' होने वाले विवाह, बंधुआ मजदूरी बाजार, मिठाई के दुकानों, खेतिहर बागवानी, अंग व्यापार, मनोरंजन उद्योग और घरेलू सेवाएं। लगातार बढ़ने वाली जनसंख्या, वैश्विक स्तर पर वृहत्तर सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन और समाज में नैतिक भ्रष्टाचार मानव तस्करी में अपना योगदान देते हैं।

लम्बी समयावधि में मानव तस्करी तमाम स्वरूप ग्रहण कर सकता है परन्तु यह कुछ मूलभूत सिद्धांतों के साथ बना रहता है जिसका अर्थ है, ''शोषणात्मक प्रयोग के लिए किसी व्यक्ति को लाचार करके बलपूर्वक बेचना'' (राइल, 2012, पृष्ठ 489)। भारत में मानव तस्करी का सर्वाधिक प्रकट स्वरूप बंधुआ मजदूरी (bonded labour) या कर्ज दासता (debt bondage) है। रॉबिन राइल (2012) के अनुसार, मानव तस्करी को आधुनिक दासता की तरह संदर्भित किया जा सकता है और महिलाओं तथा पुरुषों पर इसका विभेदकारी असर है। उदाहरण के लिए, वैश्विक दक्षिण में महिलाएं और बच्चे अपनी सामाजिक अवस्थिति और सांस्कृतिक विनिर्माणों (cultural constructions) के चलते असमानता के बढ़ते बोझ का सामना करते हैं। इसलिए वे मानव तस्करी के प्रति सुभेद्य हो जाते हैं। गरीबी के स्त्रीकरण और स्त्री प्रधान परिवारों की आर्थिक दुर्बलता जैसे कारक महिलाओं को मानव तस्करी के जाल में बुरी तरह धकेल रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार प्रतिवर्ष अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार मोटे तौर पर 7 लाख से 20 लाख महिलाओं की तस्करी होती है (संदर्भ राइल, 2012, पृष्ठ 489)। महिलाओं के सन्निहित श्रम के कारण (एमडब्ल्यूजी 004 का इकाई 3: 'श्रमकारी निकाय' पढ़िए) महिलाएँ या तो घरेलू नौकरानियों की तरह कार्य करती हैं या फिर वेश्यावृत्ति में धकेल दी जाती हैं। श्रम के इन दोनों ही स्वरूपों में महिलाएँ हिंसा के तमाम स्वरूपों का सामना करती हैं जिसका सबसे स्पष्ट रूप होता है यौन हिंसा। तस्करी कर लाई गई महिलाओं के अनुभव जेंडर आधारित हिंसा के बारे में विशिष्ट प्रकृति का खुलासा करते हैं जिसका सामना इस वैश्विक अर्थव्यवस्था में तस्करी कर लाई महिलाओं को करना पड़ता है। इस मुद्दे पर कुछ और आगे समझने के लिए कुछ मामलों का अवलोकन करते हैं।

बॉक्स सं. 3.2

दासता के तंत्र से भागकर आई हुई महिलाओं के अनुभव

क्वेश्चनिंग जेंडर (Questioning Gender) नामक अपनी पुस्तक में रॉबिन राइल ने उन महिलाओं और लड़कियों के अनुभव को साझा किया है जो मानव तस्करी के संजाल में फंस गई थीं और बाद में उससे बचकर निकल भागीं। 2003 में एक बहुराज्यीय वेश्यावृत्ति समूह को 17 वर्ष की एक लड़की मिली। लड़की को क्लीवलैंड, ओहियो के बस स्टॉप से अपहृत किया गया था। लड़की के अपहरणकर्ताओं ने उसके एक कमरे में अन्य महिलाओं के साथ बंद रखा और वेश्यावृत्ति के लिए उसे विवश किया गया। लड़कियां वेश्या का ही काम किया करती थीं और कभी-कभार उन्हें आभूषण या तुच्छ आभूषण बेंचने के लिए मॉल भी भेजा जाता था। छोटी और अल्पवयस्क लड़कियों को बड़ी और बुजुर्ग महिलाओं द्वारा सुरक्षा प्रदान किया जाता था और वही उन्हें धमका कर रखती थीं। सभी लड़कियों को पुरस्कार और दण्ड की प्रणाली से नियंत्रित किया जाता था। यदि वे उनकी आज्ञा का पालन करती थीं तो उन्हें विभिन्न तरीके से पुरस्कृत किया जाता था और यदि वे आज्ञा नहीं मानती थीं तो उन्हें डराया धमकाया जाता था।

सुभेद्यता, हिंसा और मानव तस्करी के संदर्भ में हिल्दा डॉस संटोस की कहानी पढ़ने योग्य है। वह अमेरिका में घरेलू सहायिका के तौर पर काम कर रही थी। एक बार जब

नियोक्ता ने उसे वेतन देना बंद कर दिया तो फिर उसका उपयोग बंधुआ मजदूर की तरह किया। उसने सभी तरह के घरेलू कार्य किए जिसमें सफाई करना, भोजन पकाना और पालतू पशुओं की देखभाल करना शामिल थी। उसे खाने के लिए बचा खुचा खाना दिया जाता था और यदि कोई गलती करती थी तो उसे पीटा जाता था। एक बार घर में ही काम करते हुए उसके पैर घायल हो गए और उसमें सड़न पैदा हो गई और संक्रमित हो गया। नियोक्ता ने किसी भी प्रकार की चिकित्सा सहायता या वित्तीय सहायता देने से मना कर दिया। जब उसके पेट में ट्यूमर विकसित हो गया तो एक पड़ोसी की सहायता से वह वहां से भाग निकली। बाद में हिल्डा को बचाने के लिए कुछ कानूनी दखलंदाजी की गई।

इसी तरह की एक दूसरा मामला शांति देवी का है। जब उसने बांग्लादेश में स्थित अपना पैतृक गांव छोड़ा तब वह 39 वर्ष की थी। वह अपने परिवार को अकेले स्वयं घर के प्रमुख की तरह सहारा दे रही थी। उसके पड़ोस के गांव के एक व्यक्ति ने उसे भारत में नौकरी दिलवाने के नाम पर प्रलोभन देकर बहका लिया। भारत में वह एक वेश्या के हाथों मात्र 2000 रुपये में बेंच दी गई। जिस क्षण उसने महसूस किया कि वह किस स्थिति में फंस गई थी तो उसने किसी तरह भागने का प्रबंध कर लिया और भाग गई और बांग्लादेशी झुग्गी में शरण ली। एक गैर सरकारी संगठन की सहायता से उसे वापस अपने घर परिवार के पास वापस भेजा गया।

स्रोतः क्वेश्चनिंग जेण्डर, पृष्ठ 490

उपरोक्त मामले ऐसी स्थितियों के बारे में बताते हैं जिसमें महिलाओं और लड़कियों की तस्करी की जाती है और हिंसा के विशिष्ट स्वरूप से उनका सामना होता है। संदर्भ के तौर पर ये दोनों मामले एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं हालाँकि तस्करी के कारणों के बारे में और महिलाओं के अन्तर्निहित सुभेद्यताओं के बारे में ये कुछ अन्तर्दृष्टि प्रदान करने में योगदान देते हैं। पीड़िताएं अक्सर अपने घरों से अपहृत की जाती हैं या प्रलोभन देकर उन्हें बहका लिया जाता है और बाद में तमाम माध्यमों से उन्हें मजबूर करके वेश्यावृत्ति, कृषि और विनिर्माणों में और अन्य पार देशी अपराधों में धकेल दिया जाता है। इस तरह से मानव तस्करी संरचनात्मक जेंडर असमानताओं का परिणाम है जो महिलाओं को उस क्षेत्र में बहिष्कृत और पक्षपातपूर्ण समूहों का हिस्सा बनाते हैं। पीड़िताओं को गम्भीर व्यक्तिगत आघात पहुंचाने के साथ ही तस्करी सरकारी प्राधिकरणों को दुर्बल करता है, संगठित आपराधिक समूहों और गैंग को सशक्त करता है और गम्भीर सामाजिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य लागत थोपता है। यद्यपि मानव तस्करी का अपराध दुनिया के अलग-अलग देशों और विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग स्वरूप ग्रहण कर सकता है, परन्तु अधिकांश मानव तस्करी मामले एक समान पैटर्न धारण करते हैं; जैसे कि तस्कर लोग पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की भर्ती करने के लिए उनके घरों में या उसके आस पास ही अपनी जान पहचान या विज्ञापनों का सहारा लेते हैं। धोखेबाजी करके शादियों या नौकरी के अन्य लुभावने प्रस्ताव देते हैं और उन्हें एक स्थान से स्थानांतरित करने के बाद दूसरे शहर, दूसरे राज्य, दूसरे देश में उनका शोषण करते हैं।

मानव तस्करी ऐसे क्षेत्रों में अधिक व्याप्त है जहां भयानक गरीबी, खाद्य असुरक्षा, असंवेदनशील सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का बोलबाला है और प्राकृतिक या मनुष्य निर्मित आपदाओं के चलते विस्थापन हुआ हो। संघर्ष, युद्ध, प्राकृतिक आपदाओं, नस्लीय हिंसा, आतंकवाद और विप्लव के चलते या फिर साधारण रूप से आजीविका विकल्पों की खोज में आज दुनिया लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान के प्रवास का सामूहिक निष्क्रमण का

साक्षी बन रहा है। महिलाएँ और लड़कियाँ तस्करी किए जाने के लिए शिकार की तरह हैं विशेषकर तब जब वे अजनबी जगहों पर प्रवासित होती हैं।

प्रक्रिया के उपयोग और कारणों के संदर्भ में तस्करी के प्रति सुभेद्यता और प्रवासन के प्रति सुभेद्यता में स्पष्ट समानता है। हालाँकि यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि महिलाओं और लड़कियों के सभी प्रवासन अनिवार्य तौर पर तस्करी की ओर नहीं ले जाते। **तस्करी सिर्फ एक अकेला उल्लंघन नहीं है बल्कि लगातार होने वाले अपराधों का एक हिस्सा है और यह मानव अधिकारों के उल्लंघन का कारण और परिणाम दोनों है।** इसलिए तस्करी के कृत्य या इसके उद्देश्य को लक्षित करने तक ही प्रतिक्रिया सीमित नहीं होनी चाहिए। यही एकमात्र ऐसे अतिक्रमण नहीं है जिन पर ध्यान दिया जाना है। सभी प्रतिक्रियाओं के केन्द्र में मानव अधिकारों का संरक्षण और प्रोत्साहन वह भी विशेषकर तस्करी कर लाए गए व्यक्तियों का होना ही चाहिए। मूलभूत कारणों को लक्षित करते हुए संरक्षण के उपाय करना उपयुक्त कोशिशों की पूर्णता के लिए आधारभूत बात है। प्रवासी के लिए 'सुरक्षित प्रवासन प्रक्रियाओं (safe migration procedures)' को अंगीकृत करना महत्वपूर्ण है जो कि तस्करी के प्रति सुभेद्यता के कारकों को कम करेगा।

आगे पढ़ने से पहले, अभी तक आपने जो पढ़ा है उसके मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) किसी तस्कर द्वारा व्यक्ति को तस्करी हेतु प्रलोभित करने के लिए कौन से सबसे सामान्य विधियों का उपयोग किया जाता है?

2) मानव तस्करी के स्वरूप क्या हैं?

आगे आने वाले अुनभाग में आप मानव तस्करी की समस्या से निबटने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाए गए सकारात्मक कदमों के बारे में पढ़ेंगे।

3.4 पलेर्मो प्रोटोकॉल

2000 में पारदेशीय संगठित अपराधों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संधि (UN Convention Against Transnational Organised Crimes) पलेर्मो, इटली में प्रतिपादित की गई थी। इसे संयुक्त राष्ट्र पलेर्मो प्रोटोकॉल (**UN Palermo Protocol**) के नाम से जाना गया जिसे एक अंतर्राष्ट्रीय कानून के स्रोत की तरह स्वीकार करने के लिए दिसंबर 2007 तक 116 देशों द्वारा समर्थन प्राप्त हो गया था। एक परिभाषा के लिए यह एक समझौते तक पहुंच गया जिसमें मानव तस्करी के तीन महत्वपूर्ण घटकों की पहचान करता है।

- **कृत्य– जो किए जाते हैं:** ''व्यक्तियों की भर्ती, उनका निर्वासन या परिवहन, स्थानांतरण, ठिकाने तक पहुंचाना या वहां प्राप्त करना।''
- **साधन– जिस तरह से किए जाते हैं:** ''भय या बल प्रयोग, जबर्दस्ती, अपहरण, धोखा, छल-कपट, ताकत के गलत प्रयोग या सुभेद्यता, या पीड़ित के नियंत्रण में रहने वाले किसी व्यक्ति को भुगतान देकर या उसे लाभ पहुंचाकर।''
- **उद्देश्य– क्यों किया जाता है:** ''शोषण, जिसमें दूसरे को वेश्यावृत्ति में धकेलना भी शामिल होता है, यौन शोषण, बंधुआ मजदूरी, दासता या उसके समान अन्य व्यवहार और अंगों को निकालना'' (यूएनओडीसी, 2000, लेख 3) (संदर्भ अलवारेज और अलेस्सी, 2012)।

उद्देश्य प्रमुख रूप से शोषण में से ही एक होता है जिसमें शामिल होते हैं, ''दूसरों को वेश्यावृत्ति में धकेलना, यौन शोषण, बंधुआ मजदूरी, दासया या समान व्यवहार, अंगो को निकालना या अन्य दूसरे प्रकार के शोषण।'' एक ब्रिटिश नारीवादी, जोसफिन बटलर ने मानव तस्करी को एक अभियान जिसे श्वेत दास व्यापार (White slave trade) कहा गया के द्वारा यौन शोषण से संबंधित किया है। बटलर ने 1875 में अंतर्राष्ट्रीय दासता–विरोधी संघ (International Abolitionist Federation) की स्थापना की थी और मानव तस्करी के विरुद्ध लड़ने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संधियों और अभियानों की शुरुआत की, जिसे सिर्फ वेश्यावृत्ति के संबंध में समझा गया। एन. रे जैसे नारीवादी लेखकों ने मानव तस्करी को सिर्फ वेश्यावृत्ति से जोड़ने के उपागम की आलोचना की है जिसके कारण अंतर्राष्ट्रीय संधियां, समझौते और उपक्रम अन्य दूसरे प्रकार के यौन शोषणों व मजदूरी के दूसरे परिप्रेक्ष्यों को नज़रअंदाज कर देते हैं (अल्वारेज एवं अलेस्सी, 2012, पृष्ठ 144)। 1970 के दशक तक नारीवादी आंदोलनों ने मानव तस्करी को महिलाओं के विरुद्ध हिंसा वाली कार्यसूची में शामिल कर लिया था। तीसरी दुनिया में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा आंदोलन ना सिर्फ यौन हिंसा पर अधिक केन्द्रित रहता है बल्कि सैन्य वेश्यावृत्ति, यौन पर्यटन और दुल्हनों के डाक आदेश व्यवसाय के विरुद्ध भी केन्द्रित होना पड़ा है। इसके बाद से मानव तस्करी महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों की सम्पूर्ण कार्यसूची बन गई है और इसे आश्चर्यजनक रूप से कुछ फोरमों पर जैसे कि 1975 के महिलाओं के लिए विश्व सम्मेलन (World Conference on Women), महिलाओं के विरुद्ध होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन हेतु होने वाली 1979 के समझौते (Convention on the Elimination on All Forms of Discrimination Against Women) और 1995 में बीजिंग में सम्पन्न हुए महिलाओं के विश्व सम्मेलन में भी इसे सामने रखा गया (अल्वारेज एवं अलेस्सी, 2012 में रे 2006)

पारदेशीय संगठित अपराधों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र समझौते पर हस्ताक्षर पलेर्मो, इटली में हुए थे। इस समझौते में सम्पूरक के रूप में दो प्रोटोकॉल थेः

- व्यक्तियों विशेषकर महिलाओं और बच्चों की तस्करी को रोकना, उन्मूलन करना और उसके लिए दण्डित करने के लिए प्रोटोकॉल, और
- भूमि, समुद्र और आकाश के रास्ते प्रवासियों की तस्करी के विरुद्ध प्रोटोकॉल।

इन प्रोटोकॉल में से पहले प्रोटोकॉल को कभी-कभार **तस्करी प्रोटोकॉल** कहा जाता और सामान्यतौर पर तो **पलेर्मो प्रोटोकॉल** के नाम से जाना जाता है।

व्यक्तियों की तस्करी का अर्थ होगा भय या बल प्रयोग के द्वारा या जबर्दस्ती के अन्य तरीकों से, अपहरण से, धोखे से, छल-कपट से या फिर सुभेद्यता होने पर ताकत या पद का दुरुपयोग करते हुए या दूसरे व्यक्ति पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति को पैसा देकर, लालच देकर या उसे कुछ लाभ पहुंचाकर उसकी सहमति लेकर शोषण के उद्देश्य से व्यक्तियों की भर्ती, परिवहन, स्थानांतरण, ठिकाने तक पहुंचाना या व्यक्तियों को प्राप्त करना। शोषण में न्यूनतम रूप में दूसरे के देह व्यापार के आधार पर उसका शोषण या अन्य किसी रूप में यौन शोषण, जबर्दस्ती मजदूरी या सेवाएं लेना, दासता या इसके ही समान दूसरे प्रकार के व्यवहार करना, गुलामी कराना या फिर अंगों का निकालना जैसे कृत्य शामिल होंगे।'' (www.palermoprotocol.com) संयुक्त राष्ट्र का सन् 2000 में मानव तस्करी के लिए आया प्रोटोकॉल (UN Protocol on Human Trafficking) पूरी दुनिया में तस्करी के विरुद्ध बनने वाली नीतियों और तस्करी को खत्म करने वाले उपायों के लिए मौलिक ढांचे की तरह काम करता है।

कई सिद्धांतकार और शोधकर्ता इसकी रुढ़िवादी प्रकृति को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र प्रोटोकॉल पर सवाल उठाते रहे हैं। प्रोटोकॉल यौन कर्ताओं के अधिकारों के संरक्षण पर इस आधार जोर देता है कि उनके काम को श्रम के एक स्वरूप की तरह पहचान दी जाए। हालांकि यह अत्याचार, हिंसा और आसपास में यौन कर्मियों के शोषण जैसे पहलुओं को छोड़ देता है। मानव तस्करी पर संयुक्त राष्ट्र के प्रोटोकॉल के सारतत्व पर जॉर्डन ने प्रश्न उठाया था। तर्क देते हुए **जॉर्डन** कहती हैं, ''चूंकि प्रोटोकॉल के अनुसार तस्करी का सारतत्व है किसी को शोषण के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना, यह बात पहले से दासता, बंधुआ मजदूरी, बाल मजदूरी और ऋणबंधित दासता को नियमित करने वाले अंतर्राष्ट्रीय तरीकों में कुछ भी नया नहीं जोड़ता।''(बाये एवं ह्यूमैन, 2012 पृष्ठ 82)। हालांकि, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा (VAW) वाले पहलू पर सवाल नारीवादियों द्वारा इस तरह से उठाया गया कि प्रोटोकॉल के परिप्रेक्ष्य में बेगार के संदर्भ में महिलाओं के अधिकार के उल्लंघन को शामिल नहीं किया गया और इसने तस्करी कर लाई गईं महिलाओं को शक्तिहीन वस्तुओं की तरह देखा।

मानव तस्करी के विमर्शों, ढांचों एवं समझौतों में तमाम गैर-सहमति जन्य उपागम उभर कर सामने आए। अल्वारेज एवं अलेस्सी ने मानव तस्करी पर आरू वूल्फ द्वारा निर्मित डॉक्यूमेंट्री फिल्म डाइंग टू लीव (Dying to leave) का विश्लेषण किया। इस डॉक्यूमेंट्री में तस्करी कर लाई गई महिलाओं और पुरुषों के प्रवासी मजदूरों की तरह बहुफलकीय अनुभवों को दिखाया गया है। फिल्म का उद्देश्य प्रवासी मजदूरों की सुभेद्यताओं के बारे में सामाजिक जागरूकता जगाना था, जो कि अक्सर ही मानव तस्करी के संभाव्य पीड़ित बन जाते हैं। अल्वारेज एवं अलेस्सी ने रेखांकित किया था कि तस्करी के बारे सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाना और सूचनाओं को फैलाना बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु मानव तस्करी को सिर्फ यौन शोषण और एचआईवी संक्रमण से जोड़ देने पर दूसरे मुद्दों जैसे कि श्रम अधिकारों, सुभेद्यता की स्थितियां, तस्करी के पीड़ितों की घर वापसी पर स्थिति और ऐसी ही अन्य चिंताओं की उपेक्षा होने लगती है।

लेखकों ने नेपाल के उदाहरण के बारे में लिखा है जहां तस्करी के बारे में सामुदायिक धारणाओं की मैपिंग के लिए एक अध्ययन किया गया था। अध्ययन ने इस बात का खुलासा किया कि कैसे महिलाओं को रोजगार की खोज में दूसरे देशों या क्षेत्रों में प्रवसित होने को हतोत्साहित करने के लिए देश में फैली सूचनाएं, शिक्षा और संचार क्षेत्र मानव तस्करी, वेश्यावृत्ति और एचआईवी संक्रमण की अन्तर्संबद्धता को प्रकाशित कर रहे हैं। अध्ययन यह भी दिखलाता है कि तथाकथित अन्तर्संबद्धता उन पीड़ित महिलाओं के लिए बड़ी समस्या पैदा कर देती है जो किसी तरह बच बचाकर घर वापसी करती हैं जिसमें उन महिलाओं को कलंकित करना और एचआईवी संक्रमण का भय दिखलाकर उन्हें बहिष्कृत करना शामिल होता है। मानव तस्करी पर सकारात्मक ढांचे को इसकी संरचनात्मक समस्याओं पर नज़र डालने की जरूरत है जैसे कि निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक रूप से हाशिए पर धकेल दिए गए समुदायों की सुभेद्यता की तीव्रता।

मैरिऍन मैंसबर्गर (2011) के अनुसार वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त भी महिलाएँ और अल्पवयस्क लड़कियां बहुतेरे ढंग से पीड़ित की जाती हैं। इस तरह **पीड़ित किए जाने के कुछ सामान्य रूप हैं घरेलू दासता, गुलामी, बेगार, गैर-कानूनी गोद लेना, जबर्दस्ती विवाह, बांझपन वाली क्लीनिकों में अण्ड संरक्षण, सरोगेट मातृत्व और अनुष्ठानिक हत्याएं** । लेखक ने एक शोध पत्र का उद्धरण दिया था 'लड़कियों को मौका दोः बाल मजदूरी से निबटना, सुनहरे भविष्य का द्वार है' (Give girls a chance: Tackling child labour, a key to the future) जिसमें चर्चा की गई थी कि घरेलू नौकरानी के रूप में लड़कियों से अधिकांशतया दुर्व्यवहार किया जाता है। जबर्दस्ती विवाह भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसे तस्करी, जेंडर और प्रवासन से जोड़ा जा सकता है।

बाल वधुओं के मूलभूत मानव अधिकारों के उल्लंघन पर संयुक्त राष्ट्र के रिपोर्ट (The UN Reports on the Violence of Basic Human Rights of Child Brides) में आंकलन है कि 49 देश बाल विवाह की समस्या का सामना कर रहे हैं और ग्रामीण एशिया में यह प्रचुरता से प्रचलित है, (मैंसबर्गर, 2011)। यद्यपि मानव अण्ड संरक्षण (human egg harvesting) को अभी मानव तस्करी के एक पक्ष के रूप में पहचान नहीं मिली है परन्तु मानव तस्करी और मानव अण्ड संरक्षण के बीच कड़ियों की पड़ताल के लिए शोध को प्रारम्भ किया जा सकता है। सरोगेसी या किराए की कोख का प्रचलन भारत और अन्य विकासशील देशों में बहुतायत से है। **सेंटर ऑफ बायोएथिक्स एंड कल्चर नेटवर्क** की राष्ट्रीय निदेशक **जेनिफर लाह्ल** कहती हैं, ''कानूनी मुद्दों के चलते अपने देश को छोड़कर दूसरे देश के लिए जवान और सुभेद्य महिलाएँ आसानी से पैसा बनाने वाली योजनाओं के प्रलोभन में आ जाती हैं'' (मैंसबर्गर, 2011 पृष्ठ 615)। हाल के वर्षों में थाईलैण्ड, विएतनाम और रोमानिया जैसे देश तस्करी कर लाई गई किराए की कोख के मामलों जैसे अपराध के नए स्वरूपों का अनुभव देख रहे हैं। 2011 में थाईलैण्ड में अधिकारियों ने एक ऐसे व्यवसाय का खुलासा किया जो गैर-कानूनी तरीके से विएतनामी सरोगेट मदर प्रदान करवाते थे। जेंडर, प्रवासन और तस्करी पर हमारी चर्चा में मानव तस्करी की और अधिक व्यापक समझ के लिए जरूरी है कि हिंसा और महिलाओं तथा लड़कियों की सुभेद्यताओं के नए उभरते स्वरूपों को इसमें शामिल किया जाए।

अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय कानूनी तंत्रों ने राज्य द्वारा बाध्यताओं को स्पष्ट कर दिया है जिसमें महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा को रोका जाए, उसे खत्म किया जाए और जहां आवश्यक हो दण्डित किया जाए। महिलाओं के विरुद्ध सभी स्वरूपों में भेदभाव का उन्मूलन करने के लिए हुए समझौते (The Convention on the Elimination of All Forms of Discriminations Against Women- CEDAW सीईडीएडब्ल्यू) की जरूरत है कि इस

समझौते के भागीदार देश हिंसा को खत्म करने के लिए सभी उपयुक्त कदम उठाएं। हालाँकि, महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध लगातार चलती रहने वाली हिंसा दिखलाती है कि इससे अभी भी सभी आवश्यक राजनीतिक प्रतिबद्धता और संसाधनों से निबटना है। लोगों द्वारा इस बात का विशेष संज्ञान लेने की आवश्यकता है कि राष्ट्र की महिलाओं और लड़कियों को प्रतिदिन और हर दिन अनावश्यक हिंसा का सामना सिर्फ इसलिए करना पड़ता है कि वे लड़कियां या महिलाएँ हैं। उन पर सिर्फ इसलिए हमला किया जाता है कि वे स्त्रियां हैं।

राजनीतिक अस्थिरता और आर्थिक मजबूरी ऐसे कारण हैं जिनके चलते नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार और यहां तक कि उजबेकिस्तान जैसे सुदूर देशों से अल्पवयस्क लड़कियां तस्करों को बेच दी जाती हैं। दक्षिण एशिया के संदर्भ के अन्तर्गत महिलाओं और बच्चों की तस्करी के लिए भारत उद्गम, मार्ग और मंजिल तीनों विशेषताओं वाला देश है। सुभेद्य जनसंख्या में अधिकांशतया महिलाएँ, बच्चे और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ऐसे लोग शामिल हैं जो गहरे कर्ज बंधन, निरक्षरता और आर्थिक विकल्पों के बंद होने का सामना कर रहे होते हैं। दूसरे लोगों में ऐसे दूसरी पीढ़ी वाले तस्करी कर लाए गए बच्चे होते हैं जो शोषण के लिए उच्च स्तर पर संवेदनशील होते हैं। भारत में आंतरिक तौर पर भी विचारणीय स्तर पर महिलाओं और बच्चों की तस्करी की जाती है। हाल के वर्षों में थाईलैण्ड के बाद भारत बाल सेक्स पर्यटन के एक प्रमुख वैकल्पिक बाजार के रूप में उभरा है। ऐसे कई अध्ययन हुए हैं जो दिखलाते हैं कि गोवा, केरल, कोवलम, वरकल, कोचीन और कर्नाटक बाल सेक्स पर्यटन के ठिकानों के रूपा में जाने जाते हैं। उदाहरण के लिए, ''कोवलम में ऐसा उल्लिखित किया गया है कि 80 प्रतिशत होटल सेक्स पर्यटन पर जीवित हैं।'' (विंकलर, 2011, मैंसबर्गर, 2011)

जमीनी स्तर पर तस्करी-निरोधक उपायों के क्रियान्वयन हेतु गैर-सरकारी संगठन और अन्य नागरिक समाज संगठन ही प्रमुख रूप से सहायक हैं। वे सामुदायिक सदस्यों के बीच जागरूकता पैदा करने में, **सीमा सतर्कता समितियों** (border vigilance committee) के सदस्यों के मध्य संबंध निर्मित करने में क्षमताओं को विकसित करने में और बचाकर लाई गई तस्करीकृत पीड़िताओं को संरक्षित करने और आश्रय प्रदान करने में बहुत प्रभावी हैं। ये सभी गैर-सरकारी संगठन लगातार ज्ञान और जागरूकता बांटते हुए रणनीतिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय सीमा के किसी एक ओर ही स्थित रहते हैं।

सतर्कता समितियां स्थानीय नागरिकों से मिलकर बने होते हैं जो मुख्य रूप से सीमा के साथ बनाए गए होते हैं जो ऐसे किसी संभावित संदिग्ध व्यक्तियों पर नजर रखने की जिम्मेदारी लेते हैं जो गांव में यूं ही घूमते रहते हैं। सीमा सतर्कता समिति के लिए अपनाई गई रणनीति में लड़कियों, महिलाओं, पुरुषों, अध्यापकों, रिक्शा खींचने वालों, नाई, दुकानदारों को सदस्य बनाना और उन्हें संदिग्ध गतिविधियों या धोखेबाजी वाली शादियों के मामलों के बारे में सतर्कता की मूल समिति को बताने के लिए प्रशिक्षण प्रदान करना शामिल होता है। मूल समिति भी लोगों को सुरक्षित प्रवासन के महत्व को समझाने का काम करती है। वे भी समय समय पर प्रशिक्षण शिविरों में भाग लेते हैं और तमाम अवसरों पर असंख्य दोषियों को पकड़वाने में सफल रहे हैं। सतर्कता समिति के सदस्य गैर-सरकारी संगठनों से उस स्थिति में संपर्क करते हैं जब वे किसी असामाजिक तत्व को घूमता हुआ पाते हैं।

अब हम ऐसे संकेतकों के बारे में पढ़ेंगे जो किसी समूह या किसी व्यक्ति को मानव तस्करी हेतु संदिग्ध बनाता है।

3.5 मानव तस्करी के सुभेद्यता संकेतक

तस्करी हेतु सुभेद्यता के सभी अभिज्ञात संकेतकों को चार प्रमुख कोटियों में विभाजित किया जा सकता है– सामाजिक-जनांकिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय। इन्हें फिर आगे सूक्ष्म स्तर के संकेतकों में विभाजित किया गया है।

3.5.1 तस्करी के लिए सुभेद्यता के सामाजिक और जनांकिक संकेतक

निम्नलिखित कारकों को तस्करी के लिए प्रमुख रूप से सहायक माना जाता है।

क) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या

भारत में अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) की जनसंख्या की समग्र तौर पर संदर्भपरक स्थिति यह इशारा करती है कि उनका संकेन्द्रण भौतिक रूप से अगम्य क्षेत्रों में हैं जो सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिकूल पर्यावरण वाले हैं और उन्हें सामाजिक-आर्थिक विकास प्रक्रियाओं में समावेशी सहभागिता से रोकते हैं। पूर्वोत्तर भारत का अधिकांश भाग, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ और महाराष्ट्र का केन्द्रीय पठारी क्षेत्र और मध्य पद्रेश के केन्द्रीय और पश्चिमी जिलों, गुजरात के उत्तरपूवी क्षेत्र और राजस्थान के थार क्षेत्र को शामिल करते हुए पश्चिमी क्षेत्र में जनजातीय समुदायों का उच्च संकेन्द्रण है जो प्रलोभनों के प्रति अधिक सुभेद्य हैं और इस प्रकार मानव तस्करी के लिए उद्यत हैं। समान रूप से ग्रामीण तेलंगाना का बड़ा क्षेत्र (विशेष रूपे से खम्माम और आदिलाबाद जिले) और आन्ध्र प्रदेश में रायलसीमा, उत्तर पूर्वी कर्नाटक भी सर्वाधिक सुभेद्य क्षेत्रों में हैं।

ख) स्त्री निरक्षरता

उच्च स्त्री निरक्षरता वाले क्षेत्रों के साथ साथ अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के उच्च जनसंख्या और खाद्य असुरक्षा वाले क्षेत्र भी मानव तस्करी हेतु अधिक सुभेद्य हैं। पूर्वोत्तर भारत के अधिकांश क्षेत्र विशेष रूप से अरुणांचल प्रदेश, नागालैण्ड, असम, नेपाल से सटे हुए उत्तर प्रदेश और बिहार के उत्तरी जिले, झारखण्ड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के नक्सली प्रभावित क्षेत्र, उत्तर पश्चिमी गुजरात, पश्चिमी और दक्षिणी राजस्थान, राजस्थान के केन्द्रीय क्षेत्र और तेलंगाना का केन्द्रीय हिस्सा और आन्ध्र प्रदेश में रायलसीमा क्षेत्र, स्त्री निरक्षरता के संदर्भ में सुभेद्य हैं। इसी के साथ महिलाओं से आर्थिक सहायता की मांग करने वाले सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परा के साथ मिलकर उच्चतर स्त्री निरक्षरता, तस्करी किए जाने के लिए सुभेद्यता को कई गुना बढ़ा देती है जैसे कि भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के मामलों में।

ग) आयु विशिष्ट लिंगानुपात

बिहार के उत्तरी जिलों, केन्द्रीय उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, दक्षिण–पश्चिमी बंगाल, पश्चिमी राजस्थान, मध्य प्रदेश के केन्द्रीय मेखला और गुजरात तथा महाराष्ट्र के हिस्सों में लड़कियों और महिलाओं का आयु विशिष्ट (10–24 वर्ष) लिंगानुपात निम्न है। एक अध्ययन (दत्ता एम, 2011) ने खुलासा किया था कि कई जिलों जैसे कि मुर्शिदाबाद, उत्तरी 24–परगना और दक्षिण 24–परगना में आयु विशिष्ट लिंगानुपात बहुत ही कम है। अध्ययन ने यह भी दिखलाया कि इन जिलों से संबंध रखने वाली समान आयु समूह की लड़कियों और महिलाओं का उच्च संकेन्द्रण कोलकाता के सोनागाछी रेड लाइट क्षेत्र में था।

घ) महिलाओं के विरुद्ध अपराध

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के हिस्सों में, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना और रायलसीमा क्षेत्र) और उड़ीसा के माओवादी प्रभावित क्षेत्रों में राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, महिलाओं के विरुद्ध अपराध का उच्चतर अनुपात प्रस्तुत करता है। कुछ अन्य क्षेत्र जिसमें महिलाओं के विरुद्ध अपराध का उच्चतर अनुपात रहता है, में शामिल हैं पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी–पश्चिमी गुजरात और केन्द्रीय मध्य प्रदेश। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के आसपास लगे हुए क्षेत्रों विशेषकर सीमावर्ती पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में भी महिलाओं के विरुद्ध अपराध के उच्चतर दर पंजीकृत हैं जिसका कारण दहेज हत्याएं और शहरी अपराध हैं विशेष रूप से छेड़छाड़, बलात्कार और यौन हमला। केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक के कुछ बस्तियों में भी महिलाओं के विरुद्ध उच्च अपराध रिपोर्ट किया गया है।

ड.) एचआईवी/एड्स का फैलाव

तस्करी कर लाई गई महिलाएँ एचआईवी/एड्स के प्रति काफी सुभेद्य होती हैं और आखिरकार तस्करी की ये पीड़िताएं पहले से एचआईवी/एड्स से संक्रमित होकर घर लौटने के बाद अपनी जन्मभूमि में गंभीर भय पैदा करती हैं। नागालैण्ड, मिजोरम, तेलंगाना के कुछ हिस्सों, रायलसीमा और तटीय आन्ध्र प्रदेश, दक्षिणी महाराष्ट्र और शहरी क्षेत्रों और उससे लगे हुए जिलों जैसे कि मुम्बई, पुणे, हैदराबाद, बंगलौर और चेन्नई में इसके फैलाव का उल्लेखनीय रूप से उच्च दर पाया गया है।

बिहार में घुमंतू यौनकर्मी महिलाएँ आसनसोल और नालंदा राजमार्गों के साथ-साथ ट्रक ड्राइवरों के साथ देह व्यापार में लिप्त पाई गई हैं।

झारखण्ड प्रधान रूप से जनजातीय राज्य है जहां महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है और उन्हें सम्मान भी अधिक दिया जाता है। हाल के कुछ वर्षों में झारखण्ड में जनजातीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो गई है विशेष रूप से अवनीकरण और बेरोजगारी के कारण। पुरुष कभी-कभार ही काम पर जाते हैं और प्रायः पीकर निठल्ले पड़े रहते हैं। जनजातीय समाज में लड़कियां प्रायः कई दिनों के लिए अचानक गायब हो जाती हैं और उनके माता पिता को इस बात की कोई चिंता नहीं रहती। लड़कियों के साथ किसी प्रकार का न तो भेदभाव किया जाता है और न उन पर कोई सख्त नज़र ही रखी जाती है। प्रायः काम के लिए लड़कियों को बाहर भेजने के लिए उनके मां बाप ही जिम्मेदार होते हैं जो बदले में जल्दी से पैसा कमाने के लिए उन्हें भेज देते हैं। इस तरह के काम पर भेजने के लिए किसी प्रकार के पंजीकरण का कोई प्रावधान नहीं है। एजेन्सियों का अपना अच्छा संजाल होता है और प्रारम्भिक भुगतान के बाद वे लोग लड़कियों को वेश्यालयों में दलालों के हाथ बेंच देते हैं।

उड़ीसा, भारत में सबसे गरीब राज्यों में से एक है, इसलिए लड़कियों की तस्करी के लिए अधिक प्रवणशील है। ऐसे पर्याप्त साक्ष्य हैं कि न केवल यौन शोषण के लिए बल्कि अंग व्यापार के लिए भी तस्करी होती है। यहां तक कि महिलाओं के ऐसे मामले भी हैं जिनमें 10-30 वर्ष के उम्र वर्ग की महिलाएँ जो मानसिक रूप से विकलांग होती हैं, अचानक से हमेशा के लिए गायब हो जाती हैं। अध्ययनों ने दिखलाया है कि कालाहांडी–बोलंगीर–कोरापुट (**के बी के**) जिलों– जो उड़ीसा राज्य के सबसे गरीब जिले हैं, में अंग व्यापार के लिए रिक्शा खींचने वालों की तस्करी कर नौपाड़ा से उत्तर प्रदेश के झांसी लाया गया। ऐसे उदाहरण और दृष्टांत फुलबानी में भी मिले हैं। संबलपुर से लेकर झरसुगुदाह तक के पूरे रास्ते पर तस्करी का यह सिलसिला चलता रहता है।

राजस्थान में करौली जिला अल्पवयस्क लड़कियों द्वारा वेश्यावृत्ति के लिए बदनाम है, जिसमें वहां के समाज की स्वीकृति और भी आश्चर्यजनक है। करौली में बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, हैदराबाद और दिल्ली से खरीदकर लड़कियां खरीदकर लाई जाती हैं। चुरु में प्रवासी मजदूरों की पत्नियां यौन शोषण का शिकार होती हैं। मध्य प्रदेश–उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित धौलपुर में वेश्यावृत्ति एक व्यावसायिक कारोबार बन चुका है। टोंक जिला राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 11 पर स्थित है और सेक्स हब के रूप में प्रसिद्ध है। यह राजनट समुदाय के उच्च संकेन्द्रण वाला क्षेत्र है। इसमें तस्करी का रास्ता उदयपुर से होकर गुजरात की ओर है। एक बार गुजरात पहुंच जाने के बाद वे डूंगरपुर से मध्य प्रदेश तक आते जाते रहते हैं। भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़ और राजस जैसे जिले ऐसे क्षेत्र हैं जहां एचआईवी/एड्स की उपस्थिति बहुत अधिक है।

पश्चिम बंगाल में गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए गए कुछ पथ प्रदर्शक अध्ययनों ने दिखलाया है कि कैसे चाय बागानों में काम करने वाली महिलाएँ बिहार, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में अपने को तस्करी के खतरे में डालते हुए भी प्रवास पर चली जाती हैं। उपभोक्तावाद के साथ जुड़कर हितकारी माहौल इस तरह के बड़े पैमाने पर होने वाले महिलाओं की तस्करी को बढ़ावा देते हैं जो अपने और अपने बच्चों के लिए बेहतर जीवन स्तरों की तलाश का प्रयास करते हुए यौन शोषण का शिकार हो जाती हैं। एइला नामक तूफान से प्रभावित क्षेत्रों हिंडोलगंज से लेकर कैनिंग बल्कि हावड़ा तक सर्वाधिक सुभेद्य बनकर उभरा है। सोनागाछी के रेड लाइट एरिया में जिन महिलाओं के साक्षात्कार लिए गए उनमें से अधिकांश महिलाएँ या लड़कियां मुर्शिदाबाद और उत्तरी 24 परगना जिले से थीं। बड़ी संख्या में महिलाएँ बांग्लादेश से भी थीं। सोनागाछी में कुछ महिलाएँ ऐसी भी हैं जिन्हें 'अग्रवाली' (बेदिया समुदाय की लड़कियां) कहकर संबोधित किया जाता है जो यहां आजीविका कमाने के लिए आई थीं।

अब तक पढ़े गए अनुभागों की समझ के बारे में मूल्यांकन कर लेना महत्वपूर्ण होगा।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) महिलाओं और बच्चों में सुभेद्यता कारको को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार सामाजिक और जनांकिकीय संकेतकों की पहचान करिए।

2) 'पलेर्मो प्रोटोकॉल' पर एक अनुच्छेद लिखिए।

आगे आने वाले अनुभाग में आप उन सांस्कृतिक कारकों के बारे में पढ़ेंगे जो मानव तस्करी के संकेतक हैं।

2) सांस्कृतिक घटक

ऐसे सांस्कृतिक समूहों का व्यापक प्रसार है जो गैर-कानूनी यौन व्यापार में लिप्त हैं। इन समूहों में पुरुष साधारणतया स्वयं ही अपनी पुत्रियों/बहनों की आय पर जीवन व्यतीत करते हैं और यहां तक कि अपनी ही पुत्रियों और बहनों के लिए ग्राहकों की व्यवस्था भी करते हैं। आन्ध्र प्रदेश की लाम्बदा समुदाय एक ऐसा ही समूह है जिसे रायलसीमा क्षेत्र में सुगालिस नाम से संदर्भित किया जाता है। रायलसीमा में माटमा समुदाय, तेलंगाना में जोगिनी और आन्ध्रप्रदेश में बासवी ऐसे समुदाय हैं जो वेश्यावृत्ति को जीवन पद्धति की तरह स्वीकार करते हैं। अध्ययनों ने इस बात का खुलासा किया है कि यह लगभग समान दृश्य होगा यह देखना कि बेदिया लड़की जो वेश्यावृत्ति करती थी, वास्तव में घर पर अपने दो भाईयों का पालन पोषण करती थी और इस बात के लिए विश्वस्त थी कि वे दोनों बाद में बुढ़ापे में उसका ख्याल रखेंगे या कि एक जवान मां जिसने इस बात पर जोर दिया कि उसकी छोटी बच्ची आजीविका के लिए वही विकल्प नहीं चुनेगी जो स्वयं उसने चुना था। देवदासी मुख्य तौर पर कर्नाटक में संकेन्द्रित हैं और आन्ध्र प्रदेश में भी ये कलावन्थुलु नाम से पाई जाती हैं। जोगिनी लड़कियां अधिकांशतया आन्ध्रप्रदेश के रायलसीमा और तेलंगाना क्षेत्र के कुछ भागों में मिलती हैं। विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के बीच विवाहों का आयोजन एक सामान्य व्यवहार है। डोम्मरा लोग किसी दूसरे डोम्मरा से विवाह नहीं करते उसी तरह राजस्थान के राजनट लोग अपने उसी समुदाय में विवाह नहीं करते। बेदिया पुरुष कंजर से विवाह कर सकता है। राजनटों का उच्च संकेन्द्रण राजस्थान में और पश्चिमी बिहार के कुछ जिलों में है। बेदिया समुदाय उत्तर प्रदेश में संकेन्द्रित है जिसमें भी बेदिया–कंजर बस्ती और नट–कंजर बस्ती हैं जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान में है।

बाक्स सं. 3.3

सुभेद्यता संकेतक

सामाजिक और जनांकिकीय

1) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति जनसंख्या
   - महिला साक्षरता दर
   - उम्र विशिष्ट लिंगानुपात
   - महिलाओं के विरुद्ध अपराध
   - एचआईवी/एड्स का फैलाव

2) सांस्कृतिक
   - प्रतिबंधित समुदाय
   - परंपरागत तौर पर व्यवहृत

3) आर्थिक
   - गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या
   - मौसमी कार्य अवसर
   - खाद्य असुरक्षा

4) पर्यावरणीय

   प्राकृतिक आपदा प्रवण क्षेत्र

3) आर्थिक कारक

यहां हम लोग कुछ आर्थिक कारकों के बारे में चर्चा करेंगे जो एक व्यक्ति या जनसंख्या के एक हिस्से को तस्करी के लिए सुभेद्य बनाता है।

क) गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

गरीबी से आक्रांत अधिकांश क्षेत्र भारत के केन्द्रीय, पूर्वी और उत्तर पूर्वी मेखलाओं में स्थित हैं जिसमें पूर्वोत्तर राज्य, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, तेलंगाना और आन्ध्रप्रदेश का रायलसीमा क्षेत्र शामिल हैं। इन क्षेत्रों का अधिकांश हिस्सा जनजातीय क्षेत्र है जहां लोगों के पास भूमि संसाधन बहुत कम है और लोग खेतिहर तथा अन्य श्रम गतिविधियों पर निर्भर हैं जो उन्हें तस्करी के लिए सुभेद्य बनाता है। गरीबी से आक्रांत अन्य क्षेत्र केन्द्रीय और उत्तर–पूर्वी कर्नाटक, दक्षिणी महाराष्ट्र, केन्द्रीय उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की कुछ बस्तियों में संकेन्द्रित हैं। यह क्षेत्र भी मानव तस्करी के लिए प्रवणशील क्षेत्र हैं।

ख) मुख्य और सीमांत खेतिहर मजदूर (पुरुष और महिला)

गरीबी से आक्रांत क्षेत्रों में बहुमत लोग बिना खेतिहर भूमि के हैं और लगभग सभी खेतिहर गतिविधियों में दैनिक मजदूरी पर निर्भर हैं। चूंकि ये खेतिहर गतिविधियां मौसमी होती हैं, उनके लिए आय अर्जन के अवसर बहुत कम होते हैं जो इन लोगों को मानव तस्करी के लिए प्रवणशील बना देता है। इन मजदूरों में से प्रमुख भाग सीमांत खेतिहर मजदूरों का है, जिनके पास आय के और भी सीमित अवसर हैं और जो केवल थोड़े से खेतिहर मौसमी महीनों तक सीमित रहते हैं। प्राप्त हुई मजदूरी इतनी मामूली होती है कि वे अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं का प्रबंध भी नहीं कर पाते; इसलिए ऐसे समूह तस्करों के प्रलोभनों के प्रति संभावनाशील होते हैं क्योंकि उन्हें तस्करी संजाल के बारे में भी कोई जानकारी नहीं होती। पुरुष और महिला दोनों मुख्य खेतिहर मजदूरों की आबादी मुख्यतया बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश, केन्द्रीय महाराष्ट्र, पश्चिमी गुजरात, राजस्थान के कुछ हिस्सों और उत्तर-पूर्वी तमिलनाडु के अधिकांश जिलों में संकेन्द्रित हैं। इनमें से अधिकांश क्षेत्रों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का भी उच्च संकेन्द्रण है।

ग) खाद्य असुरक्षा

राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, बिहार, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ राज्यों में हुए अध्ययनों में संकेत मिले हैं कि इन राज्यों में लगभग 80 प्रतिशत में खराब खेतिहर संस्थात्मक और अवसंरचनात्मक सेवाओं के चलते खाद्य असुरक्षा व्याप्त है। इस जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पूरे वर्ष भर बिना खाद्य सुरक्षा के रहता है।

4) पर्यावरणीय कारक

बिहार का कोसी मेखला और आसाम, मेघालय तथा पश्चिम बंगाल में ब्रह्मपुत्र और गंगा के बाढ़ क्षेत्र ये सभी आपदा प्रवण क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र भीषण बाढ़ के चलते बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापित अवस्था में छोड़े हुए साल-दर-साल जलप्लावित रहते हैं। इसी प्रकार भारत के केन्द्रीय हिस्सों, राजस्थान और गुजरात में सूखे की स्थितियां लोगों को बाहरी सहायता की ओर देखने के लिए मजबूर कर देती हैं। इसी तरह तटीय मेखला भी खारे पानी के जलप्लावन हेतु प्रवणशील रहता है। इस प्रकार वहां के देशीय जनसंख्या को तस्करी के लिए अधिक सुभेद्य बना देता है।

3.6 सारांश

यह इकाई सुभेद्यता और प्रवासन का समग्र तौर पर दृष्य प्रस्तुत करता है। यह मानव तस्करी के विभिन्न स्वरूपों को पहचानने की कोशिश करता है जो महिलाओं को अधिक प्रभावित करते हैं और जिन्हें सुभेद्यता संकेतकों की तरह जाना जाता है। यह इकाई प्रवासन और मानव तस्करी के विश्लेषण में नारीवादी परिप्रेक्ष्य को निर्मित करने की पूरी चेष्टा करती है। जैसा कि हम एमएडब्ल्यूजीएस कार्यक्रम के अन्य दूसरे पाठ्यक्रमों में पढ़ चुके हैं, महिलाएं संरचनात्मक तौर पर वंचित स्थिति में रखी गई हैं इसीलिए वे प्रवासन और तस्करी के प्रति भी अधिक सुभेद्य हैं। जेंडर, प्रवासन और मानव तस्करी के बीच परस्पर संबंधों का अन्वेषण करने के लिए अंतर-संबद्धता एक महत्वपूर्ण उपागम है। अंततः यह इकाई मानव तस्करी की सुभेद्यताओं, स्थितियों और उसके विभिन्न स्वरूपों का व्यापक अन्वेषण करती है।

3.7 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) तस्करी को परिभाषित करो और जेंडर तथा प्रवासन के संबंध में इसकी चर्चा करो।

2) उन आर्थिक और सामाजिक संकेतकों का पहचान करो और उन पर चर्चा करो जो महिलाओं और लड़कियों को तस्करी हेतु सुभेद्य बनाते हैं। अपने उत्तर को पुष्ट करने के लिए केस स्टडीज का सहारा लीजिए।

3) क्या जेंडर, प्रवासन और तस्करी परस्पर संबद्ध हैं? नारीवादी दृष्टिकोण से चर्चा कीजिए।

3.8 संदर्भ

Alvarez Maria, Beatriz and Alessi Edward, J. (2012). 'Human Trafficking Is More Than Sex Trafficking and Prostitution: Implications for Social Work'. Affilia. 27 (142).

Baye, Eneze Modupe-Oluwa and Silke, Heumann. (2014). 'Migration, Sex Work and Exploitative Labor Conditions: Experiences of Nigerian Women in the Sex Industry in Turin, Italy, and Counter-Trafficking Measures'. *Gender, Technology and Development*. 18 (77).

Dutta, Mondira. (2011). A Study on 'Mapping Vulnerability to Trafficking of Women and Children in India', sponsored by UN Women and the National Commission for Women, March 2011 New Delhi: UN Women.

Mansberger, M. (2011). 'Critical thoughts on Human Trafficking and How to Include the Subject in a Mainstream Education System in India'. Social Change, 41: 611. DOI: 10.1177/004908571104100408.

http://www.palermoprotocol.com/general/the-palermo-protocol accessed on 22nd July 2012.

Robyn, Ryle, (2012). Questioning Gender: A Sociological Exploration, Sage: LA

Truong, Thanh-Dam (2003). 'Gender, Exploitative Migration, and the Sex Industry: A European Perspective'. *Gender, Technology and Development.* Vol. 7 (31), DOI: 10.1177/097185240300700102.

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Baye, Eneze Modupe-Oluwa and Silke, Heumann. (2014). 'Migration, Sex Work and Exploitative Labor Conditions: Experiences of Nigerian Women in the Sex Industry in Turin, Italy, and Counter-Trafficking Measures'. *Gender, Technology and Development*. 18 (77).

Mansberger, M. (2011). 'Critical thoughts on Human Trafficking and How to Include the Subject in a Mainstream Education System in India'. Social Change, 41: 611. DOI: 10.1177/004908571104100408.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 4 प्रवासन और विकास

संरचना — मंदिरा दत्ता

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रवासन, विकास और जेंडर : संपर्क की कड़ियां

4.4 प्रवासन की लागत और उससे वसूलियां

4.5 कौशलयुक्त प्रवासी

4.6 अंतर्राष्ट्रीय श्रम प्रवासन के निहितार्थ

4.7 सारांश

4.8 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

4.9 संदर्भ

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

विकास का संप्रत्यय (concept of development) केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जब इसके प्रति समग्रतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाए। वे प्रवासी जो अपना मूलस्थान छोड़कर चले जाते हैं उन्हें भी विकास में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए। प्रवासी व्यक्ति को एक ओर कार्यबल के लिए अतिरिक्त मानव शक्ति और दूसरी ओर समुदाय के लिए अतिरिक्त भार भी समझा जाना चाहिए। यदि कोई समुदाय प्रवासन द्वारा लाए गए परिवर्तनों के साथ रह सकता है तो प्रवासन समुदाय के विकास को उन्नत बनाने में सहायता कर सकता है। हाल के कुछ वर्षों से प्रवासन और विकास के बीच संबंध को लेकर विमर्श बढ़ता जा रहा है जो मूलतः शरणार्थियों और विकास सहायता के बीच संबंधों की चर्चा से उभरा था।

यह विमर्श मोटे तौर पर 'उत्तरी' (यूरोपीय, उत्तरी अमेरिकी) दृष्टिकोण को लेकर विकसित हुआ है जो ऐसे मूल प्रत्ययों से निकला है जो मोटे तौर पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका में साझे तौर पर स्वीकृत विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के लिए, यह एक सामान्य धारणा है कि यदि एक बार मूल देश विकास के उच्चतर स्तरों पर पहुंच जाएं तो प्रवासन को उल्लेखनीय तौर पर कम किया जा सकता है। हालाँकि, अनुभवजन्य साक्ष्य यह संकेत करते हैं कि प्रवासन और विकास के बीच संबंध अत्यधिक जटिल हैं और यह भी कि विकास स्वयं कम की बजाय अधिक प्रवासन की ओर ले जाता है।

विकास के व्यापक प्रत्यय को अंगीकृत करना अधिक महत्वपूर्ण है। विकास को अधिकांशतया आर्थिक वृद्धि के साथ सहयोजित कर दिया जाता है जो प्रवास करने की कमतर आवश्यकता की ओर ले जाता है। हालाँकि लोगों को इस संकुचित दृष्टिकोण से आगे जाना चाहिए और लोगों की दोनों के प्रति समझ पर विचार करना चाहिए। इनमें तुलना प्रवासन और विकास के विमर्श हेतु अन्तर्दृष्टि पैदा करता है, जिसमें प्रवासियों की अपेक्षित भूमिका और उनके संघों तथा सरकार द्वारा मूल देश और गंतव्य देश में निर्धारित किए गए कदम भी शामिल होते हैं। प्रवासियों के वास्तविक सुख और अपने जीवन को नेतृत्व देने की उनकी क्षमताओं पर भी चर्चा की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता

वस्तुओं और भवनों के निर्माण पर प्रवासियों द्वारा किए गए खर्च को अधिकांशतया 'गैर-उत्पादक' माना जाता है परन्तु जब तक वे लोगों और समुदायों के सुख में योगदान करते रहें उन्हें 'विकास' के तौर पर देखा जा सकता है।

प्रवासन और विकास के बीच संबंधों, मूल देशों में विकास पर प्रवासियों के पहलों और उनसे होने वाली वसूलियों के व्यापक मूल्यांकन को गंभीर अनुभवजन्य आंकड़ों के साथ विमर्श में विभिन्न स्थितियों को मजबूती प्रदान करने की आवश्यकता है। इन मूल्यांकनों को विकास के तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आयामों तथा यह लोगों की आजीविकाओं को किस तरह से प्रभावित करता है, इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

प्रवासी संघों हेतु पहलकदमी के लिए सरकार के समर्थन को सुसंगत विकास रणनीति में प्रवासियों की सहभागिता को प्रोत्साहित करने की बजाय प्रवासियों के माध्यम से विकास को प्रोत्साहित करने की तरह देखा जा सकता है।

अब हम इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ चुकने के बाद, आप सक्षम होंगे कि :

- जेंडर, प्रवासन और विकास के बीच संपर्क की कड़ियों को समझ सकें;
- जेंडर के परिप्रेक्ष्य से विदेश से आने वाले धन का विश्लेषण कर सकें; और
- कुशल मजदूरों की तरह महिलाओं की संकल्पना को आलोचनात्मक ढंग से समझ सकें।

4.3 प्रवासन, विकास और जेंडर : संपर्क की कड़ियां

प्रवासन और विकास के बीच संपर्कों को अक्सर विकासात्मक गतिविधियों में प्रवासियों की सहभागिता के द्वारा सुझाया जाता है। यह सहभागिता हमेशा समस्या-मुक्त नहीं रहती; राष्ट्रीय विकास के लिए स्थितियों को निर्मित करने के लिए जिम्मेदारियों को सरकारों से स्थानांतरित कर व्यक्तिगत प्रवासी और प्रवासी संघों की ओर कर देने का खतरा रहता है। सभी प्रवासी उद्यमी या 'विकास मजदूर' बनने के इच्छुक नहीं होते। नीति निर्माताओं के बीच यह अपेक्षा और ऐसे ही अन्य स्थायी विचार मूल देशों में प्रवासियों को विकास में सहभागी बनना उनके लिए प्रोत्साहक नहीं होता। ऐसी आशान्वित नीतियों और अपेक्षाओं को व्यक्तिगत प्रवासियों पर प्रक्षेपित करना लगता है नीति विफलता का स्थाई नुस्खा बन गया है। यद्यपि कई प्रवासन और विकास गतिविधियां ग्रामीण क्षेत्रों और खेतिहर गतिविधियों पर केन्द्रित होती हैं, प्रवासियों की गतिविधियां और निवेश उत्तरोत्तर शहरी क्षेत्रों में संकेन्द्रित होता है। शहरीकरण की इस सामान्य प्रवृत्ति का प्रतिरोध करना बहुत सतही जान पड़ता है। प्रवासियों का जीवन दो या अधिक भिन्न भिन्न 'संसारों' में रहता है और वे दोनों में ही गहराई से डूबे होते हैं। यह स्थिति विकास में महत्वपूर्ण योगदान करने के लिए उन्हें इज़ाजत देती है, जिसे हमेशा पहचान नहीं मिल पाता। प्रवासी लोग विकास में न केवल 'विकास एजेण्ट' की तरह संवर्द्धित मूल्य जोड़ते हैं बल्कि विमर्श में नया दृष्टिकोण लाकर भी ऐसा करते हैं। प्रवासी जनसमूह सार्वजनिक विमर्श में सुधार लाने और सरकारी सुधारों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्यों के साथ एक दबाव समूह की तरह काम कर सकता है। उदाहरण के लिए, गरीब देशों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं होते कि वह शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का व्यापक प्रसार कर सके जो शिक्षा, जेंडर और स्वास्थ्य के लक्ष्यों को प्राप्त

करने के लिए आवश्यक हैं। बच्चों को अपने गांव से बाहर यात्रा करनी पड़ती है वह भी हर बात के लिए नहीं बल्कि सबसे मौलिक शिक्षा पाने के लिए। गुणवत्ता की बात ही जाने दीजिए अभिभावकों के लिए गुणवत्ता से अधिक स्थानीय उपलब्धता अधिक महत्वपूर्ण बात है। यही हालत स्वास्थ्य सुविधाओं के वितरण में भी है कि लोगों को यहां तक कि मूलभूत चिकित्सा के लिए सुदूर यात्रा करनी पड़ती है। स्थानीय जनसंख्या के स्थानांतरण की व्याख्या में सेवाओं के वितरण में असमानता प्रायः उतनी ही महत्वपूर्ण हो उठती है जितनी कि रोजगार अवसरों का असंतुलित वितरण।

अब तक हमारा विश्लेषण लम्बे समय तक स्थिर रूप से चलने वाली स्थितियों तक केन्द्रित था। छोटी अवधियों के लिए अप्रत्याशित प्रवासन के साथ, शिक्षित मजदूरों का विदेशगमन गृहराष्ट्र के लिए शुद्ध हानि की तरह होता है। जैसे-जैसे समय बीतता है हालाँकि, बाद में आने वाली पीढ़ी उनके शिक्षा निर्णयों को अंगीकृत कर लेता है और धीरे-धीरे शिक्षा का औसत स्तर आंशिक तौर पर या पूर्ण रूप से सुधरने लगता है, जो लंबी अवधि में संभावित ''शुद्ध लाभ'' की तरह होता है। इस संक्रमण की अवस्था में कुछ अतिरिक्त कोशिशें अवश्य प्रचालित होती रहती हैं। विशेष रूप से एक वृहद आर्थिक और सामाजिक साहित्य है जो इस बात पर जोर देता है कि प्रवासियों के संजालों की निर्मिति प्रवासियों के गृह राष्ट्र और मेजबान राष्ट्र के बीच वस्तुओं, कारकों और विचारों के आदान प्रदान को सुविधाजनक बनाता है।

लगभग सभी प्रकार के गैर-मजबूरी वाला प्रवासन मांग से प्रचालित (demand driven) होता है। जब लोग कहीं और अवसरों के बारे में सुनते हैं, जो वास्तव में उनकी शिक्षा का ही असर होता है, वे उस ओर जाने के लिए उत्सुक या प्रवृत्त होते हैं। इसलिए, जैसे-जैसे राष्ट्रों का विकास होता है, प्रवासन में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। लम्बी अवधि के दौरान, जैसे-जैसे समाज और अर्थव्यवस्थाएं उच्चतर से निम्नतर जन्मदर और मृत्युदर जैसी जनांकिकीय संक्रमण की ओर बढ़ती हैं, वैसे-वैसे उनकी प्रवासन का संक्रमण भी निवल उत्प्रवासन से निवल आप्रवास की ओर हो सकता है। हालाँकि यह विकासक्रम यह सूचित नहीं करता कि विदेशाभिगमन या उत्प्रवासन कम होता है, साधारण तौर पर होता यह है कि निवल प्रवाह विपरीत हो जाता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे विकसित राज्य आप्रवासन वाले प्रमुख राज्यों में से हैं। महाराष्ट्र राज्य में आने वाले प्रवासियों के प्रकारों में बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश जैसे अल्प-विकसित राज्यों और अन्य बीमारु राज्यों से आने वाले प्रवासी हैं। गरीबी अलग-थलग पड़े हुए हिस्से और क्षेत्रों में प्रायः प्रवासन का दर निम्न होता है जबकि वैश्विक प्रणाली में सक्रिय तौर पर सहभागिता करने वाले क्षेत्र उच्च स्तर के प्रवासन और गतिशीलता की प्रकृति से जाने जाते हैं।

प्रवासन, वैश्वीकरण के और अधिक स्पष्ट अभिव्यक्तियों में से एक है। प्रवासन, वैश्वीकरण और विकास के प्रसंग में महिलाएं वैश्विक कामगारों की तरह उभरी हैं। अब हम वैश्वीकरण के उत्पाद के तौर पर 'वैश्विक स्त्री' की स्थिति का अवलोकन करेंगे। बारबरा इरेनरीख और अर्ली रसेल हॉक्शिल्ड को उद्धृत करते हुए कहा जा सकता है, ''धन्यवाद करो उस प्रक्रिया को जिसे हम हल्के फुल्के ढंग से 'वैश्वीकरण' कहते हैं, महिलाएं इस तरह से गतिशील हैं जैसी इतिहास में कभी नहीं रहीं'' (पृष्ठ 238)। बढ़ती हुई वैश्विक असमानता के कारण, महिला श्रम गरीब देशों से अमीर देशों की ओर आया, नौकरानी और यौन कर्मियों की तरह कार्य करने के लिए प्रवास कर रही हैं। महिलाओं का जेंडरीकृत विशिष्ट कार्य वैश्विक दक्षिण से वैश्विक उत्तर की ओर स्थानांतरित हो गया है जिसमें प्रवासी महिलाएं अपने परिवारों को भयानक गरीबी से निकालने और उनकी सहायता करने में सक्षम हो रही हैं। इरनेरीख और हॉक्शिल्ड के अनुसार स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले सौदेबाजी के इस स्वरूप

को 'विश्वव्यापी जेंडर क्रांति (Worldwide gender revolution)' की तरह संदर्भित किया जा सकता है। जेंडर क्रांति के कारण तीसरी दुनिया से आने वाली महिला प्रवासी कामगार न केवल अपने परिवारों की भौतिक स्थितियों को सुधार रही हैं बल्कि साथ ही आजाद होने की स्थितियां भी प्राप्त कर रही हैं। प्रवासी महिला कामगारों को उनके परिवारों के लिए स्वतंत्र आय अर्जक की तरह भी देखा जा रहा है। वैश्विक असमानता ने सवेतन काम करने के लिए महिलाओं को उनके घरों से धकेल दिया और ठीक उसी समय उन्हें कामगारों के रूप में असंख्य चुनौतियों का सामना करना पड़ा। महिला प्रवासी कामगारों के लिए प्रवासन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों निहितार्थ हैं। इनमें से कुछ नकारात्मक निहितार्थ हैं:

- महिला प्रवासी कामगार अधिकतर गहरी रंग वाली महिलाएँ हैं इसलिए वे नृजातीय भेदभाव की शिकार हैं। इतना ही नहीं, आया, नौकरानियों और यौन कर्मियों की तरह उनके कार्य भी उन्हें सार्वजनिक नज़रों से दूर रखते हैं।

- महिला प्रवासी कामगार अपने घर लौटने पर प्रायः रुढ़िवादिता का सामना करती हैं। उन्हें पीड़िताओं, अनैतिक, पराए, समाज के लिए निकासी तथा वस्तुओं के प्रतिनिधि की तरह पेश किया जाता है। (पाइल, 2011, पृष्ठ 253)।

- महिला कामगार अपने मेजबान देशों में मजदूरी, कार्यस्थलों पर उत्पीड़न और नकारात्मक प्रतिनिधित्व के संदर्भ में प्रायः भेदभाव का अनुभव करती हैं। लेकिन महिला प्रवासी कामगारों के लिए समस्याएं तीव्रतर होती जाती हैं। परिनास ने पाया है कि लॉस एंजिलिस और रोम में फिलीपींस की घरेलू कामगारों को अपने परिवारों से पीड़ाजनक अलगाव, निम्नतर पेशेवर पद, उनकी मेजबान देशों से सामाजिक बहिष्कार और अर्द्ध नागरिकता या छद्म नागरिकता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा (पाइल, 2011, पृष्ठ 254)।

- महिला कामगार जिन्होंने देखभाल जैसी सेवाओं के लिए पारदेशीय प्रवासन किया था उन्हें अपनी तस्करीकृत कामगार की स्थितियों के चलते जेंडर, नृवंश और जाति आधारित भेदभाव के बहुल स्वरूप का सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए, बॉल ने सउदी अरब में फिलीपींस की नर्सों के अनुभवों के बारे में लिखा है जिसमें इस बात का खुलासा किया है कि अपने पेशों में नर्सों को महिला के रूप में भेदभाव का सामना करना पड़ता है जो विपरीत लिंगों के अविवाहित सदस्यों को आपस में छूने जैसे वर्जित काम को करने के कारण होता है (पाइल, 2011)।

- महिला पारदेशीय कामगारों को उनकी राष्ट्रीयता और नृजातीय पहचान के आधार पर पेशेवर बंदी का सामना भी करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, ताइवान में इंडोनिशियाई नर्सों को फिलीपींस की नर्सों की अपेक्षा सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण काम करने पड़ते हैं। सिंगापुर में, फिलीपींस से आई नर्सों को महीने में एक या दो दिन की छुट्टी मिलती है जबकि इण्डोनेशियाई और श्रीलंकाई नर्सें की पात्रता ऐसी सुविधाओं के लिए नहीं भी हो सकती है। इसी प्रकार नृजातीय अल्पसंख्यक वर्ग से आने वाली नर्सों को प्रशिक्षण और प्रोन्नति के लिए कमतर रूप से प्रोत्साहित किया जाता है (पाइल, 2011)।

- जो महिलाएँ आवासीय घरेलू कामगारों के रूप में काम करने के लिए प्रवासन करती हैं उन्हें सामाजिक अलगाव की समस्या का सामना करना पड़ता है। पाइल (2011) के अनुसार, परिवार के अंदर उनकी पहचानों को एक सामाजिक हस्ती की बजाय सिर्फ वस्तु तक सीमित कर दिया गया है।

- प्रवासी महिलाओं की कार्यदशाएं सचमुच चिंता का विषय हैं। उदाहरण के लिए घरेलू नौकरानियों को खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं दिया जाता, सोने के लिए अपर्याप्त समय छोड़ा जाता है और अपनी निजता बनाए रखने के लिए भी कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी जाती। इन मुद्दों से इतर उन्हें शारीरिक और यौन उत्पीड़नों का शिकार भी होना पड़ता है। वाल्डमैन ने अपनी रिपोर्ट में खुलासा किया है कि प्रतिवर्ष लगभग सौ श्रीलंकाई महिलाओं का शरीर उनके गृहदेश वापस भेजा जाता है। इसी तरह सिंगापुर में लगभग 100 नौकरानियां ऊँची बिल्डिंगों से गिरकर मर जाती हैं। इसका कारण सिर्फ आत्महत्या या सफाई या कपड़े पसारने के दौरान फिसलकर गिरना हो सकता था (पाइल, 2011)।
- प्रवासी महिलाओं का परिवार देखभाल की कमी का सामना करते हैं क्योंकि उनके घरों में मां या महिला सदस्य नहीं होती।

ऊपर उल्लिखित ये कुछ चुनौतियां हैं जिनका सामना पारदेशीय महिला प्रवासी कामगारों द्वारा किया जाता है। उन महिला कामगारों पर नज़र डालना भी आवश्यक है जिनके पास कठिन परिस्थितियों का प्रतिरोध करने के लिए अपनी एजेन्सी जैसी कोई संस्था है। इसलिए, कुछ पारदेशीय महिला प्रवासी कामगारों की कहानियों को पढ़ना महत्वपूर्ण है जिन्होंने अपने काम के संबंध में अपनी पहचानों को साबित करने के लिए संघर्ष किया। **चेंग** (2004) के अनुसार, फिलीपींस की और ताइवान की महिला नियोजकों ने देखभाल काम के संबंध में अपनी सकारात्मक पहचानों की पुनर्निर्मिति के लिए संघर्ष किया। इसके अलावा, महिला प्रवासी कामगार अपने परिवारों की भौतिक स्थितियों में सुधार को देखकर भी अपने को सशक्त महसूस करती हैं। प्रवासन, महिलाओं को उनके परिवारों के लिए उन्नत और बेहतर घरेलू स्थितियां प्रदान करना, छोटे व्यवसायों का वित्तीयन करना, पारिवारिक कर्ज को पाटना और अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करना सम्भव बनाता है (बारबर 2000; गैमबर्ड 2000; फ्रैंक 2001, पाइल, 2011 में उद्धृत)।

4.4 प्रवासन की लागत और उससे वसूलियां

प्रवासन ढांचे पर निर्मित प्रवासियों के नेटवर्कों के परिणामों का विश्लेषण करने के लिए हाल में एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक शास्त्र उभरा है। यह प्रवासन के संचयी सिद्धांत का खाका खींचता है, यह उल्लिखित करते हुए कि पहले प्रवासी साधारणतया मध्यवर्गीय सामाजिक-आर्थिक पदानुक्रम से आते हैं और ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके पास इतने पर्याप्त संसाधन हों जिससे वे यात्रा के खतरों और लागत को वहन कर सकें लेकिन इतने समर्थ भी न हों कि बाहर जाकर काम करना अनाकर्षक हो। फिर इन प्रवासियों से उनके परिवार वाले और मित्र बन्धु रोजगार पाने और प्रवासन में सहायता के लिए संबंध बनाते हैं, जिससे कि उनके लिए बाहर जाने की जोखिम और लागत काफी हद तक कम हो सके। यह अतिरिक्त सदस्यों के लिए प्रवासन की सम्भाव्यता और आकर्षण को बढ़ाता है, उन्हें प्रवास के लिए और आगे अन्य समूह के लोगों से संजाल संपर्कों के साथ जुड़ने के लिए अनुमति देता है। प्रवासन की लागत और उससे वसूलियों पर चर्चा में जेंडर के आयाम को समझना महत्वपूर्ण है। जीन एल. पाइल (2011) के अनुसार महिलाओं को मूल्यवान 'श्रम निर्यात' की तरह देखा जाता है क्योंकि पूर्व में हुए शोध अध्ययनों ने दिखलाया था कि पुरुष प्रवासियों की अपेक्षा महिलाएँ घर पर पैसा भेजने के मामले में अधिक विश्वसनीय हैं। **मेरिएम एस. लो** (2008) समालोचनात्मक ढंग से वसूलियों के जेंडरीकृत और सामाजिक प्रभावों का अवलोकन करती हैं। वह तर्क देती हैं कि महिलाओं के लिए वसूली का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकता है क्योंकि वसूलियां परिवारों की शक्ति संरचना को आर-पार काटती

हैं जो महिलाओं के लिए आर्थिक निर्भरता और सुभेद्यताओं को पुनर्जन्म देती हैं। यदि लो को उद्धृत करें तो, ''वसूलियां, महिलाओं के अतिरिक्त, जेंडर क्रमों और पदानुक्रमों को स्थायित्व प्रदान करती प्रतीत होती हैं, जो अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए वसूलियों का रणनीतिक रूप से पुनर्निवेश कर सकती हैं, जेंडर पदानुक्रम की सौदेबाजी के लिए वसूलियों को एक अवसर की तरह इस्तेमाल कर सकती हैं और अंततः पारिवारिक प्रबंधन में अधिक निर्णय निर्माण शक्ति लगा सकती हैं'' (2008, पृष्ठ 426)।

प्रवासन, विकास और वसूलियों पर चर्चा में वसूलियों के सामाजिक और मानवीय लागत पर चर्चा करना आवश्यक है क्योंकि महिलाओं के सवाल सामाजिक संरचना में जमे हुए हैं। वसूलियों के जेंडरीकृत आयामों का आंकलन प्राथमिक तौर पर मात्रात्मक पैटर्न में करना कठिन है। जैसा बाख (2011) ने कहा है, वसूलियां केवल पैसे के स्थानांतरण की भौतिक क्रियाओं से परे भी बहुत कुछ है क्योंकि यह गरीबी कम करने और वैश्विक बाजार में श्रम के जेंडर विभाजन के विवाद से बहुत पेंचीदा तरीके से जुड़ा हुआ है। वांग (2006) के अनुसार वसूलियां स्वयं को समझने और संबद्धता के भूगोल का सुराग लेती है और फिर उसमें विस्थापन को उभारती हैं क्योंकि समय और स्थान के महान विस्तार में हाशिए पर रहने वाले समुदाय अनवरत रूप से वैश्विक शहरी केन्द्रों से अन्तर्गुम्फित होते रहते हैं। इस प्रक्रिया में भेजने वाले और पाने वाले के बीच संबंध, स्थापित जेंडर भूमिकाओं की सौदेबाजी, पुनरुत्पत्ति और रूपांतरण का एक स्थान बन जाता है (वांग 2006, उद्धृत बाख 2011 पृष्ठ 139)।

फिलीपींस के खेतिहर गांवों में अपने अध्ययन में **दीर्द्रे मैकके** (2005) ने पाया कि महिला उत्प्रवासन के कारण उन गांवों में सांस्कृतिक मानदण्ड, पारिस्थितिकीय गतिशीलता और आजीविका पैटर्न में आधारभूत तब्दीली आई। नकदी फसल उत्पादन ने गुजारे लायक खेती की संस्कृति को पूरी तरह से प्रतिस्थापित कर दिया। अध्ययन ने दर्शाया कि कुछ महिला प्रवासियों ने वसूली के पैसे का उपयोग अपने नाम से संपत्तियां अर्जित करने में और अपने लिए एक नई आर्थिक पहचान बनाने के लिए की। यह नई पहचान घर पर छूट गए पुरुषों की पहचान पर आधारित थी। लेखिका ने निम्नलिखित उदाहरण दियाः नार्दो (पति) ने ग्लोरिया (पत्नी) द्वारा भेजे गए पैसे का उपयोग अपने को एक व्यावसायिक फसल के उत्पादक के रूप में स्व-नियोजित बनने के लिए किया, फिर भी उसका वर्गीय रूपांतरण विदेश में ग्लोरिया के नेटवर्क और उसके परिवार की सहायता पर निर्भर करता है'' (उद्धृत बाख 2011, पृष्ठ 140)। घर वापस पैसा भेजने की प्रवृत्ति उसकी साहसी, योग्य और आधुनिक के रूप में नई पहचान का हिस्सा है और दूसरी प्रवासी महिलाओं से भी जुड़ाव हुआ जो स्वयं महिला आत्म-सिद्धि की नई पहचान को ग्रहण कर रही थी।

जैसा पहले बताया गया था, प्रवासियों के संजालों की भूमिका काम की उपलब्धता के बारे में सूचना प्रसारित करने और काम खोजने में सत्कार प्रदान करना और सहायता प्रदान करना होता है। इसलिए, पूर्व में हुए प्रवासन ने प्रगतिशील रूप से शिक्षा में अपेक्षित प्रतिफल को बढ़ाया (प्रवासन लागत का निवल) और, परिणामस्वरूप शिक्षा में घरेलू नामांकन को भी। शिक्षा में लगे हुए व्यक्तियों की इष्टतम संख्या में वृद्धि ने देश में शिक्षित कामगारों में उनके हिस्से को भी बढ़ाया। इस अर्थ में प्रवासियों के नेटवर्क का मानव पूँजी निर्माण में और प्रतिभा पलायन के अल्पावधिक हानिकारक प्रभावों को कम करने में सकारात्मक प्रभाव है।

विशेष तौर पर निम्न-कुशल प्रवासियों के पास दो मूलतः अस्पष्ट पहचान हो सकते हैं। एक तरफ तो गंतव्य देशों में वे प्रायः सामाजिक-आर्थिक पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर रहते हैं जो उन्हें सुभेद्य और उत्पीड़क स्थितियों में छोड़ देता है। वहीं दूसरी ओर वे अपने मूल देश में स्थानीय कुलीन वर्ग के भाग हो सकते हैं, जो उन्हें एक विशेषाधिकार वाली स्थिति में रखता है।

प्रवासी संघों के 'सामूहिक' वसूलियों, प्रवासियों या 'गृह नगर' संघों के माध्यम से विकास पहलों पर अवलोकन, प्रायः स्थानीय समुदायों में छोटे स्तर की अवसंरचना परियोजनाओं का समर्थन करते हैं जिससे सामान्य सुख की स्थिति सुधरे। इन पहलकदमियों का स्थानीय आर्थिक वृद्धि पर बहुत सीमित प्रभाव होता है। सामूहिक वसूली परियोजनाओं के मूल्यांकन की तात्कालिक आवश्यकता है क्योंकि ऐसी परियोजनाओं की सफलता और इसके सकारात्मक और नकारात्मक परिणामों को प्रभावित करने वाले कारकों के स्वतंत्र मूल्यांकन बहुत थोड़े से हैं।

प्रवासन से जुड़े हुए बहुतेरी लागतें हैं, प्रवासन प्रक्रिया के दौरान छोड़ी गई आय और प्रत्यक्ष खर्चे तथा मनोवैज्ञानिक लागत भी हैं। कई पश्चिमी देशों के संकुचित दृष्टिकोण के रू-ब-रू आप्रवासन भी परिणाम में उच्चतर प्रवासन लागत के रूप सामने आता है। प्रवासन और विकास के किसी और पहलू की बजाय सम्भवतः वसूलियों के बारे में ही अधिक लिखा जा चुका है। थोड़ी कम प्रशंसनीय तथ्य यह है कि वसूलियां स्वयं प्रवासियों के मूल देश को प्रतिबिंबित करती हैं और यह उच्च रूप में संकेन्द्रित होती हैं जो वापस अपने मूल देश के बहुत थोड़े से कस्बों और गांवों में पहुंचती हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि क्या प्रवासियों की परियोजनाएं ऐसी पहलकदमियों का समर्थन करती हैं जो समुदायों द्वारा पहचानी गईं सर्वाधिक अविलंब आवश्यकताओं को लक्षित करती हैं। बहुत उच्च राजनीतिक संदर्भ में, परियोजनाएं हो सकता है प्रवासी कुलीनों की आवश्यकताओं को पूरा करें, जो आगे चलकर स्थानीय विकास में योगदान की बजाय वृहत्तर असमानता को बढ़ाती है। प्रवासन के मूल देशों की सरकारें प्रवासन के प्रति मुक्त व्यापार या अबाधता का दृष्टिकोण अपनाने की ओर प्रवृत्त होती हैं और कुछ मामलों में प्रवासन का योगदान आर्थिक निर्भरता की ओर भी हो सकता है।

स्थानीय परियोजनाओं के लिए प्रवासियों की सहायता और उनकी वसूलियों पर भरोसा किसी वृहत्तर राष्ट्रीय विकास रणनीतियों के निरूपण हेतु हतोत्साहित करने वाला हो सकता है। इसी प्रकार से पाकिस्तान से युनाइटेड किंगडम जाने वाले अधिकांश प्रवासी मुख्यतः पाकिस्तान के उत्तर में स्थित ग्रामीण जिले मीरपुर से आते हैं। भारत से मध्यपूर्व की ओर जाने वाले प्रवासियों में से अधिकांश भारत के दक्षिणी राज्य केरल से आते हैं (जकारिया, मैथ्यू और राजन 2003) और चीन से प्रवासन तीन दक्षिण तटीय राज्यों गुआंगदांग, फूजिअन और झेजिआंग से और इन प्रांतों के भी बहुत ही विशिष्ट छोटे हिस्सों से होता है। पेरू में, वास्तव में 82 प्रतिशत परिवार जो बाहर से आने वाला पैसा प्राप्त करते हैं, वे अधिकतर अधिक गरीब सिएरा की बजाय अधिक विकसित तटीय प्रांतों से होते हैं वह भी राजधानी, मेट्रापालिटन शहर लीमा में 57 प्रतिशत के साथ (आईओएम, 2008)। पेरू में बाहर से पैसा पाने वाले परिवारों में सिर्फ 5 प्रतिशत से कुछ ही ज्यादा लोग ग्रामीण क्षेत्रों से थे। इसका तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि इससे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों तथा स्वयं ग्रामीण क्षेत्रों के बीच में असमानता बढ़ती है और प्रबलित होती है। इस तरह से सहायता या आधिकारिक विकास सहायता, जो कुछ विशिष्ट समूहों और विशेषतः गरीबी के उन्मूलन की ओर लक्षित हो सकती थी, के विपरीत बाहर से आने वाले पैसे की प्रकृति बिल्कुल अलग होती है। वह प्रवासन के जड़ों के विशिष्ट क्षेत्रों पर केन्द्रित होते हैं जिसमें न तो सबसे गरीब क्षेत्र शामिल होते हैं और न उन क्षेत्रों के सबसे गरीब लोग ही।

आगे पढ़ने से पहले आप निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) महिला कामगारों के लिए प्रवासन के नकारात्मक परिणामों की सूची बनाइए।

2) बाहर से आने वाला पैसा किस प्रकार से प्रवासन की लागत में सहायता करता है?

आने वाले अनुभाग में आप कुशल श्रमिकों के प्रवासन के बारे में पढ़ेंगे।

4.5 कौशलयुक्त प्रवासी

व्यवसाय एवं व्यापार नेटवर्क की निर्मिति में एक दूसरे प्रकार का नेटवर्क प्रभाव शामिल होता है; इसी प्रकार के 'प्रवासी फैलाव की बाह्यता' (diaspora externality) को समाजशास्त्रीय साहित्य में बहुत समय से और अभी बिल्कुल हाल में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में अर्थशास्त्रियों द्वारा पहचान मिली है। वास्तव में बहुत सारे दृष्टांतों में, और मानव व्यापार सैद्धांतिक ढांचे में जो कोई भी आशा करेगा उसके विपरीत, व्यापार और प्रवासन एक दूसरे के स्थानापन्न की बजाय एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। मजे की बात यह है कि इस तरह की सम्पूरकता विषमांग वस्तुओं में व्यापार के लिए अधिकांशतया प्रचलित होना दिखता है, जहां नृजातीय संजाल (ethnic networks) विनिमय किए गए वस्तुओं की प्रकृति से जुड़े सूचना समस्याओं को वशीभूत करने में सहायता करता है। हालाँकि, व्यापार और प्रवासन के बीच सम्पूरकता या स्थानापन्नता के संबंध ने किस तरह प्रवासन के कौशल संयोजन (skill composition of migration) को प्रभावित किया यह अभी भी अस्पष्ट है।

उच्च कौशल युक्त व्यक्तियों का उत्प्रवासन, मूल देशों के लिए नकारात्मक रूप में देखा जाता था और व्यापक पैमाने पर अब भी देखा जाता है क्योंकि वे ऐसे लोगों को खो देते

हैं जो विकास करने में सर्वाधिक उपयुक्त रूप से योग्य हो सकते थे। उपलब्ध आंकड़े सुझाते हैं कि निरपेक्ष संख्याओं के संदर्भ में, कौशलयुक्त प्रवासियों के स्रोत प्राथमिक तौर पर विकसित दुनिया में पड़ते हैं और अपेक्षाकृत कम संख्या में पूर्व और दक्षिण एशिया के मध्यम आय वाले विकासशील देशों में। हालाँकि किसी भी देश के कौशलयुक्त कार्यबल के अनुपात के रूप में कौशलों की हानि का आंकलन यह दिखलाता है कि छोटे द्वीपीय देश और उप सहारा के कई देश उच्च रूप से प्रभावित हैं, और यही वे देश हैं जिनमें प्रतिभा पलायन की परिघटना पाई जा सकती है।

प्रतिभा पलायन की चर्चाओं में प्रवासियों के मूल का विशिष्ट स्थान व्यापक तौर पर अस्पष्ट होता है। यदि कौशलयुक्त लोग सबसे बड़े शहरी क्षेत्रों में संकेन्द्रित हों तो उनका उत्प्रवासन गरीब ग्रामीण क्षेत्रों को बहुत गहरे तक प्रभावित करने नहीं जा रहा है जहां जरूरत हो सकता है सबसे अधिक हो। हैती में कुल डॉक्टरों के लगभग 90 प्रतिशत कदाचित पोर्ट–ओ–प्रिंस में संकेन्द्रित हैं। प्रतिभा पलायन विमर्श के प्रायः उपेक्षित कई परिप्रेक्ष्य अभी भी लंबित हैं। पहला, क्या उच्च रूप से कौशलयुक्त पेशेवर उन स्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त कर्मचारी हैं जहां विकास की सबसे अधिक आवश्यकता है? उदाहरण के लिए, आधारभूत कौशलों से युक्त स्वास्थ्य कर्मियों की आवश्यकता उन पेशेवर डॉक्टरों से अधिक हो सकती है जो आधुनिक अस्पतालों के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानकों में प्रशिक्षित हों। दूसरा, विकासशील देशों में वेतन और कार्य की दशाएं उस क्षेत्र से प्रवासन को बढ़ावा दे सकती हैं परन्तु देश से प्रवासन को नहीं। यद्यपि, इक्कसवीं सदी के आरम्भ के समय दक्षिण अफ्रीका में 32,000 नर्सों के खाली पद थे और कुछ 35,000 पंजीकृत नर्सें देश में निष्क्रिय या बेरोजगारी पाईं गई थीं (ओईसीडी, 2004)।

प्रवासन और कौशलयुक्त श्रमिकों पर चर्चा में श्रम के स्त्रीकरण और वैश्विक देखभाल श्रृंखला की परिघटना के बारे में पढ़ना महत्व की बात है। आप लोग श्रम के स्त्रीकरण की परिघटना के बारे में अपने पहले के पाठ्यक्रमों एमजीडब्ल्यू-002 और एमजीडब्ल्यू-004 में पढ़ चुके होंगे। अब हम लोग श्रम के स्त्रीकरण पर कौशलयुक्त श्रम और अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के संबंध में नज़र डालेंगे। जब पश्चिमी देशों ने सही प्रकार के लोगों को आकर्षित करने के लिए अपनी उत्प्रवासन नीतियों को लागू किया तो कौशलयुक्त श्रमिकों के लिए प्रतियोगिता बहुत तेज हो गई। यह देखा गया कि देखभाल के कामों के क्षेत्र में अधिक महिलाओं को धकेल दिया गया। यही वैश्विक देखभाल श्रृंखला है जो मजदूरी के बदले घर पर या संस्थाओं में लोगों की देखभाल को शामिल करता है। नारीवादी विद्वानों ने देखभाल अर्थव्यवस्था के संप्रत्यय को लेकर बहुत आलोचनात्मक चर्चाएं की हैं और महिलाओं के निकाय और देखभाल कार्यों के बीच विचारधारात्मक धारणाओं के रहस्यों को खोलने की कोशिश की है।

जेंडर, प्रवासन और राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर रचे गए शास्त्रों ने वैश्विक देखभाल श्रृंखला के संप्रत्यय का विश्लेषण किया है। **पॉलिन गार्डिनर बार्बर** (2011) के अनुसार वैश्विक देखभाल श्रृंखला के अन्तर्गत, जब महिलाओं के काम सामाजिक रूप से स्वीकृत प्रजनन के क्षेत्र से निकलकर बाजार की ओर स्थानांतरित हुए, उन्हें देखभाल अर्थव्यवस्था में कौशलयुक्त श्रमिकों की तरह देखा गया। विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर 'देखभाल के स्थानांतरण' की प्रवृत्ति है जिसका एक जोरदार पक्ष यह है कि प्रवासी महिलाओं के मूल देशों में वैश्विक देखभाल की कमी होती गई है। फिलीपींस वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए नर्सों का निर्यात करने वाला सबसे प्रमुख स्थल बन गया। फिलीपींस की 70 प्रतिशत से अधिक नर्सिंग स्नातक विदेशों में काम पाने में सफल रहीं। फिलीपींस से महिला उत्प्रवासन के प्रभाव के रूप में, लगभग 50 प्रतिशत लोग स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाओं तक अपनी

पहुंच कायम नहीं कर पाए हैं (बार्बर, 2011)। कौशलयुक्त महिला श्रमिकों के प्रवासन ने दो स्तरों पर वैचारिक समझ को बढ़ावा दिया है: 'देखभाल का स्थानांतरण (transfer of care)' और 'देखभाल की कमी (deficit of care)'।

अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों में फिलीपींस जैसे देशों के पास महिला कामगारों का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व है। वर्ष 2003 में फिलीपींस से 73 प्रतिशत कार्य संविदाएं महिलाओं के नाम जारी किए गए (रामीरेज़ उद्धृत बाख 2011)। घरेलू देखभाल सहायिकाओं, घरेलू नौकरानियों और नर्सों के रूप में महिलाओं को उत्तरी देशों को स्थानांतरित किया गया। निश्चित रूप से वैश्विक उत्पादन में प्रजनक कार्यों के शामिल होने ने एक ऐसा बाजार निर्मित किया जिसमें मजदूरी के बदले महिलाओं के प्रजनक कार्यों को खरीदा जा सके। ठीक इसी समय इस बढ़ती राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने वैश्विक श्रम बाजार में वर्ग, वंश और जेंडर विषमताओं को भी प्रबलित किया है (उद्धृत बाख़ 2011)।

जेंडर–विलगित व्यवसाय (Gender-segregated occupation) राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय श्रम बाजार का ही अपना हिस्सा है जैसा कि आप अपने पाठ्यक्रम एमडब्ल्यूजी-004 में पढ़ चुके होंगे। इलेक्ट्रॉनिक और वस्त्र कारखानों में युवा महिलाओं को उनकी तेज नज़र, निपुणता और स्वीकृत विनयशीलता के चलते खपा दिया जाता है (संदर्भ बाख़, 2011)। विकासशील देशों से महिलाएं विकसित देशों में बहुत से कारणों से प्रवासित होती हैं: परिवार, घरेलू श्रम, यौन कर्म, मनोरंजन और सत्कार, पेशेवर कार्य, व्यापार और उद्यमशीलता तथा कारखाने में कार्य। विशिष्ट कार्यों में महिलाओं का सम्मिलन प्रवासियों के मेजबान देशों और उनके गंतव्य देशों के प्रवासन पर राष्ट्रीय नीतियों को आकार देता है। मैक्सिको और फिलीपींस जैसे कुछ देश महिला कामगारों को लक्षित करते हैं क्योंकि वे विदेशों से आने वाले पैसे के प्रवाह को निरंतर बनाए रखती हैं (फ़िट्ज़गेराल्ड 2009, बाख़ 2011 में)। यह संक्षिप्त चर्चा किसी देश में जेंडर, प्रवासन और विकास को अन्तर्सम्बंधित करने के महत्व को रेखांकित करती है।

अंतिम तौर पर, मुख्यतः उपलब्ध आंकड़ों की समस्याओं के कारण कौशलयुक्त श्रमिकों के प्रशिक्षण के स्थान को कभी कभार ही विचार में लाया जाता है। जबकि मध्यम-आय देशों जैसे भारत या फिलीपींस जो शिक्षा की लंबी परम्परा संजोए हुए हैं, से आने वाले अधिकांश कौशलयुक्त श्रमिक मुख्यतः अपने मूल देशों में ही प्रशिक्षित किए जाते हैं, लेकिन यही बात गरीब देशों के मामले में सही नहीं है जहां प्रशिक्षण के उन्नत संस्थानें ही उपलब्ध नहीं हैं। एक अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में रहने वाले लैटिन अमेरिकी और कैरीबियन देशों से आए लोगों में से लगभग 55 प्रतिशत को अमेरिका में ही प्रशिक्षित किया गया है; यहां तक कि अमेरिका में चीन और भारत से आने वाले लोगों में 40 प्रतिशत लोग उस देश में प्रशिक्षित किए गए हैं। 1999 में संयुक्त राज्य अमेरिका में काम कर रहे विदेशी वैज्ञानिकों में से दो तिहाई से ज्यादा लोगों को अमेरिका में ही प्रशिक्षित किया गया है।

इस प्रकार बहुत सी प्रतिभाएं गंतव्य देशों में निखारी गईं हैं भले ही उन्हें वहां पैदा न किया गया हो। यह भी स्पष्ट है कि स्थानीय स्तर पर भी गरीब क्षेत्रों में गांवों के बच्चों को अपनी माध्यमिक स्तर और उससे ऊपर की शिक्षा के लिए वृहत्तर बस्तियों की ओर जाना पड़ता है। इस प्रकार सभी स्तरों पर प्रशिक्षण बस्तियों के पदानुक्रम के प्रगतिशील रूप से उच्चतर स्तरों पर घटित होता है, यह ऐसी प्रक्रिया है जिसे प्रवासन द्वारा सुविधा प्रदान की गई है।

यह देखते हुए कि किसी देश या किसी समुदाय के सबसे अच्छे और सबसे प्रतिभाशाली, साथ-साथ सबसे धनी सदस्य उनके जन्म क्षेत्रों से बाहर रहते हैं, और ये प्रवासी या वह समुदाय जो बाहर रहता है, एक ऐसे संसाधन की तरह देखा जाता है जिसे गृह या जन्म

क्षेत्रों के विकास के लिए निचोड़ा या ''उनका फायदा उठाया'' जा सकता है। बिना किसी शंका के, प्रवासी समूह जैसे कि समुद्रपारीय चीनी या विएत कियू ने क्रमशः चीन और विएतनाम के विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और लगातार निभा रहे हैं। हालाँकि इन दोनों ही मामलों में हम लोग मजबूत ''विकासवादी'' राज्यों से निबट रहे हैं। वर्तमान तीव्र आर्थिक विकास में भागीदारी करने के लिए समुद्रपारीय प्रवासी या तो अपने देश में निवेश करें, या विदेशी मुद्रा भेजें जैसा भी वे चुनते हैं। यह बहुत ही अविवेकपूर्ण होगा कि समुद्रपारीय प्रवासियों से उनके मूल देशों के असफल राज्यों और अर्थव्यवस्थाओं में अपने आप से भागीदारी करने के लिए अपेक्षा करना अविवेकपूर्ण होगा और अपने गृह क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहित करने के योग्य होने में भी। उन्हें किसी प्रभाव संरचना के अन्तर्गत काम करना होगा यदि उन्हें अपने मूल देशों पर अपना प्रभाव रखना है तो। यह हमेशा याद रखा जाना चाहिए कि प्रवासी लोगों में से सभी को अपने गृह क्षेत्रों में सरकारों के सर्वाधिक हित में काम करने की आवश्यकता नहीं है और गृह देश में राजनीतिक संरचनाओं को क्षीण करने के लिए सक्रिय रूप से तलाश कर सकते हैं। प्रवासी संसार बहुत ही विषमजातीय है। मूल देश के विकास के लिए काम करने के लिए इसे आवश्यक रूप से समांग संस्था के रूप में होना चाहिए।

अभी पढ़कर खत्म किए पिछले अनुभाग की समझ का आंकलन करने के लिए आप निम्न गतिविधियों को कीजिए।

गतिविधिः

अपने आस पड़ोस में यथार्थ जीवन में घटित किसी कौशल प्रवासन का लेखा-जोखा प्रस्तुत कीजिए, जिसे आपने स्वयं देखा हो या उस अनुभव का हिस्सा रहे हों।

आगे आने वाले अनुच्छेद में आप मूल देश और साथ-साथ गंतव्य देश पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम प्रवासन के निहितार्थों के बारे में पढ़ेंगे।

4.6 अंतर्राष्ट्रीय श्रम प्रवासन के निहितार्थ

यह निश्चित नहीं है कि प्रवासी अपने गंतव्य देशों में रोजगार पा लेंगे या यही कि उनकी मानव पूँजी स्थानांतरणीय है। इस प्रकार, कम से कम प्रवेश के समय, आप्रवासी जन वहां के श्रम बाजार के अकुशल हिस्से तक सीमित रहने को प्रवृत्त रहते हैं। काम खोजने में अपेक्षित और वास्तविक परेशानियां संस्थानों, भाषाओं और मेजबान देश की आदतों की जानकारी के अभाव के परिणामस्वरूप होती हैं। लेकिन आंकलनों ने सुझाया है कि जब विकसित अर्थव्यवस्थाएं प्रवासीय श्रम में भाग लेते हैं तो दूसरे देश से आने वाला विदेशी धन मूल देश में गरीबी को कम करने में भूमिका निभाता है।

यह आंकलन किया जा चुका है कि दक्षिण भारत के केरल राज्य से खाड़ी देशों को होने वाला बड़े पैमान का श्रम प्रवासन उस राज्य में गरीबी को 12 प्रतिशत तक कम करने में योगदान कर चुका है (जकारिया, मैथ्यू और राजन, 2003)। गरीबी उन्मूलन पर विदेशों से आने वाले पैसों के प्रभाव का इसी तरह का विश्वसनीय साक्ष्य लैटिन अमेरिकी देशों से भी उपलब्ध है। फिर भी, केरल द्वारा प्राप्त विदेशी धन की विशाल मात्रा के बावजूद राज्य ने आर्थिक वृद्धि में उसी के समानांतर वृद्धि का अनुभव नहीं किया बल्कि वास्तव में 1980 और 1998 के बीच सकल राज्य घरेलू उत्पादन की सूची में और नीचे चला गया। विदेशों से आने वाला धन मानव पूँजी में सुधार कर सकता है परन्तु ऐसा करने में कुछ जनसंख्या को आगे प्रवासन हेतु निर्भर भी बना देता है।

खाड़ी देशों में और अधिकांश पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया में श्रम प्रवासन का ऐसा प्रतिमान है कि प्रवासियों को गंतव्य अर्थव्यवस्थाओं में स्थायी रूप से बसने की अनुमति नहीं दी जाती। इसका अर्थ होता है कि राज्य (राष्ट्र) ऐसी अस्थाई जनसंख्याओं की मेजबानी करते हैं जिन्हें नागरिकता की बात छोड़िए लम्बी अवधि के निवास का अधिकार भी नहीं होता। प्रवासियों के अधिकारों में, न केवल उचित मजदूरियों और कार्यदशाओं के लिए उनकी पात्रता और मूलभूत सेवाओं तक उनकी पहुंच की बात होती है बल्कि उनके परिवारों को साथ लाना या रखना भी प्रमुख मुद्दों की तरह उभरते हैं। उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और यूरोप की विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, उनके अधिक विकसित अधिकारों के कानूनों के साथ, अस्थाई कामगारों को स्वीकार करने का मुद्दा प्रत्याशित नागरिकों के विरोध में मूलभूत और संवेदनशील सवालों को उठाते हैं जिनका जवाब देना आसान नहीं होता। चूंकि ये अर्थव्यवस्थाएं अपनी खुली राजनीतिक प्रणालियों के साथ आवश्यक रूप से प्रजातंत्र हैं, विशिष्ट नागरिक हित समूहों की आवाजों को प्रायः आप्रवासियों के विरुद्ध उठाया गया, और इसीलिए आप्रवासन कुछ गंतव्य समाजों में एक प्रमुख राजनीतिक मुद्दा बन गया।

2006 से पहले, अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के बहु-आयामी परिप्रेक्षयों को संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित तमाम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और शिखर सम्मेलनों के परिणाम प्रपत्रों में लक्षित किया गया था। 1974 के संयुक्त राष्ट्र विश्व जनसंख्या सम्मेलन में अंगीकृत किए गए विश्व जनसंख्या कार्य योजना और 1984 के जनसंख्या पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सहमत हुए कार्रवाई की सिफारिशों दोनों ने अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के प्रासंगिक पहलुओं को लक्षित किया जिसमें विकास के साथ इसके संबंध, प्रवासी कामगारों का संरक्षण, अनियमित प्रवासन और जबर्दस्ती विस्थापन जैसे मुद्दे शामिल थे। 1994 में काइरो में जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा अंगीकृत कार्रवाई का कार्यक्रम आज तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन पर स्वीकार किए गए सबसे व्यापक लेखों में से एक है। इसके बाद अधिकांश संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनों और उनके परिणाम प्रपत्रों, जिसमें सामाजिक विकास हेतु विश्व शिखर सम्मेलन (कोपेनहेगन, 1995), महिलाओं पर चौथा विश्व सम्मेलन (बीजिंग, 1995), संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दि घोषणा (2000) और विश्व शिखर सम्मेलन परिणाम (2005) शामिल हैं, ने अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के प्रासंगिक पहलुओं को लक्षित किया (आईओएम, 2008)।

काइरो सम्मेलन के बाद से अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन और विकास, महासभा की द्वितीय समिति की कार्ययोजना में द्विवार्षिक तौर पर आने वाले एक उप-विषय के रूप में शामिल हो गया है। कई वर्षों के लिए द्वितीय समिति ने अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन और विकास पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करने की संभावनाओं पर विचार किया। इस वाद विवाद का परिणाम, दिसम्बर 2003 में, अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन और विकास पर बिना किसी बंधनकारी परिणाम के उच्च-स्तर के एक संवाद के आयोजन करने के निर्णय के रूप में सामने आया।

विश्व के कुल शरणार्थियों के 80 प्रतिशत से अधिक की मेजबानी विकासशील देशों द्वारा की जाती है और वे भी अपने जन्म वाले देश के अन्तर्गत ही रहते हैं। इनमें से, शरणार्थियों का बहुमत तथाकथित दीर्घ शरणार्थी स्थितियों (protracted refugee situations) में है, जो पांच वर्षों से अधिक अवधि से शिविरों, बस्तियों में बद्ध या शहरी क्षेत्रों में स्थित हैं और देश प्रत्यावर्तन, पुनर्वास या स्थानीय एकीकरण जैसे स्थायी समाधानों के अवसरों की अनुपस्थिति में अपने अधिकारों तक पहुंच में गम्भीर प्रतिबन्धों का सामना करते हैं।

लक्षित विकास सहायता (targeted development assistance टीडीए) की जरूरत वहां पड़ती है जहां दाता राज्य, प्रथम आश्रय वाले मेजबान देशों को संरक्षण और स्थायी समाधानों तक शरणार्थियों की पहुंच को बढ़ाने के लिए साधन के रूप में समुद्रपारीय विकास

सहायता प्रदान कर सकता है। इसकी केन्द्रीय प्रकृति एक एकीकृत विकास उपागम है जो शरणार्थियों और मेजबान समुदायों दोनों की आवश्यकताओं पर, उदाहरण के लिए आजीविका अवसरों को सुधारने, सेवा प्रावधानों या अवसंरचना के माध्यम से, केन्द्रित रहती हैं। इसका उद्देश्य होता है अधिकारों, स्व-सामर्थ्य और जहां सम्भव हो स्थानीय एकीकरण तक शरणार्थियों की पहुंच को बढ़ाना। कुछ निश्चित शर्तों के अन्तर्गत विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को लक्षित विकास सहायता का शरणार्थियों की मेजबानी करने वाले क्षेत्रों में उपयोग उनके मूल क्षेत्रों में शरणार्थियों के संरक्षण और स्थायी समाधानों तक उनकी पहुँच को बढ़ा सकता है, जबकि साथ ही साथ विकसित और विकासशील दोनों देशों की चिंताओं को लक्षित करते हुए।

भूतकाल से हमारे पास कुछ सफल और कुछ असफल उदाहरणों की भरमार है, जो ऐसी स्थितियों के प्रति अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं जिकसे अन्तर्गत लक्षित विकास सहायता संरक्षण और दीर्घावधि के समाधानों तक पहुंच को बढ़ाती है और साथ ही दाता और मेजबान दोनों देशों की चिंताओं और हितों का ख्याल भी रखती है। 1980 के दशक के दौरान अफ्रीका में शरणार्थियों को सहायता पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों (International Conferences on Assistance to Refugees in Africa - आईसीएआरए) और केन्द्रीय अमेरिका में शरणार्थियों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (International Confernce on Refugees in Central America - सीआईआरईएफसीए) दोनों में 'शरणार्थी सहायता और विकास (Refugee Aid and Development)' के मत का उपयोग किया गया। 2000 के दशक के शुरुआती दौर में इस प्रत्यय को पुनर्जीवित किया गया और जांबिया तथा यूगांडा की स्थितियों में उपयोग किया गया। साथ ही साथ महत्वपूर्ण मानव अधिकार निहितार्थों को समेटे हुए, दीर्घ शरणार्थी स्थितियों (पीआरएस) ने राज्यों के लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया। दक्षिणी मेजबान राष्ट्रों के लिए वे अल्प संसाधनों हेतु प्रतियोगिता के कारण स्थानीय समुदायों के साथ तनाव उत्पन्न कर सकते हैं और किसी अंतर्राष्ट्रीय भार वहन की अनुपस्थिति में इसे एक सुरक्षा खतरे की तरह माना जा सकता है।

1980 के दशक के आखिरी दौर और 1990 के आरम्भिक दौर में केन्द्रीय अमेरिका जैसी स्थितियों में स्व-सामर्थ्य और स्थानीय एकीकरण पर आधारित एकीकृत विकास सहायता उपागम दाताओं और मेजबान देशों के हितों की रक्षा करते हुए शरणार्थियों के अधिकारों में भी वृद्धि करने में सफल हुआ था। विकसित देशों के लिए लक्षित विकास सहायता के पास अनियमित द्वितीयक आवागमनों को कम करने, आतंकी भर्ती के संभावी स्रोतों का उन्मूलन करने और दीर्घावधि के मानवतावादी बजट को कम करने की सामर्थ्य है। विकासशील देशों के लिए लक्षित विकास सहायता (TDA) के पास स्थानीय मेजबान समुदायों को लाभ पहुंचाने, अल्पविकसित सीमा क्षेत्रों के विकास में योगदान करने और सामाजिक संघर्ष तथा असुरक्षा को कम करने की सामर्थ्य है।

सफल लक्षित विकास सहायता (TDA) के लिए कुछ राजनीतिक घटकों की जरूरत होती है। भूतकाल के अभ्यास सुझाते हैं कि इसके लिए एक महत्वपूर्ण, दाता और मेजबान दोनों देशों के परस्पर सम्बद्ध प्रतिबद्धता की जरूरत होती है। उत्तरी राष्ट्रों के लिए आवश्यक होगा कि वे सार्थक अतिरिक्त विकास सहायता प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध हों जो वर्तमान बजट का स्थानापन्न न बने जो अन्यथा राष्ट्रीय नागरिकों को लाभ पहुंचाता बल्कि एक ऐसे एकीकृत उपागम के तौर पर हो जो शरणार्थियों और नागरिकों दोनों को लक्षित करे।

इस बीच दक्षिणी राष्ट्रों के लिए जरूरी होगा कि वे स्व-सामर्थ्य और संभावित स्थानीय एकीकरण का प्रस्ताव देने को इच्छुक हों; शरणार्थी संरक्षण क्षमता को बढ़ाने की प्रतिबद्धता। राजनीतिक समझौते को सुविधाजनक बनाने के लिए एक तटस्थ बिचौलिया और एक

विश्वसनीय सौदेबाजी की प्रक्रिया की जरूरत होगी। सफल लक्षित विकास सहायता (TDA) के लिए कुछ व्यावहारिक घटकों की आवश्यकता होती है। इनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्च आयुक्त यूएनएचसीआर और विकास कर्ताओं के बीच संस्थागत सहयोग; सरकार और नई बजट दिशाओं में एकीकरण जो सरकारी विभागों के विभाजन को रूपांतरित कर सके और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह कि एकीकृत उपागम पर आधारित सही प्रकार के हस्तक्षेप हों, आजीविका पर केन्द्रित, पूर्व प्रचलित सामुदायिक संरचनाओं का उपयोग और परियोजना के क्रियान्वयनों को जांचने परखने के लिए मूल्यांकनों का उपयोग करे।

यदि इन पूर्व शर्तों को पूरा किया जा सकता है तो यह भी संभव होगा कि हम एक नए उत्तर-दक्षिण 'भव्य सौदेबाजी' की ओर बढ़ने का काम कर सकें जो संरक्षण और दीर्घावधि के समाधानों तक शरणार्थियों की पहुंच को बढ़ा सकता है; साथ ही दक्षिणी राष्ट्रों के विकास की चिंताओं और उत्तरी राष्ट्रों की सुरक्षा चिंताओं का पूरी तरह समाधान भी कर सके। शरणार्थियों के लिए एकीकृत विकास उपागम के वायदे को पूर्ण करने के लिए आवश्यक ठोस कदमों में भूतकाल में शरणार्थियों के संरक्षण को बढ़ाने के लिए विकास सहायता को लागू करने के व्यवहारों से मिले सबक का व्यवस्थित विश्लेषण करना शामिल है।

दाता और मेजबान दोनों राज्यों की चिंताओं और हितों को बेहतर ढंग से समझने के लिए दोनों देशों से स्वतंत्र परामर्श किया जा सकता है जिससे कि परस्पर लाभकारी, दोनों के लिए विजयी स्थिति वाले सहयोग के आधारों की पहचान की जा सके। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न मंत्रालयों जैसे कि विकास मंत्रालय, गृह मंत्रालय और विदेश मंत्रालय के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण सहयोग के साथ ही 'शरणार्थी और विकास सहायता' के लिए नए अन्तर-मंत्रालयी बजट का सृजन भी शामिल हो।

विकास अभिकर्ताओं जैसे कि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) और विश्व बैंक को राष्ट्रीय विकास में शरणार्थियों द्वारा निभाए जाने वाले महत्वपूर्ण संभावनाशील भूमिका की पहचान करनी चाहिए तथा जब उनको उपेक्षित किया गया तब उनके द्वारा विकास पर डाले गए संभावित 'बंधनकारी अवरोध' की भी पहचान की जानी चाहिए। जीएफएमडी को इस बात की मान्यता देनी चाहिए कि व्यापक 'प्रवासन और विकास' कार्यवृत्त में शरणार्थी एक महत्वपूर्ण घटक हैं।

संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त (UNHCR) को दीर्घावधि शरणार्थी स्थितियों (PRS) पर पहले से चल रहे कार्य के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में विकास सहायता और शरणार्थियों पर अन्तर-राष्ट्रीय और अन्तर-एजेंसी संवाद को सहज बनाने में उत्प्रेरक की भूमिका निभानी चाहिए। इस संभावना को पूर्ण करने के लिए उठाए गए पहले कदम में सरकारी मंत्रालयों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और अंतर्राष्ट्रीय संवादों के अन्तर्गत विकास-शरणार्थी संबंध को वापस कार्यवृत्त में शामिल करना होगा। यह प्रवासन और विकास, दीर्घावधि शरणार्थी स्थितियों और आश्रय के बाहरी आयाम तथा आप्रवासन नीति पर चर्चा के एक महत्वपूर्ण घटक को प्रस्तुत करता है और इसे इन सभी वाद-विवादों का एक महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य होना चाहिए।

मुद्दे को कार्यवृत्त में वापस रखने के लिए इस बात की आवश्यकता होगी कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास अभिकर्ताओं को इस तथ्य के प्रति संवेदनशील बनाया गया हो कि शरणार्थी साधारण तौर पर सिर्फ 'यूएनएचसीआर का मुद्दा' नहीं है बल्कि विकास समुदाय द्वारा इसके लिए व्यापक वचनबद्धता की दरकार है। इसके लिए आवश्यकता होगी कि ऐसे राष्ट्र जो पहले से ही सक्रिय रूप से टीडीए (लक्षित विकास सहायता) के उपयोग

के प्रति सक्रिय रूप से प्रतिबद्ध हैं– जैसे कि डेनमार्क की सरकार– वे उस महत्वपूर्ण भूमिका पर, व्यापक वाद-विवाद को प्रोत्साहित करने और सुविधाजन बनाने के लिए नेतृत्वकारी भूमिका निभाएं, जो ये शरणार्थी संरक्षण को बढ़ाने के संबंध में निभा सकते हैं। ऐसी पहलकदमियों का विकास, जो दीर्घावधि समाधानों और शरणार्थी संरक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए लक्षित विकास सहायता का उपयोग करते हैं, द्विपक्षीय स्तर पर, अन्तर-क्षेत्रीय स्तर पर या फिर बहुपक्षीय स्तर पर होना चाहिए। व्यवहार में, इस क्षेत्र में अधिकांश उत्तर–दक्षिण भागीदारी के द्विपक्षीय (उदाहरण के लिए जैसे डेनमार्क व यूगांडा के बीच भागीदारी थी) या फिर अन्तर-क्षेत्रीय (जैसे कई यूरोपीय संघ–अफ्रीकी समझौते हैं) होने की संभावना है। हालाँकि, जीएफएमडी के संदर्भ में बहुपक्षीय संवाद या रक्षा चुनौतियों पर उच्चायुक्तों के संवाद एक ऐसा संदर्भ प्रदान कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत 'सर्वश्रेष्ठ व्यवहार' पर एक अति महत्वपूर्ण चर्चा हो सकती थी और मूलभूत सिद्धांतों पर सहमत हुआ जा सकता था।

4.7 सारांश

यदि कोई समुदाय प्रवासियों द्वारा लाए गए परिवर्तनों के साथ रह सके तो प्रवासन समुदाय के विकास को उन्नत करने में सहायता कर सकता है। प्रवासी संघों के पहलकदमियों का सरकार द्वारा किए जाने वाले समर्थन को प्रवासियों के द्वारा विकास को प्रोत्साहन के रूप में देखा जा सकता है न कि संसक्त विकास रणनीति (coherent development strategy) में प्रवासियों की सहभागिता को प्रोत्साहन देने के रूप में। प्रवासीजन विकास में न सिर्फ एक 'विकास अभिकर्ता' के रूप में बल्कि विमर्श में नए परिप्रेक्ष्यों को शामिल करके भी मूल्यवर्धन करते हैं। प्रवासी, सार्वजनिक वाद-विवाद को सुधारने और सरकारी सुधारों को प्रोत्साहित करने में एक दबाव समूह के रूप में सेवा कर सकते हैं। प्रवासन संजालों (Migration Networks) को लागतों को कम करने और सम्भवतः प्रवासन के लाभों को बढ़ाने की तरह भी देखा जा सकता है। एक दूसरी तरह के नेटवर्क प्रभाव में व्यावसायिक और व्यापार नेटवर्कों की निर्मिति को शामिल किया जा सकता है; ऐसे प्रवासी बाहरीपन (diaspora externality) को समाजशास्त्रीय ग्रन्थों में बहुत पहले से मान्यता मिली हुई और अभी बिल्कुल हाल में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अर्थशास्त्रियों द्वारा भी मान्यता मिल गई। प्रवासियों द्वारा भेजा जाने वाला धन मानव पूँजी को सुधार सकता है लेकिन ऐसा करने में वह कुछ जनसंख्याओं को आगे प्रवासन पर निर्भर भी बना सकता है।

4.8 इकाई के अंत में प्रश्न

1) प्रवासन, जेंडर और विकास में संबद्धताओं की व्याख्या करो। अपने उत्तर की पुष्टि के लिए उपयुक्त केस स्टडीज का विवरण भी दीजिए।

2) लागत और वसूली प्रवासन से किस तरह संबंधित है? जेंडर परिप्रेक्ष्य प्रदान करने के लिए स्त्री श्रम पर विशेष रूप से केन्द्रित केस अध्ययनों और उदाहरणों का उपयोग करो।

3) महिलाओं पर वैश्वीकरण और अंतर्राष्ट्रीय प्रवासन के प्रभाव की चर्चा करो।

4.9 संदर्भ

Bach, Jonathan (2011). 'Remittances, gender, and development'. In Marianne H. Marchnad and Anne Sisson Runyan (Edts.). *Gender and Global Restructuring: Sightings, Sites, and Resistances*. London and New Your: Routledge.

Barber, P. G. (2011). 'Women's work unbound: Philippine Development and Global Restructuring'. In Marianne H. Marchnad and Anne Sisson Runyan (Edts.). *Gender and Global Restructuring: Sightings, Sites, and Resistances*. London and New Your: Routledge.

Ehrenreich, B and A.R. Hochschild (2011). 'Global Women'. In Nalini Visvanathan, Lynn Duggan, Nan Wiegersma and Laurie Nisonoff (Edts.). The Women, Gender and Development Reader. London: Zed Books.

Lo, Marieme S. (2008). 'Beyond Instrumentalism: Interrogating the Micro-dynamic and Gendered and Social Impacts of Remittances in Senegal', Gender, Technology and Development. 12 (413).

OECD (2004). Migration for Employment. Bilateral Agreements at a Crossroad, OECD, Paris.

Pyle, J.L. (2011). 'Globalization and the Increase in Transnational Care Work: The Flip Side'. In Nalini Visvanathan, Lynn Duggan, Nan Wiegersma and Laurie Nisonoff (Edts.). The Women, Gender and Development Reader. London: Zed Books.

World Migration (2008). Managing Labour Mobility in the Evolving Global Economy. IOM, Geneva.

World Migration Report (2011). Communicating Effectively About Migration, International Organization For Migration 2011.

Zachariah, KC, ET Mathew and S Irudaya Rajan. (2003). Impact of Migration on Kerala's Economy and Society" International Migration, 39(1), pp.63-88.

Zachariah, K.C. and S Irudaya Rajan (2009). Migration and Development, The Kerala Experience, New Delhi: Daanish Books.

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

World Migration Report (2011). Communicating Effectively About Migration, International Organization For Migration 2011.

Zachariah, K.C. and S Irudaya Rajan (2009). Migration and Development, The Kerala Experience, New Delhi: Daanish Books.

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
जेंडर एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ

एम.डब्ल्यू.जी.-011
अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

खण्ड

5

विधायन, सामाजिक संरक्षण एवं नीति

इकाई 1
ढाँचे और उपागम 289

इकाई 2
महत्वपूर्ण कानून और ऐतिहासिक निर्णय 311

इकाई 3
कल्याणकारी सहायता एवं सामाजिक संरक्षण के उपाय 343

इकाई 4
नियोजन एवं सामाजिक नीति में महिलाएँ 372

इकाई 1 ढाँचे और उपागम

संरचना — सौम्या उमा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सामाजिक संरक्षण का अर्थ एवं महत्व

1.4 भारत में सामाजिक संरक्षण का ऐतिहासिक विकास

1.5 सामाजिक संरक्षण प्रदाता

1.6 सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों के प्रकार

1.7 सामाजिक संरक्षण के उपागम

1.8 नीतियों एवं कार्यक्रमों का सिंहावलोकन

1.9 सामाजिक संरक्षण में लैंगिक (जेंडर) मुद्दे

1.10 सारांश

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1.12 सन्दर्भ

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

'सामाजिक संरक्षण' और इसके संबंध में होने वाली चर्चा और वाद-विवाद ने बीसवीं सदी के नब्बे के दशक के मध्य से काफी गति पकड़ ली है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, एशियाई वित्तीय संकट, जिसके चलते व्यापक पैमाने पर लोगों की नौकरियाँ चली गई थीं, के बाद से सामाजिक संरक्षण पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और यह स्पष्ट हो गया कि वैश्वीकरण और इसके चलते होने वाले आर्थिक और वित्तीय प्रतिघातों का समाज के कुछ कमजोर वर्गों और हाशिये पर रह रहे समूहों और क्षेत्रों पर प्रतिकूल असर पड़ा है। भारत में इस विषय को एक तरफ तो वृहत्तर नीतिगत ढाँचे में बदलाव और आंतरिक श्रम बाजार में सुधारों के लिए दबाव को लेकर और दूसरी ओर गरीबी और दुर्बलता के लगातार बने रहने वाले उच्च स्तर से निर्धारित किया गया है। (सुदर्शन, 2009)।

आइए, इस इकाई के उद्देश्यों पर एक नज़र डालते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य है:

- सामाजिक संरक्षण के अर्थ और उसकी अवधारणा (कांसेप्ट) को समझना;
- सामाजिक संरक्षण का महत्व और इसे प्रदान करने में राज्य की भूमिका पर चर्चा करना;
- सामाजिक संरक्षण में लैंगिक (जेंडर) मुद्दों को रेखांकित करते हुए चर्चा करना;
- सामाजिक संरक्षण के विभिन्न ढाँचों और उपागमों की सामान्य तौर पर और भारत के विशेष सन्दर्भ में व्याख्या करना; और

- भारत में सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रमों का वर्णन करना।

1.3 सामाजिक संरक्षण का अर्थ एवं महत्व

ऐसे सार्वजनिक कार्यों को, जो किसी भी राज्य व्यवस्था या समाज में सामाजिक रूप से अस्वीकृत समझी जाने वाली दुर्बलता, जोखिम और वंचन के स्तरों की प्रतिक्रिया में किए जाते हैं, सामाजिक संरक्षण के रूप में उद्धृत किया जाता है (नॉर्टन, कॉनवाय और फॉस्टर 2001)। इस प्रकार यह दोनों मामलों– समाज के सर्वाधिक गरीब लोगों के निरपेक्ष वंचन और दुर्बलता तथा वर्तमान में जो गरीब नहीं हैं, उनकी, हादसे और सामान्य जीवन-चक्र की घटनाओं से सुरक्षा को भी लक्षित करता है। **गरीबी की व्यापकता और उसकी प्रचण्डता को कम करने** के किसी भी रणनीतिक प्रयास का यह एक आधारभूत घटक है।

नायला कबीर (2008) लिखती हैं, सामाजिक संरक्षण अपेक्षाकृत नया नीति उपागम है जो दुनिया भर में आबादी की दुर्बलता में कथित वृद्धि की प्रतिक्रिया में सामाजिक सुरक्षा और गरीबी उन्मूलन की चिंताओं को संघटित वैचारिक और नीतिगत ढाँचे में एकीकृत करता है। एक दूसरी परिभाषा के अनुसार, सामाजिक संरक्षण ''उन प्रस्तावों और हस्तक्षेपों का सम्मिलित रूप है जो व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों की जोखिमों और दुर्बलताओं को रोकने, उन्हें कम करने या उस पर काबू पाने के उनके प्रयासों में सहायता करता है और हाशिये के लोगों के अधिकारों और सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करता है'' (अवाटो, कोएट्टल एंड व्हीलर, 2009, पृ. 456)।

सामाजिक संरक्षण को हितलाभों के एक ऐसे संग्रह के रूप में भी समझा जाता है जो राज्य, बाजार, नागरिक समाज और परिवारों या इनकी किसी संयुक्त एजेन्सी के द्वारा व्यक्तियों/परिवारों को अपने बहु-आयामी वंचनों को कम करने के लिए मिलता है या नहीं मिलता है। यह बहु-आयामी वंचन कम सक्रिय गरीब व्यक्ति को प्रभावित करता रहा हो (उदाहरणार्थ बुजुर्ग या दिव्यांगजन) और सक्रिय गरीब लोगों को (उदाहरणार्थ बेरोजगार)। सामाजिक सुरक्षा, जो कि उन स्थितियों में अधिक प्रयुक्त होती है जहां नागरिकों की बड़ी संख्या अपनी जीविका के लिए औपचारिक अर्थव्यवस्था पर निर्भर हो, से उलट सामाजिक संरक्षण विकासशील देशों में अधिक प्रासंगिक अवधारणा है जहां जनसंख्या का एक बड़ा भाग अपनी आजीविका अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से कमाता है।

बॉक्स सं. 1.1

सामाजिक संरक्षण के इन उपरोक्त और अन्य दूसरी तमाम परिभाषाओं में गरीबी और जोख़िमों के प्रति संवेदनशीलता पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

जबकि सामाजिक संरक्षण जोख़िमों के प्रति खतरे को कम करने का महत्वपूर्ण औजार है, यह याद रखना भी महत्वपूर्ण है कि इन 'जोख़िमों' में आर्थिक और सामाजिक दोनों जोख़िम शामिल हैं। आर्थिक जोख़िमों में अर्थव्यवस्था का झटका और आर्थिक प्रकृति की गरीबी जैसे कि सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र, कर्मचारियों की छंटनी, मातृत्व, वृद्धावस्था, बेरोजगारी, मृत्यु, विकलांगता और अन्य समान प्रकार की स्थितियां शामिल हैं जिनका सामना कामकाजी वर्ग को करना पड़ता है। इसके साथ ही अधिकांश देशों में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों की प्रभावकारिता बढ़ाने के उद्देश्य से नीतिगत कार्यवृत्त में सामाजिक खतरे और दुर्बलताओं में लैंगिक (जेंडर) असमानता, सामाजिक भेदभाव और बहिष्करण, परिवार में संसाधनों और शक्ति का असमान वितरण और नागरिक अधिकारों का बहुत सीमित उपयोग भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **रेबेक्का होल्म्स और निकोल जोन्स** (2009, पृ. 2) का तर्क है कि आज तक सामाजिक संरक्षण व्यापक तौर पर आर्थिक जोख़िमों से निबटता था जबकि

सामाजिक संरक्षण पर होने वाली बहसों और चर्चाओं से सामाजिक जोख़िम मोटे तौर पर अनुपस्थित रहते थे। ऐसे विद्वानों ने इस तथ्य पर जोर दिया है कि आर्थिक और सामाजिक दोनों जोख़िम गहरे तौर पर आपस में जुड़े हुए हैं और गरीबी तथा खतरों को कम करने में इनकी अर्थपूर्ण संलिप्तता है।

सामाजिक संरक्षण का अर्थ समझ लेने के बाद, अब हम यह चर्चा करेंगे कि श्रमजीवी वर्ग, विशेष तौर पर महिला कर्मियों के लिए सामाजिक संरक्षण क्यों महत्वपूर्ण है।

सामाजिक संरक्षण का महत्व

सामाजिक संरक्षण, दुर्बलताओं और दीर्घकालीन गरीबी को कम करने हेतु, विशेष तौर पर संकटकालीन स्थिति में बहुत ही महत्वपूर्ण उपागम है। मुनरो (2008) के अुनसार, प्रायः तीन अलग-अलग तर्कों के आधार पर सामाजिक संरक्षण नीतियों को उचित ठहराया जाता हैः

जोख़िमों और बाजार की असफलताओं वाला तर्क बीमा बाजार में असफलता के कारणों में प्रायः सूचनात्मक मुद्दों को लक्षित करता है, साथ ही ऋणों, मानव पूँजी और श्रम बाजार में असफलता को सामाजिक संरक्षण के प्रावधानों के आधार पर उचित ठहराता है।

अधिकारों पर आधारित तर्क सामाजिक संरक्षण की वकालत राज्य की ओर से अपने नागरिकों को दिए जाने वाले विधिक रूप से प्रवर्तनीय सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को प्रदान करने के दायित्व हेतु करता है।

दूसरी ओर आवश्यकता-आधारित तर्क दीर्घकालीन गरीबी को कम करने और उसके उन्मूलन के पक्ष में बहुत ही व्यावहारिक और नैतिक तर्क देता है और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सामाजिक संरक्षण उपायों के उपयोग का बढ़ावा देता है।

बॉक्स सं. 1.2

सामाजिक संरक्षण का उद्देश्य और उसकी भूमिका इसलिए तर्कों के आधार पर अलग-अलग होती है। यह सामाजिक जोखिम और बाजार की असफलता को कम करने, आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने या मानव विकास में योगदान हो सकता है। (प्रियदर्शी, 2011)।

सामाजिक संरक्षण इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि तमाम कम आय वाले देशों में प्रचलित राजनीतिक और आर्थिक वातावरण में गरीबी के संरचनात्मक कारणों को व्यापक तौर पर और पर्याप्त तौर पर समझ पाना और लक्षित कर पाना संभव नहीं भी हो सकता है। उत्पादन के कारकों, मुख्य तौर पर भूमि और पूँजी का असमान वितरण गरीबी का महत्वपूर्ण संरचनात्मक कारण है। असमान वितरण का गरीबों पर यह असर होता है कि उत्पादन के कारकों की उन तक पहुँच बहुत सीमित हो जाती है, जो आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को बहुत मुश्किल और जटिल बना देती है। संसाधनों की कमी के चलते गरीब लोग स्वास्थ्य और शैक्षणिक अवसंरचनाओं तक पर्याप्त रूप से पहुँचने में अक्षम हो जाते हैं। सामाजिक भेदभाव और अपवर्जन इस स्थिति को और भी गम्भीर बना देता है। इसलिए गरीब और दुर्बल लोगों के लिए सामाजिक संरक्षण के उपायों और सुरक्षा जाल की अनुपस्थिति उनके बीच गरीबी को दीर्घकालिक और चिरकालिक बनाए रखता है। वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक वातावरण को देखते हुए संसाधनों के असमान वितरण को ठीक कर पाना सरल कार्य नहीं है। तार्किक रूप से सामाजिक संरक्षण के उपाय व्यापक स्तर पर **गरीबी की प्रचण्डता को कम करने में एक महत्वपूर्ण औजार बन गया है।**

नॉर्टन, कॉनवाय और फोस्टर (2001) के अनुसार सामाजिक संरक्षण निम्न कारणों और तर्कों के आधार पर आवश्यक है:

- सुधार कार्यक्रमों के लिए सामाजिक संबल का विकास करने में;
- सामाजिक न्याय और समानता को प्रोत्साहित करने तथा आर्थिक वृद्धि को अधिक प्रभावशाली और न्यायसंगत बनाने में;
- श्रम बाजार से वंचित अपर्याप्त परिसंपत्ति वाले लोगों को सुरक्षित आजीविका कमाने में नीति आधारित सहायता करना;
- वित्तीय संकट सहित किसी भी जोखिम से सभी नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना;
- सभी के लिए स्वीकृत आधारभूत आजीविका मानकों को सुनिश्चित करना;
- गरीब परिवारों और समुदायों के लिए श्रम शक्ति (मानव-पूँजी) में निवेश को सुगम बनाना;
- आजीविका की खोज में लोगों को आर्थिक जोखिम उठाने के योग्य बनाया;
- सामाजिक संबद्धता और सामाजिक एकजुटता (सामाजिक स्थिरता) को बढ़ावा देना;
- आजीविका सुरक्षा को बढ़ाने हेतु परम्परागत और अनौपचारिक प्रणाली की प्रभावशालिता में होती जा रही कमी की क्षतिपूर्ति करना; और
- मानव-पूँजी के विकास और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जरूरी मूलभूत सेवाओं तक लोगों की सतत पहुंच को सुनिश्चित करना।

आने वाले आगे के अनुभागों में आप पढ़ेंगे कि समाज के गरीब और दुर्बल वर्गों को सामाजिक संरक्षण कौन प्रदान करता है।

1.4 भारत में सामाजिक संरक्षण का ऐतिहासिक विकास

परम्परागत भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली के मूल्य के तौर पर पैतृक जिम्मेदारी परिवार के सभी सदस्यों के संरक्षण हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात थी। अपनी रचनाओं में लेखकों ने समय के साथ विकसित हुई कई सामाजिक व्यवस्थाओं का सन्दर्भ दिया है जिसमें लोगों को संकटों से संरक्षित किया जाता है और व्यक्तियों को उपयुक्त आजीविका प्रदान की जाती है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में चाणक्य द्वारा वित्त, राजनीति और लोकप्रशासन पर लिखित प्रबन्ध ग्रंथ **'अर्थशास्त्र'** में इस बात के संकेत हैं कि प्राचीन भारत में अपने नागरिकों के जीवन और आजीविका की सुरक्षा के लिए राज्य भी सक्रिय रूप से संबद्ध थे। चाणक्य द्वारा प्रस्तावित सार्वजनिक कल्याण के विचारों जैसे कि राजा को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने, समाज के कमजोर वर्गों को संरक्षण प्रदान करने, उत्पीड़न से उनका बचाव करने, उपभोक्ताओं को संरक्षण देने, बुजुर्गों, बच्चों और महिलाओं और साथ ही साथ दासों और कैदियों की देखभाल करने की आवश्यकता होती है। 'अर्थशास्त्र' में व्यापक अकाल में राहत के उपायों जैसे कि रियायती दरों पर खाद्यान्नों और बीजों का सार्वजनिक वितरण करना, लोक निर्माण कार्यों को आरम्भ करना और मजदूरी के तौर पर भोजन प्रदान करना शामिल है।

भट्टाचार्य (1970) ने लिखा है कि आठवीं शताब्दी में शुक्राचार्य द्वारा न्याय पर लिखा गया प्रबन्ध ग्रन्थ **'शुक्रनीति'** सामाजिक संरक्षण प्रणाली के बारे में चर्चा करता है जिसमें बुजुर्ग, बीमार सहायकों (नौकरों) को भरण-पोषण भत्ता, और उनकी असामयिक या अकाल मृत्यु पर परिवार को दिया जाने वाला भत्ता भी शामिल है। मध्यकाल के दौरान लोगों के सामान्य

कल्याण हेतु राज्य की भूमिका के बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। ऐसा देखा गया है कि मुगल काल और उत्तर-मुगल काल के दौरान इन भूमिकाओं में धार्मिक संगठनों, धर्मदानों, न्यासों, जातिसंघों और ग्राम समुदायों की भूमिका बढ़ती गई थी। (कन्नन और पिल्लई, 2007)।

औपनिवेशिक काल के दौरान सरकार ने अकाल राहत उपायों की शुरुआत की थी जो मृत्यु दर और अकालों की आवृत्ति को कम करने में सफल हुए थे। उसके परिणामस्वरूप देश में 1902 से 1943 के बीच कोई भीषण अकाल नहीं पड़ा था। अंतिम भीषण अकाल जिसमें बंगाल प्रभावित हुआ था उसने भी सरकार को प्रोत्साहित किया कि खाद्यान्नों के व्यापार पर नियंत्रण रखे और शहरी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार करे। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान भी स्वतंत्रता प्राप्ति के महान उद्देश्य के भीतर ही व्यापक पैमाने पर फैली गरीबी और असमानता को कम करने का उद्देश्य भी शामिल था।

भारत की नव-स्वतंत्र सरकार ने भी कई सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों को आरम्भ किया जो बाद में काफी आगे बढ़ाए गए। 60 के दशक के आखिरी वर्षों और 70 के दशक के शुरुआती वर्षों में तमाम प्राकृतिक आपदाओं, सूखे और खाद्यान्नों की कमी का सामना करने के लिए उस दौर में नए कार्यक्रम आरम्भ किए गए। 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में जब यह महसूस किया जाने लगा कि आर्थिक सुधारों और भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से मिलने वाले लाभ से समाज का बड़ा तबका वंचित होता जा रहा है तो सामाजिक संरक्षण नीतियों को फिर से अग्रिम पंक्ति में जगह दी जाने लगी। इस दौर में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों की अभिकल्पना और कार्यान्वयन मुख्य तौर पर सरकार के विकेन्द्रीकरण से प्रभावित हुआ जो 1993 में पंचायती राज संस्थाओं (ग्राम सरकार) के माध्यम से आया था। 2004 के आम चुनावों के बाद नई केन्द्र सरकार ने विभिन्न सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों में वृद्धि करते हुए और उन्हें मजबूत करते हुए **''मानवीय चेहरे के साथ विकास''** की ओर कार्य करने का निर्णय लिया। सरकार की इस मंशा का सबसे सशक्त उदाहरण बना राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (एनआरईजीपी) जो बाद में महात्मा गांधी के नाम से जोड़कर 'मनरेगा' के नाम से लोकप्रिय हुआ।

आगे आने वाले अनुभागों में आप पढ़ेंगे कि गरीबों और हाशिये के लोगों को सामाजिक संरक्षण कौन प्रदान करता है।

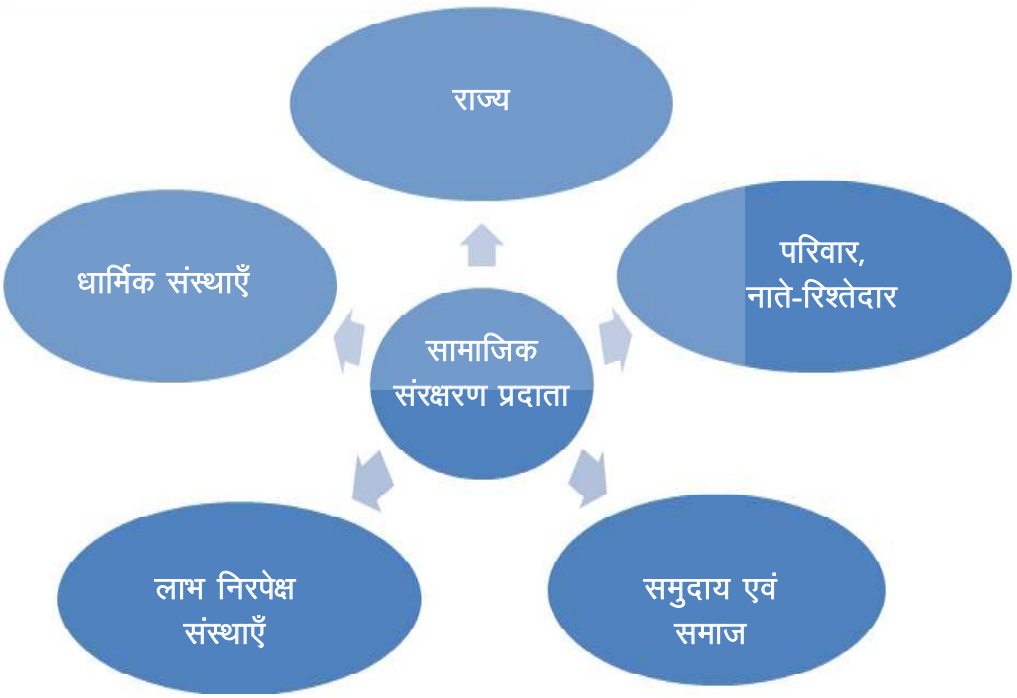
1.5 सामाजिक संरक्षण प्रदाता

परम्परागत रूप से राज्य ही सामाजिक संरक्षण के अंतिम प्रदाता के तौर पर जाना जाता है। सरकारें बहुत ही सीमित जिम्मेदारी जैसे कि आकस्मिक तौर पर संरक्षण का प्रस्ताव कर सकती हैं या फिर व्यापक जिम्मेदारी, जिसमें मदद और सुविधा देकर गरीबी पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कार्रवाई शामिल है, उठा सकती हैं। भारत जैसे राज्य में जहां कल्याणकारी राज्य की अवधारणा प्रबल है, सामान्यतया संवैधानिक रूप से संरक्षित अधिकारों के तौर पर कुछ सामाजिक संरक्षण का निगमन किया जाता है और नागरिकता के कुछ अपरिहार्य घटक और राज्य को दिए गए निदेश के तहत भी, कि संसाधनों का पुनर्वितरण हो और जो अभावग्रस्त हैं उनकी सहायता की जाए। हालाँकि सामाजिक संरक्षण के लिए निर्वहन की जाने वाली जिम्मेदारियों के आधार पर कल्याणकारी राज्यों में बहुत भिन्नता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका सामान्य कल्याणकारिता के लिए लक्षित तरीके से, केवल हाशिये के और हकदार सामाजिक समूहों तक अपने को सीमित रखते हुए, जिम्मेदारी लेता है जब बाजार और/या परिवार असफल हो जाए। इसके विपरीत यूरोपीय कल्याणकारी राज्य सामाजिक सेवाओं के वृहत्तर श्रेणियों के लिए जिम्मेदारी स्वयं उठाता है और इन

सेवाओं को अपने सभी नागरिकों तक उनकी पात्रता मानते हुए उनके वितरण में बहुत ही व्यवस्थित भूमिका निभाता है। (लिन्डा लो, 2003, पृ. 30)।

परन्तु आर्थिक वैश्वीकरण, विकेन्द्रीकरण, विनियमन में ढील और निजीकरण के वर्तमान सन्दर्भ में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा धीरे-धीरे नेपथ्य में खिसकती जा रही है। अब सरकारों और वृहत्तर निगमों ने अपनी प्राथमिकता में बजट, करों और लाभों को ध्यान में रखा है जबकि सामाजिक संरक्षण अैर सामाजिक खर्च पर बहुत कम ध्यान है। इसका प्रभाव विशेष रूप से दुर्बल समूहों जैसे कि महिलाओं, बच्चों, वृद्धों और प्रवासी मजदूरों कर्मकारों द्वारा महसूस किया जा रहा है। गरीब जनता भूख और कुपोषण, बेघर होने, बेरोजगार होकर अपमान सहने का कष्ट सहती है, इन सबसे जूझते हुए कभी-कभी आत्महत्या तक करने को मजबूर है। बच्चे शिक्षा से वंचित हैं और बालश्रम, अपराध, वेश्यावृत्ति और मानव व्यापार में बलात जाने को विवश हैं। अपने देश या विदेश में भी अधिकांश समय बिना किसी सामाजिक संरक्षण और कल्याण संरक्षण के प्रवासी मजदूरों को शोषण और निर्वासन का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार सामाजिक संरक्षण का ढांचा सक्षम है कि वह राज्य को जिम्मेदार ठहराते हुए राज्य और गैर-राज्य एजेंसियों को नियमित करके सर्वाधिक गरीबों को संरक्षण प्रदान करे।

विकासशील देशों में, शोषित और वंचित जनसंख्या के विशाल बहुमत तक पहुंच पाने की राज्य की क्षमता अपने सीमित संसाधनों के चलते सीमित हो सकती है। साक्ष्य भी इसी ओर इशारा करते हैं कि गरीब देशों में सबसे गरीब परिवार बहुत मुश्किल से ही कभी राज्य की प्रत्यक्ष सहायता से लाभान्वित हुआ होगा बजाय इसके लिए जितना वह विभिन्न गैर-राज्य स्रोतों (परिजन, रिश्तेदार, समाज, धार्मिक संगठन इत्यादि) से। ऐसी स्थिति में **बहुविध** एजेंसियां जो सामाजिक संरक्षण प्रदान कर सकती थीं उनमें सरकारी और गैर-सरकारी स्रोत, बाजार, नागरिक समाज और परिवार शामिल हैं। **अनौपचारिक तौर पर सामाजिक संरक्षण समुदाय द्वारा या अन्तः परिवार या अन्तर-परिवार संजालों** द्वारा भी किया जा सकता है।



चित्र 1.1: सामाजिक संरक्षण प्रदाता

अब आप इस इकाई में अब तक पढ़े गए अनुभागों की समझ के आंकलन हेतु निम्न अभ्यास कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) सामाजिक संरक्षण से आप क्या समझते हैं?

2) सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रम किस प्रकार के जोख़िमों को कम करते हैं या संबोधित करते हैं?

3) सामाजिक संरक्षण क्यों महत्वपूर्ण है?

4) सामाजिक संरक्षण कौन प्रदान करता है?

आइए, अब हम विभिन्न प्रकार के सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों के बारे में पढ़ते हैं जिन्हें समाज में सामाजिक और आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों को राहत प्रदान करने के लिए स्थापित किया गया है।

1.6 सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों के प्रकार

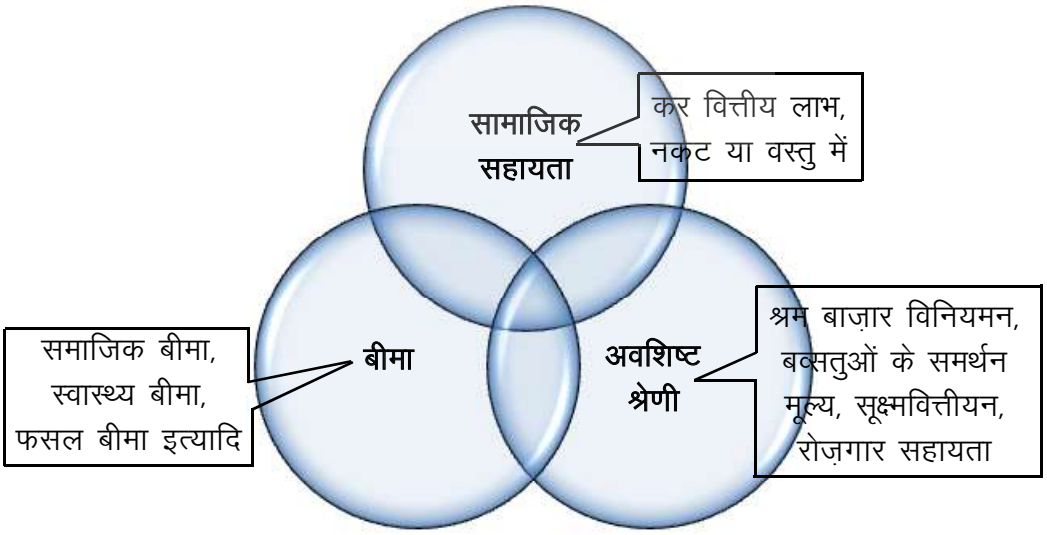
बैरिएंटोस और हुमे (2008, पृ. 1-18) के अनुसार अधिकांश सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम, नीति और क्रियान्वयन की तीन व्यापक श्रेणियों में से एक या अधिक को मिलाकर स्थापित किए जाते हैं :

सामाजिक सहायता - ऐसे कार्यक्रमों की अभिकल्पना गरीब परिवारों की सहायता करने के लिए की जाती है। इसमें उन समूहों को संसाधनों का हस्तांतरण किया जाता है जो वंचन के कारण इसके योग्य समझे जाते हैं। ऐसे कार्यक्रमों में गैर-अंशदायी, कर-वित्तपोषित लाभ नकद या वस्तु रूप में शामिल होते हैं। ऐसे कार्यक्रम कभी-कभी सर्वव्यापी होते हैं, सामान्यतया कुछ निश्चित कोटि के लोगों पर लक्षित होते हैं जिनकी पहचान दुर्बल के रूप में की गई होती है। सामाजिक सहायता का प्रयोग अन्य सामाजिक नीति के लक्ष्यों के तौर पर भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, स्कूलों में मुफ्त भोजन के प्रावधान का उपयोग गरीब परिवारों को अपने बच्चों (विशेष रूप से लड़कियों) को स्कूल में बनाए रखने में किया जा सकता है और दूसरी ओर बालश्रम को हतोत्साहित करने के रूप में भी।

बीमा कार्यक्रम - ऐसे कार्यक्रमों का उद्देश्य आकस्मिकताओं जैसे कि बेरोजगारी, मातृत्व बीमारी या वृद्धावस्था के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना होता है। यह सामाजिक बीमा, फसल बीमा और स्वास्थ्य बीमा के स्वरूप में से किसी भी स्वरूप में हो सकता है। फसल बीमा उन लोगों के लिए है जिनकी आजीविका कृषि आधारित है और उनके लिए यह न्यूनतम आय की गारण्टी उसी प्रकार काम करती है जैसे सामाजिक बीमा वेतनभोगी श्रमिकों के लिए। अप्रत्याशित या आकस्मिक चिकित्सा खर्चों के मुद्दे को लक्षित करने की स्वास्थ्य बीमा में अपरिमित लाभ की संभावना होती है।

अवशिष्ट श्रेणी - यह श्रम बाजार विनियमों से मिलकर बना होता है जो पूर्ण और अधिक प्रतिफल वाले रोजगार को सुगम बनाता है। ऐसे विनियम कार्य के लिए न्यूनतम मजदूरी, श्रमिक रोजगार कार्यालयों, उचित श्रम मानकों और कार्य स्थितियों के लिए मूलभूत मानकों को लागू कराते हैं। गरीबों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों या फिर उनके गुजारे के लिए आवश्यक वस्तुओं (उदाहरणार्थ खाद्यान्नों) के मूल्यों को सहारा देने के लिए राज्य का हस्तक्षेप जो उनकी आय और उपभोग को क्रमशः सहज और सुगम बनाते हैं, सामाजिक संरक्षण के अवशिष्ट श्रेणी के उदाहरण हैं।

निम्न चित्र विभिन्न प्रकार के सामाजिक सरंक्षण कार्यक्रमों के विषयों और उनके पारस्परिक प्रभावों को स्पष्टतया दिखलाता है।



चित्र 1.2:

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ, 1997) के अनुसार, सामाजिक संरक्षण की परिकल्पना निम्नलिखित चार घटकों के साथ की गई थीः

1) सामाजिक सुरक्षा हेतु व्यवस्थाएं (वैधानिक नियोक्ता-संबंधी लाभ);
2) सार्वभौमिक सामाजिक लाभ की व्यवस्थाएं (सभी के लिए लाभ);
3) सामाजिक सहायता हेतु व्यवस्थाएं (विशिष्ट आवश्यकता वाले सभी लोगों के लिए नकद या वस्तु रूप में गरीबी उन्मूलन); और
4) निजी लाभ हेतु व्यवस्थाएं (नियोक्ता-संबंधी या व्यक्तिगत लाभ)।

सामाजिक सुरक्षा सार्वजनिक उपायों से आर्थिक और सामाजिक विपत्तियों से समाज के सदस्यों का संरक्षण करती है जैसे कि स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधानों से और बच्चों वाले परिवारों को सब्सिडी के प्रावधान से। सामाजिक सुरक्षा में सामाजिक बीमा, सामाजिक सहायता, किसी देश की सामान्य आरक्षित निधि से वित्तपोषित कल्याण, पारिवारिक कल्याण, भविष्य निधि और नियोक्ता के प्रावधान, मुख्य तौर से कामगारों की क्षतिपूर्ति और अन्य पूरक कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं। सामाजिक सुरक्षा जाल सुनिश्चित करता है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को जो अभावग्रस्तता या गरीबी का सामना कर रहा हो, नकद आय, स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं के न्यूनतम स्तर प्रदान किए जाएं, जो उसके सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक हो। (आईएलओ, 1997)।

भारत में सामाजिक संरक्षण नीतियों और कार्यक्रमों के विषयों के बारे में चर्चा इस सामाजिक संरक्षण के उपागमों वाले अनुभाग के बाद करेंगे।

1.7 सामाजिक संरक्षण के उपागम

डेवेरेक्स सबेट्स और व्हीलर (2004) ने सामाजिक संरक्षण के चार प्रधान उपागमों के बारे में चर्चा की है :

रक्षात्मक : वंचन या नुकसान से राहत प्रदान करना जैसे कि विकलांगता हेतु लाभ, गैर-अंशदायी पेंशन या अन्य लम्बे समय से गरीब रह रहे लोगों के लिए सामाजिक सहायता कार्यक्रम। संरक्षात्मक उपाय आय और उपभोग हेतु बारीकी से लक्षित सुरक्षा जाल हैं जिनका उद्देश्य आपदा या दुख की अवधि में राहत पहुंचाना है। एक बार जब विज्ञापनी परिप्रेक्ष्य सफल हो जाता है तो फिर संरक्षात्मक उपायों का क्रियान्वयन बहुत आसान हो जाता है।

निवारक या निरोधक : यह उपागम वंचन या नुकसान के घटित होने या उनसे बचने की कोशिश कुछ उपायों से करता है जैसे कि बचत क्लबों की स्थापना करके, सामाजिक बीमा जैसे कि पेंशन और मातृत्व लाभ प्रदान करके।

उन्नतिकारक : ऐसे उपायों का लक्ष्य होता है वास्तविक आय और क्षमताओं को बढ़ाना और लोगों को गरीबी से बाहर निकलने हेतु अवसर उपलब्ध कराना। उन्नतिकारक उपाय अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं क्योंकि वे गरीबी की उस समस्या का उन्मूलन करने की कोशिश करते हैं जो कई शताब्दियों से अस्तित्व में है।

रूपांतरणकारी : ऐसा उपागम सामाजिक सशक्तीकरण द्वारा सामाजिक समता और सामाजिक बहिष्करण से संबंधित विषयों को लक्षित करने की कोशिश करता है। ऐसे रूपांतरणकारी उपायों में भेदभाव विरोधी कानूनों को लागू करना, संवेदीकरण अभियान चलाना, कामगारों के अधिकार हेतु सामूहिक कार्रवाई करना सम्मिलित हैं। मजे की बात यह है कि यह

उपागम सामाजिक संरक्षण के कार्यक्षेत्र को लक्षित आय तक सीमित रखने की बजाय नए क्षेत्रों जैसे कि समानता, सशक्तीकरण और आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की ओर विस्तृत करता है। रूपांतरणकारी हस्तक्षेपों में भेदभाव के विरुद्ध 'सामाजिक रूप से दुर्बल समूहों' (जैसे कि दिव्यांग जनों या घरेलू हिंसा के पीड़ितों) के संरक्षण हेतु नियामक ढांचे में परिवर्धन भी सम्मिलित हैं।

आपको यह बताना महत्वपूर्ण है कि सामाजिक संरक्षण के उद्देश्य, प्रभाव और उपागम जैसा कि ऊपर रेखांकित किए गए हैं, किसी भी दी गई नीति में अतिव्यापन कर सकते हैं या एक साथ अस्तित्व में भी रह सकते हैं।

1.8 नीतियों एवं कार्यक्रमों का सिंहावलोकन

भारत के सन्दर्भ में, राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों की मार्फत, संविधान राज्य को उत्तरदायी ठहराता है कि वह देश के नागरिकों को सामाजिक संरक्षण प्रदान करे। सामाजिक संरक्षण से संबंधित प्रावधानों में अनुच्छेद 38 (लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने हेतु सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करना), अनुच्छेद 39 (नीति के कुछ सिद्धांत), अनुच्छेद 41 (कुछ मामलों में कार्य, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता का अधिकार), अनुच्छेद 42 (निष्पक्ष एवं मानवीय कार्यदशाएं और मातृत्व राहत) और अनुच्छेद 43 (आजीविका मजदूरी इत्यादि) सम्मिलित हैं। इन सभी के बारे में इस खण्ड की इकाई 2 में अधिक विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान की समवर्ती सूची (जो राज्य और संघ सरकारों के उत्तरदायित्वों को अभिन्यस्त करती है) कुछ मुद्दों का उल्लेख करती है जैसे कि:

- सामाजिक सुरक्षा और बीमा, रोजगार और बेरोजगारी।
- श्रमिकों का कल्याण जिसमें कार्य की दशाएं, भविष्य निधियां, नियोक्ता के उत्तरदायित्व, कामगारों को क्षतिपूर्ति, अशक्तता एवं वृद्धावस्था पेंशन और मातृत्व लाभ सम्मिलित हों।

1964 में भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सामाजिक संरक्षण समझौते के अनुसमर्थन के बाद से इसमें अन्तर्निहित मानकों का पालन करना भारत के लिए भी जरूरी हो गया है।

बॉक्स सं. 1.3

संवैधानिक अधिदेश के क्रियान्वयन में 'सामाजिक सुरक्षा' और 'सामाजिक कल्याण' के प्रावधानों सहित द्विशाखीय उपागम का सहारा लिया गया। संगठित क्षेत्र में नियमित आधार पर नियुक्त कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा को अभिकल्पित किया गया और इसमें कर्मचारियों के लिए बीमा और भविष्य निधि योजना को सम्मिलित किया गया। महिलाओं, बच्चों, नौजवानों, परिवार, अनुसूचित जातियों (एससी), अनुसूचित जनजातियों (एसटी), अन्य 'पिछड़े' वर्गों, शारीरिक रूप से अशक्त और अन्य लोगों को सहायता देने तथा उनके सशक्तीकरण के लिए उपायों की एक श्रृंखला द्वारा सामाजिक कल्याण का क्रियान्वयन किया गया।

भारत में सामाजिक संरक्षण नीति की अभिकल्पना मौलिक रूप से दरअसल कल्याण उपागम से की गई थी, जो धीरे-धीरे विकास उन्मुख और फिर सशक्तीकरण उपागम में रूपांतरित होता गया।

भारत में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों को चार वृहत वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जैसे कि:

- गरीबों के जीवन स्तर में सुधार करने वाले (कार्यक्रम संबंधी ढांचा);
- अत्यन्त गरीब लोगों के लिए लक्षित सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम;
- असंगठित/अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा के उपाय; और
- संगठित/औपचारिक क्षेत्र के कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा के उपाय।

इकाई के अंत में संलग्न तालिका 2 प्रत्येक वर्ग में स्थापित कुछ योजनाओं की झलक देती है।

नीचे आने वाले बॉक्स का विषय आपको इस इकाई में अब तक पढ़ चुकी बातों का सारांश बतलाएगा।

बॉक्स सं. 1.4

समझने वाले बिन्दु

- सामाजिक संरक्षण ऐसी सार्वजनिक कार्रवाइयों को संदर्भित करता है जो ऐसी दुर्बलता, जोखिम और वंचन के स्तरों की प्रतिक्रिया में किए जाते हैं, जिन्हें किसी भी समाज में सामाजिक रूप से स्वीकृत नहीं समझा जाता।

  यह गरीबी की व्यापकता और उसकी प्रचण्डता को कम करने के किसी भी रणनीतिक प्रयास का एक अभिन्न घटक है।
- तीन तर्क व्याख्या करते हैं कि सामाजिक संरक्षण क्यों महत्वपूर्ण हैं: बाजार की असफलता का तर्क, अधिकार-आधारित तर्क और आवश्यकता-आधारित तर्क।
- सामाजिक संरक्षण राज्य के साथ-साथ गैर-राज्य स्रोतों द्वारा प्रदान किए जाते हैं, जैसे कि परिवार, समुदाय, धार्मिक संगठनों, नागरिक समाज समूहों और अन्य गैर-सरकारी स्रोतों द्वारा।
- अधिकांश सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों में तीन व्यापक नीति और कार्रवाई के दस्ते में से एक या अधिक सम्मिलित होते हैं: सामाजिक सहायता, बीमा कार्यक्रम और एक अवशिष्ट वर्ग जिसमें श्रम बाजार विनियमन, सूक्ष्म वित्त सेवाएं और रोजगार सहायता शामिल हैं।
- सामाजिक संरक्षण के चार प्रमुख उपागम हैं: रक्षात्मक, निवारक या निरोध, उन्नतिकारक और रूपांतरणकारी।
- महिलाएँ और लड़कियां विभिन्न अवरोधों का सामना करती हैं जो वृद्धि के लिए उनके अवसरों को सीमित करती हैं। यह जेंडर-वैशिष्ट्य, जेंडर-तीव्रताकारी या जेंडर-आधारित अवरोध हो सकते हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि सामाजिक संरक्षण के कानूनों, नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं को अभिकल्पित करते समय और उसके क्रियान्वयन में जेंडर की चिंताओं को जेंडर-मुख्य धारा विषयक और जेंडर-वैशिष्ट्य क्रियाओं के द्वारा समाकलित करें।
- भारत में सामाजिक संरक्षण के चिन्ह को पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व तक ढूंढा जा सकता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों जैसे कि अर्थशास्त्र और शुक्रनीति में शासकों के लिए उनकी प्रजाओं के सामाजिक संरक्षण के मुद्दे पर सविस्तार निर्देश हैं। यह परम्परा मध्यकाल, मुगल, उत्तर-मुगल, औपनिवेशिक और स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भी विभिन्न स्वरूपों में चलती रही।

- पिछले दशकों में, विभिन्न सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों को मजबूत बनाते हुए और बढ़ाते हुए और नए कार्यक्रमों और योजनाओं की शुरुआत करते हुए सरकार ने 'मानवीय चेहरे के साथ विकास' पर ध्यान केन्द्रित किया।
- हाल के वर्षों में, कुछ नए कानूनों को अधिनियमित करते हुए, कल्याण-अभिन्यस्त उपागम से अधिकार-आधारित उपागम की ओर परिवर्तन किया गया है, जैसे कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (एनआरईजीए), असंगठित कामगारों की सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008, शिक्षा का अधिकार अधिनियम और खाद्य सुरक्षा अधिनियम।

भारत में सामाजिक संरक्षण की ओर हाल में होने वाली पहलों को आर्थिक सुधारों, सुधारों के बावजूद लगातार बनी रहने वाली गरीबी और परिणामस्वरूप जो विकास प्रक्रियाओं में छूट गए हैं उन्हें अतिरिक्त नीतिगत सहारा प्रदान करने की राजनीतिक मजबूरी के सन्दर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है।

इकाई के अगले अनुभाग पर जाने से पहले आप नीचे लिखे अभ्यास को करके इस इकाई की अपनी समझ का आंकलन करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) स्वतंत्र्योत्तर युग में कौन से दस्तावेज (कई) अपने लोगों को सामाजिक संरक्षण प्रदान करने की जिम्मेदारी राज्यों में निहित करते हैं?

2) उन चार व्यापक श्रेणियों के नाम लिखिये जिनमें भारत में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों को वर्गीकृत कर सकते हैं।

इस इकाई के आखिरी अनुभाग में हम लोग सामाजिक संरक्षण में जेंडर संबंधित चिंताओं के बारे में पढ़ेंगे।

1.9 सामाजिक संरक्षण में लैंगिक (जेंडर) मुद्दे

अभी बहुत हाल के समय तक सामाजिक संरक्षण कार्यवृत्त को, वंचित या दुर्बल सामाजिक समूहों की कोटियों के मामले में उम्र, स्वास्थ्य स्थिति और औपचारिक श्रम बाजारों से संबंधों के आधार पर विभेदित करके प्रस्तुत किया जाता रहा है। औपचारिक श्रम बाजारों पर अधिक जोर देने से अनजाने में बहुत सी महिलाएं और महिलाओं के अनुभव सामाजिक संरक्षण के तथ्यों से बहिष्कृत होते गए। **ठाकुर, ॲरनॉल्ड और जॉनसन** (2009) ध्यान दिलाते हैं कि जेंडर का प्रयोग कदाचित ही विभेदकारी लेंस की तरह हुआ होगा जिससे गरीब लोगों की जोखिम और दुर्बलता का सामना करने में उनकी क्षमता को समझा गया हो और उसके अनुरूप सामाजिक संरक्षण के उपायों का अभिकल्पन किया गया हो। फिर भी सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम कदाचित ही कभी जेंडर निरपेक्ष रहे हों बल्कि बेकार तरीके से अभिकल्पित कार्यक्रम मौजूदा असमानता को बढ़ा सकते हैं।

महिलाएँ और पुरुष अलग-अलग अवरोधों व सीमाओं का सामना करते हैं और इस तरह महिलाओं और लड़कियों के लिए अवसर अधिक सख्त तरीके से सीमित हो जाते हैं। कबीर (2008) की दृष्टि में, ये सीमाएं हो सकती हैं :

- **जेंडर-वैशिष्ट्य** अर्थात महिलाओं या पुरुषों पर लागू होने वाले सामाजिक मानदण्ड और व्यवहार जो उनके जेंडर के चलते अलग-अलग हों;
- **जेंडर-तीव्रताकारी** अर्थात भोजन, स्वास्थ्य रक्षा, संपत्ति पर हकदारी इत्यादि में आदर्श और प्रथाएं महिलाओं के लिए विभेदकारी हैं ऐसा जब परिवार के सदस्यों के बीच असमानता से झलकने लगे।
- **जेंडर-आधारित** अर्थात जेंडर के चलते हानियों के ऐसे स्वरूप जो व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र में भेदभाव प्रदर्शित करते हों।

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि इन सीमाओं के चलते लड़कियां और महिलाएँ दुनिया के कई भागों में 'अत्यन्त गरीबों' के बीच असंगत रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं। जेंडर से संबंधित बाधाएं न केवल श्रम बाजार तक महिलाओं की पहुंच को सीमित करती हैं बल्कि कार्यरत महिलाओं को प्रायः अधिक बेकार वेतनों, अधिक अनियत कार्य और मजदूरी तथा स्वरोजगार के अधिक असुरक्षित स्वरूपों तक भी सीमित कर देती हैं। ऐसा विशेष रूप से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में, वह भी जहां सामाजिक संरक्षण तक लोगों पहुंच नहीं होती, वहीं होता है। इतना ही नहीं महिलाएँ विशेष रूप से यौन हिंसा और जेंडर आधारित हिंसा, व्यापक होती गरीबी और शारीरिक असुरक्षा से प्रभावित होती हैं।

महिलाओं के लिए अवसर प्रायः घरेलू कार्यों और बच्चों के लिए उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी, विश्व के कुछ क्षेत्रों में उनकी सार्वजनिक गतिशीलता पर सांस्कृतिक अवरोधों और रोजगार अवसरों में रूढ़िवादिता और बंटवारे के चलते खत्म हो जाते हैं या बहुत सीमित हो जाते हैं। कम उम्र में विवाह और बच्चों को पालने की जिम्मेदारी से लड़कियों की शिक्षा, कौशल विकास और अन्य अवसरों तक पहुंच सीमित हो जाती है। इन सभी और अन्य कई कारणों से महिलाएँ और लड़कियां बहुत उच्च स्तर के वंचन का सामना करती हैं। इसलिए किसी भी समाज में उनके अनुभव और उनके द्वारा सामना किए जा रहे अवरोध उसी समाज में लड़कों द्वारा सामना किए जा रहे अवरोधों और अनुभवों से नितान्त भिन्न होते हैं। इसलिए सामाजिक संरक्षण के लिए जेंडर आधारित उपागम बिल्कुल आवश्यक हो जाता है।

यूरोपियन आयोग (2008), विभिन्न क्षेत्रों में जेंडर समता प्राप्त करने के लिए दो साथ-साथ चलने वाले उपागमों की हिमायत करता है :

मुख्यधारा में जेंडर - नीति प्रक्रिया के सभी स्तरों- अभिकल्प, कार्यान्वयन, निगरानी एवं मूल्यांकन में इस उद्देश्य के साथ जेंडर दृष्टिकोण को एकीकृत करना कि महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता को प्रोत्साहन मिले। मुख्यधारा में जेंडर को लाने का अर्थ कतई नहीं है कि यह केवल महिलाओं से संबंधित है बल्कि यह महिलाओं और पुरुषों दोनों के लाभ के लिए उनके बीच रिश्ते से संबंधित है।

- जेंडर-वैशिष्ट्य कार्रवाइयां - जेंडर विश्लेषण और मुख्यधारा में जेंडर परिप्रेक्ष्य को लागू करने से पहचानी गयी महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानताओं को रूपांतरित करने के अतिरिक्त ऐसी कार्रवाइयों की जरूरत पड़ती है।

सामाजिक संरक्षण नीतियां भी जेंडर को मुख्यधारा में स्थापित करने और जेंडर-वैशिष्ट्य कार्रवाइयों का समर्थन करती हैं। तालिका 1 (इकाई के अंत में संलग्न) वर्तमान समय में प्रयोग में लिए जा रहे सामाजिक संरक्षण के विभिन्न औज़ारों की सूची प्रस्तुत करती है। जेंडर आधारित ज़ोखिमों को लक्षित करने के लिए क्या तरीका अपनाया जाता है और उनका किस तरह का जेंडर जनित प्रभाव होता है यह भी सूचित है।

लट्टरेल एवं मोज़र (2004) ने इस आवश्यकता पर बल दिया है कि सामाजिक संरक्षण के उपाय विभिन्न जेंडर-विशिष्ट श्रेणियों के जोखिमों की प्रतिक्रिया हेतु अभिकल्पित किये जाने चाहिए, जिनमें सम्मिलित हैं :

- स्वास्थ्य जोखिम (जैसे कि शिशु मृत्यु दर, बीमारी);
- जीवन-चक्र जोखिम (जैसे कि बच्चों का पालन, तलाक, विधवापन);
- परिवार के आर्थिक जोखिम (जैसे कि सामाजिक दायित्वों हेतु बढ़े हुए खर्चे जैसे कि विवाह, मृत्यु कर्मकाण्ड); और
- सामाजिक जोखिम (जैसे कि बहिष्करण, घरेलू हिंसा, अपराध)।

सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रमों की अभिकल्पना करते समय जेंडर असमानता को लक्षित करने में होम्स एवं जोंस (2009) ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारकों पर विचार करने का सुझाव दिया है:

- **लोक निर्माण के कार्य जेंडर दृष्टिकोण से हों** - लोक निर्माण से संबंधित कार्यक्रम (जैसे कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम के अन्तर्गत) अधिकतर शारीरिक मानवीय श्रम के उपयोग पर आधारित होते हैं जिनसे ग्रामीण और/या शहरी अवसंरचना का निर्माण किया जाता है। हालाँकि शारीरिक मानवीय श्रम करने में महिलाएँ और पुरुष दोनों सक्षम होते हैं लेकिन महिलाएँ कुछ चुनौतियों का सामना करती हैं विशेष रूप से बच्चे के जन्म से पहले, उसके दौरान और उसके बाद। कार्यक्रम के अन्तर्गत बच्चों की देखभाल या समुदाय-आधारित स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित प्रावधान होना ऐसे अवरोधों और बाधाओं को दूर करने में महत्वपूर्ण है।
- **वैयक्तिक रूप से लक्षित करना** - किसी भी कार्यक्रम में परिवार को एक इकाई मान लेने से परिवार में पहले से प्रचलित असमानता को और अधिक बढ़ावा मिल सकता है। वैयक्तिक हकदारी महिलाओं को अपनी पहचान अधिकार-धारिणी के तौर पर बनाने में और अपने अधिकारों पर वैयक्तिक तौर पर दावा करने में भी सक्षम बनाता है बजाय इसके कि परिवार के मुखिया को हकदारी मिले।

- **हिंसा से संरक्षण** - दुनिया भर में घरेलू हिंसा बहुत सारी महिलाओं के लिए एक वास्तविकता है और आर्थिक परेशानियों के समय में यह प्रायः ज्यादा बढ़ जाती है (वीनस्टीन, 2008)। साथ ही साथ, हाशिये पर कर दिए गए समूह अन्य स्वरूपों की हिंसा, शोषण और बुराइयों जैसे कि मानव व्यापार, कम उम्र में विवाह और यौन शोषण के प्रति भी अधिक भावप्रवण होते हैं। सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रम बनाए जाते समय इन सामाजिक ज़ोखिमों को पहचानने की आवश्यकता होती है और यह आंकलन करना भी महत्वपूर्ण होता है कि सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रम इन पर कैसा प्रभाव डालेंगे।

- **मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य सेवा में सुधार** - सामाजिक संरक्षण से संबंधित हस्तक्षेप गर्भवती महिलाओं सहित अन्य महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग संस्थागत और सुविधाजनक बना सकते हैं और बच्चों के लिए भी जिससे कि मातृ और शिशु मृत्यु दर में कमी आ सके।

भारतीय संदर्भ में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लगभग 26.03 करोड़ लोगों में से अधिकांशतया महिलाएँ हैं। (सोशल वाच इंडिया रिपोर्ट, 2005)। वैश्वीकरण के चलते अनौपचारिक क्षेत्रों में महिलाओं के श्रम का संकेन्द्रण बढ़ता जा रहा है जैसे कि महिलाओं के पास कमतर साधन, शिक्षा और कौशल हैं और वे पुरुषों की अपेक्षा कमतर उत्पादक परिसंपत्ति हैं। गरीबी का नारीकरण दरअसल महिलाओं के अनौपचारिक क्षेत्रों और कृषि में केन्द्रित होने से जुड़ा हुआ है, जिससे उन्हें परम्परागत सामाजिक सुरक्षा के उपायों तक पहुंच से दूर भी कर दिया गया है। राष्ट्रीय आंकलन के अनुसार, कामगारों के रूप में महिलाएँ कृषि कार्यों में केन्द्रित (सभी महिला कामगारों की 85 प्रतिशत) हैं, और अनौपचारिक क्षेत्र वह भी विशेष रूप से घर आधारित कामों में (गैर-कृषीय महिला कामगारों की 50 प्रतिशत से अधिक) संलग्न हैं। नए क्षेत्रों में उनकी कमतर गतिशीलता के पीछे कई कारक हैं जैसे परिवार और बच्चे के देखभाल की जिम्मेदारियां, परम्परागत सामाजिक मानदण्ड और सूचनाओं तथा कौशलों की कमी। भारत में लोक-निर्माण के कार्यों से संबंधित योजनाएं परंपरागत तौर पर सड़कों, जंगलों, गृह निर्माण, सिंचाई और भूमि संरक्षण के क्षेत्रों में संकेन्द्रित हैं। ऐसे रोजगारों में भी महिलाओं के साथ होने वाला जेंडर भेदभाव उनको दी जाने वाली कम मजदूरी से बिल्कुल स्पष्ट है और उसे न्यायसंगत भी बनाया जाता है कि महिलाओं को शारीरिक रूप से अधिक कठिन कार्यों से बाहर रखा गया है।

पिछले कुछ अनुभागों के अपनी समझ के आंकलन हेतु निम्नलिखित अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम किससे मिलकर बने होते हैं?

2) सामाजिक संरक्षण के विभिन्न उपागम क्या हैं?

3) सामाजिक संरक्षण में जेंडर से संबंधित चिंताएं क्यों महत्वपूर्ण हैं?

4) सामाजिक संरक्षण नीतियों में जेंडर संबंधित चिंताओं को सम्मिलित करने के लिए प्रक्रियाओं के नाम लिखिए।

5) जेंडर-वैशिष्ट्य श्रेणी से संबंधित जोखिमों के नाम लिखिए।

इस प्रकार, ताकि सामाजिक संरक्षण के कार्यक्रम महिलाओं और लड़कियों द्वारा सामना किए जाने वाले जोखिमों और भेद्यता के विशिष्ट स्वरूपों को लक्षित कर सकें, यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे कार्यक्रमों में उनकी अभिकल्पना और क्रियान्वयन दोनों स्तरों पर जेंडर संबंधित चिंताओं को समाकलित किया जाए।

1.10 सारांश

जनसंख्या के बहिष्कृत और शोषित दलित वर्गों द्वारा सामना की जाने वाली दीर्घकालीन गरीबी और सामाजिक एवं आर्थिक जोख़िमों के प्रति भावप्रवणता के मुद्दों को लक्षित करने में सामाजिक संरक्षण की अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। यह महिलाओं के जीवन के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक-आर्थिक न्याय और समानता के प्रोत्साहन की बात करता है। सामाजिक संरक्षण उपायों की अभिकल्पना और क्रियान्वयन के दौरान जेंडर-संबंधित ऐसे कई मुद्दे हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसे कई मुद्दों पर इस इकाई में चर्चा की गई है।

भारत में प्राचीन, मध्यकालीन, औपनिवेशिक और स्वातंत्र्योत्तर अवधियों में भी सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों और उपायों का प्रचलन रहा है। पिछले कुछ दशकों में ऐसे कार्यक्रमों में काफी विस्तार हुआ है। हाल के वर्षों में हम लोगों ने कुछ कानूनों जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियिम (मनरेगा), असंगठित कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008, सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008, शिक्षा के अधिकार का अधिनियम और खाद्य सुरक्षा अधिनियमों के लागू होने से सामाजिक संरक्षण कार्यक्रमों में कल्याण-अभिन्यस्त उपागम से अधिकार-आधारित उपागम की ओर परिवर्तन देखा है।

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक संरक्षण के अर्थ और प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

2) क्या भारत में सामाजिक संरक्षण का इतिहास रहा है? भारतीय इतिहास की विभिन्न अवधियों में इस पर चर्चा करें।

3) जेंडर संबंधित चिंताओं के संदर्भ में सामाजिक संरक्षण के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कीजिए।

4) 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम का विस्तार करने और उसे मजबूत करने की आवश्यकता की व्याख्या कीजिए।

1.12 संदर्भ

Avato, J., Koettl, J. and Sabates-Wheeler, R. (2009). Social Security Regimes, Global Estimates, and Good Practices: The status of social protection for international migrants' *World Development*, 38 (4), 455–466.

Barrientos, A. and Hulme, D. (2008). Social Protection for the Poor and the Poorest: An introduction. in Barrientos A. and Hulme D. (eds.), *Social protection for the poor and the poorest: Concepts, Policies and Politics*. Hampshire: Palgrave Macmillan.

DFID (2005). *Social Transfers and Chronic Poverty: Emerging Evidence and the Challenge Ahead*, A DFID Practice Paper, DFID: London.

European Commission (2008). 'Manual for Gender Mainstreaming, Social Inclusion and Social Protection Policies', Employment, Social Affairs and Equal Opportunities Directorate, EC, Brussels. *http://ec.europa.eu.accessed* on 6 March 2012.

Holmes, Rebecca and Jones, Nicola (2009). Putting the 'Social' Back into Social Protection: A Framework for Understanding the Linkages between Economic and Social Risks for Poverty Reduction, Background Note, August 2009, Overseas Development Institute.

International Labour Organization (1997). *Social Security Financing* Geneva: ILO.

International Labour Organization (1998). *Social Security Principles.* Geneva: ILO.

Kannan, K. P. and Pillai N. V. (2007). *Social security in India: The Long Lane Treaded and The Longer Road Ahead Towards Universalization*, MPRA Paper, No. 9601; available at: http://mpra.ub.uni-muenchen.de/9601/1/ MPRA_paper_9601.pdf, accessed on 6 March 2012.

Low Linda(2002/03). Social Protection in the "New" Economy, *Bulletin of Asia- Pacific Perspectives***.**

Luttrell, C. and Moser C. (2004). *Gender and Social Protection*, Report prepared for DFID: London.

Munro, L. T. (2008). Risks, Needs and Rights: Compatible or Contradictory Bases for Social Protection' in Barrientos A., and Hulme D. (eds.), *Social Protection for the Poor and the Poorest: Concepts, Policies and Politics*, Hampshire: Palgrave Macmillan.

Norton Andy, Conway Tim and Foster Mick (2001). *Social Protection Concepts and Approaches: Implications for Policy and Practice in International Development'*, Overseas Development Institute Working Paper 143.

Priyadarshee, Anurag (2011). Evolution of Social Protection, 30 May 2011, available at http://www.theindiaeconomyreview, accessed on 8 March 2012

Sudarshan, Ratna M. (2009). Examining India's National Regional Employment Guarantee Act: Its Impact and Women's Participation, Social Protection in Asia. Working Paper Issue 05, May 2009

Thakur, Sarojini Ganju, Arnold Catherine and Johnson Tina (2009). Gender and Social Protection, Discussion Paper 3, Commonwealth Secretariat, London.

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhattacharya, V. R., (1970). *Some Aspects of Social Security Measures in India*. Delhi: Metropolitan Book.

Kabeer, Naila(2008) *Mainstreaming Gender in Social Protection for the Informal Economy*, Commonwealth Secretariat, London.

तालिका 1 : सामाजिक संरक्षण के उपकरण - जेंडर संबंधित जोख़िमें और उनके प्रभाव[1]

उपकरण के प्रकार/ नीति प्रतिक्रिया	जेंडर–संबंधित जोखिम	उद्देष्य	जेंडर–संबंधित प्रभाव विष्लेशण
माताओं और बच्चों के लिए सशर्त और बिना शर्त नकद स्थानांतरण (मुख्यतः माताओं/ प्राथमिक देखभाल करने वाले को लक्षित)।	• लड़के और लड़की के बीच संसाधनों और अवसरों का अपर्याप्त और/या असमान आवंटन। • बाल श्रम, विशेष रूप से लड़के। • कन्या भ्रूणहत्या और बाल विवाह। • अपर्याप्त पोषण और जन्मपूर्व एवं जन्मपश्चात देखभाल और कामकाजी माताओं की जोखिमें।	• बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा में निवेश को प्रोत्साहन देना। • मातृ मर्त्यता और शिशु मृत्यु दर में कमी।	• बालिकाओं की जीवितता, पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार • महिलाओं के आजीविका विकल्पों को विस्तृत तथा प्रोत्साहित करता है। • परिवार और समुदाय में महिलाओं की सौदेबाजी शक्तियों में वृधि। • बहिष्कृत महिलाओं को नागरिकता के घेरे में ला सकता है। • नवजात और माँ के पोषण और स्वास्थ्य को सुधारता है।
कामकाजी माताओं के लिए बच्चों के देखभाल की व्यवस्था	• जब मां काम पर जाती है तो बच्चों को घरों में अकेले छोड़ना पड़ता था या किसी अविश्वसनीय देखभाल करने वाले के भरोसे।	• बच्चों के बेकार देखभाल की व्यवस्था पर निर्भरता कम होती है और फलतः बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव का डर खत्म होता है।	• बालिकाओं की शिक्षा तक पहुंच में सुधार आता है। • महिलाओं के रोजगार अवसरों को विस्तृत करता है। • सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाता है।
स्कूल में भोजन के कार्यक्रम /स्कूल पश्चात प्रशिक्षण	• बच्चे घरेलू कार्यों/गृह आधारित कार्यों (मुख्यतः लड़कियां) और बालश्रम (मुख्यतः लड़के) के चलते स्कूल नहीं जा पाते।	• बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा में निवेश को प्रोत्साहित करता है।	• अच्छा पोषण और बाधारहित शिक्षा कामगारों के अगली पीढ़ी रोजगार पर रखे जाने की संभावना और उत्पादकता को प्रोत्साहित करता है।
माध्यमिक विद्यालयों में लड़कियों के लिए स्कॉलरशिप	• कार्य/विद्यालय के दोहरे बोझ से कम उत्पादकता, वयस्क अवस्था में कम अवसर और उच्च–जोखिम वाले	• लड़कियों के लिए स्कूल में रुकने की क्षमता बढ़ती है।	• 11–19 वर्ष के उम्र की बेटियों के विवाह में देर किया जा सकता है।

[1]**स्रोतः** सरोजिनी गंजू ठाकुर, कैथरीन अर्नाल्ड और टीना जॉनसन, 'जेण्डर एंड सोशल प्रोटेक्शन', चर्चा पत्र 3, कॉमनवेल्थ सेक्रेटरिएट, लंदन, जनवरी 2009, पृ. 6–7

या अतिरिक्त वजीफा।	रोजगार में नियोजन की संभावना (उदा. खतरनाक उद्योगों, वेश्यावृत्ति)		• भविष्य में स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती पर सकारात्मक असर। • लड़कियों की शिक्षा पर माता–पिता के भेदभाव/अनिच्छा से पार पाया जा सकता है।
रोजगार सर्जक लोक–निर्माण के कार्यों वाले कार्यक्रम	• रोजगार तक पहुंच में जेंडर संबंधित असमानता। • गर्भावस्था या बच्चों की देखभाल में दिए जाने वाले समय के कारण रोजगार की हानि/ रोजगार असुरक्षा	• आय और उपभोग प्रवाह के खतरों से निबाह करना।	• बनी हुई बेरोजगारी की जड़ता को तोड़ने में सहायता कर सकती है। • ऐसी अवसंरचना का निर्माण करते हैं जो महिलाओं की गतिशीलता या काम के बोझ को कम करने में सक्षम बनाते हैं।
सामाजिक पेंशन	• सेवानिवृत्ति के बाद किसी कार्य-संबंधी प्रावधान के न होने पर सेवानिवृत्ति या कार्य से अलग होने की लागत। • मृत पति के परिवार में विधवा की परिसंपत्तियों की हानि; बच्चों/ परिवार के सदस्यों की सद्भावना पर निर्भरता। • जहां एड्स और एचआईवी के चलते मध्यम आयुवर्ग के वयस्कों की अनुपस्थिति में दुर्बल बच्चों के देखभाल की भारी जिम्मेदारी।	• प्रौढ़ों और निराश्रितों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करता है।	• प्रौढ़ पुरुषों और महिलाओं को सौदेबाजी की कुछ शक्ति मिल जाती है। • महिलाओं के अवैतनिक कार्यों को पहचान की तरह कार्य करता है। • विशेषरूप से उम्रदराज विधवाओं की सुरक्षा, प्रतिष्ठा, आत्मसम्मान, पदस्थिति आदि में सुधार करता है।
अधिनियमन	• भेदभाव (उदा. विरासत, भूमि स्वामित्व)	• महिलाओं का सशक्तीकरण	• अपनी पदस्थिति और सशक्तीकरण में प्रगामिता के लिए महिलाओं को औजार प्रदान करता है।

तालिका 2: भारत में सामाजिक संरक्षण कार्यक्रम : एक सिंहावलोकन[1]

श्रेणी	मुद्दा/विषय	योजना/ कार्यक्रम
गरीबों के जीवन स्तरों सुधार(कार्यक्रम संबंधी ढांचा)	शिक्षा	• सर्व शिक्षा अभियान (एसएसएः सभी के लिए शिक्षा) • शिक्षा का अधिकार अधिनियम।
	स्वास्थ्य	• राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन • जननी सुरक्षा योजनाः एनआरएचएम के अन्तर्गत एक सुरक्षित मातृत्व हस्तक्षेप
	आावास	• इन्दिरा आवास योजना
	पेयजल और स्वच्छता	• राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम • सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान (ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता तक पहुंच हेतु)
	बाल पोषण	• एकीकृत बाल विकास सेवा • मध्यान्ह भोजन योजना
	खाद्य सुरक्षा	• लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली • अन्नपूर्णा योजना • राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम • न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
	आजीविका/कार्य की दशाएं	• राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर न्यूनतम मजदूरी (एनएफएलएमडब्ल्यू) • स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (आय सर्जक परिसंपत्तियों के निर्माण हेतु गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को वित्तीय सहायता) • स्वर्ण जयन्ती शहरी रोज़गार योजना (रोजगारोन्मुखी शहरी गरीबी उन्मूलन योजना) • प्रधानमंत्री रोजगार सृर्जन कार्यक्रम (पीएमईजीपी)

अत्यन्त गरीब लोगों के लिए लक्षित सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम	रोजगार सुरक्षा	• महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम
	पेंशन	• इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना • इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना • इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय विकलांगता पेंशन योजना
असंगठित / अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों हेतु सामाजिक सुरक्षा उपाय		• असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 (जीवन और विकलांगता, स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था संरक्षण और कोई अन्य लाभ प्रदान करने के लिए योजना)
	स्वास्थ्य बीमा	• राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना
	मृत्यु एवं विकलांगता बीमा	• आम आदमी बीमा योजना
	कल्याण कोष	• हस्तकरघा बुनकर व्यापक कल्याण योजना • हस्तकला शिल्पकारों के लिए व्यापक कल्याण योजनाः इसमें राजीव गांधी शिल्पी स्वास्थ्य बीमा योजना और हस्तकला शिल्पकारों के लिए बीमा योजना शामिल है।
संगठित/औपचारिक क्षेत्र के कामगारों हेतु सामाजिक संरक्षण उपाय		• ग्रेच्युटी का भुगतान अधिनियम, 1927 • कर्मचारियों के लिए क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 • मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 • बागान मजदूर अधिनियम, 1951 • कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 • कर्मचारी निक्षेपबद्ध बीमा योजना, 1976 • कर्मचारी पेंशन योजना, 1995 • कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 • कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 • राजीव गांधी श्रमिक कल्याण योजना

इकाई 2 महत्वपूर्ण कानून और ऐतिहासिक निर्णय

संरचना

सौम्या उमा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 संवैधानिक ढांचा

2.4 सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का न्यायिक प्रवर्तन

2.5 कामगारों के अधिकारों को संरक्षित करने वाले कानून

2.6 कार्यस्थल पर जेंडर-विशिष्ट सुविधाएँ

2.7 कामगारों के लिए सामाजिक संरक्षण उपाय

2.7.1 संगठित क्षेत्र

2.7.2 असंगठित क्षेत्र

2.8 कामकाजी महिलाओं पर हुए ऐतिहासिक निर्णय

2.9 शिक्षा का अधिकार

2.10 खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

2.11 सारांश

2.12 सन्दर्भ

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

एक कल्याणकारी राज्य होते हुए, भारत ने कई कानून, नीतियां, कार्यक्रमों और योजनाओं को लागू किया है जो गरीबों, हाशिये के लोगों और शोषितों-दलितों को सामाजिक संरक्षण सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं। न्यायालयों ने भी इन कानूनों के इस तरह अर्थ लगाए हैं कि उनका अर्थ, अभिप्राय और कार्यान्वयन में प्रभावशीलता व्यापक होती हो। यह इकाई उन तमाम कानूनों, नीतियों और महिलाओं तथा लड़कियों के लिए सामाजिक संरक्षण के मुद्दों से जुड़े ऐतिहासिक निर्णयों पर संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास करती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य हैं :

- सामाजिक संरक्षण पर संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करना;
- सामाजिक संरक्षण से संबंधित परिदृश्यों पर विभिन्न कानूनों और नीतियों पर चर्चा करना;
- संगठित और असंगठित क्षेत्रों के कार्यबल के लिए सामाजिक संरक्षण के प्रावधान में सरकारी प्रयासों का विश्लेषण करना;
- महिलाओं और लड़कियों के विशेष सन्दर्भ में ऐसे कानूनों, नीतियों और योजनाओं के महत्व को प्रदर्शित करना; और
- सामाजिक संरक्षण के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न निर्णयों और सामाजिक संरक्षण को वास्तविकता बनाने में उनके लाभप्रद मूल्य होने पर चर्चा करना।

अब हम उस संवैधानिक ढांचे के बारे में पढ़ेंगे जो भारत में सामाजिक संरक्षण को निर्दिष्ट करता है।

2.3 संवैधानिक ढांचा

उद्देशिका

भारत का संविधान, अपनी उद्देशिका में, अपने नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के साथ पदस्थिति और अवसरों की समानता प्रदान करने का भारतीय राज्य का संकल्प प्रदर्शित करता है।

मौलिक अधिकार

संविधान का भाग 3 सभी लोगों को मूलभूत अधिकारों की गारण्टी देता है। इसमें जीवन का अधिकार (अनुच्छेद 21) और कानून के समक्ष समता और कानून के समान संरक्षण का अधिकार (अनुच्छेद 14) सम्मिलित है। समता के अधिकार के बाद धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव से प्रतिषेध का अधिकार (अनुच्छेद 15ए) आता है। भाग 3 में प्रत्याभूत मूलभूत स्वतंत्रताओं में भाषण और अभिव्यक्ति का अधिकार, शांतिपूर्वक सभा/सम्मेलन करने का अधिकार, संघ बनाने का अधिकार, कहीं भी आने जाने और कहीं भी बसने का अधिकार और किसी भी धर्म को मानने का अधिकार, कोई भी व्यवसाय, पेशा या व्यापार करने का अधिकार सम्मिलित हैं (अनुच्छेद 19)। ये अधिकार युक्तियुक्त निर्बन्धनों के तहत हैं जो राष्ट्र की सम्प्रभुता और अखण्डता, राष्ट्र की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, मर्यादा या नैतिकता के आधार पर लगाए जा सकते हैं। यदि राज्य कार्यकारिणी के कार्यों या अनुचित कानूनों के चलते इन मूलभूत अधिकारों में कोई कटौती होती है तो कोई भी नागरिक सीधे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। संविधान के प्रावधानों की अंतिम व्याख्या करने का आत्यंतिक अधिकार भी सर्वोच्च न्यायालय के पास है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित ऐसे कानून सभी प्राधिकारियों– कार्यकारी, न्यायिक और विधायी के लिए बंधनकारी और प्रवर्तनीय होते हैं।

मूलभूत अधिकारों के अध्याय में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े और वंचित समूहों के लिए सकारात्मक कदमों की पहचान महत्वपूर्ण है। यद्यपि उपरिलिखित आधारों पर भेदभाव का निषेध है लेकिन यह निषेध राज्य को सकारात्मक कदम उठाने से नहीं रोकता।

बॉक्स सं. 2.1

> सकारात्मक कार्य का अर्थ है राज्य द्वारा धनात्मक कार्य जो भूतकाल में हाशिये और शोषित समूहों के लोगों के साथ किए गए भेदभावयुक्त बर्ताव, हानियों और अवसरों के वंचन का निराकरण करने और वर्तमान समय में अवसरों की समानता स्थापित करने के लिए किए जाते हैं।

राज्य द्वारा किया जाने वाला सकारात्मक कार्य महिलाओं और बच्चों, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों (एससी) तथा अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के लिए विशेष कानूनों के अधिनियमन के रूप में होता है। इसी प्रकार से सार्वजनिक रोजगार के मामलों में, जबकि संविधान अवसरों की समानता का सिद्धांत प्रस्तुत करता है, इसे राज्य द्वारा 'नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के लिए, जो राज्य की दृष्टि में राज्य के अन्तर्गत आने वाले सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करता' के पक्ष में विशेष कानूनों का अधिनियमन/आरक्षण के प्रावधान करके प्राप्त किया जा सकता है (अनुच्छेद 16 (4))

राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत

कई सामाजिक-आर्थिक अधिकार, जिनके बारे में इस इकाई में चर्चा की जाएगी, संविधान के भाग 4 के अन्तर्गत आते हैं। संविधान का भाग 4 राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों (डीपीएसपी) के बारे में बात करता है। निदेशक सिद्धांतों का लक्ष्य एक समतावादी समाज की स्थापना करना है जिसके नागरिक ऐसी सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों से दूर रहें जो उनकी अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग करने से रोकता है।

बॉक्स सं. 2.2

राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत संविधान के रचनात्मक भाग हैं, और ऐसे निदेश/नियम हैं जिनका देश के प्रशासन में राज्य द्वारा पालन किया जाना वांछनीय है। मूलभूत अधिकारों के विपरीत इन नीति निदेशक सिद्धांतों को किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता। इसके बावजूद, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 37 में कहा गया है ये सिद्धांत देश के सरकारी प्रशासन में मूलभूत हैं और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि कानून बनाते समय इन सिद्धांतों को अनुप्रयोग में लाए।

इसलिए भारतीय संविधान में भाग 4 मजबूत सामाजिक कार्यवृत्त की झलक देता है। संविधान के भाग 4 के प्रमुख प्रावधानों में सम्मिलित हैं :

- राज्य, लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे और न केवल व्यक्तियों में बल्कि व्यक्ति के समूहों के बीच आय, स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानता को कम करेगा। (अनुच्छेद 38)।
- सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने के अधिकार की रक्षा हो; समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से सधता हो; आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधनों का संग्रहण सार्वजनिक हित को नष्ट करने वाला न हो; बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं मिलें और बालकों तथा अल्पवय वयस्कों का शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो सके। (अनुच्छेद 39)।
- राज्य यह सुनिश्चित करे कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करेगा कि समान अवसर के आधार पर न्याय मिले और विशेषकर, उपयुक्त विधान या योजनाओं द्वारा या किसी अन्य तरीके से यह सुनिश्चित करे कि कोई भी नागरिक आर्थिक या अन्य अयोग्यता के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाए। (अनुच्छेद 39 ए)।
- राज्य को, अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं में रहते हुए ऐसे प्रभावी उपबंध करने हैं जिससे काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी और निःशक्तता की दशा में लोक सहायता पाने के अधिकारों की रक्षा हो सके। (अनुच्छेद 41)।
- काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता हेतु प्रावधान करना। (अनुच्छेद 42)।
- राज्य उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य तरीके से कृषि, उद्योग या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवनस्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग करने वाली काम की उपयुक्त दशाएं और सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशेषकर गांवों में कुटीर

उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने के प्रयासों का प्रावधान करे। (अनुच्छेद 43)।

- जनता के दुर्बल वर्गों के, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और आर्थिक हितों को विशेष सावधानी से प्रोत्साहित करने और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करना। (अनुच्छेद 46)।
- लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य को सुधारना (अनुच्छेद 47)।

2.4 सामाजिक-आर्थिक अधिकारों का न्यायिक प्रवर्तन

यह कतई आवश्यक नहीं है कि उपचारों या प्रतिकार के लिए विधि के न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने से पूर्व मामला शुरू करने वाला व्यक्ति व्यक्तिगत तौर पर स्वयं पीड़ित हुआ/हुई हो। सामाजिक रूप से जागरूक व्यक्तियों और लोकहित की भावना से कार्य कर रहे एनजीओ को **जनहित याचिका (पीआईएल)** के रूप में एक अधिकार दिया गया है जिससे वे सार्वजनिक अत्याचार की शिकायतों के न्यायिक निवारण की मांग रखते हुए किसी जनहित के मुद्दे का समर्थन कर सकें। जनहित याचिकाओं द्वारा न्यायपालिका को भी अवसर प्रदान किए गए हैं कि वह संवैधानिक प्रावधानों का विवेचन कर सके और सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को प्रवर्तित करा सके।

यद्यपि भारतीय न्यायालयों में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों को सीधे प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता, उच्चतर न्यायपालिका (सभी उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय) ने अपने तरीकों से, यह सुनिश्चित करने के नवाचारी उपाय ढूंढ लिए हैं कि ऐसे प्रावधानों को जो गरीबों, जरूरतमंदों और हाशिये पर छोड़ दिए गए वर्गों को सामाजिक संरक्षण प्रदान करते हों, उन्हें मजबूती प्रदान की जाए। जीवन के मूलभूत अधिकार, जो न्यायिक रूप से प्रवर्तनीय अधिकार हैं, के व्यापक अर्थान्वयन से न्यायपालिका ने निदेशक सिद्धांतों को प्रवर्तित न करा पाने की समस्या पर विजय पा ली है। अपने एक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद 21 में विहित 'जीवन' शब्द में मात्र भौतिक या प्राणिमात्र की तरह अस्तित्व का भाव नहीं है, बल्कि ''कुछ अधिक को समाहित करता है'' (फ्रांसिस कोरेली मल्लिन बनाम दिल्ली संघ क्षेत्र और अन्य एआईआर 1981 एससी 746: 1981(1)एससीसी 608)। इसी निर्णय में आगे सर्वोच्च न्यायालय का मत है कि ''हम समझते हैं कि जीवन के अधिकार में मानवीय गरिमा और इसके लिए जो कुछ भी जरूरी हो के साथ जीना है यथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे कि पर्याप्त पोषण, वस्त्र और रहने के लिए आश्रय।'' इसी तरह के अन्य ऐतिहासिक निर्णयों द्वारा जीवन के अधिकार के व्यापक अर्थों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, आश्रय का अधिकार, भोजन का अधिकार, जीविका का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार और विधिक सहायता पाने का अधिकार समाहित होते गए हैं।

आगे पढ़ने से पहले निम्न अभ्यास को हल करने का प्रयास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत कुछ मौलिक अधिकारों के नाम लिखिए जो सामाजिक संरक्षण के मुद्दों के लिए प्रासंगिक हों।

2) संविधान में वर्णित सामाजिक नीति के कुछ उपयुक्त निदेशक सिद्धांतों के नाम लिखिए।

3) गरिमा के साथ जीवन के मौलिक अधिकार का व्यापक अर्थान्वयन करते हुए न्यायालय ने किन सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को इसमें समाहित किया है?

अब हम देश में महिलाओं के मौलिक अधिकारों के संरक्षण हेतु राज्य द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण कदमों के बारे में पढ़ेंगे।

महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001

भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित जेंडर समता के सिद्धांत ने महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभावकारी उपायों को अपनाने हेतु राज्य को अधिदेश प्रदान किया है। स्वतंत्रता के समय से ही भारतीय कानूनों, विकास नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों का उद्देश्य हर दशक में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की प्रगति करना रहा है। राज्य द्वारा हाल में उठाए गए कदमों में से एक महिलाओं के सशक्तीकरण की रूपरेखा प्रदान करने के उद्देश्य हेतु महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001 का पल्लवन है।

नीति इस बात को स्वीकार करती है कि एक ओर संविधान, कानून, नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और संबंधित मशीनरियों में स्थापित महिलाओं की दशा और दूसरी ओर देश में महिलाओं की स्थिति की जमीनी हकीकत में व्यापक अंतर व्याप्त है। नीति में इसी अंतर के विश्लेषण को कई प्रपत्रों में संदर्भित किया गया है जैसे कि भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट, ''समानता की ओर'', 1974, महिलाओं के लिए राष्ट्रीय भावी योजना 1988-2000, श्रमशक्ति रिपोर्ट 1988 और कार्यान्वय हेतु आधार, पांच वर्ष पश्चात – एक मूल्यांकन। नीति के लक्ष्य और उद्देश्यों में समाहित हैं:

- सकारात्मक आर्थिक और सामाजिक नीतियों के माध्यम से महिलाओं के पूर्ण विकास हेतु ऐसे वातावरण का निर्माण करना कि महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता का एहसास करने हेतु सक्षम बनाया जा सके।
- जीवन के सभी– राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक क्षेत्रों में पुरुषों के समान महिलाओं को भी सभी मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के कानूनी और वास्तविक तौर पर आस्वादन के अवसर उपलब्ध हों।
- राष्ट्र के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में निर्णयन और सहभागिता में महिलाओं की समान पहुंच होना।
- स्वास्थ्य रक्षा, सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कॅरियर एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, समान वेतन, उपजीविकाजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और सार्वजनिक कार्यालय इत्यादि तक महिलाओं की समान पहुंच होना।
- विकास प्रक्रिया में जेंडर परिप्रेक्ष्य को मुख्यधारा में समाहित करना।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण वाले भाग में नीति गरीबी उन्मूलन, गरीब महिलाओं की लामबंदी और ''उनकी क्षमताओं को बढ़ाने हेतु आवश्यक सहायता उपायों के साथ उन्हें आर्थिक और सामाजिक विकल्पों के विस्तार को प्रस्तुत करने'' पर ध्यान केन्द्रित करती है। उपभोग और उत्पादन के लिए ऋणों तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के लिए नीति, वर्तमान में चल रहे सूक्ष्म-ऋण तंत्रों और सूक्ष्म-वित्त संस्थाओं को मजबूत करने और नई संस्थाओं की स्थापना की संभावनाओं पर विचार करती है।

नीति, वैश्वीकरण के जेंडर प्रभाव के चलते उभरने वाली नई चुनौतियों की पहचान भी करती है। यह स्वीकार करती है कि बढ़ती हुई वैश्विक अर्थव्यवस्था से होने वाले लाभ असमान रूप से वितरित हुए हैं जिससे आर्थिक विषमताएं और व्यापक हुई हैं, और प्रायः खराब होती कार्य की दशाओं और विशेष रूप से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था और ग्रामीण क्षेत्रों में असुरक्षित कार्य वातावरण के चलते गरीबी का नारीवादीकरण हुआ है, जेंडर विषमता बढ़ी है। नीति ऐसी रणनीतियों पर जोर देती है जिनकी अभिकल्पना इस तरह से हो कि महिलाओं की क्षमता बढ़े और वैश्वीकरण की प्रक्रिया के चलते पड़ने वाले ऋणात्मक सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का सामना करने हेतु उनका सशक्तीकरण हो सके।

महिलाओं के सामाजिक सशक्तीकरण वाले अनुच्छेद में नीति का ध्यान शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, पानी और स्वच्छता और आवास तथा आश्रय आदि पर केन्द्रित रहा है। इनके बारे में इसी इकाई में उपयुक्त शीर्षकों के अन्तर्गत चर्चा की जाएगी।

जबकि संविधान कानूनों और नीतियों के लिए जेंडर समानता के दृष्टिकोण से प्रतिपादित किए जाने के लिए ढांचा प्रदान करता है, उक्त नीति जेंडर विशिष्ट कार्यक्रमों और हस्तक्षेपों के साथ-साथ जेंडर को मुख्यधारा में लाने जैसे कदमों के माध्यम से महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु अधिक विस्तृत कार्ययोजना प्रस्तुत करती है। ये बातें जेंडरीकृत दृष्टिकोण से सामाजिक संरक्षण हेतु कानूनों, नीतियों और योजनाओं के अधिनियमन, निरूपण और क्रियान्वयन हेतु नींव तैयार करते हैं। आप इस नीति के बारे में इसी खण्ड की इकाई 4 में विस्तार से पढ़ेंगे।

पंचवर्षीय रणनीतिक योजना 2011-16

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने 2011-16 के लिए एक पंचवर्षीय रणनीतिक योजना निरूपित की। यह योजना महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001 को 'एक प्रगतिशील और भविष्योन्मुखी व्यापक रूपरेखा' के रूप में संदर्भित किया और इस राष्ट्रीय

नीति के क्रियान्वयन हेतु एक कार्ययोजना निरूपित करने का प्रस्ताव दिया। इस प्रक्रिया में, कार्ययोजना कुछ ऐसे अनुश्रवणीय संकेतक विकसित कर लेगी जो इसके क्रियान्वयन में सहायता करेगी। योजना, महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण की योजनाओं जिसमें पोषण नीति समाहित हो, जैसे मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित रखती है।

कार्य का अधिकार

2010 में 4 करोड़ बेरोजगार लोगों के साथ भारत ने तेजी से अनियंत्रित होती जा रही गरीबी और बेरोजगारी को देखा है, जबकि 2006 में 8.35 प्रतिशत और 2008 में 8 प्रतिशत बेरोजगारी दर की तुलना में 2010 में बेरोजगारी दर 9.4 प्रतिशत थी। गरीबी और बेरोजगारी की समस्या की नाजुक हालत ने तमाम नीति नियोजक कदमों के माध्यम से रोजगार सृजन करने हेतु राज्य द्वारा हस्तक्षेप की अतीव आवश्यकता दिखलाई। यह पांचवी पंचवर्षीय योजना का दौर था जब बेरोजगारी के खात्मे और गरीबी उन्मूलन को देश में आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों के रूप में शामिल किया गया।

1970 से 1990 के दशकों तक भारतीय राज्य ने ग्रामीण विकास क्षेत्र में विशेष योजनाओं का निरूपण और क्रियान्वयन किया जिससे कि परिसंपत्ति निर्माण एवं रोजगार सृजन के माध्यम से बेरोजगारी और गरीबी की समस्याओं का सामना किया जा सके जैसे कि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी), ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (आरएलईजीपी), जवाहर रोजगार योजना (जेआरवाई), इत्यादि। (अधिक विस्तार के लिए इस इकाई की तालिका 2.1 देखें)। इन सबके परिणामस्वरूप रोजगार सृजन में एक स्थिर वृद्धि हुई। वर्ष 1991 के दौरान आर्थिक सुधारों की शुरुआत और परिणामस्वरूप आर्थिक नियंत्रणों और व्यापार बाधाओं के उन्मूलन के साथ, यह विश्वास किया गया था कि इन सबके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था का विस्तार होगा, वृद्धि दर उच्च होगी और इसलिए नए रोजगार अवसरों का सृजन होगा जो गरीबी और विषमता के स्तर को कम करेगा। हालाँकि साक्ष्य यह दिखलाते हैं कि नियमित श्रमिकों की अल्पकालिक पुनर्नियुक्ति अधिक हुई है जिसके परिणामस्वरूप श्रमबल के लिए संरक्षण के अवसर और स्वरूप बहुत कम होते गए।

तालिका 2.1: रोज़गार सृजन कार्यक्रमों की एकझलक: 1970 से 1990 तक

प्रकार/श्रेणी	कार्यक्रम का नाम	आरम्भ वर्ष
स्वरोजगार कार्यक्रम	एग्रो सेवा केन्द्र	1970 के दशक के आरम्भ में
	एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी)	1976-80
	स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (ट्राइसेम)	1979
	ग्रामीण दस्तकारों को उन्नत औजारों की आपूर्ति (एसआईटीआरए)	
	शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार योजना (एसईईयूवाई)	1983-84
	शहरी गरीबों के लिए स्वरोजगार कार्यक्रम (एसईपीयूपी)	1986-87
ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रम	लघु किसान विकास एजेंसी (एसएफडीए)	1971

	सीमांत किसान एवं खेतिहर मजदूर योजना ग्रामीण श्रमशक्ति कार्यक्रम (आरएमपी)	1971
	महाराष्ट्र रोजगार गारण्टी योजना (एमईजीएस)	1972-73
	ग्रामीण रोजगार हेतु अकस्मात (क्रैश) योजना (सीएसआरई)	1971
	कार्य के बदले अनाज कार्यक्रम (एफएफडब्ल्यूपी)	1977
	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एनआरईपी)	1980
	ग्रामीण श्रमिक रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (आरएलईजीपी)	1983
	ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास (ड्वकरा)	1982-83
	जवाहर रोजगार योजना (जेआरवाई) (ग्रामीण कार्यों का 1989-90 में शुरू कार्यक्रम जिसमें एनआरईपी और आरएलईजीपी को मिला दिया गया।)	1989-90
शहरी गरीबों के लिए रोजगार कार्यक्रम	नेहरू रोजगार योजना	1989
	शहरी क्षेत्रों में रोजगार सृजन हेतु शिक्षित बेरोजगारों हेतु योजना	
विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम	सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीईपी)	1973
	मरुभूमि विकास कार्यक्रम (डीडीपी)	1977-78
	पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (एचएडीपी)	1974
	कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम (सीएडीपी)	1974-75

केन्द्र सरकार द्वारा शुरू किए गए इन राष्ट्रीय-स्तर के कार्यक्रमों के अतिरिक्त बाहरी सहायता और उसके बिना भी तमाम एनजीओ और स्वयंसेवी संगठनों ने भी सूक्ष्मस्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य जोर आय-अर्जन क्षमताओं का विकास करना और उनके कल्याणार्थियों को स्वयं सामर्थ्य प्रदान करने पर रहा है।

तेजी से फैलती हुई गरीबी और भारी मात्रा में बेरोगारी के सन्दर्भ में बढ़ती हुई नीतिगत प्रतिक्रिया में एक ओर समावेशी वृद्धि पर और दूसरी ओर अधिकारों के दौर से लगाव पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (आगे से इसे सिर्फ नरेगा कहा जाएगा) का अस्तित्व इसी समावेशी विकास और राज्य की नीतियों में उग्रसुधारवाद के रूप में, इसकी दायित्वों को कानूनी शक्ति प्रदान करने के साथ, सामने आया है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम (नरेगा) 2006

2006 में पारित नरेगा के कई उद्देश्य हैं, और इसे सामाजिक संरक्षण के माध्यम के रूप में

स्थानीय विकास को प्रेरित करने में एक हस्तक्षेप के तौर पर देखा जाता है। इसके अपेक्षित परिणामों में शामिल हैं :

- रोजगार और क्रयशक्ति में वृद्धि
- कार्यबल में महिलाओं की सहभागिता
- स्थायी परिसंपत्तियों के निर्माण द्वारा ग्रामीण अवसंरचना को मजबूती प्रदान करना और प्राकृतिक संसाधनों को पुनरुज्जीवित करना जो स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आजीविका संसाधन आधार प्रदान करती है
- उत्पादकता में वृद्धि
- संकटकालीन या विपत्तिकारी प्रवसन में कमी

यह अधिनियम प्रत्येक ग्रामीण परिवार के लिए, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल दस्ती कार्य करने को इच्छुक हों, प्रतिवर्ष न्यूनतम 100 दिनों के सवेतन कार्य की गारण्टी देता है। इस प्रकार से यह ग्रामीण परिवारों के लिए आजीविका सुरक्षा को सुधारने की संभावनाओं पर विचार करता है। इस कानून की योजना के अनुसार किसी भी ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्य जो अकुशल दस्ती कार्य करने को इच्छुक हों स्थानीय ग्राम पंचायत में पंजीकरण हेतु लिखित या मौखिक आवेदन कर सकते हैं, और बदले में उन्हें एक जॉब कार्ड जारी किया जाएगा। **यह जॉब कार्ड दरअसल एक मूलभूत कानूनी दस्तावेज है जो ग्रामीण परिवार को काम मांगने में सक्षम बनाता है।** इसके अतिरिक्त इसमें एक समयबद्ध गारण्टी है। राज्य प्रशासन को काम मांगने के 15 दिनों के अन्दर काम प्रदान करना होगा, इसमें असफल रहने पर राज्य द्वारा अपनी कीमत पर उसे बेरोजगारी भत्ता प्रदान किया जाएगा। कानून के माध्यम से राज्य यह भी गारण्टी देता है कि वह कार्य गांव के 5 किलोमीटर के घेरे के भीतर प्रदान करेगा अन्यथा असफल रहने पर 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी का भुगतान करेगा। मजदूरियों का भुगतान तत्समय अधिसूचित मजदूरी दर पर किया जाएगा और यह भी प्रावधान है कि भुगतान साप्ताहिक आधार पर किया जाएगा और किसी भी दशा में पाक्षिक आधार से अधिक दिनों में नहीं। कानून द्वारा यह भी प्रावधान है कि कार्यस्थल पर शिशुगृह, पीने का पानी, प्राथमिक चिकित्सा सहायता और छायादार आश्रय होगा। इस प्रावधान द्वारा कि काम पर रखे गए लोगों में से कम से कम एक तिहाई महिलाएं होनी चाहिए, और काम देने में वंचित समूहों जैसे कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी, यह समानता को भी बढ़ावा देता है।

नरेगा, अपने क्रियान्वयन की अधिकांश जिम्मेदारी पंचायतों (ग्राम समितियों) पर डालता है। कानून प्रशासन की विकेन्द्रीकृत प्रणाली की संभावनाओं पर विचार करता है जिसमें स्थानीय समुदाय ग्राम सभाओं (स्थानीय निर्वाचक सूची में नामित लोगों की स्थायी संस्था जो पंचायत योजनाओं का निरीक्षण करती है) के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परियोजनाओं का निर्माण कर सकते हैं, जिससे कि नरेगा के कार्यों में ग्राम प्राथमिकताओं की झलक मिल सके। 2010-11 में अधिनियम 615 जिलों में विस्तृत हो चुका है और लगभग 29 अरब मानव दिवस रोजगार प्रदान किए हैं।

सार्वजनिक निर्माण के माध्यम से मजदूरी आधारित पूर्व के सभी रोजगार कार्यक्रमों का विलय अब नरेगा में कर दिया गया है। इस तरह नरेगा पूर्व के सार्वजनिक निर्माण आधारित कार्यक्रमों पर बना हुआ है जिसमें शामिल हैं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1980-89; ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम 1983-9; जवाहर रोजगार योजना 1989-99; रोजगार आश्वासन योजना 1993-9; जवाहर ग्राम समृद्धि योजना 1992-2002; सम्पूर्ण

ग्रामीण रोजगार योजना सितंबर 2001; राष्ट्रीय काम के बदले अनाज योजना 2004 (नरेगा का प्रणेता) और महाराष्ट्र रोजगार गारण्टी योजना। इस खण्ड की इकाई 3 में समीक्षात्मक रूप से इस बात की जांच की गयी है कि किस हद तक राज्य ने कानून के अन्तर्गत अपने कर्तव्यों का पालन किया है और विधिक प्रावधानों के क्रियान्वयन के प्रभावशीलता की जांच भी की जाएगी।

जेंडर और नरेगा : नरेगा की संभावना एक जेंडर संवेदनशील कानून के तौर पर की गई थी। यह कार्यस्थलों पर शिशुगृहों के प्रावधान की बात करता है, इस बात पर जोर देता है कि सभी सहभागियों में एक तिहाई महिलाएं हों और लैंगिक आधार पर मजदूरी में कोई भेदभाव न किया जाए। निर्देशों में बिल्कुल स्पष्टतया लिखा गया है कि समान कार्य के लिए महिलाओं और यह पुरुषों को समान वेतन दिया जाएगा और यह समान पारिश्रमिक अधिनियम के प्रावधानों के अनुपालन में होगा। यह भी अपेक्षा की गई थी कि स्थानीय निरीक्षण/सतर्कता समिति में महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिले जो कार्यों के निरीक्षण के लिए बनाई जाती हैं जिससे कि परियोजनाओं के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका का मार्ग प्रशस्त हो। यह भी अपेक्षा की गई है कि वर्ष में दो बार होने वाली सामाजिक ऑडिट की प्रक्रियाओं में भी महिलाएँ सहभागी बनें। अधिनियम में एकल महिला को भी 'परिवार' के तौर पर पहचान दी गई जिससे कि विधवा/परित्यक्त/तलाकशुदा/निराश्रित और एकल महिलाओं की अन्य श्रेणियां भी इस अधिनियम का लाभ उठा सकें।

2.5 कामगारों के अधिकारों को संरक्षित करने वाले कानून

श्रम कानूनों का लक्ष्य होता है कार्यस्थल पर कामगारों के अधिकारों का संरक्षण करना और उसे प्रोत्साहन देना। महिलाओं के अधिकारों के लिए श्रम कानूनों के प्रावधानों का ध्यान कारखानों और अन्य कार्यस्थलों पर महिलाओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार, न्यूनतम मजदूरी, समान कार्य के लिए समान वेतन, मातृत्व लाभ, बच्चों के देखभाल की सुविधाएं, पर्याप्त आराम और अवकाश के प्रावधान, कार्य स्थल पर भेदभाव और यौन उत्पीड़न से बचाव पर केन्द्रित होता है। कई श्रम कानून संविधान में वर्णित सिद्धांतों और निदेशों के विस्तार हैं। उदाहरण के लिए, समान कार्य के लिए समान वेतन वाला अनुच्छेद समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के अधिनियमित होने का कारण बना। काम की मानवीय और न्यायशील परिस्थितियों पर जोर फैक्ट्री अधिनियमों और श्रम कानूनों में कई प्रावधानों का आधार बना जिससे महिलाओं के लिए, अलग शौचालय का प्रावधान, शिशु गृहों का प्रावधान और खतरनाक या दुष्कर जॉब्स या रात वाली पालियों में महिलाओं के नियोजन पर निषेध जैसे प्रावधानों को अन्तर्भूत किया जा सका। मातृत्व राहत के लिए राज्य के निदेश प्रावधान के चलते मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 का अधिनियमन हुआ। कार्य स्थलों पर महिलाओं की संरक्षा करने वाले श्रम कानूनों में शामिल हैं:

- समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 - यह समान या मिलते जुलते कामों के लिए पुरुषों तथा महिलाओं को समान पारिश्रमिक का प्रावधान करता है और सेवा शर्तों और भर्ती में भेदभाव का निषेध करता है सिर्फ उन स्थानों को छोड़कर जहां कानून द्वारा महिलाओं के नियोजन का निषेध या सीमित किया गया हो।
- मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 - मातृत्व की गरिमा का संरक्षण करने के लिए तथा जेंडर न्याय के लिए मातृत्व अवकाश और लाभ का प्रावधान करता है।
- कारखाना अधिनियम, 1948 - कार्यस्थल पर महिलाओं के संरक्षण हेतु अधिनियम में कई प्रावधान हैं, जिसमें व्यावसायिक सुरक्षा से संबंधित मुद्दे, स्वच्छता और शिशुगृह सुविधाओं से संबंधित प्रावधान शामिल हैं।

- खान अधिनियम, 1952 - यह भूमिगत स्थलों में महिलाओं के नियोजन को निषिद्ध करता है और भूमि के ऊपर भी महिलाओं के कार्य समयावधि को सीमित करने का प्रावधान करता है।
- मजदूरी का भुगतान अधिनियम, 1936 और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 - नियमित और समयबद्ध मजदूरी के भुगतान का प्रावधान करता है; उद्यम मजदूरी बोर्डों को प्रत्येक उद्यम के लिए मजदूरी संरचना को निर्धारित करने का अधिदेश देता है। निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान की बिल्कुल मनाही है।
- कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 - पूर्व में कामगार मुवाअजा अधिनियम के नाम से जाना जाने वाला यह अधिनियम औद्योगिक दुर्घटनाओं और विकलांगता या मृत्यु के लिए उत्तरदायी व्यावसायिक बीमारियों से कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति प्रदान करने का प्रावधान करता है।
- औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - यह कानून नौकरी से निकाले जाने, छंटनी के समय क्षतिपूर्ति दिए जाने, श्रमिक-प्रबंधन विवादों और अनुचित श्रमिक व्यवहारों को समाहित करता है; इस कानून से संबंधित मामलों की सुनवाई श्रम न्यायालय और औद्योगिक न्यायाधिकरणों में होती है।
- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 - यह कानून एक निश्चित सीमा से कम कमाने वाले कर्मचारियों को सेवा से निष्कासन के समय ग्रेच्युटी के भुगतान का प्रावधान करता है।
- कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम - उन अधिकांश स्थापनाओं पर लागू होता है जहां कम से कम 20 कामगार कार्य करते हैं। नियोक्ता और कर्मचारी दोनों कर्मचारी के मूल वेतन और मंहगाई भत्ते के 10-12 प्रतिशत तक का योगदान करते हैं। नियोक्ता के योगदान से कुछ निश्चित राशि को पेंशन कोष में जमा करा दिया जाता है। जिससे चार मुख्य प्रकार की पेंशन प्रदान की जाती है। सेवानिवृत्ति पर या विकलांगता पर मासिक पेंशन; सेवा में रहते हुए मृत्यु होने पर विधवा मासिक पेंशन; बच्चे के लिए मासिक पेंशन; और अनाथ के लिए मासिक पेंशन।
- बाल श्रम (निषेध और नियमन) अधिनियम, 1986 - यह कानून खतरनाक व्यवसायों में बाल श्रम को निषिद्ध करता है और गैर-खतरनाक व्यवसाय में कार्य की शर्तों का नियमन करता है।

बॉक्स सं. 2.3

कामगारों के अधिकारों से संबंधित अन्य कानून जो महिलाओं को लाभ पहुंचाते हैं – इसमें बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम 1976, बागवानी श्रम अधिनियम 1951, औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946, व्यापार संघ अधिनियम 1926, बोनस भुगतान अधिनियम 1955, व्यक्तिगत क्षति (मुआवजा बीमा) अधिनियम 1963, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, अन्तर राज्य प्रवासी कामगार (रोजगार का नियमन) सेवा की शर्तें अधिनियम 1979, और संविदा श्रमिक (निषेध और नियमन) अधिनियम 1970।

संवैधानिक प्रावधानों और श्रम कानूनों के अतिरिक्त भारत ने कई अंतर्राष्ट्रीय संधियों की अभिपुष्टि की है जो कार्यस्थल पर महिलाओं के अधिकारों पर प्रत्यक्ष रूप से केन्द्रित हैं या इसके लिए प्रावधान करते हैं। अभिपुष्टि के माध्यम से ऐसे अंतर्राष्ट्रीय मानक भारत पर भी लागू होते हैं। ऐसी संधियों में शामिल हैं:

- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन भूमिगत कार्य (महिला) संधि, 1935 (संख्या 45) की अभिपुष्टि 25.03.1938 को की।

- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन रात्रिकालीन कार्य (महिला) (संशोधित) संधि, 1948; और प्रोटोकॉल, 1990 (संख्या 89) की अभिपुष्टि 27.02.1950 को की।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समान पारिश्रमिक संधि, 1951 (संख्या 100) की अभिपुष्टि 25.09.1958 को की।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन भेदभाव (रोजगार और व्यवसाय) संधि, 1958 (संख्या 111) की अभिपुष्टि 03.06.1960 को की।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन रोजगार नीति संधि, 1964 (संख्या 122) की अभिपुष्टि 17.11.1998 को की।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन बेंजीन संधि, 1971 (संख्या 136) की अभिपुष्टि 11.06.1991 को की।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ग्रामीण कामगार संगठन संधि, 1975 (संख्या 141) की अभिपुष्टि 18.08.1977 को की।
- महिलाओं के विरुद्ध सभी स्वरूपों के भेदभाव के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट्र संधि (सीईडीएडब्ल्यू), 1979 की अभिपुष्टि 09.07.1993 को की।
- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अनुबंध, 1966 (आईसीईएससीआर) को 10.04.1979 को स्वीकार किया गया।
- नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अनुबंध, 1966 (आईसीसीपीआर) को 10.04.1979 को स्वीकार किया गया।
- महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संधि, 1953 की अभिपुष्टि 01.11.1961 को की।

2.6 कार्यस्थल पर जेंडर-विशिष्ट सुविधाएँ

कार्यस्थलों की अभिकल्पना परंपरागत तौर पर पुरुषों को ध्यान में रखकर की गई थी जिसमें लंबी अवधि तक काम करने और कार्य के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता की अपेक्षाएं सर्वप्रमुख थीं। ऐसे व्यवहारों ने युवा माताओं को प्रतियोगी जॉब्स और कॅरियर पाने में रुकावट डाली, बच्चों के जनन की अवधि में उन्हें पारिश्रमिक आधारित काम से बाहर कर दिया जाता था क्योंकि कार्यस्थलों पर बच्चों के देखभाल से संबंधित और अन्य जेंडर-अनुकूल सहायताओं की कमी रहती थी। इसी संदर्भ में कानूनों और नीतियों ने कार्यस्थलों पर जेंडर-विशिष्ट सुविधाओं को प्रदान करने के लिए प्रावधान किए जिससे कि महिलाओं के लिए काम के/आजीविका के अधिकार को वास्तविकता बनाया जा सके।

कार्यस्थल पर जेंडर विशिष्ट सुविधाओं में मातृत्व लाभ के अतिरिक्त धुलाई और अलग से शौचालय सुविधाओं, क्रेच और डे केयर सेंटरों की सुविधा, स्तनपान के लिए छुट्टी का प्रावधान शामिल हैं। उदाहरण के लिए, बीड़ी और सिगार कामगार (रोजगार की स्थितियां) अधिनियम, कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, कारखाना अधिनियम, दुकानें और स्थापना अधिनियम इत्यादि ऐसे कानून हैं जो वेतन, छुट्टी, काम के घंटे, अवकाश हेतु अंतराल, ओवरटाइम और खतरनाक स्थितियों में काम पर रोक आदि के बारे में नियमों के प्रावधान करते हैं। ऐसे अधिकांश कानूनों में रात्रिकालीन कार्यों में महिलाओं का नियोजन पूरी तरह प्रतिषिद्ध है। हालाँकि 2005 में कारखाना अधिनियम का संशोधन किया गया जिससे कि रात्रिकालीन पाली (रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक) में जब तक नियोक्ता महिलाओं के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय करे तो

महिलाओं को काम की अनुमति दी जा सके। कानूनों में ऐसे प्रावधानों की व्यवस्था की गई है कि जहां भी 30 से अधिक महिलाएं नियोजित हों वहां पर शिशुगृह (क्रेच) की व्यवस्था हो साथ ही उसमें शिशुगृह चलाने के समुचित दिशा निर्देश भी हैं। संविदा पर कार्य करने वाली महिला मजदूर और अन्तर राज्यीय प्रवास करने वाली महिला मजदूरों के लिए शिशुगृह और आराम करने के जगहों की सुविधाएं विभिन्न संगत कानूनों में प्रावधानित हैं।

शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति 1986 में, बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति 1994 में, महिला सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय नीति 2001 और बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजना 2005 में भी बच्चों की देखभाल से संबंधित सेवाओं की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम 2005 में शिशुगृहों के प्रावधान को अनिवार्य बनाया गया है। अगस्त 2006 में महिला और बाल विकास मंत्रालय ने घोषणा की कि वह एक ऐसा कानून लाएगा जो सार्वजनिक और निजी संगठनों के लिए अनिवार्य कर देगा कि वह अपने यहां काम करने वाली युवा माताओं को शिशुगृह और डे केयर केन्द्रों की सुविधाएं प्रदान करें। उसी के अनुरूप इसने कामकाजी माताओं के बच्चों के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय शिशुगृह योजना का निरूपण किया। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि छोटे बच्चों की देखभाल से संबंधित जेंडर विशिष्ट सुविधाओं को सिर्फ महिलाओं के कार्यस्थलों पर प्रदान कर और पिता के कार्यस्थलों पर ऐसी सुविधाओं को प्रदान न करके सरकार एक तरह से उसी सांस्कृतिक आदर्श को और मजबूत कर रही है तथा उसे वैधता प्रदान कर रही है कि बच्चों की देखभाल करना अकेले सिर्फ महिलाओं का दायित्व है। ऐसा न करके सरकार उस परंपरागत सांस्कृतिक आदर्श को प्रश्रय देने से बच सकती थी।

एक बार फिर से समय आ गया है कि आगे बढ़ने से पहले पिछले कुछ अनुभागों की समझ का आंकलन आप निम्न अभ्यास के माध्यम से करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001 और 2011-16 तक एक पंचवर्षीय रणनीतिक योजना का क्या महत्व है?

2) शोषित, वंचित लोगों के लिए सरकार द्वारा शुरू की गयी अन्य रोजगार सृजन योजनाओं से नरेगा किस तरह से भिन्न है?

3) नरेगा को एक जेंडर-संवेदनशील कानून क्यों समझा जाता है?

4) कार्य स्थलों पर महिलाओं का संरक्षण करने वाले कुछ श्रम कानूनों के नाम लिखिए।

5) कार्यस्थल पर प्रदत्त कुछ ऐसी जेंडर-विशिष्ट सुविधाओं के नाम लिखिए जिसकी हकदार महिलाएं विभिन्न कानूनों, योजनाओं और न्यायिक निर्णयों से हुई हैं?

नीचे के अनुभागों में आप संगठित क्षेत्र में कामगारों के लिए सामाजिक संरक्षण उपायों के बारे में पढ़ेंगे।

2.7 कामगारों के लिए सामाजिक संरक्षण उपाय

2.7.1 संगठित क्षेत्र

कार्यबल के संगठित क्षेत्र में केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले विभिन्न रोजगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित करने के अतिरिक्त केन्द्र सरकार **न्यूनतम मजदूरी के न्यूनतम राष्ट्रीय**

स्तर (एनएफएलएमडब्ल्यू) को समय-समय पर संशोधित करते हुए निर्धारित करती है। वर्तमान समय में 1 अप्रैल 2011 से लागू यह प्रतिदिन 115.00 रूपये निर्धारित है। हालाँकि यह गैर-सांविधिक है, राज्य सरकारों को सलाह दी जाती है कि उनके किसी भी अधिसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर (एनएफएलएमडब्ल्यू) से कम कतई न हो (पिल्लई, 2011)। इसके अतिरिक्त विभिन्न कानूनों के माध्यम से सामाजिक संरक्षण प्रदान किया जाता है जैसे कि:

- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1927 : यह विभिन्न स्थापनाओं में कर्मचारियों को अनिवार्य ग्रेच्युटी भुगतान का प्रावधान करता है।
- कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923: पूर्व में कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम के नाम से जाना जाने वाला यह कानून नियोक्ताओं पर यह बंधन डालता है कि रोजगार के दौरान और उसके कारण होने वाले किसी भी दुर्घटना के लिए कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति प्रदान करे।
- मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961: अधिनियम सवेतन मातृत्व अवकाश इत्यादि प्रदान करते हुए महिलाओं के कल्याण को प्रोत्साहित करता है।
- बागान श्रमिक अधिनियम, 1951: यह बागान कामगारों को प्रदान किए जाने वाले कल्याणकारी सुविधाओं के बारे में प्रावधान करता है और इसे सुरक्षा तथा व्यावसायिक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिए संशोधित किया गया है।
- कर्मचारी राज्य बीमा (ईएसआई) अधिनियम, 1948: यह बीमारी, मातृत्व और रोजगारजनित क्षतियों के लिए स्वास्थ्य देखभाल और नकद लाभ प्रदान करता है। इस अधिनियम का संशोधन योजना के अन्तर्गत सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार के लिए किया गया है और ईएसआई अवसंरचना को सक्षम बनाया गया है कि असंगठित क्षेत्र के कामगारों को भी स्वास्थ्य देखभाल प्रदान कर सके।
- कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952: यह अधिनियम कारखानों और अन्य स्थापनाओं में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि, पेंशन निधि और जमा आधारित बीमा निधियों को स्थापित किए जाने की व्यवस्था करता है।
- राजीव गांधी श्रमिक कल्याण योजना: छंटनी, नौकरी से हटाए जाने, तालाबंदी और आंशिक विकलांगता के चलते बेरोजगार होने वाले बीमित कामगारों को सामाजिक सुरक्षा जाल प्रदान करने की योजना है। इसका क्रियान्वयन ईएसआई निगम द्वारा किया जाता है जिसमें वह एक साल की अवधि के लिए मजदूरी और चिकित्सा लाभों का आधा प्रदान करता है।

अब हम उन उपायों के बारे में पढ़ेंगे जो असंगठित क्षेत्र में कामगारों का संरक्षण करते हैं।

2.7.2 असंगठित क्षेत्र

अनौपचारिक क्षेत्र

चूंकि असंगठित क्षेत्र में कामगारों की अधिकांश संख्या महिलाओं की है अतः असंगठित क्षेत्र के श्रमबल के लिए लागू होने वाले सामाजिक संरक्षण उपाय महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु अधिक प्रासंगिक हैं। सुदर्शन (2009) लिखते हैं कि असंगठित/ अनौपचारिक क्षेत्र में कामगारों के सामाजिक सुरक्षा समस्याओं को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है:

अ) ऐसी समस्याएं जो जनसंख्या के गरीब वर्गों के वंचन से उपजती हैं जैसे कि अपर्याप्त रोजगार, कम आमदनी, निम्न स्वास्थ्य और शैक्षणिक स्थिति; और

ब) दूसरी ऐसी समस्याएं जो आकस्मिकताओं का सामना करने के लिए अपर्याप्त सुरक्षा उपायों के कारण उपजती हैं जैसे कि बीमारी, दुर्घटना, मृत्यु और वृद्धावस्था।

यह तथ्य कि असंगठित/ अनौपचारिक क्षेत्र में सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों से आने वाले बहुसंख्या के कामगार इन कामगारों की प्रकृति में कुछ निश्चित सामाजिक आयाम दिखलाते हैं। यही कारण था कि असंगठित क्षेत्र में उपक्रमों पर राष्ट्रीय आयोग (एनसीईयूएस) ने अपनी मई 2006 की रिपोर्ट में सिफारिश की है कि उन अर्थों में सामाजिक सुरक्षा के उपायों को भी सामाजिक उत्थान के एक स्वरूप के तौर पर देखा जाना चाहिए।

असंगठित क्षेत्र में कामगारों के लिए मुख्य उपागम यह है कि क्षेत्र-विशिष्ट कल्याण निधियों की स्थापना की जाए (साधारणतया प्रकृति में त्रिदलीय जिसमें सरकार, नियोक्ता और कामगार के योगदान हों)। ऐसी कल्याण निधियां अंशदायी और कर-आधारित योजनाओं दोनों को समाहित करती हैं। कर आधारित योजनाओं की स्थापना भारत सरकार द्वारा बीड़ी कामगारों, खनन कामगारों, सिनेमा और विनिर्माण से संबंधित कामगारों के लिए किया जाता है। इस कल्याण निधि के माध्यम से कामगारों की पहुंच चिकित्सा सेवाओं तक, अपने बच्चों की शिक्षा तक और सामाजिक सहायता के अन्य निर्धारित स्वरूपों तक होती है। स्वास्थ्य बीमा योजनाएं जैसे कि **राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई)**, **आम आदमी बीमा योजना (एएबीवाई)** जो ग्रामीण भूमिहीन परिवारों के लिए मृत्यु और दुर्घटना बीमा कवर प्रदान करता है और असंगठित कामगारों की विभिन्न श्रेणियों के लिए कल्याण निधि और योजनाओं के माध्यम से उनके लिए बहुप्रतीक्षित सामाजिक संरक्षण प्रदान करती हैं।

असंगठित क्षेत्र में कामगारों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए 2008 में असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम को अधिनियमित किया गया। यह कानून राज्य को जीवन और विकलांगता कवर, स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था संरक्षण और कोई अन्य लाभ जो भी निर्धारित किया जाए को प्रदान करने के लिए योजनाएं निरूपित करने के लिए अधिदेश प्रदान करता है। इस खण्ड की इकाई 3 में इस कानून के क्रियान्वयन की समीक्षात्मक तौर पर जांच की जाएगी और उन चुनौतियों से भी रूबरू हुआ जाएगा जो इसके क्रियान्वयन के दौरान आई हैं।

2.8 कामकाजी महिलाओं पर हुए ऐतिहासिक निर्णय

आप इसके बारे में पहले ही एमडब्ल्यूजी-002 के खण्ड 4 की इकाई 3 के अन्तर्गत पढ़ चुके हैं। यहां हम उनके बारे में और विस्तार से चर्चा करेंगे।

समानता और गैर-भेदभाव के बारे में संवैधानिक प्रत्याभूति के चलते नियुक्तियों, प्रोन्नतियों, निष्कासनों और कार्य की स्थितियों में भेदभावपरक व्यवहारों को अवैध या गैर कानूनी घोषित किया जा सका है। सी. बी. मुथम्मा आईएफएस बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय विदेश सेवा के उन नियमों को असंवैधानिक घोषित कर दिया था जो विवाहित महिलाओं के विरुद्ध विभेदकारी थे। एयर इंडिया बनाम नारगेश मीरजा मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने नियमों के उन प्रावधानों को स्वेच्छाचारी और सभ्य समाज के लिए घृणित प्रतीक कहकर खारिज कर दिया था जिसके तहत एक एयर होस्टेस को उसके पहले गर्भधारण पर नौकरी से निकाल दिया गया था। रणधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्थापित किया कि यद्यपि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत को अभिव्यक्त रूप से हमारे संविधान द्वारा मौलिक अधिकार घोषित नहीं किया गया है परन्तु संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 39 (ग) के अन्तर्गत यह निश्चित रूप से संवैधानिक लक्ष्य है। इसलिए इस अधिकार को अतार्किक वर्गीकरण के आधार पर

असमान वेतनमानों के मामलों में लागू कराया जा सकता है। बाद में कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस निर्णय का अनुपालन किया गया।

मेसर्स मैककिनन मैकेंजी और कं. लि. बनाम ऑड्रे डीकोस्टा और अन्य के मामले में जहां महिला स्टेनोग्राफरों को पुरुष स्टेनोग्राफरों की तुलना में कम वेतनमान दिया जाता था, सर्वोच्च न्यायालय ने स्थापित किया कि विभेदकारी वेतनमान संवैधानिक प्रावधानों और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं।

बॉक्स सं. 2.4

महिलाओं के लिए सकारात्मक कार्यों पर संवैधानिक प्रावधानों के अनुपालन में महिलाओं के लिए नगरपालिकाओं, शैक्षणिक संस्थानों, सार्वजनिक रोजगारों और पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटों को आरक्षित किया गया है। महिला उद्यमियों के लिए सुलभ ऋण और कर छूटों के प्रावधान किए गए हैं। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के संदर्भ में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारण्टी प्रयुक्त होती है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इसके निरोध और उसके निवारण हेतु दिशानिर्देश जारी किए हैं।

न्यायपालिका ने व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए गहरी चिंता प्रकट की है। उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केन्द्र बनाम भारत संघ के मामले में जो एसबेस्टस विनिर्माण उद्योग में काम की दशाओं और कर्मचारियों पर स्वास्थ्य प्रभावों की बात है, सर्वोच्च न्यायालय ने स्थापित किया है कि किसी कामगार के स्वास्थ्य का अधिकार मूलतः उसके अर्थपूर्ण जीवन के अधिकार का अंगभूत पहलू है।

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ में सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा में पत्थर कटाई उद्योग से बंधुआ मजदूरों की रिहाई का मसला गौर से देखा था। पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से दोहराया कि राज्य इस संवैधानिक दायित्व से बंधा हुआ था कि वह देखे कि किसी भी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न हो विशेष रूप से तब जबकि वह समाज के कमजोर वर्ग से संबंध रखता/रखती हो और एक मजबूत और शक्तिशाली विरोधी के समक्ष कानूनी लड़ाई लड़ने में अक्षम हो। इन सबके बावजूद इन मामलों के तथ्यों ने महिला कामगारों की चिंता नहीं की बल्कि ये ऐसे ऐतिहासिक निर्णय थे जिन्होंने कामगारों के अधिकारों से संबंधित कानून के प्रगतिशील सिद्धांतों को स्थापित कर दिया जिन्हें जब और जैसी जरूरत हो महिला कामगारों तक भी विस्तृत किया जा सकता था।

एक निर्णय जिसने हजारों महिलाओं को, जो बार डांसरों की तरह काम कर रही थीं, काम करने से रोक दिया था, बांबे हाईकोर्ट ने बार डांसरों पर महाराष्ट्र में राज्य सरकार द्वारा लगाए गए उस निर्णय को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह निषेध बार डांसरों के जीवन और आजीविका के अधिकार का उल्लंघन करती थी।

महिलाओं के लिए रात्रि की पाली में काम करने पर निषेध के एक विवादास्पद मुद्दे पर मद्रास हाईकोर्ट ने प्रगतिशील निर्णय दिया यह घोषणा करते हुए कि कारखाना अधिनियम में महिलाओं पर रात्रि कालीन पाली में काम करने पर जो रोक लगायी गयी है वह असंवैधानिक है क्योंकि वह एक तरह से महिलाओं की आजीविका के अधिकार का खंडन करती है। निर्णय में रात्रिकालीन पाली के दौरान महिलाओं की सुरक्षा के लिए नियोक्ताओं द्वारा कुछ निर्धारित उपाय करने की जरूरत पर बल दिया गया। रात्रिकालीन पालियों में महिलाओं के काम करने पर रोक हमेशा से एक विवादास्पद मुद्दा रहा है क्योंकि राज्य

द्वारा उनकी सुरक्षा के लिए उनके काम की स्वतंत्रता को सीमित करते हुए यह निर्णय लिया जाता था।

सर्वोच्च न्यायालय ने 1997 में विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य मामले में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न पर एक ऐतिहासिक निर्णय की घोषणा की। इस निर्णय में न्यायालय ने कहा कि कामकाजी महिलाओं का यौन उत्पीड़न एक तरह से जेंडर समानता के अधिकारों का सीधा उल्लंघन है। परिणामस्वरूप यह किसी व्यवसाय, पेशे और व्यापार को अपनाने के अधिकारों का भी उल्लंघन है।

निम्न अभ्यास को करते हुए अपने पढ़े हुए की प्रगति की जांच कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) कुछ कानूनों एवं योजनाओं के नाम बताइए जो संगठित क्षेत्र में कामगारों को सामाजिक संरक्षण प्रदान करते हों।

2) कुछ कानूनों एवं योजनाओं के नाम लिखिए जो असंगठित क्षेत्र में कामगारों को सामाजिक संरक्षण प्रदान करते हों।

3) कार्यस्थलों पर महिलाओं के अधिकारों पर कुछ ऐतिहासिक निर्णयों के नाम लिखिए।

कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कानूनी उपायों पर हम अपनी चर्चा जारी रखेंगे जिसने महिलाओं को लाभ पहुंचाया है।

2.9 शिक्षा का अधिकार

सामाजिक संरक्षण और शिक्षा एक से अधिक आयामों से जुड़े हुए हैं। शिक्षा एक ऐसा हथियार है जिससे गरीबी को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होने से रोका जा सकता है। ठीक ऐसे ही सामाजिक संरक्षण का उद्देश्य भी गरीबी और असमानता की समस्या से निबटना होता है जो भारत समेत तमाम देशों में सार्वभौमिक शिक्षा में बाधा बनकर खड़ी हैं। तमाम समूहों और एजेंसियों के सम्मिलित प्रयासों से, जिन्होंने दृढ़ता से यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया कि लगातार बढ़ती गरीबी और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाने की स्थिति में भी लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और शिक्षा के लिए भुगतान कर पाने की क्षमता से बिना प्रभावित हुए भारत में सभी बच्चों को कम से कम न्यूनतम शिक्षा मिल सके, शिक्षा के अधिकार को पिछले दशक के दौरान बहुत बल मिला है। भारतीय राज्य भी मौलिक शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु नियमित रूप से प्रावधानों और योजनाओं का निरूपण करते रहते हैं। (इस अधिनियम के बारे में और अधिक जानकारी आप इस खण्ड की अगली इकाई में पढ़ेंगे)।

1992 में सर्वोच्च न्यायालय ने मोहिनी जैन के मामले में कहा था कि शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार है और प्रवर्तनीय है। 1993 में उन्नीकृष्णन वाले मामले में इस निर्णय के औचित्य पर और बड़ी पांच न्यायाधीशों की बेंच ने सुनवाई की और न्यायालय ने घोषणा की कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रत्याभूत जीवन के अधिकार में अन्तर्निहित और उससे निःसृत है और यह कि 'एक बच्चे (नागरिक) को चौदह साल की उम्र तक मुफ्त शिक्षा पाने का अधिकार है।' इस निर्णय पर राज्य ने 2002 में एक संविधान संशोधन के माध्यम से प्रतिक्रिया करते हुए संविधान में अनुच्छेद 21-ए प्रविष्ट किया जो 6 से 14 वर्ष के बीच के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।

वर्ष 2000 में, अंतर्राष्ट्रीय समुदायों द्वारा दुनिया के सबसे गरीब देशों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार लाते हुए विकास को प्रोत्साहित करने के लिए **सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों** का विकास किया। इसमें आठ ऐसे विकासात्मक लक्ष्य शामिल थे जिसे 2015 तक हासिल करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय सहमत हुआ था। प्रथमतः इन लक्ष्यों को संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दि घोषणा के माध्यम से अंगीकृत किया गया था।

शिक्षा पर भारतीय नीतियां भी वर्ष 2000 में विकसित किए गए सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों में से लक्ष्य 2 से प्रभावित हुईं, जो दरअसल सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने को लेकर था। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ष 2001-02 में **सर्व शिक्षा अभियान** को आरम्भ किया गया जो 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की शैक्षणिक जरूरतों को विभिन्न दृष्टियों से लक्षित करता था। इसमें नए स्कूल खोलना, स्कूलों का, कक्षाओं का निर्माण करना, स्कूल इमारतों का पुनरुद्धार या विस्तार करना और अन्य सुविधाएं जैसे पाठ्यपुस्तकें प्रदान करना इत्यादि शामिल थे। **शिक्षा गारण्टी योजना (ईजीएस)** और **वैकल्पिक और नवोन्मेषी शिक्षा (एआईई)** सर्वशिक्षा अभियान के प्रमुख घटक हैं जो स्कूल से निकल चुके बच्चों को बुनियादी शिक्षा के दायरे में लेकर आने पर केन्द्रित था। पहला घटक अर्थात ईजीएस ऐसे इलाकों को लक्षित करता था जहां 6-14 वर्ष की आयु के कम से कम 15-25 स्कूल न जा सकने वाले बच्चे हों और वहां निवास के एक किलोमीटर के घेरे में कोई औपचारिक स्कूल न हो, तब वहां इसके तहत स्कूल खोला जाता था। आपवादिक मामलों में जैसे कि सुदूर

पहाड़ी क्षेत्रों में स्कूल न होने के कारण स्कूल न जा सकने वाले 10 बच्चों के लिए भी ईजीएस के तहत स्कूल खोला जा सकता है। वहीं दूसरा घटक एआईई बुरी तरह से वंचित विशिष्ट कोटियों के बच्चों के लिए था उदाहरण के लिए, बाल श्रम, झुग्गी के बच्चों, प्रवासी बच्चों, कामगार बच्चों, कठिन परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों और 9 वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चों विशेषकर किशोर लड़कियों के लिए था जिनकी सहायता एआईई के तहत पूरे देश में की जा रही थी। 2004-05 में प्रारम्भिक शिक्षा कोष (पीएसके) की स्थापना की गई थी जिसके माध्यम से सभी प्रमुख केन्द्रीय करों पर 2 प्रतिशत का उपकर प्राप्त किया जाता था। इस कोष में आने वाली निधियों का उपयोग अनन्य रूप से सर्व शिक्षा अभियान और प्राथमिक शिक्षा को पोषणीय सहायता के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपी-एनएसपीई) अर्थात मध्यान्ह भोजन के लिए किया जा सकता था। इसके पश्चात मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का बच्चों का अधिकार अधिनियम को 2009 में पारित किया गया और 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इसने बच्चों को शिक्षा प्रदान करने का विधिक आधार प्रदान किया और शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन की रूपरेखा प्रदान की।

मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के लिए बच्चों का अधिकार (आरटीई) अधिनियम 2009

इस कानून की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं:

- यह भारत के 6 से 14 वर्ष की आयु समूह के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है;
- किसी भी बच्चे को छोड़ा, निकाला या बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने की बाध्यता नहीं डाली जा सकती थी जब तक कि उसकी मौलिक शिक्षा पूरी न हो जाए;
- यदि 6 वर्ष से अधिक आयु के किसी बच्चे को किसी स्कूल में प्रवेश नहीं मिला है या फिर यद्यपि प्रवेश मिल गया है वह अपना/अपनी मौलिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाता तो उसे उसकी आयु के अनुरूप वाली कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा। ऐसे मामलों में बच्चे को अधिकार होगा कि वह कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करे और मौलिक शिक्षा पूरी होने तक वह मुफ्त शिक्षा का हकदार होगा यद्यपि ऐसा करते हुए उसकी आयु 14 वर्ष से अधिक हो जाए;
- किसी भी बच्चे को उसकी आयु के साक्ष्य के अभाव में किसी स्कूल में प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जा सकता। जन्म प्रमाण पत्र या अन्य कागजात का प्रयोग बच्चे की आयु का निर्धारण करने के लिए किया जाएगा;
- कोई भी बच्चा जो प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर लेता है तो उसे इस आशय का प्रमाण पत्र प्रदान किया जाएगा;
- यह कानून सभी निजी स्कूलों में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए कक्षा 1 में प्रवेश में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करता है;
- यह शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार का अधिदेश देता है;
- जहां कहीं स्कूल अवसंरचना में कमी है, उसे तीन वर्षों के भीतर सुधार लेना है यदि स्कूल ऐसा करने में असफल रहता है तो उसे दी गई मान्यता वापस ली जा सकती है; और
- मुफ्त शिक्षा के खर्चे का भार राज्य और केन्द्र सरकार के बींच बांट लिया जाएगा।

शिक्षा और महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001

महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001 सरकारों को अधिदेश प्रदान करती है कि वह महिलाओं और लड़कियों के लिए शिक्षा तक समान पहुंच सुनिश्चित करे, भेदभाव उन्मूलन के लिए विशेष उपाय अपनाए, शिक्षा के सार्वभौमीकरण, निरक्षरता के उन्मूलन, जेंडर-संवेदित शिक्षण प्रणाली के सृजन, लड़कियों के नामांकन दर और अवधारण दर में वृद्धि और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित करे जिससे जीवन पर्यन्त सीखना सुविधाजनक हो और इसके साथ ही महिलाओं के व्यवसाय/व्यापार/तकनीकी कौशल का विकास हो। इसके साथ ही माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा में जेंडर-अंतराल को कम करने को ध्यान केन्द्रित करने वाले क्षेत्र में चिन्हित है। नीति यह भी वादा करती है कि वह शैक्षणिक प्रणाली के हर स्तर पर जेंडर-संवेदी पाठ्यक्रम का विकास करेगी जिससे लैंगिक रूढ़िबद्धता को लक्षित किया जा सके जो कि जेंडर आधारित भेदभाव का सबसे प्रमुख कारण है।

शैक्षणिक योजनाएं

बालिकाओं की शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन इस प्रकार शिक्षा के अधिकार अधिनियम और महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति 2001 (आप इस नीति के बारे में विस्तार से इस खण्ड की इकाई 4 में पढ़ेंगे) के अन्तर्संबंधों से प्रभावित हुआ। अपने नागरिकों में साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने कई योजनाएं प्रारम्भ कीं जैसे कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना, मध्यान्ह भोजन योजना और प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीईजीईएल)। इस खण्ड की इकाई 3 शिक्षा का अधिकार अधिनियम और इसके क्रियान्वयन का समीक्षात्मक मूल्यांकन करेगी।

2.10 खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

क्रयशक्ति में कमी, बढ़ते हुए ऋण, भयानक बेरोजगारी, प्राकृतिक आपदाओं (जैसे कि सूखा और बाढ़) और कुछ अन्य कारकों के कारण देश भर में लाखों लोगों के लिए भुखमरी वास्तविक और आसन्न खतरा बनी हुई है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भोजन और पोषण सुरक्षा प्रमुख विकासात्मक लक्ष्य बना रहा है। खाद्य सुरक्षा की कोई भी सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा नहीं है। हालाँकि अधिकांश परिभाषाएं पर्याप्त और वहन करने योग्य पौष्टिक भोजन तक पहुंच पर केन्द्रित हैं।

बॉक्स सं. 2.5

> पोषण सुरक्षा का अर्थ है भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनों, जिसमें अनाज, दालें, तेल, मांस, दूध, अंडे, सब्जियां और फल शामिल हों, की उपलब्धता और वहनीयता के माध्यम से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा और सूक्ष्म पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्राओं तक पहुंच होना जो एक व्यक्ति के लिए अपनी जीवन अवस्था में शारीरिक जरूरतों के अनुसार उसकी/उसके आवश्यकता को पूरा करती हो।

भारत ने खाद्यान्नों के मामले में आत्म निर्भरता 1970 के दशक में प्राप्त कर ली थी और तब से उसे निरंतर बनाए रखा है। परन्तु राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न सुरक्षा की प्राप्ति हो जाने के बावजूद गरीबों में भी सबसे गरीब तक इसकी पहुंच नहीं हो सकी है और दीर्घकालीन खाद्य असुरक्षा अभी भी बहुत उच्च है। आज, वैश्विक भूख सूचकांक में 119 देशों की सूची में भारत की स्थिति 94वें पायदान पर है। 43 प्रतिशत भारतीय बच्चे और 40 प्रतिशत महिलाएँ कुपोषित हैं। बाल मृत्यु में से 50 प्रतिशत का कारण कुपोषण होता है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के मध्य में वयस्क महिलाओं में आधे से अधिक एनेमिक थीं और सभी

वयस्कों (पुरुष और महिला) में से एक तिहाई सामान्य से कम वजन के थे (लक्ष्मणन, 2010)। असंगठित क्षेत्र में उपक्रमों के लिए राष्ट्रीय आयोग के अनुसार (अर्जुन सेनगुप्ता रिपोर्ट) 77 प्रतिशत भारतीय प्रतिदिन 20 रूपये से कम में गुजारा करते हैं (एनसीईयूएस रिपोर्ट, 2009)।

हाल के वर्षों में पारिवारिक खाद्य सुरक्षा को लेकर नीति के मुख्य मुद्दे में अंतर आया है और खाद्य सुरक्षा के आंकलन में प्रति व्यक्ति कैलोरी अन्तर्ग्रहण का प्रयोग किया जाने लगा है। सरकार व्यापक स्तर पर विविधता वाले पोषण हस्तक्षेप कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर रही है जिससे कि व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। ऐसे कार्यक्रमों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस), कई प्रकार के काम के बदले अनाज कार्यक्रम और अन्य मजदूरीजन्य रोजगार कार्यक्रमों के साथ-साथ ऐसे कार्यक्रम भी हैं जो सीधे महिलाओं और बच्चों को लाभ पहुंचाते हैं। इतना ही नहीं राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम (एनआरडीडब्ल्यूपी) जैसे कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के लिए, खाना बनाने के लिए और अन्य घरेलू आवश्यकताओं के लिए पानी की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित कर रहे हैं। इस मामले को लेकर केन्द्र सरकार की कुल आठ प्रमुख योजनाएं/कार्यक्रम संचालित हैं जिनका विवरण इस इकाई की **तालिका बी** में दिया गया है। 28 नवंबर 2001 को जारी किए गए एक महत्वपूर्ण अंतरिम आदेश में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित 8 खाद्यान्न संबंधित योजनाओं के बारे में निर्देश जारी किया है। संक्षेप में उस आदेश में केन्द्र और राज्य सरकारों को उन योजनाओं को पूर्णतया आधिकारिक दिशानिर्देशों के अनुरूप क्रियान्वित करने का निर्देश दिया गया है। इस आदेश के प्रभाव से इन योजनाओं के अन्तर्गत मिलने वाला लाभ एक प्रकार से विधिक हकदारियों में बदल गया है।

सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है कि सबसे नीचे की 30 प्रतिशत जनसंख्या के ऊर्जा अन्तर्ग्रहण को कैसे बढ़ाया जाए। मध्यम अवधि के लक्ष्य के तौर पर खाद्य अंतराल को वर्तमान में पड़े खाद्यान्न संग्रहों से पूरा किया जा सकता है और दीर्घकालीन लक्ष्य के लिए इस जनसंख्या समूह के लिए जॉब अवसरों में वृद्धि करके क्रयशक्ति में इज़ाफा करने की रणनीति अपनाई जा सकती है। इस बात की आवश्यकता भी है कि सरकार द्वारा शुरू किए गए विभिन्न खाद्य योजनाओं की क्षमताओं में सुधार किया जाए और इसे सबके लिए उपलब्ध, भ्रष्टाचार से मुक्त और शहरी क्षेत्रों के प्रति झुकाव से बचाया जाए।

भोजन के अधिकार पर ऐतिहासिक निर्णय

अप्रैल 2001 में पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल, राजस्थान) ने भोजन के अधिकार को विधिक रूप से प्रवर्तनीय बनाने के लिए यह तर्क देते हुए सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की कि संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन की गारण्टी के मौलिक अधिकार में भोजन का अधिकार अन्तर्भूत है। यह याचिका ऐसे समय दायर की गई थी जब देश में खाद्यान्न का भण्डारण अभूतपूर्व स्तर (भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में 6 करोड़ टन) तक पहुंच गया था जो वास्तव में 2 करोड़ टन के जरूरी बफर स्टॉक से 4 करोड़ टन अधिक था। फिर भी राष्ट्रव्यापी स्तर पर लोगों के भुखमरी से मरने की खबरें थीं, रिपोर्ट थी। याचिका में कई-कई मुद्दों को लक्षित किया गया था जैसे कि अपर्याप्त सूखा राहत, दीर्घकालीन भूख, प्रचण्ड कुपोषण, खाद्य संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन, भुखमरी से हो रही मौतें, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का असफल हो जाना और साथ ही साथ पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के साधारण मुद्दे भी थे। इस याचिका पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर भोजन के अधिकार के विविध पक्षों पर कई आदेश जारी किए हैं।

न्यायालय ने दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लिया कि भोजन का अधिकार भारत के संविधान में अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत गरिमा के साथ जीवन के मौलिक अधिकार का अभिन्न अंग है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश जारी किया कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सभी दुकानें, यदि वे बंद हो गई हैं तो उन्हें एक सप्ताह के भीतर खोल दिया जाए। भारतीय खाद्य निगम को यह सुनिश्चित करने का आदेश जारी किया कि वह सुनिश्चित करे कि खाद्यान्न नष्ट न होने पाए। राज्यों को सरकारी योजनाओं जिसमें रोजगार आश्वासन योजना भी शामिल था को क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई जिसे सम्पूर्ण ग्रामीण योजना, मध्यान्ह भोजन योजना, एकीकृत बाल विकास योजना, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली गर्भवती महिलाओं के लिए मातृत्व लाभ योजना, 65 वर्ष से अधिक उम्र के निराश्रित व्यक्तियों हेतु राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, अन्नपूर्णा योजना, अन्त्योदय अन्न योजना, राष्ट्रीय परिवार कल्याण योजना और गरीबी रेखा से नीचे और गरीबी रेखा से ऊपर के परिवारों हेतु सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी योजनाओं द्वारा मिलाकर चलाया जाना था।

ऐसे आदेश कार्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं जिससे कि राज्य को सर्वाधिक वंचित और शोषित समुदायों को भोजन और पोषण सुरक्षा प्रदान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी विशेष क्षेत्र में भुखमरी के कारण मौत की रिपोर्ट मिलती है या फिर किसी राशन की दुकान पर खाद्यान्न नहीं है या यदि राज्य सरकार प्राथमिक स्कूलों में मध्यान्ह भोजन के रूप में पका हुआ खाना परोसने में असफल रहता है तो सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों का उपयोग संबंधित अधिकारियों से अतिशीघ्र कदम उठाने के लिए कहने में हो सकता है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2011

भारतीय सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक प्रस्तुत किया। इसे 22 दिसंबर 2011 को लोकसभा में पेश किया गया परन्तु इसे भोजन पर संसदीय स्थायी समिति को संदर्भित कर दिया गया जिसने विधेयक के विभिन्न प्रावधानों पर विचार किया और भिन्न-भिन्न आलोचनाएं कीं। अधिनियम में 63 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के लिए छूट प्राप्त खाद्य सुरक्षा का वादा किया गया था। अधिनियम के प्रावधानों और उनकी आलोचनाओं तथा जमीनी हकीकत के संदर्भ में नागरिक समाज द्वारा उठाई गई चिन्ताओं पर चर्चा हम इसी खण्ड की इकाई 3 में करेंगे।

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल का अधिकार

भारत में भोरे समिति की रिपोर्ट, 1946 जिसने स्वास्थ्य सेवा के निवारात्मक और उपचारात्मक दोनों प्रकार्यों के संयोजन पर बल दिया था, ने स्वास्थ्य सेवा नीतियों की आधारशिला रखी। (सीईएचएटी, 1996)।

इसके पश्चात सरकार ने नौ योजना अवधियों के दौरान स्वास्थ्य योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करते हुए स्वास्थ्य सेवा के प्रति एक नीति उपागम अंगीकृत कर लिया। इसके बावजूद निहायत ही अन्यायसंगत स्वास्थ्य प्रणाली ने उन लोगों को स्वास्थ्य सुविधा से वंचित कर दिया जो इसका खर्च वहन नहीं कर सके। हाल के वर्षों में एक तरफ तो स्वास्थ्य सेवा के निजीकरण की ओर कदम बढ़ाए जा रहे हैं जो स्वास्थ्य देखभाल तक गरीबों की पहुंच को स्पष्टतया नकारते हैं। वहीं दूसरी ओर नागरिक समाज समूह स्वास्थ्य सेवा के प्रति मानव अधिकार उपागम अपनाए हुए हैं और एक हकदारी तथा सकारात्मक अधिकार की तरह स्वास्थ्य सुविधाओं तक सभी लोगों की व्यापक और सार्वभौमिक पहुंच की मांग कर रहे हैं।

मानव अधिकार उपागम का प्रयोग करने का अर्थ है कि पात्रता सार्वभौमिक है जिससे कोई भी समूह किसी भी आधार पर चाहे वह क्रयशक्ति हो, रोजगार स्थिति हो, आवास, धर्म, जाति, जेंडर, अपंगता और भेदभाव का कोई अन्य कारण हो, उससे बाहर नहीं किया जा सकेगा। साथ ही साथ सार्वभौमिकता का यह अर्थ नहीं होगा कि वंचित और शोषित तथा कमजोर वर्गों जिन्हें सकारात्मक कार्यों के माध्यम से विशेष पात्रता की जरूरत हो, जिससे कि उनके द्वारा सही गयी किसी ऐतिहासिक या दीर्घावधि की असमानता को दूर किया जा सके, को किसी विशिष्ट सकारात्मक कदम से रोका जाएगा। भारत में स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सेवा के अधिकार में निम्न बातों की आवश्यकता होगीः उपलब्धता, गैर-भेदभाव, भौतिक सुलभता, आर्थिक सुलभता, सूचना सुलभता और समानता।

आगे पढ़ने से पहले निम्न अभ्यास को हल कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

निम्नलिखित में से प्रत्येक के बारे में एक-दो पंक्तियों में लिखिए–

1) आर टी ई एक्ट 2009

2) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम

3) स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सेवा का अधिकार

4) महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001

आने वाले परिच्छेद में राज्य द्वारा स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में किए गए हस्तक्षेपों के बारे में पढ़िए।

स्वास्थ्य सेवा हेतु सरकारी योजनाएं और कानून

महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001 निम्न परिप्रेक्ष्यों में महिलाओं की स्वास्थ्य को लेकर अपनी चिंता प्रकट करती है :

- महिलाओं के स्वास्थ्य को लेकर एक समग्रतामूलक दृष्टिकोण अंगीकृत किया जाए जिसमें पोषण और स्वास्थ्य सेवाएं दोनों शामिल हों और महिलाओं तथा बालिकाओं के जीवन-चक्र के सभी स्तरों पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर, जो मानव विकास के संवेदनशील संकेतक हैं, में कमी लाने को प्राथमिक चिंता बनाया जाए।
- एक व्यापक, आर्थिक रूप से वहन करने योग्य और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा तक महिलाओं की पहुंच होनी चाहिए।
- महिलाओं के प्रजनन अधिकारों को ध्यान में रखते हुए ऐसे उपाय अपनाए जाएं जिससे उन्हें एक ओर गर्भधारण करने और बच्चे जनने के संबंध में सूचित विकल्प अपनाने में सक्षम बनाया जा सके और दूसरी ओर देशज, संक्रामक और संचारी रोगों की जानकारी देते हुए लैंगिक और स्वास्थ्य समस्याओं से अवगत कराया जा सके।
- एचआईवी/एड्स और अन्य यौन संचारित रोगों के सामाजिक, विकासात्मक और स्वास्थ्य परिणामों के बारे में जेंडर परिप्रेक्ष्य से जानकारी दी जाए और उसे उसी संदर्भ में लक्षित किया जाए।
- जन्म और मृत्यु का पंजीकरण और विवाहों के अनिवार्य पंजीकरण को सख्ती से क्रियान्वित किया जाए जिससे कि शिशु और मातृ मृत्यु दरों और बाल विवाहों इत्यादि के बारे में सही आंकड़ा उपलब्ध हो सके और उन समस्याओं से निबटा जा सके।
- अपनी पसन्द के परिवार नियोजन के प्रभावी, सुरक्षित और वहनीय तरीकों तक पहुंच के लिए महिलाओं और पुरुषों दोनों की आवश्यकताओं का आंकलन हो और बाल विवाह तथा बच्चों के बीच अंतर जैसे मुद्दों को लक्षित किया जाए।
- स्वास्थ्य देखभाल और पोषण के बारे में महिलाओं के परंपरागत ज्ञान की पहचान हो तथा उसे प्रोत्साहन दिया जाए।
- महिलाओं के लिए उपलब्ध सम्पूर्ण स्वास्थ्य अवसंरचना के ढांचे के अंतर्गत ही भारतीय और अन्य वैकल्पिक चिकित्सा प्रणालियों को बढ़ावा दिया जाए जिससे उपलब्धता बढ़े।

विशेषकर महिलाओं, बच्चों और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) की शुरुआत की गई। यह स्वास्थ्य के अत्यावश्यक निर्धारकों को समाहित करता है जैसे कि पोषण, स्वच्छता, आरोग्यशास्त्र और सुरक्षित पेयजल। इसका **सर्वप्रमुख लक्ष्य है शिशु और मातृ मृत्यु दर में कमी लाना, संचारी और गैर-संचारी बीमारियों की रोकथाम इत्यादि।** इसकी उपलब्धि यह रही कि यह कार्यक्रम शिशु मृत्यु दर को 2005 में 58 से कम करके 2009 में 50 तक लाने और 2005-06 में 1.08 करोड़ संस्थागत जन्म से बढ़कर 2009-10 में संस्थागत जन्म 1.62 करोड़ हो गया। 2005 में ही आरम्भ की गई जननी सुरक्षा योजना (जेएसवाई) एनआरएचएम के अन्तर्गत ही सुरक्षित मातृत्व हेतु हस्तक्षेप है। इसका क्रियान्वयन इस लक्ष्य के साथ किया जा रहा है कि गरीब गर्भवती महिलाओं में संस्थागत जन्म को प्रोत्साहित करके मातृ मृत्यु दर और शिशुजन्म से पूर्व होने वाली मातृ मृत्यु में कमी लायी जाए।

भारत में महिलाओं से संबंधित कुछ सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य सेवा कानूनों में द मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रिगनेन्सी एक्ट 1971 और गर्भधारणपूर्व और प्रसवपूर्व निदान तकनीकी (नियमन और दुरुपयोग का निरोध) अधिनियम 1994 (पीसीपीएनडीटी) शामिल हैं जो प्रजनन स्वास्थ्य के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। हालाँकि स्वास्थ्य संबंधी कई अन्य पहलुओं जैसे कि आकस्मिक स्वास्थ्य देखभाल का अधिकार, एचआईवी/एड्स, चिकित्सा अभ्यास देखभाल, चिकित्सकीय लापरवाही, औषध और सार्वजनिक स्वास्थ्य, व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य सेवा, वातावरण और स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य और कैदियों इत्यादि पर विधिक कानूनों और न्यायालय के निर्णयों के संयोजन उपलब्ध हैं। इन सभी निर्देशों और आदेशों का प्रभाव महिलाओं पर भी पड़ता है।

ऐतिहासिक निर्णय

एक मामले (डॉ. उपेन्द्र बक्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1983) 2 एससीसी 308) में सर्वोच्च न्यायालय ने महिलाओं के लिए राज्य संरक्षण गृहों में रहने वाली महिलाओं के मानवाधिकारों को प्रवर्तित किया और मानसिक स्वास्थ्य के पहलुओं पर दिशानिर्देश दिया। एक दूसरे मामले (उदाहरण के लिए, देखिए हरियाणा राज्य बनाम श्रीमती संतारा एआईआर 2000 एससी 1888 और अच्युतराव हरिभाउ खोड़ा बनाम) में, जिसमें रांची के नजदीक एक मानसिक चिकित्सालय की स्थितियों का संबंध था, यह पाया गया कि महिला मरीजों को इलाज हो जाने और ठीक हो जाने के बाद भी छोड़ा नहीं जाता था। अस्पताल और राज्य प्रशासन के प्राधिकारियों ने दावा कि यद्यपि महिला मरीजों के ठीक हो जाने के बाद और उनके रिश्तेदारों को इस आशय की सूचना दे दिए जाने के बाद भी उन्हें वापस परिवार में स्वीकार नहीं किया जाता। सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी महिलाओं के लिए जिन्हें मानसिक चिकित्सा के बाद उनके परिवारों में स्वीकार नहीं किया जाता, एक पुनर्वास केन्द्र की स्थापना का निर्देश दिया। इसी तरह चिकित्सकीय लापरवाही के कारण असफल बंध्याकरण के मामले में न्यायालय ने गर्भावस्था/बच्चे के जन्म के लिए मुवाअजे का आदेश दिया था।

व्यावसायिक सुरक्षा के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय ने एशियाड विनिर्माण कामगारों के मामले में निर्देश दिया कि राज्य यह देखने के लिए संवैधानिक दायित्व से बंधा हुआ है कि किसी भी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न हो और विशेष रूप से यदि वह व्यक्ति समाज के कमजोर वर्ग से संबंध रखता हो और अपना शोषण करने वाले मजबूत और ताकतवर विरोधी के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ने में अक्षम हो। न्यायालय ने विभिन्न कानूनों के उचित क्रियान्वयन हेतु निर्देश दिया जिसमें मातृत्व लाभ से संबंधित कानून और खान शिशुगृह नियम 1966 शामिल हैं।

चिकित्सा तकनीकों के दुरुपयोग के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय ने सेहत (सीईएचएटी) बनाम भारत संघ के मामले में एक ऐतिहासिक निर्णय दिया। इस मामले में एक सक्रिय कार्यकर्ता साबू जॉर्ज के साथ गैर-लाभकारी संगठनों सेहत और मासूम ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक जनहित याचिका दायर की थी। इस याचिका में कहा गया था कि पीसीपीएनडीटी अधिनियम को उचित ढंग से क्रियान्वित नहीं किया जा रहा जिसके चलते देश में बालिका शिशु लिंगानुपात में गिरावट आती जा रही है। एक्ट का उचित कार्यान्वयन कर पाने की असफलता के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र और राज्य सरकारों के खिलाफ कठोर शब्दों में निन्दा जारी की और लगे हाथ कानून के प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु न्यायिक आदेश भी जारी किए। इस कानून के कार्यान्वयन से संबंधित समस्याओं पर और विस्तार से चर्चा इस खण्ड की इकाई 3 में की जाएगी।

हालाँकि निर्णयों ने स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सेवा हेतु महिलाओं के अधिकार का समर्थन किया और बार-बार उसे दोहराया परन्तु सभी निर्णय सकारात्मक भी नहीं रहे। उदाहरण के लिए,

न्यायालयों द्वारा प्रतिरोधी जनसंख्या नीतियों को वैध स्वीकार कर लिया है बावजूद इसके कि इनका महिलाओं के सशक्तीकरण पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है।

आगे पढ़ने से पहले अपनी समझ का मूल्यांकन करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) शिक्षा के अधिकार मुद्दे पर सरकार द्वारा उठाए गए प्रमुख कदमों के बारे में लिखिए।

2) खाद्य और पोषण सुरक्षा पर सरकार की प्रधान योजनाएं कौन-कौन सी हैं?

3) भोजन के अधिकार पर ऐतिहासिक निर्णयों के नाम लिखिए। ये क्या कहते थे?

4) स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल के प्रति मानवाधिकार उपागम का क्या अर्थ है?

5) स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल के अधिकार के ढांचे के महत्वपूर्ण संघटक क्या हैं?

2.11 सारांश

संवैधानिक प्रावधान राज्यों को स्पष्ट अधिदेश देते हैं कि शोषित और वंचित समूहों को सामाजिक संरक्षण के अन्तर्गत लाया जाए। संरक्षण प्रदान करने के लिए कई प्रकार की योजनाएं, कार्यक्रम, नीतियां और कानून निर्मित किए गए हैं। ऐतिहासिक निर्णय दो स्तरों पर कार्य करते हैं: अ). वे कानूनों का अन्यार्थ बताते हैं और अधिकारों की प्रत्याभूति को अर्थ प्रदान करते हैं; और ब) वे राज्य को निर्देश देते हैं कि जनसंख्या के कमजोर वर्गों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करे और राज्य प्रशासन द्वारा लागू की जा रही विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों और कानूनों के कार्यान्वयन की निगरानी करे। शिक्षा का अधिकार, काम का अधिकार और काम में अधिकार पर दिए गए ऐतिहासिक निर्णय पहले स्तर के उदाहरण हैं जबकि भोजन के अधिकार और पीसीपीएनडीटी अधिनियम के कार्यान्वयन दूसरे स्तर के उदाहरण हैं। आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रियाएं, सामाजिक क्षेत्र का निजीकरण (जैसे कि स्वास्थ्य और शिक्षा क्षेत्र), अपर्याप्त बजट आवंटन, भ्रष्टाचार, कानूनों, नीतियों और योजनाओं को लागू करने में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी और विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना जहां श्रम कानूनों को मुल्तवी रखा जाता है कुछ ऐसी चुनौतियां हैं जिनका सामना, नागरिकों के सामाजिक संरक्षण के अधिकारों को सुनिश्चित करने में करना पड़ता है।

2.12 सन्दर्भ

Bhasin, Lalit (2007). Labour and Employment Laws of India, available at http://www.mondaq.com/article.asp?articleid=50440, accessed on 27 January 2009.

Bhole. (1994)'Unemployment Alleviation Programmes in India: A Review and Prospects under the New Economic Policy', *The Indian Journal of Labour Economics* Vol. 37 No. 2.

Duggal, Ravi (2007) Right to Health and Healthcare: Theoretical Perspectives in Mihir Desai and Kamayani Bali Mahabal, Healthcare Case Law in India: A Reader, Mumbai: CEHAT and India Centre for Human Rights and Law.

Income Generating Programmes for Poverty Alleviation through Non-Formal Education: IGP Country Report – India, UNESCO, Bangkok, 2003, available at http://unesdoc.unesco.org/images/0013/001318/131810e.pdf, accessed on 17 March 2012.

Jesani Amar, (1996). *Laws and Healthcare Providers: A Study of Legislation and Legal Aspects of Healthcare Delivery,* CEHAT, 1996, available at http://www.cehat.org/go/uploads/Lhcp/lhcp.pdf, accessed on 10 March 2012.

Justice S. Muralidhar. The Expectations and Challenges of Judicial Enforcement of Social Rights, available at delhidistrictcourts.nic.in/ejournals/**Social_Rights**_Jurisprudence.pdf, accessed on 1 March 2012.

Lux, Lakshmanan (2010). India's Food Security Challenge, **The Hindu**, 4 January.

Sharma, Amita (2010). *Rights-based Legal Guarantee as Development Policy: The Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act.* NREGA-UNDP Discussion Paper No. 2.

Mahadevia, Darshini and Shah, Pooja(2009). Inclusive Urbanization -Social

Protection for the Slum and Pavement Dwellers in India: A presentation at SPA Annual Research Workshop, Hanoi, 3-4 June 2009, available at www.socialprotectionasia.org/Conf-prgram-pdf/3_June-Darshini.pdf, accessed on 10 March 2012.

National Food Security Act (2010): An Introductory Primer on the Legal Guarantees Demanded by the Right to Food Campaign, Right to Food Campaign Secretariat, New Delhi, Aug 2010.

Neelakantapilla, Vyshnavi (2010). Labour Rights under the Indian Constitution, available at http://www.lawyersclubindia.com/articles/Labour-Rights-under-the-Indian-constitution-3300.asp, accessed on 5 March 2012.

Pilla, Sudha(2011). The Social Protection Floor in India, Planning Commission of India, available at www.icsw.org/doc/2011-Social-Protection-Floor-in-India.doc, accessed on 19 March 2012.

Sharma, Parul (2007). Split Legal Regime in India's Labour Laws, Journal for Sustainable Development, , available at http://www.southasiaexperts. se/pdf/Indian%20Labour%20Law%20PDF.pdf, accessed on 27 January 2009.

Sircar, Oishik (2007). The Trade-off Between Protection and Freedom, Infochange News and Features, June 2007, available at http://infochangeindia.org/20070517179/Women/Analysis/The-trade-off-between-protection-and-freedom.html , accessed on 5 December 2009.

Sood, Deepika, Indian Perspective on Right to Health, available at http://www.legalindia.in/indian-perspective-of-right-to-health, accessed on 14 March 2012.

Sudarshan, Ratna M.(2009). 'Examining India's National Regional Employment Guarantee Act: Its Impact and Women's Participation', Social Protection in Asia Working Paper Issue 05, May.

Vyas, Aparna. Food Security in India, available at http://theviewspaper.net/food_security_in_india/, accessed on 4 March 2012.

2.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Five Year Strategic Plan 2011-2016: Towards a New Dawn, Ministry of Women and Child Development, Government of India, available at http://wcd.nic.in/MWCD_Strategic_Plan_10-02-2011.pdf, accessed on 15 March 2012.

Millenium Development Goals – India Country Report 2011, Central Statistical Organization, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India, available at

http://www.in.undp.org/content/dam/india/docs/mdg_india_2011.pdf, accessed on 20 March 2012.

National Policy for the Empowerment of Women, Ministry of Women and Child Development, Government of India, available at 2001 http://wcd.nic.in/empwomen.htm, accessed on 15 March 2012.

Perspectives on Poverty in India: Stylized Facts from Survey Data, The World Bank, Washington, 2011.

Report on Employment and Unemployment Survey 2009-10, The Labour Bureau, Ministry of Labour and Employment, Government of India, October 2010.

Report of the National Commission on Enterprises in the Unorganized Sector (NCEUS), 2006 available at www.nceus.com/reports/socialsecurity2006, accessed on 5 March 2012.

Report of the National Commission on Enterprises in the Unorganized Sector 2009: Skill Formation and Employment Assurance in the Unorganized Sector.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

Table B: Government Schemes on Food and Nutrition Security: An Overview[1]

Name of Scheme	Targeted group	Identification of Beneficiaries	Entitlement	Comments
Annapoorna Yojana	Destitutes above 65 years of age and not covered under state or central social security pension scheme.	Gram sabhas in rural areas and local bodies in urban areas to carry out the identification of these destitute.	10 kg food grains per card per month, free of cost	It appears that Annapurna has been discontinued in some states. This is a violation of Court orders and the matter has been taken up in the Supreme Court by the Commissioners.
Antyodaya Anna Yojana	Poorest of the poor in rural and urban areas. They are issued special yellow ration cards	Gram sabhas in rural areas and local bodies in urban areas carry out identification from amongst the poor families within the state.	Rs. 2/kg for wheat and Rs. 3/ kg for rice, 25 kg food grain per family per month, through the PDS	The Supreme Court has directed the Government of India to provide Antyodaya cards to all Primitive Tribal people.
Family Benefit Scheme	BPL Families who have lost their primary bread winner	Identification done with the assistance of panchayats	A lump sum amount of Rs. 10,000	
Targeted Public Distribution Scheme	Primarily, below poverty line families	Through a 'BPL Survey' conducted once in five years	Differs across states, and in most cases it is 35 kgs per family per month, at rates prescribed by the govt.	
Integrated Child Development Scheme	Pre-school children, adolescent girls, pregnant and lactating women	This is a universal scheme; any person who is in the target group is eligible to receive the benefit of these services. It aims at reducing the incidence of mortality, morbidity and malnutrition in children & adolescent grils and enhancing the capability of mother to look after the health and nutritional needs of the children	includes immunisation, supplementary nutrition, health and nutrition education, growth monitoring, pre-school education and referral services.	It is the only programme that extends from pregnant women and nursing mothers to cover infants and children up to the age of six; is a major tool to secure children's right to food

[1] **Source:** http://www.righttofoodindia.org/schemes/scheme.html, accessed on 18 March 2012

Maternity Benefit Scheme	BPL women during their first two live births	Selection happens through primary health care centre	Rs. 500, as one time entitlement.	
Mid-Day Meal Scheme	All children in government and aided primary schools upto Std VIII	This is an universal scheme, and all children are eligible to receive cooked meals	Fresh cooked meal on each working day, with the stipulated, nutritive and calorific value, for at least 200 days in a year.	
Pension schemes: Indira Gandhi National Old Age Pension Scheme (IGNOAPS), Indira Gandhi National Widow Pension Scheme (IGNWPS), Indira Gandhi National Disability Pension Scheme (IGNDPS)	Destitute aged, widows, and disabled	Identification is done through Panchayati Raj bodies	Amount differs in each state with, minimum of Rs. 75 / month. Under IGNOAPS, Central government provides Rs. 200/- per month and state governments contribute Rs. 200-1000 a month. Under IGNWPS and IGNDPS, central government contributes Rs. 200 per month with an equal contribution from the state government.	

इकाई 3 कल्याणकारी सहायता एवं सामाजिक संरक्षण के उपाय

संरचना सौम्या उमा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियिम, 2005 (मनरेगा)

- 3.3.1 कानून के विशिष्ट गुण और शक्तियाँ
- 3.3.2 सकारात्मक प्रभाव
- 3.3.3 महिलाओं के सशक्तीकरण पर प्रभाव
- 3.3.4 नकारात्मक निष्कर्ष
- 3.3.5 क्रियान्वयन में चुनौतियां
- 3.3.6 मनरेगा - मिश्रित परिणाम

3.4 बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई), 2009

- 3.4.1 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु तंत्र
- 3.4.2 सकारात्मक प्रभाव
- 3.4.3 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में अन्तर
- 3.4.4 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन में चुनौतियां
- 3.4.5 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के बेहतर क्रियान्वयन की ओर : आगे बढ़ने का रास्ता

3.5 सारांश

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक संरक्षण हेतु राज्य द्वारा आरम्भ किए गए कानून, नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक कि समाज में सबसे कमजोर व्यक्तियों को ध्यान में रखकर उनका निरूपण न किया जाए और उसके पश्चात उनका क्रियान्वयन इस प्रकार किया जाए कि उनको लाभ पहुंचाए। सामाजिक संरक्षण हेतु कानूनों एवं नीतियों का स्वयं अपने आप में बहुत महत्व है क्योंकि वे ऐसे आदर्श और मानक स्थापित करते हैं जो वंचित और शोषित लोगों के लिए एक औजार की तरह होते हैं जिससे अधिकारों की मांग की जा सके और उसके विरुद्ध राज्य के उत्तरदायित्वों का परीक्षण किया जा सके। हालाँकि, लिखित कानून/नीति और उसके वास्तविक क्रियान्वयन में जमीनी स्तर पर बहुधा बहुत अंतराल होता है। यह इकाई, आजीविका और शिक्षा के मुद्दों पर दो महत्वपूर्ण कानूनों का परीक्षण करते हुए ऐसे अंतरालों को चिन्हांकित करने, उनका विश्लेषण करने और उन पर चर्चा करने की मांग करती है और उन्हें दूर करने का रास्ता सुझाती है। अब हम इस इकाई के अधिगम उद्देश्यों के बारे में पढ़ेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :

- सामाजिक संरक्षण की सुरक्षा हेतु दो महत्वपूर्ण कानूनों का परीक्षण करना;

- उपलब्धियों और अपर्याप्तताओं सहित उन कानूनों के विषय में आलोचनात्मक समझ का विकास करना;
- महिलाओं और लड़कियों के विशेष संदर्भ में उस सीमा का विश्लेषण करना जहां तक उन कानूनों का क्रियान्वयन हुआ है; और
- क्रियान्वयन में चुनौतियों पर चर्चा करना और उन्हें दूर करने के संभावित तरीकों की पहचान करना।

3.3 महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियिम, 2005 (मनरेगा)

नरेगा कानून का अधिनियमन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार का अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में घोषित प्रतिबद्धता का एक हिस्सा था। अपने अधिकार-जनित ढांचे के साथ नरेगा, गरीबी और असमानता जैसी स्थितियों के प्रति, नागरिकों के अधिकार और परिणामस्वरूप ग्रामीण रोजगार की गारण्टी देने की राज्य के उत्तरदायित्व की व्याख्या करते हुए, एक महत्वपूर्ण नीतिगत प्रतिक्रिया है। इसकी प्रशंसा एक ऐतिहासिक विधायन की तरह की जाती है और इसमें किए गए वायदे सामाजिक संरक्षण को सुनिश्चित करने के संघर्ष में एक प्रमुख हथियार है। यह याद करना महत्वपूर्ण है कि नरेगा, किसी दयालु हृदय वाले राज्य द्वारा अपने नागरिकों के सम्मुख थाली में परोसा गया पक्षपात नहीं है बल्कि यह ग्रामीण गरीबों के काम के अधिकार के माध्यम से गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकारों की पहचान और उसकी अभिव्यक्ति से जन्मे लोगों के लगातार चलने वाले आंदोलनों के सम्मान में संसद की उचित प्रतिक्रिया है। नरेगा मजदूरी का अर्जन करने और उत्पादक परिसंपत्तियों के निर्माण में सहायता करती है साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों को पुनर्जीवित करती है जिससे दीर्घकालीन गरीबी के कारणों नामतः पानी, चारा और भूमि को साधती है।

3.3.1 कानून के विशिष्ट गुण और शक्तियाँ

नरेगा के खास प्रावधानों पर पहले ही इसी खण्ड की इकाई 2 में चर्चा हो चुकी है। इस उपअनुभाग में हम कानून के कुछ विशिष्ट गुणों और उसकी शक्तियों पर चर्चा करेंगे।

भूतकाल के अनुभवों से सीखः नरेगा, पहले के लोक निर्माण कार्यक्रमों जैसे कि महाराष्ट्र रोजगार गारण्टी योजना के अनुभवों पर बनी और कुछ अन्य तत्समय चल रही रोजगार सृजन योजनाओं को अपने में संघटित करती है। सुदर्शन (2009, पृ. 9-10) लिखते हैं कि इस कानून ने भूतकाल के कानूनों / योजनाओं / व्यवहारों की कमियों या छिद्रों को खत्म करने के लिए कुछ प्रावधानों को समाविष्ट किया जैसे किः

- कार्य आरम्भ होने और भुगतान पाने के बीच अंतराल;
- सतत रोजगार की अनुपलब्धता;
- निधियों के कमतर-उपयोग के कारण हुए रिसाव;
- बेरोजगारी भत्ता योजना में लगे हुए किसी व्यक्ति के लिए मुवाअजा न होना;
- पात्रताओं के प्रति जागरूकता में कमी; और
- जिले के लिए कार्यों और वृहत्तर योजनाओं में संगति की अनुपस्थिति।

विकेन्द्रीकृत और सहभागितापूर्ण नियोजनः नरेगा, परियोजनाओं के निरीक्षण, पर्यवेक्षण और उनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारियों का अधिकांश भार जिला संग्राहक की बजाय पंचायतों

(ग्राम सभाओं) पर डालती है। इससे परियोजनाओं पर पंचायतों के स्वामित्व को और परिणामस्वरूप विकेन्द्रीकरण को भी प्रोत्साहन मिलता है। इस तथ्य को महत्व देते हुए कि कोई भी जिला संग्राहक या राज्य प्रशासन के अन्य प्राधिकारी किसी समुदाय की स्थानीय आवश्यकताओं को स्वयं समुदाय से बेहतर तरीके से नहीं समझ सकते, यह अधिनियम, स्थानीय समुदायों के लिए यह प्रावधान करता है कि वे अपनी स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए ग्राम सभा (स्थानीय निर्वाचन सूची में अंकित लोगों से मिलकर बनने वाला स्थायी निकाय जो पंचायत योजनाओं का निरीक्षण करता है) के माध्यम से परियोजनाओं का निर्माण करें।

पारदर्शिता और जवाबदेही हेतु प्रावधानः इस कानून में पारदर्शिता और जवाबदेही के पक्ष भी पहले से अन्तर्निहित हैं। उदाहरण के लिए, कानून इस बात पर जोर देता है कि सभी सूचनाएं अग्रिम सक्रियता के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में रखी जाएं और जो भी सूचना मांगी जाए उसे मुफ्त में दिया जाए। इस उद्देश्य के लिए सरकार ने इंटरनेट समर्थित परिवार आध ाारित आंकड़े एक वेबसाइट http://www.nrega.nic.in के माध्यम से पब्लिक डोमेन में डाल रखे हैं। सरकारी दावों के अनुसार, 2013 में लगभग 12 करोड़ जॉब कार्ड्स और 9 करोड़ मस्टर रोल पब्लिक डोमेन में थे। इन आंकड़ों तक लोगों की पहुंच का अभीष्ट है कि भ्रष्टाचार को रोका जा सके। इस सन्दर्भ में सबसे अच्छी कार्यप्रणाली है '**पारदर्शिता दीवार**', दरअसल यह हर गांव में बनी कोई सार्वजनिक दीवार होती है जिस पर नरेगा से संबंधित सारी सूचनाएं जैसे कि सभी कामगारों के नाम, कितने दिनों तक उन्होंने कार्य किया और कितनी मजदूरी उन्होंने अर्जित की इत्यादि का ब्यौरा लिखा रहता है। यह एक सामूहिक सतर्कता तंत्र की तरह कार्य करता है। (डे, 2011)।

समानता के सिद्धांत का समावेशनः यह अधिनियम जेंडर समानता को और महिलाओं के लिए कुछ स्पष्ट पात्रता निश्चित करके उनकी पूर्ण सहभागिता को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। ऐसे कदमों में शामिल हैं :

- इस आशय के प्रावधान कि कामगारों में कम से कम एक तिहाई महिलाएँ होनी चाहिए। (नरेगा, अनुसूची ।।, पैरा 6:19)
- दिशानिर्देश स्पष्टतया कहते हैं कि किए गए समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान मजदूरी मिलेगी और समान पारिश्रमिक अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए।
- यह भी अपेक्षित है कि स्थानीय निरीक्षण/सतर्कता समितियों, जिनका निर्माण लिए गए कार्य के निरीक्षण हेतु होता है, में महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहे जिससे कि परियोजनाओं के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका का मार्ग प्रशस्त हो सके।
- यह भी अपेक्षा की गई है कि महिलाएँ वर्ष में दो बार की जाने वाली सामाजिक ऑडिट प्रक्रियाओं में भी सहभागिता करें।
- अधिनियम एकल महिलाओं को भी 'परिवार' के तौर पर मान्यता देती है जिससे कि विधवाओं/परित्यक्तों / तलाकशुदा / निराश्रित महिलाओं और एकल महिलाओं की अन्य श्रेणियों को इस कानून का लाभ मिल सके। वंचित समूहों जैसे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों से आने वाले लाभार्थियों को भी उचित महत्व दिया जाता है। (नरेगा, अनुसूची ।।, पैरा 6:19)
- कानून बच्चों के देखभाल में सहायता और परिवारों को सुविधाएँ प्रदान करता है। इसके दिशानिर्देशों में कार्यस्थल पर क्रेच की आवश्यकता का उल्लेख है और ऐसे

कामों का भी जो परिवारों के लिए सुविधाजनक हों। कानून और नियम व्यवस्था करता है कि महिलाओं (विशेष रूप से एकल महिलाओं) और वृद्धजनों को उनके निवास स्थलों से नजदीकी कार्यस्थलों पर काम करने में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह भी कि यदि किसी परिवार के कई सदस्य जो समान जॉब कार्ड साझा करते हों, योजना में साथ-साथ नियोजित हैं, तो उन्हें एक ही कार्यस्थल पर कार्य करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

जेंडर समानता पर प्रावधानों के अतिरिक्त कानून भूमि सुधार के लाभार्थियों और छोटे और सीमांत किसानों को उनकी अपनी भूमि पर कार्य करने की अनुमति देता है। केरल से मिलने वाले प्रारम्भिक परिणामों ने नरेगा के अन्तर्गत परियोजनाओं में महिलाओं की सहभागिता का उच्च स्तर दिखलाया है। (सुदर्शन, 2009, पृ. 17-21)।

कानून की शक्यिाँ : लाभार्थियों के परिप्रेक्ष्य से यह कानून अनुकूल है क्योंकि इसमें

- कोई विशिष्ट पात्रता की कसौटी या पहले से आवश्यक कौशल नहीं है; केवल मांग करने पर जॉब का लाभ उठाया जा सकता है;
- नियोजन स्थल या परियोजना स्थल से निवास स्थान की समीपता की पूरी गारण्टी दी गई है;
- मजदूरी दर की निश्चितता सुनिश्चित है क्योंकि कानून में न्यूनतम मजदूरी का अनुपालन लिखित रूप में मौजूद है;
- मजदूरियों का भुगतान पोस्ट ऑफिस या बैंक में खुले संस्थागत खातों के माध्यम से किया जाता है; और
- काम और प्रदान की गई मजदूरियों के आंकड़े जॉब कार्ड के माध्यम से दिए जाते हैं जो 'अधिकारों के अभिलेख' की तरह कार्य करता है।

कुछ शोधकर्ताओं के मुताबिक नरेगा की सर्वश्रेष्ठ सफलताओं में से एक यह है कि ग्राम सरपंच, पड़ोसियों, भागीदारों और पर्यवेक्षक द्वारा पहचान की बहुत ही सरल प्रक्रिया से जॉब कार्ड उतनी ही तत्परता से जारी किए जाते हैं और यहां तक कि जॉब कार्ड पर कोई फोटोग्राफ न हो फिर भी (डे, 2011)। जॉब कार्ड को जारी करने में देरी / इन्कार के मुद्दे पर इसी इकाई के उप अनुच्छेद 3.3.4 में चर्चा की जाएगी।

सरकार का दृष्टिकोण: सरकार के लिए अनुकूल प्रधान मुद्दों में से एक है **बजट आबंटन**, जो प्रायः कानूनों और नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन में आधारभूत होता है। नरेगा के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त लागत (90 प्रतिशत) का खर्च तो केन्द्र सरकार द्वारा उठाया जाता है और मात्र 10 प्रतिशत का निर्वहन राज्य सरकारों द्वारा होता है। वर्ष 2011-12 के लिए बजट आबंटन 40,000 करोड़, वर्ष 2012-13 के लिए 33,000 करोड़ रूपये और वर्ष 2013-14 के लिए 33,000 करोड़ रूपये किए गए। (हिन्दुस्तान टाइम्स, 1 मार्च, 2013, पृ.9)। 2012-13 के लिए बजट आबंटन में कमी कारण था कि उसके पहले वर्ष में आबंटित राशि वर्ष के दौरान खर्च नहीं हो सकी थी। इसमें मांग आधारित बजट भी है इसलिए इसके अन्तर्गत खर्च, यदि आवश्यक हो तो, आबंटित संसाधनों से बढ़ भी सकता है। केन्द्र सरकार वित्तीय सहायता के रूप में लगभग 100 प्रतिशत करती है, सामग्री लागत का लगभग 75 प्रतिशत तक और प्रशासनिक खर्चे 6 प्रतिशत में आते हैं।

सरकार के दृष्टिकोण से दूसरी मजबूती इसके **प्रोत्साहन-हतोत्साहन संरचना** में है। केन्द्र सरकार रोजगार प्रदान करने के लिए सहायता देगी परन्तु बेरोजगारी भत्ता की लागत का वहन राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा। यह राज्य सरकारों को इस बात के लिए प्रोत्साहन

देता है कि कानून का उचित क्रियान्वयन सुनिश्चित हो जिससे कि बेरोजगारी की दर नियंत्रण में बनी रहे।

अब हम इस अधिनियम के कुछ सकारात्मक प्रभावों के बारे में पढ़ेंगे।

3.3.2 सकारात्मक प्रभाव

विभिन्न अध्ययनों से दृष्टिगत हुए नरेगा के प्रभाव निम्न प्रकार हैं :

- खेतिहर न्यूनतम मजदूरी और प्रतिदिन अर्जित मजदूरी और वार्षिक आय में वृद्धि; (**स्रोतः** आईआईएम लखनऊ, एनडीयूएटी फैजाबाद)
- श्रमिकों की मोल-भाव की शक्ति में वृद्धि और प्रति परिवार अर्जन में वृद्धि 2006-07 में रुपये 2795 से 2007-08 में रुपये 3150 और 2008-09 में रुपये 4060; (शर्मा, 2010)
- ग्रामीण क्षेत्रों से संकटकालीन प्रवास में कमी; (**स्रोतः** रिपोर्ट्स ऑफ स्टडीज बाय दिशा, एनएफआईडब्ल्यू, आईएचडी, सीएसई)
- कुछ राज्यों में कृषि क्षेत्रों में वृद्धि; (ग्रामीण विकास मंत्रालय, 2013)
- जल संरक्षण संरचनाओं का पुनरुज्जीवन/निर्माण;
- वंचित लोगों का वित्तीय समावेशन जैसा कि 8.6 करोड़ लोगों के बैंक/पोस्ट ऑफिस खातों के खुलने से संकेतित होता है; (ग्रामीण विकास मंत्रालय, 2013)
- ''हरित जॉब्स'' का उन्नयन क्योंकि लगभग 70 प्रतिशत काम जल संरक्षण, जल-संभरण, जल निकायों का पुनरुद्धार, मरम्मत और गाद निकालना, सूखे से बचाना, वृक्षारोपड़ और वनरोपण से संबंधित थे; (शर्मा, 2010)
- गैर-खेतिहर मौसमों में नरेगा का उपयोग सम्पूरक आय स्रोत के रूप में किया गया; (आईआईएम, अहमदाबाद)
- नरेगा के उत्पादक प्रभावों के जो रिपोर्ट आए हैं उसमें भूमिगत जलस्तर में सुधार भी शामिल हैं (एएससीआई, आईएचडी),
- उन्नत खेतिहर उत्पादकता और फसल सघनता (एएससीआई, आईआईटी रूड़की);
- ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका विविधीकरण (आईआईएम शिलांग, सीएसई, आईएचडी);
- जल भेद्यता सूचकांक में कमी;
- कृषीय भेद्यता और आजीविका भेद्यता सूचकांक (आईआईएससी)

अगला अनुभाग पढ़ने से पहले निम्न अभ्यास को करने का प्रयास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) नरेगा के कुछ विशिष्ट गुणों और मजबूतियों के नाम लिखिए।

2) सरकार के दृष्टिकोण से कानून की क्या-क्या शक्तियाँ हैं?

3) लाभार्थियों के दृष्टिकोण से कानून की क्या-क्या शक्तियाँ हैं?

4) कुछ ऐसे क्षेत्रों को रेखांकित करिए जिसमें नरेगा का सकारात्क प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

आगे के अनुभागों में आप इस बारे में पढ़ेंगे कि कैसे इस कानून ने महिलाओं को प्रभावित किया और उनके सशक्तीकरण को आगे बढ़ाया।

3.3.3 महिलाओं के सशक्तीकरण पर प्रभाव

आर्थिक वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में जैसा देखा गया था कि परिणामस्वरूप महिलाओं के श्रम की अल्पकालिक आधार पर नियुक्ति हो रही थी, और पुरुषों की अपेक्षा कम साधनों, शिक्षा, कौशलों और उत्पादक परिसंपत्तियों पर उनके स्वामित्व के कारण महिलाओं के लिए रोजगार की गारण्टी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रत्येक परिवार के लिए प्रतिवर्ष न्यूनतम 100 दिनों के अकुशल काम की गारण्टी वह भी अपने निवास स्थानों के समीप जैसे प्रावधानों के साथ **नरेगा की, एक जेंडर-संवेदनशील योजना के रूप में कल्पना की गई**।

सरकारी आंकड़े नरेगा में महिलाओं की प्रभावशाली सहभागिता का संकेत करते हैं। सम्पूर्ण भारत के स्तर पर नरेगा कार्यों में कुल रोजगार में महिलाओं के रोजगार की प्रतिशतता 2007-08 में 40 प्रतिशत थी। 2010 के मध्य तक यह बढ़ती हुई 53 प्रतिशत तक हो गई हालाँकि 2010 के उत्तरार्द्ध में इसमें गिरावट आई। 2011-12 में यह 49.9 प्रतिशत थी; वर्ष

2012-13 में यह 52.44 प्रतिशत थी (http://www.nrega.nic.in/netnrega/home.aspx)। भारतीय महिलाओं के राष्ट्रीय संघ (एनएफआईडब्ल्यू) द्वारा महिलाओं के जीवन पर नरेगा के योगदान के प्रभाव पर और महिलाओं की सशक्तीकरण पर इसके प्रभाव पर एक अध्ययन संचालित किया गया था। इस अध्ययन में राजनांदगांव (छत्तीसगढ़), झाबुआ (मध्य प्रदेश), कुड्डलोर (तमिलनाडु) और मयूरभंज (उड़ीसा) से 776 महिला कामगारों और 40 ग्राम पंचायत सदस्यों का साक्षात्कार लिया गया था। (चटर्जी, संधु, 2008, केलकर, 2009)। इस अध्ययन में निम्नलिखित सकारात्मक परिणाम रिपोर्ट किए गए:

- उनके हाथों में नकद भुगतान करके नरेगा ने महिलाओं के बीच उच्चतर स्तर की आर्थिक स्वतंत्रता की शुरुआत की है जिसका आशय अंततः उनके सशक्तीकरण और वित्तीय समावेशन से है;
- सामाजिक प्रभाव के गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों आंकलन बताते हैं कि महिला कामगार पारिवारिक आय में और कार्य निर्णय में अपनी भूमिका के बारे में अधिक आत्मविश्वासपूर्ण हुई हैं और यह भी कि सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी स्थिति को लेकर अधिक स्वीकारात्मक होती जा रही हैं;
- जवाब देने वाली आधी से अधिक महिलाएँ महसूस करती थीं कि नरेगा उनके गांवों में और साथ ही साथ उनके अपने जीवन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया है, क्योंकि उन्हें रोजगार उनके गांवों में ही दिए जा रहे हैं। यह सामुदायिक परिसंपत्ति का सृजन करता है और उनके खर्च की क्षमता को बढ़ाता है;
- मोटे तौर पर नरेगा कार्यस्थलों पर पुरुषों और महिलाओं को समान मजदूरियों का भुगतान किया जा रहा है जैसा कि अधिनियम द्वारा अधिदेश भी दिया गया है;
- अधिकांश महिलाओं ने माना कि नरेगा कार्यस्थलों पर कार्य करने का निर्णय उनका अपना निर्णय था;
- मोटे तौर पर महिला कामगार अपनी मजदूरी व्यक्तिगत रूप से पा रही थीं बजाय इसके कि उनके पतियों के माध्यम या अन्य अप्रत्यक्ष प्रतिनिधियों के माध्यम से मिलते। इसकी पुष्टि अन्य रिपोर्टों से हुई जो यह अवलोकन करता है कि कुछ सूचित मामलों के अतिरिक्त जेंडर आधारित मजदूरी में समानता या अनुकूलता नरेगा कार्यस्थलों के बड़े पैमाने पर हुए सर्वेक्षणों में भी मिली;
- नरेगा के कारण होने वाली महिलाओं की आय पारिवारिक आय, भोजन और उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद में उनके योगदान को बढ़ा रहा है और परिवारों के लिए प्रतिदिन दो बार नियमित भोजन सुनिश्चित कर रहा है। यह भी देखा गया है कि कामगार नरेगा से होने वाली आय में से 34 प्रतिशत अपने बच्चों की शिक्षा पर जबकि 40 प्रतिशत अपनी स्वास्थ्य की देखभाल में करते हैं;
- नरेगा ने प्रवसन पैटर्न को भी सकारात्मक ढंग से प्रभावित किया क्योंकि इसने लोगों को अपने गांवों में रहने और काम करने के कारण और अवसर पैदा किए हैं।

बॉक्स सं. 3.1

कई अध्ययनों का निष्कर्ष है कि महिलाओं के जीवन पर नरेगा का कुल मिलाकर प्रभाव कई रूपों में सकारात्मक है, चाहे यह उनकी आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मविश्वास को बढ़ाने से हो, खाद्य सुरक्षा में योगदान से हो, संकटकालीन प्रवास को कम करने में सहायता देने से हो या न्यूनतम मजदूरी हेतु बेहतर जागरूकता (और व्यापक प्रचलन) को कायम करने से हो। महिलाओं के सशक्तीकरण के औजार के रूप में नरेगा की भूमिका, पर जितना ध्यान पहले दिया गया उससे अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

अन्य अध्ययनों ने भी महिलाओं के सशक्तीकरण पर नरेगा के निम्नलिखित सकारात्मक प्रभाव को रेखांकित किया है :

- राजस्थान में, जिसमें सामाजिक ऑडिट और सूचना के अधिकारों के साथ नागरिक समाजों का अनुबंध अभी हाल का इतिहास रहा है, और इसीलिए वहां जागरूकता का उच्चतर स्तर मिलता है, बड़ी संख्या में महिलाओं (जो कक्षा 5 से 8 तक पढ़ी थीं) को **'साथिन' (कार्यस्थल पर्यवेक्षक)** की तरह प्रशिक्षित किया गया है। ऐसी भी सूचनाएं मिली थीं कि कई कार्यस्थलों में साथिनों ने अपने समूह बना लिए थे और ''अधिकांश साथिन न्यूनतम मजदूरी अर्जित करने के लिए आवश्यक उपायों के बारे में जानती थीं।'' (खेरा, 2008, पृ. 4)।

- तमिलनाडु में हुई एक सामाजिक ऑडिट में पाया गया कि महिला कर्मचारियों में से 95 प्रतिशत ने कहा कि नरेगा के अन्तर्गत काम करने का निर्णय उनका अपना निर्णय था; जबकि 73 प्रतिशत ''महसूस करती थीं कि उनके परिवारों के आर्थिक सुखों के लिए नरेगा के कार्य बहुत महत्वपूर्ण थे''; और 70 प्रतिशत महिलाएं ''पूरी की पूरी मजदूरी या उसका हिस्सा अपने पास रखती थीं।'' (नारायणन, 2008, पृ. 11)।

- केरल में, पंचायत का छोटा रूप कदम्बश्री, नरेगा के क्रियान्वयन में स्थानीय स्तर पर महिलाओं के नेतृत्व वाले आसपास के समूहों के माध्यम से उपयोगी शिक्षा देता है। (विजयनन्द और जितेन्द्र, 2008)।

- बिहार में, जेंडर आधारित आदर्शों, जिसमें महिलाओं को श्रम गहन अवसंरचना परियोजनाओं में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाती, को लक्षित करने के प्रयास में सरकार ने नरेगा के अन्तर्गत कामों में महिलाओं के लिए कार्य मानकों में ढील दे दी है।

- 2008 में हुए नरेगा के एक सर्वेक्षण ने दिखलाया कि नरेगा में महिला कर्मचारियों की 79 प्रतिशत अपनी मजदूरी स्वयं लेती हैं और 68 प्रतिशत अपनी मजदूरी अपने पास रखती हैं। (ड्रेज़ी एवं खेरा, 2009, पृ. 13)

3.3.4 नकारात्मक निष्कर्ष

नरेगा के व्यावहारिक अध्ययन से जो समस्यात्मक मुद्दे सामने आए उनमें से कुछ मुद्दे निम्न प्रकार हैं :

- न्यूनतम मजदूरी के बारे में जागरूकता निम्न थी; संचालन संबंधी दिशानिर्देशों, परिवार के पंजीकरण, जॉब कार्ड के वितरण की प्रक्रिया, कार्य आवेदनों और पात्रताओं जैसे कि कार्यस्थल पर सुविधाएं और बेरोजगारी भत्ते आदि के बारे में जागरूकता अपर्याप्त थी;

- अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्याभूत कार्यस्थल पर सुविधाओं जैसे कि सुरक्षित पेयजल, आराम की अवधि के लिए छायादार स्थान, प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था अैर बच्चों के देखभाल की सुविधाएं आदि कार्यस्थलों से नियमित तौर पर नदारद थीं। (संधु, 2008)।

- महिला कामगार सामान्यतया ग्राम सभाओं में भाग नहीं लेती थीं, इसके पीछे कुछ तो कारण यह था कि वे नरेगा कार्यों के सामाजिक ऑडिट के संचालन और परियोजनाओं की सूची तैयार करने में ग्राम सभाओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के बारे में जागरूक नहीं थीं।

- पंचायती राज संस्थानों में भी महिलाओं की सहभागिता बहुत कम थी बावजूद इसके लिए स्थानीय रूप से निर्वाचित होने वाले निकायों में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटें आरक्षित थीं। जबकि नरेगा कार्यबल के रूप में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है, पंचायती राज संस्थानों में अभी भी बहुत गुंजाइश है कि उनकी सहभागिता को बढ़ाया जाए जिससे पानी, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा और वास्तव में नरेगा के क्रियान्वयन से संबंधित मुद्दों को निबटा सकें।

- अधिकांश क्षेत्रों में मजदूरी का भुगतान समय से नहीं होता।

  विभिन्न अध्ययनों का अवलोकन है कि जबकि महिलाओं का श्रम ग्रामीण परिवारों के कार्य संचालन में हमेशा के लिए एक आवश्यक घटक रहा है, मगर बिना किसी मौद्रिक पारिश्रमिक के कारण हमेशा अदृश्य बना रहा है। महिलाओं के हाथों में नकद आय देकर नरेगा ने महिलाओं के योगदान को बढ़ाया है और विविधीकृत कर दिया है, जो वे अपने परिवारों की आय में आय अर्जक के तौर पर करती थीं।

3.3.5 क्रियान्वयन में चुनौतियां

फरवरी 2006 में आरम्भ होने से लेकर नरेगा को सरकार और नागरिक समाज समूहों द्वारा जमीनी स्तर पर इसके क्रियान्वयन का परीक्षण करने के लिए मूल्यांकन अध्ययन कराए गए। जैसी कि अपेक्षा थी, विभिन्न राज्यों और जिलों में इसका क्रियान्वयन असमान रहा है।

शर्मा (2010) ने एक सरकारी रिपोर्ट उद्धृत करते हुए इसके उचित क्रियान्वयन में निम्न चुनौतियों को रेखांकित किया है :

- कानून में उल्लिखित सामाजिक ऑडिट के लिए जरूरी है कि ग्राम सभा ग्राम पंचायत के कार्यों का ऑडिट करे परन्तु विडम्बना यह है कि ग्राम पंचायत ही ग्राम सभा की बैठकों का आयोजन करती है, इसलिए इसमें हितों के टकराव जैसी संभावना रहती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक ऑडिट का प्रावधान अधिकतर अप्रभावी रह जाता है क्योंकि देश के बहुस्तरीकृत ग्रामीण क्षेत्रों में, ग्राम समुदाय मुख्यतः ग्राम पंचायत पर निर्भर रहता है। इसलिए वे ऐसी स्थिति में नहीं होते कि योजनाओं के निष्पादन के बारे में प्रश्न पूछ सकें और सूचनाओं का विश्लेषण और अंततः उसका मूल्यांकन कर सकें।

- अधिकारों और हकों के बारे में जागरूकता की कमी और लिखित आवेदनों तथा अधिकारों के लिए मोल-भाव करने में कामगारों की अयोग्यता।

- आपूर्ति प्रणाली में अंतरालः इसमें अधिकारों की प्रत्याभूति के उत्तरदायित्व की बजाय लोगों के मस्तिष्क में सरकार द्वारा कल्याणकारी कदम की धमक ज्यादा रहती है, स्थानीय निकायों और प्रशासनिक एजेंसियों की कम क्षमता, बैंकों और पोस्ट ऑफिसों की बेकार पहुंच के साथ-साथ बेकार अवसंरचना और इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने नरेगा के क्रियान्वयन में 9 चुनौतियों को रेखांकित किया था, वे हैं :

1) प्रदत्त कार्य, मांगे हुए कार्य के समान है इस बात को मानने की बजाय मांग आधारित विधिक हकदारियों को सुनिश्चित करना;

2) ग्रामीण क्षेत्रों से संकटकालीन प्रवसन में कमी करना, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि काम समय से और कामगारों की मांग की प्रतिक्रिया में नहीं शुरू होता। कामगार लोग अनिश्चय की स्थिति में होते हैं कि आखिर काम कब शुरू होगा;

3) कामगारों को भुगतान करने में देरी को कम करना;

4) मांग के अनुरूप उतने दिनों के अपेक्षित दिनों के लिए काम प्रदान करना;

5) नरेगा के अन्तर्गत सृजित की जा रही परिसंपत्तियों की गुणवत्ता और गरीबों की आजीविका हेतु उनकी प्रासंगिकता में सुधार करना;

6) नरेगा के अन्तर्गत निर्धारित मजदूरियों के पूरे भुगतान को सुनिश्चित करना;

7) सहभागितापूर्ण जमीनी स्तर के नियोजन को समन्वित करना;

8) निधियों के नियमित प्रवाह को बनाए रखना; और

9) शिकायत निवारण तंत्रों को मजबूत करना।

(**स्रोतः** 'मनरेगा के क्रियान्वयन में सुधार' पर टिप्पणी जो 9 प्रमुख चुनौतियों का संकेत करती है, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, सित. 2011, http://nrega.nic.in/circular/Reforms_in_MGNREGA01092011.pdf. 21 मार्च 2012 को लिया गया)

इसके अतिरिक्त गैर-सरकारी स्रोतों द्वारा हाल में किए गए अध्ययनों ने बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार के संकेत दिए हैं जिससे वह उद्देश्य नष्ट हो गया जिसके लिए नरेगा का अधिनियमन किया गया था। उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में किए गए अध्ययन में बंदी रखे गए जॉब कार्ड्स, जाली बैंक खाते, लाभार्थियों के बैंक खातों में जमा किए गए मजदूरियों की अवैध निकासी, फर्जी और काल्पनिक लोगों द्वारा जाब कार्ड्स प्राप्त करना, काम आबंटित करने के लिए अधिकारियों को अवैध भुगतान, ग्राम प्रधान द्वारा गुण्डागर्दी और राज्य तंत्र के अधिकारियों द्वारा ग्राम प्रधानों की मिलीभगत से बड़ी राशियों के गबन के उदाहरण मिले हैं। (भल्ला, 2011)

हाल में हुए एक अध्ययन से उदाहरण मिलते हैं कि कैसे महिलाओं को ग्रामीण खेतिहर श्रम से बाहर निकाला जा रहा है, जो फिर मजबूर होकर नरेगा के अन्तर्गत काम करती हैं। लेखक ने इशारा किया है कि यह कोई सकारात्मक चिन्ह नहीं है क्योंकि नरेगा अर्थपूर्ण तरीके से महिलाओं के लिए कौशलों का उन्नयन नहीं करता जो उन्हें नरेगा में प्रस्तावित मजदूरी और न्यूनतम मजदूरी सीमा से अधिक कमाने में सहायता करती। (कौल, 2013)।

3.3.6 मनरेगा – मिश्रित परिणाम

मनरेगा **समीक्षा**, जो 2006 से 2012 तक नरेगा के मूल्यांकन, उसके विश्लेषण और शोध अध्ययनों का संकलन है, इसके प्रभाव और चुनौतियों का सर्वांगीण परिदृश्य प्रस्तुत करता है। (द हिन्दू, 31 अगस्त, 2012) यह संकलन केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की पहल थी जिससे कि स्वतंत्र मूल्यांकन और सार्वजनिक सहभागिता से प्राप्त परिणामों के आधार पर शासन प्रणाली को सुधारा जा सके। *समीक्षा* की संप्राप्तियों में शामिल थे :

क) दीर्घकालिक या चिरस्थायी परिसंपत्तियों का सृजन जैसे कि वाटर हार्वेस्टिंग परिसंपत्तियां;

ख) इसने आजीविका और आय सुरक्षा प्रदान की है;

ग) गरीबी की व्यापकता को कम किया;

घ) भोजन अन्तर्ग्रहण में वृद्धि हुई;

च) मानसिक अवसाद में कमी आई;

छ) सकारात्मक रूप से प्रभावित स्वास्थ्य नतीजे।

एक महत्वपूर्ण संप्राप्ति यह रही कि पुरुषों और महिलाओं के बीच मजदूरी में अंतर घट गए। राज्य आधारित उपलब्धियां भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहीं। राजस्थान में, नरेगा द्वारा प्रदान किए गए वैकल्पिक कार्यों से पीढ़ियों से बंधुआ मजदूरी में लगे सैकड़ों आदिवासियों को छुड़ाया गया। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के अनुभव दिखलाते हैं कि बहुतों को निराश्रित होने से बचा लिया गया। तमिलनाडु का अनुभव महिलाओं के सशक्तीकरण और कार्यबल में महिलाओं की भारी भागीदारी को दिखलाता है।

संप्राप्तियां यह भी संकेत करती हैं कि कई स्थलों पर इसका खराब क्रियान्वयन किया गया और साथ ही साथ लिखितों और भावना में कानून का उल्लंघन भी किया गया। भुगतान की गई औसत मजदूरी न्यूनतम मजदूरियों से कमतर रहीं; मजदूरियों के भुगतान में भारी देरी की गई; जिन्होंने काम मांगा था सबको काम नहीं मिल सका; बेरोजगारी भत्ता का भुगतान कभी कभार ही किया गया; सामाजिक ऑडिट भी तमाम राज्यों में दिखावा ही बनी रही। जहां दस करोड़ बैंक और पोस्ट ऑफिस खाते संकेत कर सकते थे कि गरीबों का वित्तीय समावेशन हुआ, इन खातों में भुगतान में देरी चिंता का प्रधान कारण बना रहा।

बॉक्स सं. 3.2

सामाजिक ऑडिट की प्रक्रिया को मजबूत करने की अतीव आवश्यकता है; पारदर्शिता, जवाबदेही को सुनिश्चित करने और दुराचार तथा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अन्य तंत्रों की जरूरत है जिससे कि विश्व के सबसे बड़े रोजगार कार्यक्रम को विचारणीय ढंग से सुधारा जाए और बेहतर तरीके से क्रियान्वित किया जाए।

यह स्पष्ट है कि महिलाओं के सशक्तीकरण पर सकारात्मक प्रभाव और महिलाओं की आजीविका में सुधार, अर्जित की गई मजदूरी, स्वास्थ्य, पोषण और अन्य सामाजिक-आर्थिक पक्षों को केवल कानून के प्रावधानों द्वारा सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, हालाँकि वे पथ प्रदर्शक हो सकती हैं; इनको क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों और साथ ही साथ ग्राम सभा के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह में परिवर्तन भी समान रूप से अनिवार्य है।

पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि भी कानून के बेहतर जेंडर प्रभाव को और बढ़ा सकता है।

अगले अनुभाग को पढ़ने से पूर्व आप इस अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) महिलाओं के सशक्तीकरण पर नरेगा के कुछ सकारात्मक प्रभावों को सूचीबद्ध कीजिए।

2) वे कौन से राज्य हैं जहां अध्ययनों ने संकेत किया है कि नरेगा के क्रियान्वयन के कारण महिलाओं की स्थिति में स्पष्ट सुधार हुआ है?

3) महिलाओं के सशक्तीकरण के संबंध में नरेगा की कुछ ऋणात्मक संप्राप्तियों को लिखिए।

4) नरेगा के क्रियान्वयन में आने वाली कुछ प्रमुख चुनौतियों का विवरण दीजिए।

5) नरेगा के सुधरे हुए सकारात्मक परिणामों को सुनिश्चित करने हेतु क्या कार्य आवश्यक हैं?

आने वाले अनुभाग में आप शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के बारे में पढ़ेंगे।

3.4 बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई), 2009

इस खण्ड की इकाई 2 में खाका खींचा गया है कि किस तरह शिक्षा का अधिकार अधिनियम अंततः अधिनियमित हुआ। 1992 के मोहिनी जैन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से शुरू करके 1993 के उन्नीकृष्णन के मामले में आए निर्णय तक को रेखांकित किया गया है कि उसके बाद कैसे 2002 में भारतीय संविधान में संशोधन (अनुच्छेद 21ए को प्रविष्ट किया गया) करके मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया और साथ ही 2001-02 में सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) शुरू कर दिया गया। शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार मान लेने के बाद आए परिप्रेक्ष्य परिवर्तन का यह तार्किक परिणाम और अगला कदम था कि शिक्षा के अधिकार का अधिनियम पारित किया जाता– कि शिक्षा विधिक रूप से प्रवर्तनीय एक हक बन जाती साथ ही तद्नुसार राज्य एजेन्सियों का उत्तरदायित्व भी - बजाय इसके कि यह कोई आवश्यकता या दान होता जिसे राज्य द्वारा खैरात में गरीब जनता को दिया जाता। वास्तव में शिक्षा का अधिकार अधिनियम अनुच्छेद 21ए को जरूरी हथियार और महत्व प्रदान करता है।

सर्वशिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार अधिनियम के उद्देश्य एक दूसरे से बहुत अलग और भिन्न नहीं हैं, यद्यपि **सर्वशिक्षा अभियान, प्राथमिक शिक्षा के सार्वत्रीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सरकार का एक कार्यक्रम है,** जबकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम अपनी वैधता भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार वाले अध्याय से प्राप्त करता है। शिक्षा का अधिकार, सर्व शिक्षा अभियान द्वारा सृजित किए गए घटकों को हटाता नहीं है जैसे कि शिक्षा गारण्टी योजना (ईजीएस) और वैकल्पिक एवं नवोन्मेषी शिक्षा (एआईई)। न ही यह सर्व शिक्षा अभियान द्वारा सृजित किए गए क्रियान्वयन तंत्र को स्थानांतरित करता है। वास्तव में, वर्तमान समय में, सर्व शिक्षा अभियान शिक्षा के अधिकार अधिनियम का मुख्य क्रियान्वयन माध्यम है और सर्व शिक्षा अभियान की क्रियान्वयन रूपरेखा को विचारणीय रूप से शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रावधानों से समायोजित करने के लिए संशोधित कर दिया गया है। (सरकार, 2012, पृ. 34)।

विधिक संशोधनों के माध्यम से बाल श्रम प्रतिषेध और नियमन अधिनियम 1986 में भी सुधार प्रक्रिया में हैं क्योंकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अधिनियमन के बाद, जो 6 से 14 वर्ष के बच्चों को मुफ्त स्कूल शिक्षा का अधिदेश देता है, इस आयु सीमा में किसी भी स्वरूप के बालश्रम को अनुमति देना, चाहे वह गैर खतरनाक उद्यमों में हो, शिक्षा के अधिकार अधिनियम का उल्लंघन करेगा। काल्पा (सीएएलपीए) 14 वर्ष तक की उम्र तक सभी प्रकार के बाल श्रम का प्रतिषेध करता है। (चांडी, 2012)।

इसके साथ ही, शिक्षा का अधिकार अधिनियम और सर्व शिक्षा अभियान तमाम मंत्रालयों द्वारा प्रारम्भ किए गए विभिन्न प्रकार की सरकारी योजनाओं से पूरे होते हैं, जो विचारणीय बजटीय आबंटनों के साथ अस्तित्व में हैं। इनमें शामिल हैं :

मध्यान्ह भोजन योजना, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा आरम्भ की गयी;

पूर्ण स्वच्छता अभियान और **पेयजल मिशन**, स्कूलों में पेयजल और स्वच्छता सुविधाएँ प्रदान करने हेतु ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित;

राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना, बाल श्रम से हटाए गए बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए एक प्रयास के लिए श्रम मंत्रालय द्वारा प्रारम्भ किया गया;

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों से आने वाले बच्चों के लिए बोर्डिंग स्कूल और हास्टल सुविधाएं, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय तथा जनजातीय मामलों के मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित;

एकीकृत बाल विकास सेवाएं, आंगनबाड़ी प्रणाली की स्थापना के माध्यम से महिला और बाल विकास मंत्रालय द्वारा प्रारम्भिक बालपन विकास हेतु क्रियान्वित;

विद्यालय स्वास्थ्य कार्यक्रम, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित; और

शिक्षक शिक्षण, प्राथमिक और स्कूल शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा आरम्भ किया गया।

बॉक्स सं. 3.3

बालिकाओं की शिक्षा के सन्दर्भ में, शिक्षा का अधिकार अधिनियम और सर्व शिक्षा अभियान विभिन्न नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं द्वारा एक दूसरे के पूरक हैं। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005, शिक्षक शिक्षण के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2010 के साथ साथ कई कार्यक्रमों जैसे कि प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना और महिला समाख्या कार्यक्रम शामिल हैं। सम्मिलित रूप से इन नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं का उद्देश्य समाज के बहिष्कृत वर्गों से आने वाली लड़कियों समेत सभी लड़कियों के लिए समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन के लिए निश्चित समयावधि प्रदान करता है। यह अधिनियम, पड़ोस में नए स्कूलों का निर्माण करने, विद्यालय अवसंरचना का प्रावधान करने जिसमें इमारत और आवश्यक सुविधाएं शामिल हों और विद्यार्थी, अध्यापक अनुपात 30:1 करने के लिए, अपने आरम्भ होने की तिथि से तीन वर्षों की समय सीमा प्रदान करता है। यह प्रदत्त समयावधि मार्च 2013 में समाप्त हो गई। यह विद्यालयों में पहले से नियुक्त सभी अप्रशिक्षित अध्यापकों को प्रशिक्षण दिलाने के लिए पांच वर्ष की समय सीमा प्रदान करता है, जबकि कानून के अन्य प्रावधानों को अधिनियम के लागू होने के साथ ही तत्काल प्रभाव से लागू होने हैं।

यह भी याद करना महत्वपूर्ण है कि जहां शिक्षा के अधिकार अधिनियम के पास प्राथमिक शिक्षा के सार्वत्रीकरण के देश के विज़न को वास्तविकता में बदलने की असीमित सामर्थ्य थी, अधिनियम में तमाम अस्पष्टताएं और अपर्याप्तताएं भी हैं। (झा एवं पार्वती, 2010, पृ. 20-23)।

3.4.1 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु तंत्र

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, कानून के क्रियान्वयन और निरीक्षण हेतु विस्तृत और विविधतापूर्ण तंत्रों का प्रावधान करता है, जो अपनी प्रकृति में महत्वपूर्ण हैं। इनमें शामिल हैं :

बच्चों के अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय एवं राज्य आयोग (एनसीपीसीआर एवं एससीपीसीआर): इन्हें शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत दिए गए अधिकारों के संरक्षण और निरीक्षण के लिए शक्तियां प्रदान की हुई हैं। शिक्षा के अधिकार के सभी प्रावधानों के क्रियान्वयन के निरीक्षण हेतु इन्हें अधिदेश दिया गया है। इसमें व्यक्तिगत पात्रताएं और अधिकार शामिल हैं जिनकी गारण्टी बच्चों के लिए दी गई है जैसे कि मुफ्त पुस्तकें, प्रवेश और स्थानांतरण

प्रमाण-पत्र, प्राथमिक से माध्यमिक विद्यालय स्तर में बच्चों का व्यवस्थित स्थानांतरण के साथ-साथ शिकायतों का निवारण शामिल हैं। एनसीपीसीआर के एक आधिकारिक प्रपत्र के अनुसारा, 16 अप्रैल 2012 तक एनसीपीसीआर ने 439 वार्डों और 700 स्कूलों में सामाजिक ऑडिट का संचालन करवाया था, आठ राज्यों में 2500 मामलों की सार्वजनिक सुनवाई की थी, 15 राज्यों के 26 राज्य प्रतिनिधियों के साथ बैठक आयोजित की और शिक्षा का अधिकार अधिनियम पर दो विशेषज्ञ बैठकों का आयोजन किया। (एमएचआरडी, 2012)। यह संकेत करता है कि एनसीपीसीआर ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन का सामाजिक ऑडिट के संचालन हेतु जिम्मेदारी बहुत गंभीरता से ली थी।

एससीपीसीआर के कार्यों के निष्पादन हेतु प्राधिकरण का गठनः शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने राज्य सरकारों को ऐसी जिम्मेदारियां दी हैं कि जहां कहीं एससीपीसीआर का गठन न हुआ हो वहां वे ऐसे किसी प्राधिकरण का गठन कर दें। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत 2010 में अधिसूचित नियम, ऐसे संदर्भ में जहां एससीपीसीआर नहीं है, एक अंतरिक प्राधिकारी जिसका नाम **शिक्षा का अधिकार सरंक्षण प्राधिकरण** (आरईपीए) की स्थापना की बात कहता है जिसका उद्देश्य अधिनियम के अन्तर्गत एससीपीसीआर के कार्यों का निष्पादन करना होगा।

शिकायत निवारण तंत्र : कोई भी व्यक्ति जो ऐसे किसी कार्य से व्यथित हुआ हो जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत किसी बच्चे के अधिकारों का उल्लंघन करता हो तो वह वार्ड / पंचायत के स्थानीय प्राधिकारी से लिखित में शिकायत कर सकता है, जो तीन महीनों के अन्दर मामले पर निर्णय करेगा। यह स्थानीय प्राधिकारी ग्राम स्तर पर एक ग्राम पंचायत और शहरी स्तर पर शहरी स्थानीय निकाय हो सकता है। ऐसे दृष्टांतों में जहां शिकायतों का निवारण स्थानीय अधिकारियों द्वारा नहीं किया जाए एससीपीसीआर को अपील का केन्द्र बनाया गया है।

एक विद्यालय प्रबंधन समिति (एसएमसी) का गठन : शिक्षा का अधिकार अधिनियम प्रावधान करता है कि सभी स्कूलों को, उन्हें छोड़कर जो सरकारी निधि नहीं प्राप्त करते (गैर सहायता प्राप्त स्कूल), विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन करना है। इस विद्यालय प्रबंधन समिति को शक्तियां प्राप्त हैं कि वह विद्यालय के कार्यों का निरीक्षण कर सकती है और एक विद्यालय विकास योजना तैयार करती है। विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों में कम से कम तीन चौथाई सदस्य स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता या अभिभावक होने चाहिए, जिसमें से समाज में हाशिये पर रह रहे समूहों के बच्चों के माता-पिताओं और अभिभावकों को भी उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त **इसमें कम से कम 50 प्रतिशत सदस्य महिलाएँ होनी चाहिए।** ऐसी अपेक्षा की जाती है कि एसएमसी, एक निकाय के रूप में स्कूल की कार्यवाहियों के सकारात्मक और नकारात्मकता को सुनिश्चित करते हुए और जमीनी स्तर पर शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करते हुए स्थानीय आवश्यकताओं को लक्षित करेगा। केन्द्र सरकार ने आदर्श और मानक नियमों का संकलन तैयार किया है जो एसएमसी के गठन के बारे में और उनके द्वारा किए जाने चाहिए वाले कार्यों के बारे में भी विस्तृत विवरण को शामिल करता है। इन्हें सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को वितरित कर दिया गया है।

स्वतंत्र एजेन्सियों द्वारा निरीक्षण : सरकार के रिपोर्ट (2012) के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर पहचान के साथ 42 स्वतंत्र एजेंसियों को पहले दो वर्षों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन का निरीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इन निरीक्षक संस्थाओं से अपेक्षा की गई थी कि वे केन्द्रीय प्राधिकारियों को प्रत्येक अर्द्धवर्ष में रिपोर्ट जमा करेंगी, जो उन्हें राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के सर्व शिक्षा अभियान के राज्य परियोजना निदेशकों

को अग्रसारित करेंगे। राज्य परियोजना निदेशक उपचारात्मक या सुधारात्मक उपायों को अपनाने के लिए और शिक्षा के अधिकार अधिनियम के उचित क्रियान्वयन हेतु आगे के कदम उठाने हेतु उत्तरदायी हैं।

राज्य के लोक लेखा परीक्षक संस्थान द्वारा वित्तीय समीक्षा : संस्थान को भारत में सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों का एक साथ वित्तीय समीक्षा करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। और इस ऑडिट की रिपोर्ट मंत्रालय को सौंपने की जिम्मेदारी भी है, जो उसे आगे संबंधित राज्य/ केन्द्र शासित प्रदेश को उपचारात्मक उपाय और सुधारात्मक कदम उठाने के लिए अग्रसारित किए जाएंगे।

कुछ राज्यों में सर्व शिक्षा अभियान द्वारा तीसरे पक्ष द्वारा मूल्यांकन : उपरोक्त के अतिरिक्त, कुछ राज्यों में सर्व शिक्षा अभियान स्वतंत्र एजेंसियों के माध्यम से तीसरे पक्ष से मूल्यांकन कराता है। ऐसे राज्यों में आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल शामिल हैं।

बॉक्स सं. 3.4

निःसंदेह, प्रभावी निरीक्षण, जवाबदेही और शिकायत निवारण तंत्र कुछ ऐसे व्यावहारिक उपाय हैं जिससे शिक्षा के अधिकार अधिनियम के उद्देश्य प्राप्त होने को सुनिश्चित किया जाता है। सर्व शिक्षा अभियान ढांचा 14 मुद्दों को रेखांकित करता है जिन्हें व्यापक निरीक्षण, जवाबदेही और शिकायत निवारह तंत्र की स्थापना हेतु सामने रखना आवश्यक है। इसमें जागरूकता बढ़ाना और शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत सुरक्षित पात्रताओं को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करना; शिकायतों का निबटान करने के लिए पदनामित अधिकारियों की नियुक्ति करना; शिकायत का पंजीकरण कराने के लिए तंत्र का विकास करना; शिकायत निबटान हेतु समयावधि का निर्धारण करना; गोपनीयता धाराओं, फार्मेट और शिकायतों के पंजीकरण हेतु बहुल फॉर्मों को रखना इत्यादि शामिल हैं। (एमएचआरडी, 2012)।

3.4.2 सकारात्मक प्रभाव

अब हम सर्व शिक्षा अभियान के कुछ सकारात्मक नतीजों पर नज़र डालते हैं।

नीचे तालिका 3.1 शिक्षा में वर्ष 2006-07 से प्रगति की स्थिति का सिंहावलोकन प्रस्तुत करती है। तालिका प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक विद्यालयी सुविधाओं साथ ही साथ प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक में बच्चों के नामांकन में वृद्धि का संकेत करती है। सरकारी विद्यालयों में 2006-07 से 2010-11 के बीच अध्यापकों की संख्या में वृद्धि जैसा कि तालिका में दिखाया गया है, एक सकारात्मक संकेत है और इन वर्षों में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि के साथ जो आवश्यक था। तालिका 3.2 प्राथमिक, प्राथमिक के साथ उच्चतर प्राथमिक और कुल स्कूलों जैसे कोटियों में वर्गीकृत करके कई विद्यालयी सुविधाओं में लगातार होने वाली वृद्धि का स्पष्ट निदर्शन करती है। तालिका 3 प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के नामांकन को लिंगानुसार वर्गीकृत करके प्रस्तुत करती है। यह संकेत करती है कि यद्यपि दोनों श्रेणियों में लड़कियों की नामांकन संख्या कम है (अन्य कारणों में से पितृसत्तात्मक आदर्श और जेंडर आधारित सोच इसके लिए उत्तरदायी है), प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियों का नामांकन वर्षानुवर्ष लगातार बढ़ता जा रहा है। परन्तु प्रतिशतता और संख्या में नामांकन ठीक-ठीक उपस्थिति दर को नहीं दर्शाता बल्कि उपस्थिति विचारणीय रूप से कमतर रहता है। नामांकन दर शैक्षणिक वर्ष के दौरान विद्यालय छोड़ देने वाले बच्चों के बारे में भी कोई सूचना नहीं देता।

तालिका 3.1: वर्ष 2006-07 से शिक्षा में प्रगति की स्थिति

	2006-07	2009-10	2010-11
प्राथमिक विद्यालय (लाख में)#	7.7	8.1	8.2
उच्च प्राथमिक विद्यालय (लाख में)##	4.1	4.9	5.3
प्राथमिक नामांकन (करोड़ में)	13.20	13.30	13.50
उच्च प्राथमिक नामांकन (करोड़ में)	4.75	5.45	5.78
बुनियादी नामांकन (करोड़ में)	18.00	18.80	19.28
सकल नामांकन दर* - प्राथमिक (प्रतिशत)	111.0	115.0	118.0
निवल नामांकन दर** - प्राथमिक (प्रतिशत)	93.0	98.0	99.8
सकल नामांकन दर* - उच्च प्राथमिक (प्रतिशत)	64.7	75.8	81.2
निवल नामांकन दर** - उच्च प्राथमिक (प्रतिशत)	48.4	58.3	61.8
सरकारी विद्यालयों में अध्यापक (लाख में)	36.0	39.0	41.9
विद्यालय न जा सकने वाले बच्चे (करोड़ में)	1.13	0.81	-

प्राथमिक - कक्षा 1 से कक्षा 5

उच्च प्राथमिक - कक्षा 5 से कक्षा 8

* सकल नामांकन दर का अर्थ है सभी आयु वर्ग के बच्चों के नामांकित बच्चे/आधिकारिक विद्यालयी आयु समूह के सभी बच्चों की संख्या

** निवल नामांकन दर का अर्थ है आधिकारिक विद्यालयी आयु समूह के नामांकित बच्चों की संख्या/आधिकारिक विद्यालयी आयु समूह में बच्चों की कुल संख्या

स्रोतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

तालिका 3.2: सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत आने वाले स्कूलों की कुल संख्या

शैक्षणिक वर्ष	केवल प्राथमिक	प्राथमिक के साथ उच्च प्राथमिक	कुल विद्यालय*
2006-07	779,482	210,014	1,194,504
2007-08	805,667	217,442	1,244,199
2008-09	809,108	234,345	1,285,287
2009-10	809,978	247,643	1,303,773
2010-11	827,244	258,803	1,362,324

* कुल विद्यालयों की संख्या में केवल प्राथमिक, प्राथमिक के उच्च प्राथमिक, प्राथमिक के साथ उच्च प्राथमिक और माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक, केवल उच्च प्राथमिक, उच्च प्राथमिक के साथ माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालय शामिल हैं।

स्रोतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

तालिका 3.3: लिंगानुसार नामांकन (मिलियन अर्थात दस लाख में)

शैक्षणिक वर्ष	प्राथमिक-बालक	प्राथमिक-बालिका	प्राथमिक-कुल संख्या	उच्च प्राथमिक-बालक	उच्च प्राथमिक-बालिका	उच्च प्राथमिक-कुल योग
2006-07	68.4	63.4	131.8	25.4	22.1	47.5
2007-08	69.5	64.7	134.2	27.0	23.9	50.9
2008-09	69.4	65.0	134.4	28.0	25.4	53.4
2009-10	68.8	64.7	133.5	28.3	26.2	54.5
2010-11	69.8	65.5	135.5	29.9	28.0	57.9

स्रोतः मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

बॉक्स सं. 3.5

ऊपर दिखाए गए सांख्यिकी और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पास उपलब्ध अन्य सांख्यिकी के नतीजों का सारांश निम्न प्रकार से है :

- राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को सर्व शिक्षा अभियान के क्रियान्वयन हेतु वित्तीय आबंटन में, और जैसा कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा अधिदेश दिया गया था, वर्ष 2010-11 से 2011-12 में वृद्धि हुई है;
- नए बनने वाले प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है;
- प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन दर में वर्षानुवर्ष वृद्धि हुई है।
- हालाँकि प्राथमिक और उच्च प्राथमिक दोनों विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन निम्नतर है, बालिकाओं के नामांकन में वर्षानुवर्ष लगातार वृद्धि दर्शित हुई है, और परिणामस्वरूप नामांकन में लैंगिक अंतराल कम हुआ है;
- पिछले कुछ वर्षों में बुनियादी स्तर (कक्षा 1 से कक्षा 8 तक) पर उपलब्ध अध्यापकों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है;
- इन वर्षों के दौरान महिला अध्यापकों की प्रतिशतता में वृद्धि हुई है, इसके पीछे एक कारण यह भी है कि सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत यह मानक उद्धृत है कि भर्ती किए जा रहे अध्यापकों में न्यूनतम 50 प्रतिशत महिला अध्यापक होनी चाहिए;
- विद्यालयों में मूलभूत अवसंरचना जैसे कि पेयजल की सुविधा, लड़कियों के लिए शौचालय और दिव्यांग बच्चों के लिए रैम्प इत्यादि की उपलब्धता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

एक सकारात्मक पहलू, जैसा कि सर्व शिक्षा अभियान के लिए वर्ष 2010-11 और 2011-12 में आवंटित बजटों में दर्शनीय है, **समावेशी शिक्षा पर जोर देना** है, जिसमें मुख्य ध्यान विशेष जरूरतों वाले बच्चों पर है। 2009-10 में 28,309,65 लाख रुपये बजट की तुलना में 2010-11 में समावेशी शिक्षा के लिए बजट 75,308,2 लाख रुपये था, जो सीधे 46,998.55 लाख रुपये की वृद्धि दर्शाता है। (गुप्ता, 2012)।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) के बीच क्या संबंध है?

2) कुछ ऐसी योजनाओं के नाम लिखिए जो आरटीई एक्ट और सर्व शिक्षा अभियान की पूरक हैं?

3) शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत निरीक्षण और क्रियान्वयन के तंत्र क्या हैं?

4) सरकारी रिपोर्टों के माध्यम से रेखांकित किए गए आरटीई अधिनियम के सकारात्मक प्रभाव के पहलुओं को लिखिए।

आरटीई एक्ट के सकारात्मक प्रभाव के बारे में पढ़ने के बाद आइए हम इसके क्रियान्वयन में अंतरालों के बारे में पढ़ते हैं।

3.4.3 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में अन्तर

सरकारी आंकड़ों में दर्शाए गए सकारात्मक प्रभाव के बावजूद शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में सुधार के लिए काफी गुंजाइश है। यद्यपि आरटीई के क्रियान्वयन और निरीक्षण हेतु विस्तृत तंत्र विद्यमान है, इसके अधिनियमन के पांच वर्ष बाद भी, कानूनी प्रावधानों और जमीनी स्तर की वास्तविकताओं में अंतराल दिखते हैं। 2011 में एनसीपीसीआर ने दस राज्यों में प्रत्येक के एक जिले में सामाजिक ऑडिट का संचालन करवाया। यह दस राज्य थे असम, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिल नाडु और उत्तर प्रदेश। इस सामाजिक ऑडिट की कल्पना एक पायलट प्रयास, न कि व्यापक प्रयास के रूप में की गई थी। इसके नतीजों ने अधिकांश सरकारी विद्यालयों में इसके क्रियान्वयन में काफी कमियां दिखलाईं, जैसे कि :

- पेयजल और शौचालयों की कमियों सहित खराब अवसंरचना। अपर्याप्त या शौचालयों की बिल्कुल अनुपस्थिति विद्यालयों से विशेष रूप से बालिकाओं के नाम कटने के लिए उत्तरदायी होता है। स्थानीय समुदाय और विद्यालय प्रबंधन समिति की अर्थपूर्ण सहभागिता की कमी के साथ मिलकर नौकरशाही की लाल फीताशाही और राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी के कारण हुए केन्द्र सरकार की अकर्मण्यता विद्यालयों में बेकार अवसंरचना में योगदान करती है;
- शिष्य-अध्यापक अनुपात निराशाजनक है, दिल्ली और उत्तर प्रदेश जैसे कुछ राज्यों में एक कक्षा में 80 से अधिक विद्यार्थियों को बिठाया जाता है, जबकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात को 30:1 पर रखने की अनुशंसा करता है;
- निम्न नामांकन दरें और विद्यालय छोड़ने की उच्च दरें, सबसे उच्च दरें हरियाणा में हैं जहां विद्यालय छोड़ने वालों में अधिकांश बालिकाएँ होती हैं;
- सभी 10 राज्यों में शिक्षा की अत्यंत खराब गुणवत्ता, जिसमें से छठवीं और सातवीं कक्षा के विद्यार्थी अपनी पाठ्यपुस्तकें तक पढ़ नहीं पाते। शिक्षा की खराब गुणवत्ता के कारणों में कुछ हिस्सा तो अध्यापकों की खराब गुणवत्ता के कारण है और बाकी प्रेरणा की कमी, उच्च अनुपस्थिति, समय पालन की कमी, अनियमितता और अध्यापकों की जवाबदेही की कमी अन्य कारण हैं। असम और उत्तर प्रदेश में यह स्थिति स्थानापन्न अध्यापकों के चलते और भी भयावह हो गई है क्योंकि नियुक्त अध्यापकों के स्थान पर उनके प्रतिनिधि अध्यापक काम पर लगे होते हैं। प्रतिनिधि अध्यापकों की योग्यता निम्नतर तो होती ही है उन्हें नियमित रूप से नियुक्त अध्यापकों की अपेक्षा बहुत ही मामूली वेतन पर रखा जाता है।

अन्य अध्ययनों ने भी इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि विद्यालयी सुविधाओं, अवसंरचनात्मक सुविधाओं, नामांकन दरों और अध्यापकों की संख्या में वृद्धि के बावजूद परिमाणात्मक स्तर पर वृद्धि गुणात्मक स्तर पर वृद्धि को नहीं दर्शाती। **'अधिगम' के मुख्य उद्देश्य के नतीजे संतोषजन के कम रह रहे हैं, जो शिक्षाविदों से अधिगम स्तरों में सुधार की तलाश में अवसंरचना के प्रावधानों से परे देखने को प्रेरित कर रहे हैं।** शोधकर्ताओं ने इस बात की आवश्यकता और तात्कालिक महत्व की ताकीद की है कि अपना ध्यान शिक्षा के अधिकार से समावेशी शिक्षा के अधिकार की ओर केन्द्रित किया जाए, जिसमें बालिकाओं और दिव्यांग बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता देने की आवश्यकता पर विशेष जोर हो। (बरुआह, 2013)।

शिक्षा का अधिकार राष्ट्रीय फोरम, जो 10,000 तृणमूल स्तर पर बच्चों के शिक्षा के अधिकार के मुद्दे पर देश भर में काम कर रहे संगठनों से मिलकर बना है, द्वारा आरम्भ किए गए

एक अन्य अध्ययन ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रचलन में आने के दो वर्ष बाद उसके क्रियान्वयन की प्रगति का मूल्यांकन किया। इस रिपोर्ट (गुप्ता) में निम्न बातें रेखांकित की गई हैं :

- अध्यापकों के स्वीकृत पदों में से 37 प्रतिशत पद रिक्त हैं;
- तमाम राज्य आवश्यक विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात 30:1 का लक्ष्य नहीं प्राप्त करते;
- निरीक्षण संस्थाएं मूक दर्शक बनी हुई हैं, ये प्रतिवेदित शिकायतों का समाधान तक नहीं कर पातीं। सूचना के अधिकार के माध्यम से इकट्ठी की गई सूचनाओं से, अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि 1 अप्रैल 2011 से 16 मार्च 2012 तक एनसीपीसीआर में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत 1761 शिकायतें दर्ज कराई गईं थी और मात्र 100 शिकायतों पर कार्रवाई की गई थी, जो आरटीई अधिनियम के तहत नियुक्त निरीक्षण निकायों के खराब कार्यप्रणाली की संकेत है।
- शिक्षा का अधिकार-सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जरूरी निधियाँ उल्लेखनीय रूप से काफी कम हैं, विशेष रूप से पहले दो वर्षों को सबसे अधिक खर्चे वाला माना गया था, जिसमें अतिरिक्त अध्यापकों की नियुक्ति की जानी थी, अवसंरचना को उन्नत किया जाना था और नए अधिकार-आधारित प्रशासन के लिए प्रशासनिक परिवर्तन किए जाने थे।
- समग्र लागत-साझेदारी को लेकर केन्द्र-राज्य संबंधों में अन्तर्निहित तनाव भी एक कारण था।
- अध्यापकों की उपलब्धता और उनकी धीमी भर्ती प्रक्रिया भी एक प्रमुख मुद्दा रहा। अध्ययन दिखलाता है कि 2010-11 के दौरान, प्राथमिक स्तर के पांच विद्यालयों में से दो विद्यालय विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात 30:1 के मानक तक पहुंचने में असफल थे और तीन बच्चों में से लगभग दो बच्चे जो विद्यालयों में नामांकित हुए इस आवश्यकता को पूरा नहीं करते थे। इसी तरह, उच्च प्राथमिक स्तर के 10 विद्यालयों में से सात विद्यालय आरटीई के अध्यापक-विद्यार्थी अनुपात 1:35 के मानक को पाने में असफल रहे; मोटे तौर पर दो बच्चों में से एक बच्चा जो विद्यालयों में नामांकित हुआ मानक को पूरा नहीं करता था।
- अपने घरों से पैदल दूरी पर स्कूलों की उपलब्धता और उन तक पहुंच भी चिन्ता का मुख्य विषय बनी रही, विशेष रूप से हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश और पूर्वोत्तर के दूरस्थ और पहाड़ी क्षेत्रों में, छत्तीसगढ़ के जनजाति-प्रभुत्व वाले जंगली क्षेत्रों के अधिकांश हिस्से, मध्य प्रदेश और उड़ीसा तथा राजस्थान के मरुस्थलों में।
- कई राज्यों में युक्तिसंगतीकरण के नाम पर सरकारी विद्यालयों को बन्द किए जाने की एक खतरनाक प्रवृत्ति देखी गई है, जिसमें कर्नाटक जैसे राज्य भी शामिल हैं, जहां 3000 सरकारी विद्यालयों को बन्द किए जाने का आदेश दिया गया, और फिर जनता के जोरदार विरोध से निर्णय को स्थगित रखा गया। सरकारी स्कूल के बन्द होने का सीधा मतलब है अत्यन्त गरीब और दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों पर ऋणात्मक प्रभाव, जो इस प्रक्रिया के चलते शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाएंगे।

बॉक्स सं. 3.6

अन्य शोध संकेत करते हैं कि गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीटों पर वंचित समूहों और कमजोर वर्गों के बच्चों के प्रवेश की राशि की प्रतिपूर्ति का मुद्दा भी विवादग्रस्त मुद्दा बना रहा है। आरटीई अधिनियम ने व्यवस्था की है कि सरकार को

प्रतिवर्ष 10,000 रुपये प्रति विद्यार्थी जब तक वह कक्षा 4 उत्तीर्ण न हो जाए और कक्षा 5 से 8 तक के लिए रुपये 25,000 प्रति विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रतिपूर्ति करनी चाहिए। इस अधिनियम को क्रियान्वित करने की अंतिम तिथि 31 मार्च 2013 थी। बांबे हाई कोर्ट में राशि की प्रतिपूर्ति को लेकर दायर एक जनहित याचिका में राज्य की कारगुजारियों का उदाहरण देते हुए कहा गया था कि सरकार ने फीस की प्रतिपूर्ति कुछ वर्ष पहले ही बन्द कर दी जिसके चलते बच्चे विद्यालय छोड़ रहे थे। 2010 में यह जनहित उन तमाम अभिभावकों द्वारा दायर की गई थी जिनके बच्चे निजी रूप से सहायता प्राप्त/ गैर सहायता प्राप्त विद्यालयों में आरटीई एक्ट के मुफ्त छात्रवृत्ति योजना के तहत पढ़ रहे थे। जनहित याचिका में आरोप लगाया गया था कि विद्यालय याचिकाकर्ताओं के बच्चों को विद्यालय में पढ़ने जाने नहीं दे रहे, क्योंकि सरकार ने विद्यालयों को निधियां जारी नहीं की हैं। सरकार ने प्रतिदावा करते हुए कहा कि एससी/एसटी समुदायों से आने वाले ऐसे बहुत से आईएएस अफसर हैं जो अपने बच्चों का दाखिला ऐसे जाने माने निजी विद्यालयों में इस योजना के तहत लाभ का दावा करते हुए करवा रहे हैं। जबकि सरकार ने सुझाव दिया कि संबंधित विद्यार्थियों को योजना के तहत लाभ देने से पहले उनके अभिभावकों का आयकर रिटर्न की जांच की जाएगी, उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र सरकार को निर्देश दिया कि अभिभावकों की आय की परवाह किए बिना निधियों को संवितरित करे।

स्रोतः एससी/एसटी विद्यार्थियों के लिए आरटीई निधि जारी करो, न्यायालय ने राज्य को आदेश दिया, डेली न्यूज एंड एनालिसिस, 4 अप्रैल 2013

3.4.4 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन में चुनौतियां

निम्नलिखित भागों में आरटीई अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को रोकने वाली प्रमुख चुनौतियों के बारे में पढ़ेंगे।

व्यापकता : आरटीई अधिनियम के क्रियान्वयन में प्रमुख चुनौतियों में से एक है इसके कार्यक्षेत्र की व्यापकता। अधिनियम में प्रतिष्ठापित अधिकार के दायरे में लगभग 20 करोड़ बच्चे आते हैं जो 13 लाख से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ते हैं जो सरकारी, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त और निजी विद्यालयों में वर्गीकृत हैं।

कार्यक्षेत्र : आरटीई अधिनियम केन्द्रीय और राज्य सरकारों के साथ-साथ केन्द्र शासित क्षेत्रों पर व्यापक प्रसार वाली सेवाओं, प्रावधानों और सुविधाओं की आपूर्ति का दायित्व डालता है जिसमें अवसंरचना, गुणवत्ता और कक्षाकक्ष प्रक्रियाएं, स्वास्थ्य, स्वच्छता और पेयजल, मध्यान्ह भोजन शामिल है। इसके अतिरिक्त एक्ट के अन्तर्गत भेदभाव और हिंसा से संरक्षण और कमजोर वर्गों से आने वाले बच्चों को मुख्य धारा में शामिल करने जैसी सुविधाएं भी इसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं।

मौलिक हकों की तरह निष्पक्षता और गुणवत्ता : आरटीई अधिनियम दो तथ्यों निष्पक्षता और गुणवत्ता को मौलिक हकों की तरह शामिल करता है, जो बदले में निरीक्षण योग्य मानकों और मापनीय मूल्यांकन प्रणाली और इसके संबंध में जरूरी दिशानिर्देशों की मांग करता है।

आठ-वर्षीय अवधि के दौरान कमजोर/सुभेद्य बच्चे का संरक्षण करना : शिक्षा कोई एक समय पर की जाने वाली आपूर्ति नहीं है। इस तथ्य के मद्देनज़र कि यह बच्चे के जीवन के एक दौर को समाहित करता है, शिकायत निवारण की प्रक्रिया अत्यन्त संवेदनशील, गैर-विरोधात्मक और मददगार तरीके से होनी चाहिए जो अभिभावक, अध्यापक, विद्यालय प्रबंधन और बच्चे के बीच सहकारिता का पल्लवन करे। शिकायत दर्ज करने के बदले होने

वाली प्रतिहिंसा या बदले से उचित संरक्षण की जरूरत होती है, जिससे कि बच्चे को किसी प्रतिकूल प्रभाव का सामना न करना पड़े। यह अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण है।

क्रियान्वयन में अन्यमनस्कता : आरटीई एक्ट के क्रियान्वयन में एक बड़ी चुनौती है अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने में केन्द्र और राज्य सरकारों की ओर से की जाने वाली रुकावट। जैसा कि राय (2012) इशारा करते हैं, देशभर में आरटीई अधिनियम को लागू करने के लिए आबंटित बजट 2010 में राष्ट्रमंडल खेलों के बजट का मात्र आधा है, इसलिए निधियां शायद ही कभी समस्या रही हों। यह भी देखा गया कि जबकि सरकारी विद्यालयों में बच्चों की संख्या बहुत अधिक बनी हुई है, उनकी गिरती हुई लोकप्रियता और साथ के साथ निजी स्कूलों की बढ़ती हुई संख्या देश की विकृत होती हुई शिक्षा व्यवस्था के आरम्भिक संकेत हैं।

आगे, यह भी विचार व्यक्त किया गया था कि जब आरटीई अधिनियम को लागू करने की बात आती है तो हिन्दी भाषी राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और बिहार सर्वाधिक अन्यमनस्क राज्य होते हैं, वह भी इस तथ्य के बावजूद कि विद्यालय से बाहर बच्चों में से 67 प्रतिशत बच्चे इन्हीं राज्यों से हैं। इस अवलोकन को उत्तर प्रदेश सरकार की उस घोषणा ने सही साबित किया कि, केन्द्र सरकार से प्राप्त वित्तीय योगदान का उपयोग 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने में किया जाएगा, इस बात का संकेत देते हुए कि अधिनियम के क्रियान्वयन में योगदान करने की उनकी कोई मंशा नहीं है।

अध्यापकों की भर्ती : विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात को बनाए रखने के लिए, केन्द्र सरकार ने, अपनी तरफ से पहल करते हुए, सर्व शिक्षा अभियान के तहत अध्यापकों के 7 लाख अतिरिक्त पदों को स्वीकृत किया जो आरटीई के भी सुसंगत है। हालाँकि सरकारी आंकड़ों के अनुसार (शिक्षा में जिला सूचना प्रणाली - डीआईएसई) कुल स्वीकृत अध्यापक पदों के 36 प्रतिशत रिक्त हैं (गुप्ता, 2012)। उदाहरण के लिए, झारखण्ड में 67000 कुल स्वीकृत पदों में से मात्र 27000 अध्यापक भर्ती किए जा सके थे। (टाइम्स ऑफ इंडिया 11.03.2013) ऐसी भी सूचना है कि कई हजार स्पेशल अध्यापकों के पद भी रिक्त हैं। उदाहरण के लिए, अकेले नागपुर में ऐसे 1500 पद खाली पड़े हैं। (टाइम्स ऑफ इंडिया, 28.01.2011) ये रिक्तियां स्पेशल विद्यालयों में हैं जो सर्व शिक्षा अभियान के तहत शारीरिक/मानसिक रूप से अशक्त बच्चों के लिए होता है। इन सबके बावजूद भर्ती प्रक्रिया बहुत ही धीमी गति से हो रही है। अध्यापकों की भर्ती होने से और रिक्त पदों को तेजी से भर दिए जाने से विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात में उल्लेखनीय कमी आएगी, जो अधिक नामांकन प्रवृत्ति के चलते बहुत अधिक है। यह तंत्र में पहले से नियुक्त अध्यापकों के दबाव को भी उल्लेखनीय ढंग से कम करेगा, जिन्हें अधिक संख्या में बच्चों को पढ़ाना पड़ता है और उसके साथ ही गैर-अध्यापन उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी करना पड़ता है जैसे कि मध्यान्ह भोजन योजना, सरकारी कार्यक्रमों और चुनावों का क्रियान्वयन। हालाँकि राज्य रिक्त पदों को भरने की जद्दोजहद में लगे हुए हैं।

अध्यापकों का प्रशिक्षण और शिक्षा की गुणवत्ता का उन्नयन : यूनिसेफ ने अवलोकन किया है कि असल कार्य अध्यापकों की गुणवत्ता, कक्षाकक्ष शिक्षण, प्रभावी विद्यालय कार्यपद्धति और सुधरे हुए विद्यालय प्रबंधन पर किया जाना है और साथ ही साथ गुणवत्ता में सुधार और शिक्षण के तरीके पर ध्यान देना होगा क्योंकि खराब नतीजे दरअसल खराब शिक्षा और खराब अध्यापन का परिणाम है। (द हिन्दू, 13.04.13) एनसीपीसीआर की अध्यक्ष शांता सिन्हा ने कहा था कि एक पैनल द्वारा 300 जिलों के सर्वेक्षण ने दिखलाया कि 37 प्रतिशत विद्यालयों में भाषा शिक्षक ही नहीं हैं, 31 प्रतिशत विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन के

अध्यापक नहीं है और 29 प्रतिशत विद्यालयों में गणित और विज्ञान के अध्यापक नहीं हैं। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) ने प्राथमिक विद्यालयों (कक्षा 1 से 8 तक) में नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति के लिए न्यूनतम योग्यताओं को निर्धारित कर रखा है। अन्य बातों के साथ-साथ अधिसूचना यह भी व्यवस्था देती है कि केवल वही व्यक्ति जो उपयुक्त सरकार द्वारा संचालित अध्यापक पात्रता परीक्षा (टीईटी) परीक्षा में न्यूनतम अर्हता प्राप्त करेगा, वही कक्षा 1 से 8 तक अध्यापक नियुक्त होने के लिए पात्र होगा। आरटीई एक्ट अपने लागू होने से लेकर 5 वर्ष की समयावधि प्रदान करता है जिसमें सभी अध्यापकों को जो आवश्यक योग्ताओं को पूरा नहीं करते, उन्हें प्रशिक्षण दे दिया जाए (मार्च 2015 तक)। अप्रशिक्षित अध्यापकों का प्रशिक्षण इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बच्चों की केवल शिक्षा नहीं बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और अर्थपूर्ण अधिगम तक पहुंच हो और विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों को रोका जा सके। अध्यापक अनुपस्थिति भी चिन्ता का एक विषय बना रहा, जबकि अध्यापकों की जवाबदेही सुनिश्चित करना अपने आप में चुनौतीपूर्ण है साथ ही साथ प्रत्येक विद्यालय में इन मुद्दों को लक्षित करने के लिए एक निरीक्षण तंत्र हो इसे सुनिश्चित करना भी अत्यंत चुनौतीपूर्ण है।

विद्यालय न जाने वाले बच्चों को विद्यालय लाना और विद्यालय छोड़ने की घटना को रोकना : यूनीसेफ का मानना है कि भारत में 80 लाख बच्चों ने कभी विद्यालय का मुंह नहीं देखा है। लगभग 8 करोड़ बच्चे बिना प्राथमिक शिक्षा पूरी किए बीच में विद्यालय छोड़ देते हैं, इस स्थिति को भारत में राष्ट्रीय आपातकाल की तरण वर्णित करता है, और इसलिए शिक्षा के अधिकार अधिनियम का बेहतर क्रियान्वयन करने के लिए सरकार और नागरिक समाज का आह्वान करता है (द हिन्दू, 13 अप्रैल 2013)। विद्यालय न जाने वाले अधिकांश बच्चे खेतों और कारखानों, घरों, शहर की सड़कों, खानों, फर्शटाइलों और ईंट भट्ठों में काम करते हैं या फिर यौन गतिविधि और बंधुआ मजदूरी के लिए उनका व्यापार होता है या फिर मानव-व्यापार के लिए बहुत सुभेद्य होते हैं। शिक्षा के अधिकार अधिनियम का उद्देश्य ऐसे बच्चों को विद्यालय तक लाना और शिक्षा पूरी होने तक उन्हें विद्यालय में रोकना है। जहां बच्चों का, खासकर बालिकाओं का विद्यालयों में नामांकन अधिनियम के क्रियान्वयन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, वहीं बच्चों को विद्यालयों में रोके रखना और विद्यालय छोड़ने के उच्च दर को कम करना और भी महत्वपूर्ण है। यूनीसेफ की रिपोर्ट कहती है जैसा कि विश्वास किया जाता है, विद्यालय छोड़ने का सबसे बड़ा कारण बालश्रम नहीं है बल्कि कारण यह है कि बच्चे विद्यालय में कुछ सीखते नहीं। इसीलिए अध्यापकों का प्रशिक्षण और उनको अभिप्रेरित करना यह सुनिश्चित करने के लिए लाज़िमी है कि नवोन्मेषी और भागीदारी पूर्ण विधियों के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान किया जाए जिससे पढ़ाई में बच्चों का मन लगे और विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों की दर कम हो सके। (श्रीनिवासन, 2010)।

अवसंरचनात्मक सुविधाएँ, खासकर बालिकाओं के लिए : तमाम अध्ययन संकेत करते हैं कि 27 प्रतिशत विद्यालयों में एक भी महिला अध्यापक नहीं है और 50 प्रतिशत विद्यालयों में तो लड़कियों के लिए अलग से शौचालय तक नहीं है। इसका परिणाम यह है कि लड़कियों में विद्यालय छोड़ने की दर बहुत अधिक है, खासकर नाजुक किशोर उम्र वाली लड़कियों में जो यौवन में कदम रखने वाली होती हैं। इस बात को सुनिश्चित करना कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा लड़कियों के लिए एक वास्तविकता है, सभी राज्यों की प्राथमिकता होनी ही चाहिए।

मंत्रालयों में समन्वय : अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन के लिए विभिन्न एजेंसियों में समन्वय होना भी एक चुनौती है। उदाहरण के लिए, विद्यार्थियों को विद्यालयों तक लाना और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जा रही है, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की जिम्मेदारी है। हालाँकि अधिनियम के क्रियान्वयन का निरीक्षण

एनसीपीसीआर और एससीपीसीआर द्वारा किया जाए। अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन हेतु विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच अन्योन्य क्रियाओं की जरूरत होती है जैसे कि महिला और बाल विकास मंत्रालय (बालिकाओं पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए), ग्रामीण विकास मंत्रालय (विद्यालयों में आवश्यक सेवाओं जैसे शौचालय और पेयजल सुविधाओं की व्यवस्था हेतु), जनजातीय मामलों का मंत्रालय (अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बच्चों हेतु), सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय (वंचित समुदायों से आने वाले बच्चों के लिए आवासीय विद्यालयों हेतु) और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (बच्चों के स्वास्थ्य एवं सामूहिक टीकाकरण हेतु)।

सामाजिक पूर्वाग्रह और गरीब-विरोधी मानसिकता : जाति, वर्ग, लिंग, धर्म, निर्योग्यता, पारिवारिक व्यवसाय, क्षेत्र, भाषा और इन पहचानों के मिश्रण के आधार पर विद्यालयों में बहिष्करण और भेदभाव तथा इनके आधार पर विद्यालयों में विद्यार्थियों की पहचान भारत में जमीनी हकीकत है। बच्चों के प्रति हिंसा और गलत व्यवहार जिसमें शारीरिक दण्ड भी शामिल है, का व्यापक प्रचलन है जिसके लिए एनसीपीसीआर से विस्तृत दिशानिर्देशों की श्रृंखला प्रदत्त है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में एक बड़ी चुनौती, गहराई तक जड़ें जमाई सामाजिक पूर्वाग्रह और विभाजन हैं जिसने अभी भी वंचित और पिछड़े समुदायों से आने वाले बच्चों से विशेषाधिकार प्राप्त परिवारों के बच्चों को अलग रखने को सुनिश्चित किया है, का सामना करना पड़ता है। हालाँकि तमाम निजी विद्यालय अपनी कुल सीटों में से 25 प्रतिशत सीटें वंचित और सुविधाहीन बच्चों के लिए रखते हैं, जैसा कि कानून द्वारा जरूरी है, परन्तु मुख्य चुनौती होती है वंचित बच्चों को अलगाव से संरक्षित करने की, जो 'हम' और 'उनके' बीच के विभाजन पर विजय पाकर एकात्मता को सुविधा प्रदान करने की बजाय उनके आत्मविश्वास के स्तर को नीचे कर सकता था। एक समतावादी समाज में न्यायोचित, समतापरक और मूल्यआधारित शिक्षा की प्राप्ति के लिए सभी संबंधित साझेदारों, जिसमें अध्यापक और अभिभावक शामिल हैं, की मानसिकता में परिवर्तन की जरूरत है।

3.4.5 शिक्षा का अधिकार अधिनियम के बेहतर क्रियान्वयन की ओर : आगे बढ़ने का रास्ता

हालाँकि, अधिनियम के उचित और प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने हेतु कार्यवाही की ऐसी कई योजनाएं हैं जिन्हें आरम्भ करने की आवश्यकता है, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने, शिक्षा के अधिकार पर अपने कार्य-समूह के माध्यम से, सिफारिशों के कई संग्रह जारी किए हैं जिनका उद्देश्य शिक्षा के अधिकार को मजबूती प्रदान करना है। इन सिफारिशों का सार-संक्षेप नीचे प्रस्तुत है :

1) प्राथमिक शिक्षा में समावेशीकरण और अधिगम नतीज़ों को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तीय आबंटन में सुधार और सार्वजनिक खर्च की दक्षता में सुधार हो;

2) अधिगम नतीजों के सुपरिभाषित उद्देश्य स्थापित हों;

3) यह सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण और मूल्यांकन पद्धतियों को मजबूत किया जाए कि सभी विद्यालय (I) शिक्षा के अधिकार की निविष्टि और अवसंरचना मानकों; तथा (II) अधिगम नतीजों की आवश्यकताओं और समावेशीकरण को परिपूर्ण करते हों;

4) सक्षम अध्यापकों के निकाय को वृहत्तर बनाने के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए;

5) जैसा कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा विहित किया गया है निजी विद्यालयों में सुविधाहीन समुदायों और आर्थिक रूप से पिछड़े समुदायों से आने वाले बच्चों और अन्य में बेहतर एकीकरण को सुनिश्चित किया जाए;

6) बचपन और विद्यालय-पूर्व शिक्षा के लिए भारत सरकार को एक व्यापक नीति विकसित करनी चाहिए;

7) शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत अनुपालनीय जरूरतों को समयबद्ध तरीके से पूरा करने के लिए सभी विद्यालयों को सहायता दी जाए;

8) चतुर्शाखीय उपागम के माध्यम से निरीक्षण और शिकायत निवारण हेतु तंत्र को मजबूत किया जाए: (क) संस्थागत शिकायत निवारण और अपील संरचनाओं की स्थापना की जाए; (ख) संवाद और मध्यस्थता के माध्यम से निरीक्षण और शिकायत निवारण हेतु समुदाय-आधारित, संस्थागत तंत्र का निर्माण किया जाए; (ग) निरीक्षण और शिकायत निवारण हेतु क्षमता निर्माण, प्रशिक्षण एवं अनुकूलन; और (घ) एनसीपीसीआर और एससीपीसीआर के संसाधनों को मजबूत बनाया जाए और उसमें संवृद्धि की जाए।

सारांश से पहले निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में प्रमुख कमियों को लिखिए।

2) शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में क्या-क्या चुनौतियां हैं?

3) शिक्षा का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में सुधार हेतु क्या कदम उठाए जा सकते हैं?

3.5 सारांश

नरेगा और आरटीई एक्ट दोनों पथप्रवर्तक कानून हैं जो सामाजिक सुरक्षा और कल्याण के उपाय प्रस्तुत करते हैं। जहां नरेगा ने, सर्वाधिक गरीबों को राहत पहुंचाते हुए आजीविका के अधिकार को कानूनी रूप से प्रवर्तनीय हक में रूपांतरित कर दिया वहीं आरटीई एक्ट स्वातंत्र्योत्तर भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसने मुफ्त, गुणवत्तापूर्ण और समावेशी शिक्षा को प्रत्येक बच्चे की पहुंच में कर दिया। नरेगा, भयानक गरीबी, भुखमरी, कुपोषण एवं काम न होने के परिणामस्वरूप होने वाले प्रतिकूल प्रभावों के विरुद्ध सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है; आरटीई एक्ट बच्चों को वर्तमान में शिक्षा के अधिकार से सुसज्जित करके भविष्य के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है।

जबकि दोनों कानूनों में वैधानिक प्रावधान हैं, उनमें से बहुत अभी जमीनी स्तर पर क्रियान्वित होने से बचे रह गए हैं। इन दोनों अधिनियमों के क्रियान्वयन में सामने आने वाली कुछ साझी चुनौतियां हैं, सभी भागीदारों एवं कार्यकर्ताओं की मानसिकता एवं सामाजिक पूर्वाग्रहों में परिवर्तन; पर्याप्त वित्तीय आवंटन, खर्च एवं खर्च के निरीक्षण की आवश्यकता; और निरीक्षण एवं शिकायत निवारण तंत्रों की मजबूती। यद्यपि इन कानूनों के प्रावधानों ने जेंडर से संबंधित चिंताओं, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोणों और इसे लागू करने वाले विभिन्न कार्यकर्ताओं में पूर्वाग्रहों को एकीकृत करने का प्रयास किया है परन्तु वास्तविक धरातल पर यह महिलाओं और लड़कियों के आजीविका व शिक्षा के अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। अंततः जबकि इन कानूनों की सुविधाओं को प्रदान करने और उनके अधिनियमन में राजनीतिक इच्छाशक्ति का हाथ था, इन कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए भी राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता होगी।

3.6 संदर्भ

Baruah, Ajupi (2013). *On Rights Based Approach to Education and Certain Issues of Inclusion.* fromhttp://indiagovernance.gov.in/files/inclusiveeducation.pdf. Retrieved on 5 May 2013.

Chandy, Thomas (2012) *Give Them Their Rights*, **Hindustan Times**, 31 August.

Chatterjee, Amita. *Employment Guarantee and Women'sEmpowerment in Rural India*: Assessing Institutional and Governance Need'. Retrieved on 22 March 2012 from https://editorialexpress.com/cgibin/conference/download.cgi?db_name= IAFFE2011& paper_id=120.

Dey, Nikhal.(2011) *Tool of Exclusion*. The Frontline, Vol. 28, Issue 24, Nov 19-Dec 02.

Dreze Jean and Khera Reetika (2009). *The Battle for Employment Guarantee*. Frontline, Vol.26, No.1, January 3-16.

Giri, Rupa.(2013) Staff Shortage Takes a Toll on Quality of Education', **The Times of India**, 11 March 2013.

Guidelines for Eliminating Corporal Punishments in Schools, issued by the National Commission for Protection of Child Rights, available at http://www.ncpcr.gov.in/Guidelines/Guidelines%20for%20Eliminating%20Corporal%20Punishment%20in%20 Schools.pdf, accessed on 6 May 2013.

Gupta, Rashmi.(2012) *Report Card on RTE Two Years After*. Infochange News and Features, May 2012.

Hindustan Times, 1st March 2013: NREGA Loosing Sheen? Allocation Unchanged

Jha, P. and Parvati, P.(2010) *Right to Education Act 2009: Critical Gaps and Challenges*. Economic and Political Weekly, Vol. XLV No. 13, 27 March.

Kasturi Charu Sudan. (2012) Pvt Schools Battle RTE Act's Social Challenges, Hindustan Times, 1st September.

Kaul, Vivek (2013)'What NREGA Did: Rural Women Knocked out of Real Jobs', First Post, 2 March.

Kelkar' Govind. (2009) *Gender and Productive Assets: Implications of National Rural Employment Guarantee for Women's Agency and Productivity*, Paper presented at the FAO-IFAD-ILO Workshop on Gaps, Trends and Current Research in Gender Dimensions of Agricultural and Rural Employment: Differentiated Pathways Out of Poverty, Rome, 31 March - 2 April 2009.

Khera, Reetika. (2008*), Group Measurement of NREGA Work: The Jalore Experiment*, Paper presented at International Seminar on National Rural Employment Guarantee Scheme in India, September 16-17, New Delhi.

Ministry of Rural Development, Government of India, Mahatma Gandhi National Rural Guarantee Act 2005: Report to the People, 2 February 2013 at p. 26, available at http://nrega.nic.in/netnrega/WriteReaddata/circulars/Report_to_the_people_ English2013.pdf, accessed on 4 May 2013.

Minutes of 184th meeting of Project Approval Board, convened by the Ministry of Human Resource Development – Department of School Education and Literacy, held on 16 April 2012, available at ssa.nic.in/pab/.../ncpcr.../PAB%20Minutes%20 NCPCR%202012-13.pdf?, accessed on 5 May 2013.

National Advisory Council Recommendations for Monitoring, Accountability and Grievance Redress under the RTE, 14 Feb 2013, available at http://www.nac.nic.in/pdf/recommendations_gr.pdf, accessed on 6 May 2013.

National Advisory Council Recommendations for Strengthening Right to Education,12 December 2012, available at http://nac.nic.in/pdf/strengthening_rte.pdf, accessed on 6 May 2013.

National Advisory Council, Draft Recommendation Note: 'Towards Ending Discrimination in Schools', 10 January 2013, available at

Note on 'Reforms in Implementation of MGNREGA', Ministry of Rural Development, Government of India, Sep 2011, available at http://nrega.nic.in/circular/Reforms_in_ MGNREGA01092011.pdf, accessed on 21 March 2012.

Narayanan, Sudha.(2008). *Employment Guarantee, Women's Work and Childcare.* in Economic and Political Weekly, March 1.

National Federation of Indian Women (2008). Socio-*Economic Empowerment of Women under NREGA*, report prepared for the Ministry of Rural Development

NREGA Losing Sheen? Allocation Unchanged', Hindustan Times, 1 March 2013.

Out of School Children and Dropout A National Emergency: UNICEF', The Hindu, 13 April 2013.

Priya. (2008). *National Study: Phase III. Role of Panchayati Raj Institutions in Implementation of NEREGA*, New Delhi.

Rai, Ramakant. (2012) *Challenges in Implementing the RTE Act*. Infochange News and Features, May 2012.

Retrieved on 22 March 2012 from http://knowledge.nrega.net/822/1/Kelkar_Final.pdf

Roy, Aruna. and Dey, Nikhel (2012). *Much More than a Survival Scheme*, The Hindu, 31 August.

Rules notified under the RTE Act, in April 2010, available at http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/RTI1.pdf, accessed on 5 May 2013

Sandhu, Navjyoti (2008). Employment Guarantee and Women's Empowerment in Rural India's available at http://www.righttofoodindia.org/data/navjyoti08_emplo ment_ gurantee_and_women%27s_empowerment.pdf, accessed on 4 May 2013.

Sarkar Chanchal Chand, (2012) Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009 and its Implementation, in IDFC Foundation (2012), India Infrastructure Report 2012, India New Delhi: Routledge.

Sharma, Amita. (2010) *Rights-based Legal Guarantee as Development Policy*. The Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, NREGA-UNDP Discussion Paper No. 2.

Shrinivasan, Mini.(2010). After the RTE Act, the Focus is on Quality of Education, Infochange News and Features. July

Sudarshan, Ratna M.(2009) *Examining India's National Regional Employment Guarantee Act: Its Impact and Women's Participation*. Social Protection in Asia Working Paper Issue 05, May 2009.

S.M. Vijayananda and V.N. Jithendra (2008), "Implementation of NREGA-Experience in Kerala", Paper presented at International Seminar on National Rural Employment Guarantee Scheme in India, September 16-17, New Delhi.

http://www.righttofoodindia.org/data/navjyoti08_employment_guarantee_and_women%27s_empowerment.pdf

http://nac.nic.in/press_releases/rte_discrimination.pdf, accessed on 5 May 2013.

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Naile Kabeer (2008). Mainstreaming Gender and Social Protection in the Informal Economy, London: Commonwealth Secretariat.

Renana Jhabvala and Subramanya R.K.A. (2001) The Unorganised Sector Work Security and Social Protection, New Delhi: Sage.

इकाई 4 नियोजन एवं सामाजिक नीति में महिलाएं

संरचना अमृता पटेल

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 राष्ट्रीय नियोजन समिति

4.4 योजना आयोग और उसकी भूमिका

4.5 आरम्भिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं हेतु नियोजन

4.6 अनुक्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिला घटक

4.7 महिलाओं के विकास हेतु संस्थाएँ

- 4.7.1 केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड (सीएसडब्ल्यूबी)
- 4.7.2 महिला एवं बाल विकास मंत्रालय
- 4.7.3 राष्ट्रीय महिला आयोग
- 4.7.4 महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन

4.8 महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001

4.9 महिलाओं के विकास हेतु कार्यक्रम/योजनाएं

4.10 महिला घटक नियोजन

4.11 सारांश

4.12 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

4.13 सन्दर्भ

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.15 संलग्नक

4.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने विकास के लिए एक नियोजित उपागम खासकर, एक पंचवर्षीय नियोजन प्रक्रिया को अंगीकृत किया। भारत में नियोजन ने अपने उद्देश्य और सामाजिक परिसर संविधान में प्रतिष्ठापित राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों से विरासत में पाए थे।

यद्यपि भारत का संविधान महिलाओं और पुरुषों की समानता को प्रत्याभूत करता है, यह देखा गया है कि महिलाएँ आर्थिक रूप से, सामाजिक रूप से या राजनीतिक रूप से समानता का लाभ नहीं उठा पातीं।

इसलिए, सभी योजना अवधियों के दौरान, महिलाओं के विकास के लिए विभिन्न उपागमों, रणनीतियों को अंगीकृत किया जाता रहा। आरम्भिक वर्षों में 'कल्याण उपागम' से शुरू करके, विकास की ओर ध्यान केन्द्रण परिवर्तित किया गया और बाद में सशक्तीकरण प्रतिरूप की ओर, विभिन्न अवधियों में अलग-अलग उपागमों को अंगीकृत किया गया। नियोजन प्रक्रिया भी इस दौरान कई परिवर्तनों से गुजरी। वर्तमान समय में, लाभार्थी उन्मुख होने की बजाय यह सहभागितापूर्ण और आवश्यकता से प्रेरित होने की ओर केन्द्रित है। महिलाओं के लिए तमाम सामाजिक नीतियों को अधिनियमित किया गया है, संस्थाओं की

स्थापना हुई है और योजनाएं/कार्यक्रम अभिकल्पित किए गए हैं क्योंकि महिलाओं का सशक्तीकरण पिछले दो दशकों से लक्ष्य रहा है।

4.2 उद्देश्य

यह इकाई आपकी सहायता करेगी :

- जेंडर परिप्रेक्ष्य में नियोजन की व्याख्या, विशेषकर भारत के संदर्भ में, करने में;
- देश में स्वतंत्रता के पश्चात और स्वतंत्रता से पूर्व अवधियों में महिलाओं के विकास के लिए अंगीकृत नियोजन प्रक्रिया के बारे में जानने में;
- महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु महत्वपूर्ण नीतियों और कार्यक्रमों की चर्चा करने में; और
- महिलाओं के नियोजन में समावेशन हेतु औजारों का वर्णन करने में।

4.3 राष्ट्रीय नियोजन समिति

स्वतंत्रता से पहले भारत में, 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा एक राष्ट्रीय नियोजन समिति (एनपीसी) का गठन किया गया था, जिसने भारत में नियोजन पर रिपोर्टों की श्रृंखला प्रकाशित की। 1947 में एनपीसी ने अभिलिखित किया कि कोई योजना तभी आगे बढ़ सकती है जब जीवन के सभी पहलुओं का विकास साथ के साथ होता रहे।

राष्ट्रीय नियोजन समिति के एक अंग के रूप में गठित की गई महिलाओं की उपसमिति (16 जून 1939 को गठित) ने बहुत दमदार सिफारिशें की थीं। उपसमिति ने महिलाओं हेतु नियोजन (सामाजिक और आर्थिक दोनों) के महत्व पर बहुत जोर दिया था और राज्यों से गुहार लगाई थी कि महिलाओं को अनुकूल अवसर देने के लिए परिवर्तन का वातावरण प्रदान करने में, अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करें। उपसमिति ने अन्य मुद्दों के बीच महिलाओं के समान अधिकारों पर, कानूनी कार्रवाइयों की आवश्यकता पर, मतदान के अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार, समान नागरिक संहिता और सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा पर खूब जोर दिया था।

बाद में भारत के लिए एक संविधान का प्रारूपण करने के लिए एक संविधान सभा की स्थापना की गई। यह सभा 1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत की पहली संसद की तरह कार्य करते हुए लगभग तीन वर्षों तक काम करती रही। सभा ने अपनी पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को दिल्ली में की थी। इसकी अंतिम बैठक नवंबर 1949 में हुई थी। इस सभा में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख महिलाओं के अधिकारों की सबसे मुखर समर्थक थीं।

अब हम देखेंगे कि कैसे योजना आयोग अस्तित्व में आया और क्या भूमिकाएं इसे हस्तांतरित की गई थीं।

4.4 योजना आयोग और उसकी भूमिका

जेंडर समानता को भारतीय संविधान में अन्तर्भुक्त मौलिक अधिकारों के एक भाग के रूप में (अनुच्छेद 14, 15, 16, 39, 42 और 51) मान्यता प्राप्त है जिसे 1950 में अंगीकृत किया गया था। फलस्वरूप, मार्च 1950 में भारत सरकार के एक संकल्प द्वारा योजना आयोग की स्थापना राज्यों के घोषित उद्देश्यों के अनुसरण में की गई। इसे देश में उपलब्ध संसाधनों के दक्षतापूर्ण उपयोग द्वारा, उत्पादन बढ़ाते हुए और भारत के सभी नागरिकों को रोजगार का अवसर देते हुए लोगों के जीवन स्तर में तेज वृद्धि करनी थी।

योजना आयोग देश में उपलब्ध सभी संसाधनों का आंकलन करने, कमी वाले संसाधनों में वृद्धि करने, संसाधनों के सर्वाधिक प्रभावशाली और संतुलित अनुप्रयोग द्वारा योजनाओं का निरूपण करने और प्राथमिकताओं को निर्धारित करने के लिए भी उत्तरदायी था। जवाहरलाल नेहरू योजना आयोग के पहले अध्यक्ष थे।

योजना आयोग नागरिक समाज संगठनों, मीडिया, महिलाओं के संगठन और अन्य साझेदारों से महिलाओं के विकास से संबंधित मुद्दों सहित विकास के लिए सलाह लेता है।

वर्तमान समय में योजना आयोग का स्थान नीति (एनआईटीआई) आयोग (भारत के रूपांतरण हेतु राष्ट्रीय संस्थान) ने ले लिया है जो एक नीतिगत विचार-मंच की तरह कार्य करता है जिसका उद्देश्य भारत में आर्थिक नीति निर्माण में सुधार करना है। यह केन्द्र और राज्य सरकारों को रणनीतिक और तकनीकी सलाहें प्रदान करता है।

अब हम विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के लिए आवंटित संसाधनों पर एक नज़र डालते हैं।

4.5 आरम्भिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं हेतु नियोजन

महिलाओं के विकास से संबंधित मुद्दे ने पहली ही पंचवर्षीय योजना (1951-56) से सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।

हालाँकि **पहली पंचवर्षीय योजना** ने महिलाओं के विकास के बारे में कुछ भी विशिष्ट रूप से नहीं कहा। नियोजनकर्ताओं ने भारी संख्या में लड़कियों का नामांकन करते हुए महिलाओं की शिक्षा के प्रोत्साहन पर जोर दिया। यद्यपि, हिन्दू महिलाओं को सामाजिक कानूनों जैसे कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के माध्यम से विवाहों और उत्तराधिकार के लिए सुरक्षित कर दिया गया फिर भी इसे महिलाओं के उद्धार के लिए पर्याप्त नहीं समझा गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की गतिविधियों के बारे में लिखा जैसे कि महिलाओं की शिक्षा और विद्यालयों में अधिकतर महिला अध्यापकों की भर्ती पर जोर दिया गया। श्रम क्षेत्र ने भी मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 का अधिनियमन करके महिला श्रमिकों की आवश्यकता को मान्यता दी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) महिलाओं के कल्याण परिप्रेक्ष्य पर जोर देना जारी रखा। चौथी और पांचवी पंचवर्षीय योजना ने महिलाओं पर किसी योजना के लिए नवोन्मेष नहीं किया।

छठीं पंचवर्षीय योजना (1980-85) के दौरान उपागम में परिवर्तन आया और कल्याण की बजाय विकास पर जोर दिया जाने लगा। इस योजना ने महिलाओं के विकास पर बहु आयामी रणनीति को अंगीकृत किया विशेष रूप से तीन मूलभूत क्षेत्रों स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार पर ध्यान केन्द्रित करते हुए। भारत में नियोजन के इतिहास में पहली बार, योजना प्रपत्र ने 'महिला और विकास' नाम से एक अध्याय शामिल किया जो महिलाओं के लिए आर्थिक स्वतंत्रता, स्वास्थ्य सेवा तक उनकी पहुंच और परिवार नियोजन पर जोर देता था।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों के राष्ट्रीय समन्वयन निकाय के तौर पर 1985 में **महिला एवं बाल विकास विभाग** की स्थापना हुई और कई मंत्रालयों **महिला प्रकोष्ठों** की स्थापना की गई। इन सबका प्रमुख उद्देश्य था महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का उत्थान करना और राष्ट्रीय विकास कार्यसूची की

मुख्य धारा में उनको लाने का मार्ग प्रशस्त करना। एक महत्वपूर्ण कदम था 'लाभार्थी अभिन्यस्त योजनाओं' की संकल्पना को प्रोत्साहित करना जो लाभों को सीधे महिलाओं तक विस्तृत करता था। 1989 में राज्य प्रायोजित कार्यक्रमों जैसे कि महिला सामाख्या, जो महिलाओं के संगठन द्वारा संचालित किया जाता था, की शुरुआत देश के विभिन्न क्षेत्रों में की गई।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) के दौरान, ध्यान केन्द्रण मानव विकास पर था जिसमें महिलाओं का विकास सम्मिलित था। इसने सामान्य विकास कार्यक्रमों से लाभों के प्रवाह को महिलाओं की ओर सुनिश्चित करने का वायदा किया जिससे कि विकास की प्रक्रिया में महिलाएं बराबर की साझीदार और भागीदार बनें।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के समय दो महत्वपूर्ण परिकल्पनात्मक रणनीतियां अंगीकृत की गईं। पहली रणनीति थी 'महिलाओं के सशक्तीकरण' की और दूसरी थी 'सेवाओं का सम्मिलन' जो महिला विशिष्ट और महिलाओं से संबंधित क्षेत्रों के सेवाओं के बारे में थी। इस स्तर तक, **'महिला घटक योजना'** को अंगीकृत किया जाना था जिसके माध्यम से सभी सामान्य विकास क्षेत्रों से कम से कम 30 प्रतिशत निधियों/लाभों को महिलाओं के लिए छोड़ना था।

आरम्भिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास के लिए प्रावधानों के बारे में पढ़ लेने के बाद पढ़ चुके भागों की समझ का आंकलन करने के लिए निम्न अभ्यास को कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) राष्ट्रीय नियोजन समिति और योजना आयोग के बारे में एक या दो पंक्तियों में लिखिए।

2) भारत में महिलाओं की स्थिति के संबंध में छठीं, सातवीं, आठवीं और नौवीं पंचवर्षीय योजनाओं में मुख्य बिन्दु क्या-क्या हैं?

अब हम 10वीं, 11वीं और 12वीं पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास हेतु महत्व वाले क्षेत्रों के बारे में पढ़ेंगे।

4.6 अनुक्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिला घटक

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) ने त्रिआयामी रणनीति की आवश्यकता पर जोर दिया जिसमें सामाजिक सशक्तीकरण, आर्थिक सशक्तीकरण और लैंगिक न्याय को प्रोत्साहन पर ध्यान दिया जाना था।

आइए, देखते हैं किस तरह से त्रिआयामी रणनीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान स्थापनाएं की गई थीं।

- सामाजिक सशक्तीकरण - महिलाओं के विकास के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को अंगीकृत करते हुए उनके लिए एक उदार या सक्षम वातावरण तैयार करना। महिलाओं को अपनी पूर्ण शक्ति का एहसास कराने के लिए जरूरी सभी मूलभूत, न्यूनतम सेवाओं तक उनकी सहज और समान पहुंच बनाना।
- आर्थिक सशक्तीकरण - सभी महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनाने के चरम उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अग्रिम एवं पश्चगामी दोनों सहलग्नता के साथ सभी के लिए प्रशिक्षण, रोजगार और आय अर्जक गतिविधियों के प्रावधान को सुनिश्चित करना।
- लैंगिक न्याय - सभी प्रकार के लैंगिक भेदभावों का उन्मूलन करना और इस प्रकार महिलाओं को सक्षम बनाना कि वे जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक और सांस्कृतिक में न केवल कानूनी तौर पर बल्कि वास्तविक तौर पर भी प्राप्त अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं को अपने समकक्ष पुरुषों की तरह जी सकें।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के लिए योजना आयोग ने ध्यान देने के लिए तीन कार्यसमूहों का गठन किया (1) महिलाओं का सशक्तीकरण, (2) बाल विकास और (3) दुर्बल समूहों पर विशेष ध्यान देते हुए जनसंख्या के पोषण स्तर में सुधार करना।

महिलाओं के सशक्तीकरण पर गठित कार्यसमूह की मुख्य सिफारिशें निम्न हैं :

- राज्य, बाजार चालित ताकतों की पृष्ठभूमि में लोगों के हकों को मान्यता दे और इन हकों को प्राप्त करने की परिस्थितियों को सुनिश्चित करे।
- रणनीतिक हस्तक्षेपों की अभिकल्पना करे जो महिलाओं का सर्वांगीण सशक्तीकरण करेगा जिससे कि महिलाओं के विरुद्ध प्रचलित सामाजिक भेदभाव विकास के लाभों तक उनकी पहुंच को किसी भी प्रकार से सीमित न कर सके।
- सामाजिक क्षेत्रों में निवेश में वृद्धि करे और ऐसी रणनीतियों पर ध्यान दे जो महिलाओं और बच्चों के लाभों में वृद्धि करते हों।
- सामाजिक एवं आर्थिक विकास में क्षेत्रीय विषमताओं का उन्मूलन करने के लिए दीर्घकालिक रणनीतियों का एक समुच्चय विकसित करे।
- लैंगिक भेदभाव का उन्मूलन करे और संवैधानिक, विधिक प्रावधानों की क्षमताओं में सुधार किया जाए।
- महिलाओं के तृणमूल स्तर के उभरते नेतृत्व को मजबूत किया जाए।
- विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में मापने योग्य लक्ष्यों का विकास करे।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

1) कृषीय जीडीपी वृद्धि दर को 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक बढ़ाना; काम के 7 करोड़ नए अवसरों का सृजन करना; बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से नीचे तक कम करना।

2) प्राथमिक स्तर पर विद्यालय छोड़ने के दर को 52.2 प्रतिशत से कम करके 2011-12 में 20 प्रतिशत करना; 7 वर्ष और उससे अधिक आयु वर्ग में साक्षरता दर को बढ़ाकर 85 प्रतिशत करना; साक्षरता में लैंगिक अंतराल को 10 अंक से कम करना।

3) शिशु मृत्यु दर को कम करके 28 करना और मातृत्व मृत्यु दर को प्रति 100 जीवित जन्म पर 1 करना; कुल प्रजनन दर को 2.1 तक कम करना; 0-3 वर्ष तक के बच्चों में कुपोषण को इसके वर्तमान दर से आधे तक कम करना; महिलाओं और लड़कियों में एनीमिया को 50 प्रतिशत तक कम करना।

4) 0-6 वर्ष के आयुवर्ग के लिंगानुपात में वृद्धि करते हुए 2011-12 तक 935 और 2016-17 तक 950 करना; यह सुनिश्चित करना की सभी सरकारी योजनाओं की कम से कम 33 प्रतिशत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभार्थी महिलाएँ और बालिकाएँ हों।

5) सभी गांवों और गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों तक बिजली कनेक्शन सुनिश्चित करना; सभी आवासीय क्षेत्रों तक हर मौसम में उपयुक्त सड़कों की पहुंच होना; सभी को वासक्षेत्र प्रदान करना तथा मकानों के निर्माण की गति को तेज करना।

6) जंगल और वृक्ष आच्छादन में वृद्धि करना; सभी प्रकार के शहरी बेकार पानी को शुद्ध करना।

इस पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जिस प्रकार के सशक्तीकरण पर बल दिया गया था उसका दर्शन था, '**लैंगिक समानता और निष्पक्षता**' और '**लैंगिक भेदभाव का उन्मूलन**'। जबकि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना ने स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, आय अर्जक गतिविधियों, आपदा में रह रही महिलाओं के लिए राहत और पुनर्वास पर बल दिया है, महिला सशक्तीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए योजना अवधि के लिए जोर दिए जाने वाले 15 क्षेत्रों की पहचान की थी।

आइए, हम उन प्रमुख क्षेत्रो के बारे में पढ़ते हैं जिन्हें इस योजना अवधि के दौरान महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए पहचाना गया था।

1) **पोषण और जेंडर :** पूरक पोषण और सूक्ष्म पोषक पूरकों के समय महिलाओं की स्थिति हेतु अलग से प्रावधान कर कुपोषण और एनीमिया की समस्याओं पर ध्यान देने के लिए पर्याप्त बल देना।

2) **स्वास्थ्य और जेंडर :** पूर्व-प्रसव और प्रसव के बाद देखभाल को प्राथमिकता देना जिससे कि मातृ मृत्यु दर के उच्च दर को और स्वास्थ्य संबंधित अन्य समस्याओं को जीवन-चक्र उपागम के जरिए लक्षित किया जा सके।

3) **दुर्बल समूह :** हिंसा से प्रभावित, आंतरिक विस्थापन, आपदा और प्रवास से प्रभावित महिलाओं; खेतिहर श्रमिकों; एचआईवी/एड्स से प्रभावित महिलाओं; झुग्गियों में रहने वाले लोगों; महिला कैदियों; धार्मिक और वंशीय अल्पसंख्यक महिलाओं; एकल महिलाओं; किशोर बालिकाओं; विधवाओं की पहचान करना और उन्हें प्राथमिकता प्रदान करना।

4) **स्त्री मुखिया वाले परिवार :** विशेष रूप से ऐसे किसानों की पत्नियों जिन्होंने आत्महत्या कर ली है, को स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण, सूक्ष्म ऋणों के विशेष पैकेज देना।

5) **वैश्वीकरण और महिलाएँ :** नए उभरते व्यापारों/व्यवसायों के लिए महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और कौशल विकास का उन्नयन करना और नए कार्यस्थलों में सुरक्षा मुद्दों को सुलझाना। भूमि अधिग्रहण द्वारा प्रभावित महिलाओं की आवश्यकताओं को समझना जैसे कि जेंडर संवेदीकृत पुनर्वास और पुनरुद्धार नीति।

6) **महिला स्वयं सहायता समूह** : समुदाय आधारित संगठनों का रूपांतरण करने के लिए स्वयं सहायता समूहों को सुविधा प्रदान करना और सुधरे एवं वृहत्तर आर्थिक गतिविधियों के लिए बड़े ऋणों की सुविधा प्रदान करना।

7) **कृषि में महिलाएँ :** कृषि में काम करने वाली महिलाओं के लिए विशेष पैकेजों का विकास करना जैसे कि भूसंपत्ति अधिकारों को प्रदान करना, ऋणों तक उनकी पहुंच बनाना, कौशल में सुधार करना इत्यादि।

8) **पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएँ :** स्थानीय स्वप्रशासन में महिलाओं को सशक्त बनाना जिससे कि क्षमता निर्माण, शिक्षा, कानूनों, कार्यक्रमों और नीतियों पर प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाएं अग्रणी रहकर अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकें।

9) **जेंडर और कानून :** कानून प्रवर्तक एजेंसियों, पुलिस, न्यायपालिका को जेंडर मामलों के संदर्भ में, जेंडर संवेदनशीलता को हृदयंगम करने के लिए प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण को उच्च प्राथमिकता देना।

10) **भिन्न-भिन्न प्रकार के जेंडर संबंधित आंकड़े :** प्रत्येक कार्यक्रम, योजना या परियोजना के पास अंतर्निहित तंत्र होना चाहिए जो लिंग आधारित भिन्न-भिन्न प्रकार के आंकड़े इकट्ठा करे जिससे राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर जेंडर विकास सूचकांक का विकास किया जा सके।

11) **किशोरियां और उनका कल्याण :** किशोरियों के विकास के लिए विशेष पैकेज होने चाहिए और पोषण, एनीमिया, विद्यालय छोड़ने की घटनाओं, घरेलू श्रम, मानव व्यापार, बाल विवाह और तमाम ऐसी समस्याओं को लक्षित करना चाहिए।

12) **जेंडर बजटिंग :** न केवल स्वास्थ्य, शिक्षा जैसे क्षेत्रों में बल्कि उद्योग, बिजली, अवसंरचना इत्यादि क्षेत्रों में भी जेंडर बजटिंग का प्रावधान हो; बल्कि नीति, विधायन, न्यायपालिका, निगम क्षेत्र और नागरिक समाज में भी जेंडर को मुख्यधारा में लाया जाए।

13) **संस्थागत तंत्रः** नीति और नियोजन में जेंडर परिप्रेक्ष्यों को सम्मिलित करने के लिए संस्थात्मक तंत्रों को मजबूत किया जाए; महिलाओं के विकास पर राष्ट्रीय और राज्य परिषदों की स्थापना करना।

14) **मीडियाः** जेंडर के प्रति संवेदनशील मीडिया नीति का निरूपण करना और यह सुनिश्चित करना कि मीडिया, महिलाओं की गैर रुढ़िगत तस्वीरों को प्रोत्साहित करे।

15) **महिला और बाल विकास मंत्रालय की भूमिकाः** नीति निरूपण, नवोन्मेषी कार्यक्रमों की अभिकल्पना, अन्य क्षेत्रों और राज्यों के साथ समन्वय, जेंडर बजटिंग को सम्मिलित करना।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17)

योजना अवधि में लक्ष्यों को परिभाषित करने, नीतियों, रणनीतियों और कार्यक्रमों की समीक्षा जैसे कार्यक्षेत्रों को समाहित किए महिलाओं की एजेंसी और सशक्तीकरण पर एक कार्यसमूह की स्थापना 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) में स्थापित किया गया। वर्तमान समय में 12वीं योजना समावेशी वृद्धि के दृष्टिकोण से कार्यान्वित किया गया।

गतिविधि

पढ़ें: भारत में बारहवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाएं: एक विश्लेषण (www.thecho.in/files/satrupa-pal.pdf)

महिलाओं के विषय में 10वीं, 11वीं और 12वीं पंचवर्षीय योजनाओं की तुलना करो।

अब हम महिलाओं की समानता को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा स्थापित संस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे।

4.7 महिलाओं के विकास हेतु संस्थाएँ

अब आप कुछ ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे जिसे महिलाओं के विकास को प्रोत्साहन देने हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान राज्य द्वारा स्थापित किया गया था।

4.7.1 केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड (सीएसडब्ल्यूबी)

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना भारत सरकार के 12 अगस्त, 1953 के एक संकल्प द्वारा की गई थी। जिसका लक्ष्य स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से सामाजिक कल्याण गतिविधियों को प्रोत्साहन देना और महिलाओं, बच्चों और विकलांगों के लिए कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना था। 1969 तक बोर्ड ने एक सरकारी संस्था की तरह कार्य किया और फिर इसे कानूनी स्थिति प्रदान करने के लिए कंपनी अधिनियम के तहत एक दानार्थ कंपनी की तरह पंजीकृत कर दिया गया। बोर्ड को दोहरी जिम्मेदारी दी गई थी :

1) कल्याण सेवाओं को समाज के वंचित वर्गों खासकर महिलाओं और बच्चों तक पहुंचाना, और
2) देश भर में स्वयंसेवी संस्थाओं की अवसंरचना विकसित करना जिसके माध्यम से इन सेवाओं को उपलब्ध कराया जा सकता था।

कल्याण सेवाओं के विकास और विस्तार में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की सहायता करने और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करने के लिए 1954 में राज्य समाज कल्याण सलाहकारी बोर्डों की स्थापना विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों में की गई। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत स्वयंसेवी संगठनों को वित्तीय सहायता इन्हीं राज्य बोर्डों की सिफारिशों पर दिया गया। वर्तमान समय में देश भर में कुल 33 राज्य बोर्ड कार्यरत हैं।

अब हम केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के उद्देश्यों को देखेंगे।

- स्वयंसेविता की भावना को मजबूत करते हुए मानवतावादी उपागम के साथ एक परिवर्तनकारी की तरह कार्य करना।
- महिलाओं और बच्चों के सशक्तीकरण के लिए समर्पित सामाजिक कार्यकर्ताओं के नेटवर्किंग को सहज बनाने के लिए एक समर्थ तंत्र का निर्माण करना।
- निष्पक्षता, न्याय और सामाजिक परिवर्तन के लिए समर्पित जेंडर केन्द्रित दृष्टि के साथ संवेदनशील पेशेवरों के एक काडर का विकास करना।
- नए उभरते क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के लिए नई चुनौतियों का सामना करने के लिए जेंडर विशिष्ट नीतिगत पहलों की सिफारिश करना।

- स्वयंसेवी संगठनों को मजबूत करना और 'जेंडरीकृत' योजनाओं के कार्यक्षेत्र को उन क्षेत्रों में विस्तृत करना जहां वे अब तक भी नहीं पहुंचे हैं।
- सोशल ऑडिट के माध्यम से इसकी निरीक्षण भूमिका को शुरू करना और उसे मजबूत बनाना और स्वयंसेवी क्षेत्र को सरकारी निधियों को प्राप्त करने के लिए निर्देश देना।
- संक्रमण काल से गुजर रहे समाज की चुनौतियों के बारे में जागरूकता पैदा करना जहां तकनीकी के नकारात्मक प्रयोग और अन्य व्यवहार महिलाओं और बच्चों की सुखद स्थितियों को ऋणात्मक रूप से प्रभावित कर रहे हैं।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के तत्वावधान में निम्न कार्यक्रमों की शुरुआत की गई।

1) **कामकाजी/बीमार मांओं के बच्चों हेतु राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रेच प्रणाली :** कार्यक्रम 0-6 वर्ष के आयु समूह वाले निम्न आय वाले परिवारों के बच्चों को दिन में देखभाल की सेवाएं प्रदान करता है।

2) **जागरूकता कार्यक्रम (एजीपी) :** ग्रामीण और गरीब महिलाओं की आवश्यकताओं की पहचान और विकास तथा अन्य संबंधित कार्यक्रमों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के प्रमुख्य उद्देश्यों के साथ इस कार्यक्रम का आरम्भ केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1986-87 में किया गया। योजना का लक्ष्य महिलाओं के बीच और व्यापक रूप से समुदाय के बीच महिलाओं के अधिकारों, स्थिति और समस्याओं के बारे में विशेष रूप से और अन्य सामाजिक चिंताओं के बारे में जागरूकता पैदा करना है। योजना के अन्तर्गत, महिलाओं को मंच प्रदान करने के लिए शिविर लगाए जाते हैं जिससे वे साथ आएं और अपने अनुभवों तथा विचारों को आपस में आदान प्रदान करें। इस प्रक्रिया ने महिलाओं के जीवन की वास्तविकताओं की समझ विकसित की और उनकी समस्याओं का सामना करने तथा उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने का एक उपाय बताया।

3) **महिलाओं के लिए घनीभूत शैक्षणिक पाठ्यक्रम :** केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा इस योजना का आरम्भ 1958 में उन वयस्क लड़कियों/महिलाओं की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए किया गया था जो मुख्य धारा की शिक्षा प्रणाली में शिक्षा नहीं पा सकीं थीं या जिन्होंने औपचारिक शिक्षा के दौरान विद्यालय छोड़ दिया था। योजना का लक्ष्य था 15 वर्ष से अधिक आयु की लड़कियों/महिलाओं को शैक्षणिक अवसर प्रदान करने के साथ-साथ कौशल-विकास/पेशेवर प्रशिक्षण के कुछ अतिरिक्त निविष्टि देना। योजना का मुख्य ध्यान इस बात को सुनिश्चित करने पर केन्द्रित था कि पाठ्यक्रम के विषय आवश्यकता-आधारित हों और स्थानीय जरूरतों के अनुसार परिवर्धित किए जाते हों तथा साथ ही साथ शैक्षणिक स्तर के विविध स्तरों जैसे प्राथमिक/माध्यमिक/हाई स्कूल और मैट्रिक/ उच्चतर माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों को भी लक्षित करते हों। घनीभूत शैक्षणिक पाठ्यक्रम अपने लोचशील उपागम और औपचारिक तथा अनौपचारिक संरचना बन्दिशों के चलते बहुत लोकप्रिय हुए। राज्य बोर्डों और स्वयंसेवी संगठनों की ओर से लगातार यह मांग बनी रहती थी कि देश में प्रत्येक खण्ड के लिए कम से कम एक पाठ्यक्रम अवश्य आबंटित किया जाए।

4) **परिवार सलाह केन्द्र (एफसीसी) :** परिवार सलाह केन्द्र की योजना केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1983 में आरम्भ की गयी। ये केन्द्र महिलाओं और बच्चों को, जो अत्याचारों, परिवार के अनमेलपन और सामाजिक बहिष्कार के पीड़ित हों, सलाह, निर्देशपरक और पुनर्वास संबंधित सेवाएं प्रदान करते हैं और प्राकृतिक आपदाओं के

मामले में आपदा हस्तक्षेप और मानसिक आघात सलाहें प्रदान करते हैं। ये केन्द्र महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करने वाले सामाजिक मुद्दों पर लोगों को जागरूक करते हैं जनमत को उसके लिए तैयार करते हैं। परिवार सलाह केन्द्र, स्थानीय प्रशासन, पुलिस, न्यायालयों, मुफ्त कानूनी सहायता प्रकोष्ठ, चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य संस्थाओं, पेशेवर प्रशिक्षण केन्द्रों और अल्पावधि गृहों के सहयोग से काम करते हैं।

5) **विशिष्ट कोटियों के मुवक्किलों के लिए परिवार सलाह केन्द्र :** कुछ परिवार सलाह केन्द्रों की स्थापना ऐसे मुवक्किलों के लिए भी की गई थी जिन्हें अपने तनावपूर्ण/ मानसिक आघात देने वाले जीवन के अनुभवों के कारण विशेष ध्यान की जरूरत होती है। ऐसे केन्द्रों की स्थापना हुई थी :

   क) पुलिस मुख्यालयों में परिवार सलाह केन्द्र

   ख) महिला जेलों में परिवार सलाह केन्द्र

   ग) बलात्कार आपदा हस्तक्षेप केन्द्र

   घ) विवाह-पूर्व सलाह केन्द्र

   च) देवदासियों के लिए और रेड लाइट क्षेत्रों में केन्द्र

6) **महिलाओं और लड़कियों के लिए अल्पावधि गृह (एसएसएच) :** योजना का आरम्भ 1969 में हुआ था, जिसका आशय था उन महिलाओं और लड़कियों को अस्थायी आवास, निर्वाह और पुनर्वासीय सेवाएं प्रदान करना जो परिवार से नकार या अपराध के चलते गृहविहीन हो गईं हों। इस योजना के अन्तर्गत अल्पावधि गृहों या आश्रय गृहों के संचालन हेतु स्वयंसेवी संगठनों को अनुदान प्रदान किए जाते हैं। सहारे की जरूरत होने पर अस्थायी आश्रय जरूरतमन्द महिलाओं और लड़कियों को 5 महीने से लेकर 3 साल के लिए प्रदान किए जाते हैं। मां के साथ आने वाले बच्चों या आश्रय गृहों में पैदा हुए बच्चों को 7 वर्ष की आयु तक गृहों में रहने दिया जाता है, उसके बाद उन्हें बाल संस्थाओं में स्थानांतरित कर दिया जाता है या पालन पोषण सेवाओं को प्रदान कर दिया जाता है।

7) **कामकाजी महिलाओं के हॉस्टल (डब्ल्यूडब्ल्यूएच) :** निम्न आय समूह से संबंध रखने वाली कामकाजी महिलाओं के लिए हॉस्टलों का संचालन करने के लिए केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड स्वयंसेवी संगठनों को निर्वाह अनुदान प्रदान करता है। इसके बजट में मैट्रन और चौकीदार के लिए मानदेय शामिल होता है। इसमें रहने वालों से लिए जाने वाले किराए, संस्था द्वारा भुगतान किए जा रहे किराए के बीच का अंतर और मनोविनोद की सुविधाओं के लिए दिया जाने वाला एकमुश्त धन भी इसके बजट में शामिल होता है।

8) **महिला मंडल (एमएम) :** महिला मंडल अपने अपने क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के लिए गतिविधियों का आयोजन करते हैं। योजना के अन्तर्गत खर्च का वहन केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा कुल अनुमोदित बजट के 75 प्रतिशत तक का किया जाता है और बाकी का 25 प्रतिशत स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा या राज्य सरकार द्वारा उनके समतुल्य योगदान की तरह किया जाता है। कार्यक्रम के अन्तर्गत बच्चों के लिए बालवाड़ी जैसी सेवाएं, महिलाओं के लिए शिल्प गतिविधियों, सामाजिक शिक्षा, मातृत्व सेवाएं इत्यादि प्रदान की जाती हैं।

4.7.2 महिला एवं बाल विकास मंत्रालय

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के एक भाग के रूप में महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना 1985 में महिलाओं और बच्चों के सर्वांगीण विकास को लम्बे समय से आवश्यक आवेग प्रदान करने के लिए की गयी थी। 30 जनवरी 2006 से विभाग का उन्नयन मानव एवं बाल विकास मंत्रालय में कर दिया गया।

महिलाओं और बच्चों के सर्वांगीण विकास के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए मंत्रालय विभिन्न योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों का निरूपण करता है; अधिनियमन करता है/ कानूनों में संशोधन करता है और महिला एवं बाल विकास के क्षेत्र में काम कर रही सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों में समन्वयन करता है और उनका मार्गदर्शन करता है। कार्यक्रमों में कल्याण और सहायता सेवाएं, रोजगार और आय अर्जन के लिए प्रशिक्षण, जागरूकता अभियान और जेंडर संवेदीकरण शामिल होते हैं। ये कार्यक्रम स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विकास इत्यादि क्षेत्रों में चलने वाले सामान्य विकास कार्यक्रमों की कमियों को पूरा करने वाले और उसे अतिरिक्त सहायता प्रदान करने वाले होते हैं।

4.7.3 राष्ट्रीय महिला आयोग

राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडब्ल्यू) एक वैधानिक निकाय है जिसे महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग अधिनियम, 1990 (1990 की संख्या 20) के अन्तर्गत 31 जनवरी, 1992 को महिलाओं के हितों और अधिकारों के संरक्षण, उसे प्रोत्साहित करने तथा उसकी सुरक्षा के लिए स्थापित किया गया था।

आयोग के कार्य जैसा कि राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 की धारा 10 में अनुवर्णित है, निम्न प्रकार से है :

1) संविधान और अन्य कानूनों के अन्तर्गत महिलाओं को प्रदान किये गये संरक्षोपाय से संबंधित सभी मामलों की जांच करना और परीक्षण करना;

2) इन संरक्षोपाय के कार्यकरण पर प्रतिवेदन केन्द्र सरकार के समक्ष वार्षिक तौर पर या अन्य किसी भी समय जब आयोग उचित समझे, प्रस्तुत करना;

3) केन्द्र या किसी राज्य द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए इन संरक्षा उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु संवैधानिक और विधिक सिफारिशें करना;

4) महिलाओं को प्रभावित करने वाले संविधान और अन्य कानूनों के वर्तमान प्रावधानों की समय-समय पर समीक्षा करना और संशोधनों के लिए सिफारिश करना जिससे कि ऐसे कानूनों में किन्हीं कमियों, अपर्याप्ताओं, रिक्तियों को भरने के लिए उपचारात्मक विधिक उपायों की सलाह देना;

5) संविधान और महिलाओं से संबंधित अन्य कानूनों के प्रावधानों के उल्लंघन के मामलों को उपयुक्त प्राधिकारियों के समक्ष उठाना और उसे एक अंजाम तक पहुंचाना;

6) शिकायतों को देखना और निम्न से संबंधित मामलों में स्वप्रेरित संज्ञान लेना :

   - महिलाओं के अधिकारों का अपहरण;
   - महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने वाले और समानता एवं विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिनियमित कानूनों के अ-क्रियान्वयन के मामले;

- महिलाओं की कठिनाई को कम करने वाले और महिलाओं के कल्याण को सुनिश्चित करने वाले तथा उन्हें राहत प्रदान करने वाले नीतिगत निर्णयों, निर्देशों या अनुदेशों के अनुपालन न होने की स्थितियों और ऐसे मामलों से उठने वाले मुद्दों को उपयुक्त प्राधिकारियों के समक्ष उठाना।

7) महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार और भेदभाव के चलते पैदा होने वाली परिस्थितियों के चलते होने वाली विशिष्ट समस्याओं की पड़ताल या विशेष अध्ययन कराना और कारणों की पहचान करना जिससे कि उनके निराकरण के लिए रणनीतियों की सिफारिश करे;

8) तरक्की संबंधी और शैक्षणिक अनुसंधान करना जिससे कि जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया जा सके और उनकी प्रगति में बाधा पहुंचाने के लिए उत्तरदायी कारकों की पहचान करना जैसे कि आवास और मूलभूत सेवाओं तक पहुंच में कमी, कठिन श्रम को कम करने में अपर्याप्त सहायता सेवाएं और तकनीकी, व्यवसायगत स्वास्थ्य आपदाएं और उनकी उत्पादकता में वृद्धि करने के उपाय;

9) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया नियोजन पर भागीदारी करना और सलाह देना;

10) केन्द्र, राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना;

11) कारागारों, किशोर बच्चों के सुधार गृहों, महिलाओं की संस्थाओं या अन्य स्थान जहां महिलाओं को कैदी की तरह या अन्य तरीके से रखा जाता है, की जांच करना और यदि कुछ संशयपूर्ण मिलता है तो संबंधित प्राधिकारियों के साथ मिलकर आवश्यक उपचारात्मक कदम उठाना;

12) महिलाओं की बड़ी संख्या को प्रभावित करने वाले निधि कानूनी झगड़ों को समाहित करने वाले मुद्दे;

13) महिलाओं के बारे में किसी भी मामले में सरकार को आवधिक रिपोर्ट जमा करना और विशेष रूप से उन तमाम कठिनाइयों के बारे में जो महिलाओं को बुरी तरह प्रभावित करती हैं; और

14) कोई भी अन्य मामला जो इसे केन्द्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया गया हो।

4.7.4 महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन

महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन की घोषणा भारत सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर 2010 में इस उद्देश्य के साथ की गई थी कि इससे महिलाओं के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करने वाली सभी प्रक्रियाओं को मजबूत करेगा।

इसे अधिदेश प्राप्त था कि यह अन्तःक्षेत्रक अभिसरण को मजबूती प्रदान करेगा; सभी मंत्रालयों और विभागों में चलने वाले महिलाओं के कल्याण और सामाजिक आर्थिक विकास कार्यक्रमों में समन्वयन की प्रक्रिया को सुविधा प्रदान करेगा। मिशन का उद्देश्य था कि सरकार द्वारा तमाम केन्द्रीय मंत्रालयों के तत्वावधान में चलाए जा रहे महिलाओं के लिए कार्यक्रमों के लिए एकल खिड़की सेवा प्रदान करे। इसके अधिदेश के प्रकाश में इस मिशन का नाम **मिशन पूर्ण शक्ति** कर दिया गया था, जिसका आशय था महिलाओं के सर्वांगीण सशक्तीकरण हेतु एक विज़न।

महिलाओं हेतु राष्ट्रीय संसाधन केन्द्र की स्थापना की गई जो महिलाओं के लिए भी कार्यक्रमों और योजनाओं के लिए एक राष्ट्रीय अभिसरण केन्द्र की तरह कार्य करती है। यह जेंडर से संबंधित सभी मुद्दों पर ज्ञान, सूचना, शोध और आंकड़ों के एक केन्द्रीय भण्डार की तरह कार्य करता है और राष्ट्रीय और राज्य मिशन प्राधिकरण की सेवा करने वाला मुख्य निकाय है।

मिशन उक्ति (स्टेटमेण्ट): महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन जेंडर समानता, जेंडर निष्पक्षता और महिलाओं के सर्वांगीण विकास को महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों के अन्तः क्षेत्रक अभिसरण के माध्यम से, विभिन्न भागीदारों के बीच सहक्रिया बनाकर और सामाजिक परिवर्तन में सहायक सक्षम वातावरण का निर्माण करके प्राप्त करेगा।

निम्न अभ्यास को करके इस स्थिति में पिछले दो अनुभागों की समझ की समीक्षा करना महत्वपूर्ण होगा।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में 21वीं सदी में महिलाओं से संबंधित मुद्दों को किस प्रकार संबोधित किया गया?

2) सीएसडब्ल्यूबी, एमडब्ल्यूसीडी, एनसीडब्ल्यू और एनएमईडब्ल्यू के उद्देश्यों को लिखिए।

अब हम भारत सरकार द्वारा देश में महिलाओं की स्थिति में उत्थान के लिए की गयी सबसे व्यापक नीतिगत पहल के बारे में पढ़ेंगे।

4.8 महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001

इस आने वाले अनुभाग में आप केन्द्र सरकार द्वारा भारत में महिलाओं की स्थिति में उत्थान के लिए की गई सबसे व्यापक नीतिगत पहल के बारे में पढ़ेंगे। महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति सबसे अद्यतन सकारात्मक कार्यों में से एक है जिसकी घोषणा भारत

सरकार द्वारा वर्ष 2001 में महिलाओं की उन्नति, विकास और उनका सशक्तीकरण करने के लिए की गई थी। इस नीति के उद्देश्य में शामिल है :

1) महिलाओं को सक्षम बनाने के लिए कि वे अपनी पूर्ण क्षमताओं का एहसास कर सकें, महिलाओं के पूर्ण विकास के लिए सकारात्मक आर्थिक और सामाजिक नीतियों के माध्यम से वातावरण पैदा करना;

2) जीवन के सभी क्षेत्रों – राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक और सांस्कृतिक में न केवल कानूनी तौर पर बल्कि वास्तविक तौर पर भी प्राप्त सभी मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं का महिलाओं द्वारा अपने समकक्ष पुरुषों की तरह समानता के आधार पर आनंद उठाना।

3) राष्ट्र के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में महिलाओं की बराबर की सहभागिता और निर्णय निर्माण में भाग लेना।

4) स्वास्थ्य सेवा, सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कॅरियर एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, महिलाओं को समान पारिश्रमिक, व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और महिलाओं द्वारा सार्वजनिक कार्यालयों पर अधिकार में समान पहुंच सुनिश्चित हो।

5) महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन करने के लिए विधिक प्रणाली को मजबूत करना।

6) महिलाओं और पुरुषों दोनों की सक्रिय सहभागिता और जुड़ाव के द्वारा सामाजिक दृष्टिकोणों और सामुदायिक व्यवहारों में परिवर्तन लाना।

7) विकास प्रक्रिया में जेंडर परिप्रेक्ष्य को मुख्य धारा में लाना।

8) बालिकाओं और महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव और सभी प्रकार की हिंसा का उन्मूलन करना; और

9) नागरिक समाज विशेष रूप से महिलाओं के संगठनों के साथ भागीदारी का निर्माण और उसे मजबूत बनाना।

नीति के नुस्खे में कई क्षेत्र शामिल हैं जैसे कि न्यायिक और विधिक प्रणाली, बढ़ता हुआ निर्णय निर्माण, गरीबी उन्मूलन द्वारा महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, सूक्ष्म ऋण, शिक्षा के माध्यम से महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण, स्वास्थ्य, पोषण, पेयजल और स्वच्छता, आवास एवं आश्रय, वातावरण, कठिन परिस्थितियों में महिलाएँ, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और बालिकाओं के अधिकार।

महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ और राजस्थान जैसे राज्यों ने महिलाओं के विकास के लिए महिलाओं पर राज्य नीतियां अधिनियमित की हैं। अन्य कार्यक्रमों और योजनाओं के बारे में जिनका महिलाओं पर प्रत्यक्ष प्रभाव है आने वाले अनुभाग में चर्चा की जाएगी।

4.9 महिलाओं के विकास हेतु कार्यक्रम/योजनाएं

देश के विभिन्न राज्यों में मंत्रालयों और विभागों द्वारा महिलाओं के विकास के लिए स्थापित किए गए बहुत से कार्यक्रम और योजनाएं हैं। सभी कार्यक्रमों/ योजनाओं की सम्पूर्ण सूची इकाई के अंत में संलग्न की गई है। इन योजनाओं में से कुछ योजनाएं सामान्य योजनाएं (महिलाओं और पुरुषों दोनों के मतलब की) हैं और कुछ योजनाएं विशेष रूप से महिलाओं के लिए ही हैं।

हम कुछ कार्यक्रमों के बारे में पढ़ेंगे जो भारत में महिलाओं की आवश्यकताओं का ध्यान रखती हैं।

राष्ट्रीय महिला कोष (आरएमके) : 30 मार्च 1993 को सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1960 के अन्तर्गत स्थापित इस कॉर्पस का उद्देश्य गरीब महिलाओं को, उनके सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए, ऋण सहायता की सुविधा देना है। यह सहायता गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ), महिला विकास निगमों, राज्य सरकार की एजेंसियों जैसे कि डीआरडीए, डेयरी संघों, नगर परिषदों इत्यादि के माध्यम से प्रदान की जाती है। आरएमके इन उपरोक्त संगठनों को 8 प्रतिशत ब्याज पर ऋण की सुविधा प्रदान करते हैं और ये उपरोक्त संगठन महिला स्वयं सहायता समूहों / या अंतिम महिला लाभार्थी को सीधे 8 से 18 प्रतिशत के ब्याज पर ऋण प्रदान करते हैं। आरएमके एक अद्वितीय ऋण प्रदाता मॉडल **''आरएमके-एनजीओ-स्वयं सहायता समूह-लाभार्थी''** के अनुसार सूक्ष्म-ऋण बांटता है, जो इसकी व्यापक सफलता का सबसे प्रमुख कारण है। इसकी सफलता के अन्य प्रमुख कारण हैं इसकी लोचशील ऋण मानक, बिना किसी परेशानी के ऋण, बिना किसी गारण्टी के ऋण और ब्याज की उचित एवं तर्कसंगत दर।

महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार हेतु सहायता कार्यक्रम (एसटीईपी -स्टेप) : इस योजना के उद्देश्य हैं :

- महिलाओं को छोटे विकासक्षम समूहों में गतिशील करना और ऋणों तक पहुंच के माध्यम से सुविधाएं उपलब्ध करवाना;
- कौशल उन्नयन के लिए प्रशिक्षण देना;
- अग्रगामी एवं पश्चगामी संयोजनों को प्रदान करने के द्वारा महिलाओं के समूह को रोजगार-सह-आय अर्जक कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए सक्षम बनाना; और
- महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार स्थितियों में आगे सुधार करने के लिए सहायता सेवाएं प्रदान करना।

यह योजना महिलाओं के रोजगार से संबंधित 10 परंपरागत क्षेत्रों को व्याप्त करती है, जिनके नाम हैं,

1) कृषि
2) पशुपालन
3) डेयरी
4) मत्स्य पालन
5) हथकरघा
6) हस्तशिल्प
7) खादी एवं ग्रामोद्योग
8) रेशम कीट पालन
9) सामाजिक वानिकी
10) बंजर भूमि विकास

स्टेप कार्यक्रमों के अन्तर्गत आने वाले लक्षित समूहों में दैनिक भोगी मजदूर, अवैतनिक दैनिक कामगार, महिला मुखिया वाले परिवार, प्रवासी मजदूर, जनजातीय और अन्य वंचित

समूह शामिल होते हैं। परियोजना के अन्तर्गत लाभार्थी गरीब होते हैं या परिसंपत्ति विहीन हाशिये पर छोड़ दी गई महिलाएँ जिसमें अनुसूचित जाति/जनजाति के परिवारों और गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) रहने वाले परिवारों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

स्वयंसिद्धा : स्वयंसिद्धा महिलाओं के विकास और सशक्तीकरण हेतु एक समाकलित योजना है। इस योजना का दीर्घकालिक उद्देश्य है महिलाओं के चौतरफा सशक्तीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना विशेष रूप से सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण। सभी चालू खंडीय कार्यक्रमों के अभिसरण और लामबंदी की दीर्घकालीन प्रक्रिया के माध्यम से संसाधनों पर नियंत्रण और उस तक उनकी प्रत्यक्ष पहुंच को सुनिश्चित करते हुए इस उद्देश्य को प्राप्त किया गया। योजना के तात्कालिक उद्देश्य हैं स्वयं सहायता समूहों की स्थापना करना, स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा, स्वच्छता और स्वास्थ्य, विधिक अधिकारों इत्यादि के बारे में विश्वास जगाना और जागरूकता पैदा करना। यह योजना ग्रामीण महिलाओं की बचत आदतों को मजबूत बनाने और आर्थिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण बनाने, सूक्ष्म ऋणों तक उनकी पहुंच को सुधारने, सामाजिक नियोजन में महिलाओं को सहयोजित करने और महिला एवं बाल विकास मंत्रालय और अन्य विभागों की सेवाओं को अभिसरित करने की दिशा में भी काम करता है।

योजना की शुरुआत 2001 में देश भर के 650 ब्लॉकों को समाहित करते हुए की गई थी। 31 राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में प्रत्येक खण्ड 100 स्वयं सहायता समूहों से मिलकर बनता है। अधिकांश राज्यों में कार्यक्रम को आईसीडीएस तंत्र की सहायता से क्रियान्वित किया जा रहा है। कुछ राज्य जैसे कि उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, तमिलनाडु, बिहार इत्यादि इस उद्देश्य के लिए एनजीओ से सहायता प्राप्त करते हैं।

4.10 महिला घटक नियोजन

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) ने कहा था कि **महिलाओं का सशक्तीकरण इसका विशिष्ट उद्देश्य था**। इसने महिला घटक योजनाओं की परिकल्पना को स्वीकार किया यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी विकास खर्चों में से कम से कम 30 प्रतिशत निधियां/लाभ महिलाओं की ओर प्रवाहित होने चाहिए। 1999 में राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) ने महिलाओं के सशक्तीकरण और अन्य सामाजिक रूप से वंचित समूहों को सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का अभिकर्ता मानकर उन पर ध्यान केन्द्रित किया। बाद में पहली बार आर्थिक सर्वेक्षण 2000-2001 में जेंडर असमता पर एक पूरा खण्ड समाहित किया।

महिला एवं बाल विकास विभाग, भारत सरकार ने राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान (एनआईपीसीसीडी) के साथ मिलकर वर्ष 2001-02 में संबंधित राज्यों के बजटों का **जेंडर बजट विश्लेषण** राज्यों के बीच तुलनात्मकता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए किया। महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति, 2001 ने बजटिंग प्रक्रिया में जेंडर परिप्रेक्ष्य की शुरुआत करने के लिए एक कार्ययोजना प्रदान की। नौवीं योजना अवधि के दौरान केन्द्र सरकार के स्तर पर कई मंत्रालयों में जेंडर बजट अभ्यासों की शुरुआत हुई। **जेंडर बजटिंग** और **जेंडर को मुख्यधारा में लाए जाने** पर विस्तृत दिशानिर्देश केन्द्र सरकार के सभी विभागों और मंत्रालयों को और राज्य सरकारों को 2004 में प्रसारित कर दिया गया था। 2005-06 के बजट भाषण में इसका और ग्यारहवीं योजना से सभी स्तरों पर इसको समाहित किए जाने का विशेष उल्लेख किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना अविधि में नई पहलों जैसे कि जेंडर समता के लिए बजटिंग पर मिशन वक्तव्य और वक्तव्य 20 की शुरुआत की गई।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) ने जेंडर बजटिंग के प्रति प्रतिबद्धता को दोहराया और स्पष्ट रूप से कहा कि जेंडर समता के लिए आवश्यक है कि सभी मंत्रालयों और विभागों में नीतियों और योजनाओं में पर्याप्त प्रावधान किए जाएं। इसने सभी बोर्डों के लिए भी जेंडर बजटिंग के सख्त अनुपालन को अनिवार्य करार दिया। ग्यारहवीं योजना ने यह भी उल्लिखित किया कि जेंडर बजटिंग को परंपरागत क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि से परे तथाकथित **'जेंडर तटस्थ'** क्षेत्रों जैसे कि परिवहन, बिजली क्षेत्र, दूरसंचार, प्रतिरक्षा इत्यादि में भी लागू किया जाए। इसके अतिरिक्त योजना प्रपत्र महत्वपूर्ण राष्ट्रीय स्थूल-आर्थिक नीतियों और अन्तःक्षेत्रक अभिसरण के प्रयासों को भी जेंडरीकृत करने पर बल देता था।

वक्तव्य 20 - यह वक्तव्य योजनाओं के लिए बजट प्रावधानों, जो तात्विक रूप से महिलाओं के लाभ के लिए थे, में दो हिस्सों का संकेत करता है। भाग ए विस्तृत योजनाओं के बारे में था जिसमें 100 प्रतिशत प्रावधान महिलाओं के लिए थे। भाग बी महिलाओं के लिए ऐसे प्रावधानों की झलक देता है जहां केवल वही या महिलाएं योजनाओं की प्रत्यक्ष लाभार्थी/प्राप्तकर्ता नहीं हैं। उदाहरण के लिए, ऐसी योजनाएं जहां महिलाओं के लिए आबंटन कुल प्रावधानों का कम से कम 30 प्रतिशत है।

जेंडर बजट वक्तव्य - यह बजट आबंटनों का इस उद्देश्य से नागरिक मैत्री खुलासा है जिनका महिलाओं पर प्रभाव पड़ता है, जिससे कि जेंडर समानता में वृद्धि हो। भारत 2005-06 से जेंडर बजट वक्तव्य प्रस्तुत करता आ रहा है।

जेंडर ऑडिट - परंपरागत तौर पर ऑडिट का संबंध वित्तीय लेखाओं और प्रतिवेदनों से, प्रचलित विधिक आवश्यकताओं और अन्य प्रासंगिक दिशानिर्देशों के संदर्भ में, होता है। हालाँकि भारत में, जैसा कि अन्य बहुत से दूसरे देशों में किया जाता है, सर्वोच्च ऑडिट संस्था (जिसका नाम नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक है) सरकारी कार्यक्रमों और संस्थाओं की **निष्पादन ऑडिट** का संचालन भी करती है।

भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के दिशानिर्देशों के अनुसार, किसी सरकारी कार्यक्रम के निष्पादन ऑडिट में अन्य पक्षों की परीक्षा के साथ यह जांच भी आवश्यक होती है कि उक्त कार्यक्रम का उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किया गया। इसलिए, भारत में एक सरकारी कार्यक्रम का निष्पादन ऑडिट मुख्यतः कार्यक्रम के विकास उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित रखता है।

भारतीय संदर्भ में किसी सरकारी कार्यक्रम के जेंडर ऑडिट का अर्थ इस तरह से लगाया जा सकता था कि जेंडर आधारित वंचनों की समझ, जिसका सामना देश में महिलाओं और बालिकाओं को करना पड़ता है, से निष्पादन ऑडिट सूचित और पर्याप्त रूप से प्रभावित है। उदाहरण के लिए, स्वच्छता के क्षेत्र में किसी सरकारी कार्यक्रम के जेंडर ऑडिट के, मान लीजिए संपूर्ण स्वच्छता अभियान में, लिए इस बात की गहरी समझ होनी चाहिए कि स्वच्छता के संबंध में महिलाओं को किन जेंडर आधारित वंचनों का सामना करना पड़ता है।

4.11 सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने संवैधानिक अधिदेश के परिणामस्वरूप एक नियोजित उपागम अंगीकृत किया। महिलाएँ नियोजन के केन्द्र में यहां तक कि स्वतंत्रता से पूर्व भी रहा करती थीं जैसे कि समान अधिकार, सकारात्मक विधायन कार्यों की आवश्यकता और समान नागरिक संहिता पर बल देने के माध्यम से व्यक्त किया जाता था।

समग्र रूप से, विभिन्न योजना अवधियों के दौरान किए गए महिलाओं के विकास के लिए सामाजिक नीतियों का अधिनियमन, इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से स्वतंत्रता पश्चात भारत में योजनाओं और कार्यक्रमों का विकास और उनका कार्यान्वयन, बहुत ही गतिशील और विकासवादी रहा है। जेंडर बजटिंग और महिला घटक नियोजन के माध्यमों से नियोजन तंत्र जेंडर समाविष्ट होता जा रहा है। महिलाओं के मुद्दों और उनकी जरूरतों को अभिव्यक्त करती हुई नीति निरूपक संस्थाएं और तंत्र सर्वांगी हैं और उनके बहुत स्पष्ट उद्देश्य और निर्धारित लक्ष्य हैं। महिलाओं के विकास और उनकी सशक्तीकरण के लिए नीतियों का निरूपण राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर दोनों जगह होता रहा है।

4.12 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) भारत में आरम्भिक पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास के लिए अंगीकृत प्रधान रणनीतियों के बारे में विस्तार से लिखिए।

2) 10वीं, 11वीं और 12वीं पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास के लिए अंगीकृत उपागमों पर चर्चा कीजिए।

3) महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति पर चर्चा कीजिए।

4) भारत में महिलाओं के विकास के सन्दर्भ में जेंडर बजटिंग के महत्व का विश्लेषण कीजिए।

5) महिलाओं के विकास के लिए स्थापित राष्ट्रीय संस्थाओं की नींव बहुत मजबूत है, चर्चा कीजिए।

4.13 सन्दर्भ

Banarjee, Sruti (2005). Role of Women in Development Sector. Jaipur: Mangal Publication.

Chandra, Susmita (2001). Women and Economic Development. Delhi: B R Publication.

Elango,K., Ayyam Perumal and Mohan Raj (2008). Emerging Issues in Gender and Women Development. New Delhi: Abhijeet Publication.

Jain, Devaki (2006). Women, Development and the UN. Hyderabad: Orient Longman.

Jayasuriya, Shanti and DC Jayasuriya (1999). Women and Development- The Road from Beijing. New Delhi : Har Anand Publication.

Kalpagam, U. (2011). Gender and Development in India – Current Issues. Jaipur: Rawat Publication.

Narayana, E.A., E.V. Lakshmi (2011). Women development in India. Regal Publication.

Roy, Shirin M. (2008). The Gender Politics of Development. New Delhi: Zubaan Publication.

Rustagi, Preet (2000). Gender Development Indicators : Issues, Debates and Ranking of Districts. New Delhi: CWDS.

Seth, Mira (2001). Women Development. New Delhi : Sage Publication.

Sinha, Rajani (2004). Status of Women and Economic Development. Jaipur: RBSA Publication.

Thakur, Sadhana (2012). Women Empowerment in Rural India. New Delhi: Abhijeet Publication.

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Rustagi, Preet (2000). Gender Development Indicators : Issues, Debates and Ranking of Districts. New Delhi: CWDS.

Seth, Mira. (2001). Women Development. New Delhi : Sage Publication.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.15 संलग्नक

The names of some of the schemes are listed below.

a) Poverty Alleviation and Economic Empowerment of Women

- Assistance to States for Feed and Fodder Development
- Schemes of Department of Animal Husbandry Dairying Fisheries
- Scheme on Development of Inland Fisheries and Aquaculture
- Scheme on Development of Marine Fisheries, Infrastructure and Post harvest Operations
- Scheme on Fisheries Training and Extension
- Assistance to Cooperatives
- National Bamboo Mission
- Central Poultry Development Organisation
- Development of Commercial Horticulture through Production and Post-Harvest Management
- Promotion and Strengthening of Agricultural Mechanization through Training, Testing & Demonstration
- Gramin Bhandaran Yojna
- Capacity Building to enhance Competitiveness of Indian Agriculture and Registration of Organic Products
- Technology Development and Transfer for Promotion of Horticulture
- Marketing Assistance Scheme
- Scheme of Support to Voluntary Agencies for Adult Education and Skill Development
- Scheme of Fund for Regeneration of Traditional Industries (SFURTI)
- Performance & Credit Rating Scheme for Small Industries
- Entrepreneurship Development Institutions (EDIs) Scheme
- National Award Scheme/ Guidelines [Launched by Ministry of Micro, Small & Medium Enterprise (MSME)]
- Credit Linked Capital Subsidy Scheme (CLCSS) for Technology Upgradation of the Small Scale Industrie
- Management Training Programmes
- Scheme For Market Development Assistance For MSME Exporters
- Credit Guarantee Cover Fund Scheme for Small Industries
- Rajiv Gandhi Udyami Mitra Yojana (RGUMY)

- Raw Material Assistance Scheme
- Bamboo Cultivation
- Organic Farming
- Swarnajayanti Gram Swarozgar Yojana (SGSY)
- Mushroom Farming
- Scheme of Financial Assistance for Preparing Young Professional in Rural Areas
- Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme
- Pottery Technology
- Technopreneur Promotion Programme
- Consultancy Promotion Programme
- Technology Development & Utilization Programme for Women
- Industrial R&D Promotion Programme (IRDPP)
- National Backward Classes Finance and Development Corporation
- National Scheduled Castes Finance & Development Corporation
- Marketing and Export Promotion Scheme
- Grant in Aid Scheme - Export
- Diversified Handloom Development Scheme (DHDS)
- Grant in Aid Scheme - Ambedkar Hastshilp Vikas Yojna
- Jute Manufactures Development Council Schemes
- Scheme for Integrated Textile Parks
- Grant in Aid Scheme - HRD Scheme
- Technology Upgradation Fund Scheme
- Technology Upgradation Fund Scheme (Handloom Sector)
- Dairy/Poultry Venture Capital Fund
- Assistance to Cooperatives Scheme
- Strengthening Infrastructure for Quality & Clean Milk Production
- Rajiv Gandhi National Creche Scheme
- Total Sanitation Campaign (TSC)
- National Rural Drinking Water Programme
- Mid Day Meal
- Kishori Shakti Yogana
- Targeted Public Distribution System (TPDS)
- Antyodaya Anna Yojna (AAY)

- Old and Infirm Persons Annapurna
- National Iodine Deficiency Disorders Control Programme (NIDDCP)
- Nutrition Education and Extension
- Rashtriya Swasthya Bima Yojana(RSBY)
- Indira Gandhi Matritva Sahyog Yojana (IGMSY) - A Conditional Maternity Benefit Scheme
- Rajiv Gandhi Scheme for Empowerment of Adolescent Girls (RGSEAG) Sabla
- SwayamSiddha
- Scheme for Working Women Hostel
- Short Stay Home For Women and Girls (SSH)
- STEP (Support to Training and Employment Programme for Women)

b) Social Empowerment And Education

- Integrated Child Protection Scheme
- Elementary Education
- Secondary Education
- Vocationalization of Secondary Education
- Adult Education
- Higher and Technical Education

c) Health and Nutrition

- Integrated Child Development Scheme
- Reproductive & Child Health Programme, Ph.II (RCH II)
- National Rural Health Mission
- Janani Suraksha Yojana
- Indira Gandhi Matritva Sahyog Yojana (IGMSY)
- Integrated Child Protection Scheme
- Rajiv Gandhi National Creche Scheme
- Total Sanitation Campaign (TSC)
- National Rural Drinking Water Programme
- Mid Day Meal
- Sabla
- Kishori Shakti Yogana
- Targeted Public Distribution System (TPDS)
- Antyodaya Anna Yojna (AAY)

- Old and Infirm Persons Annapurna
- Food Security Mission
- National Iodine Deficiency Disorders Control Programme (NIDDCP)
- Nutrition Education and Extension
- Rashtriya Swasthya Bima Yojana(RSBY)
- Sarva Shiksha Abhiyan

d) Vulnerable and Marginalized Groups and Women in Difficult Circumstances

- Schemes of National Scheduled Tribes Finance and development Corporation (NSTFDC)
- Integrated Child Protection Scheme
- Swadhar - A scheme for Women in Difficult Circumstances
- Ujjawala- A Scheme for Prevention of Trafficking and Rescue, Rehabilitation and Reintegration
- Indira Gandhi Matritva Sahyog Yojana (IGMSY) - A Conditional Maternity Benefit Scheme
- Rajiv Gandhi Scheme for Empowerment of Adolescent Girls (RGSEAG) Sabla
- SwayamSiddha
- Scheme for Working Women Hostel
- STEP (Support to Training and Employment Programme for Women)
- Swarnjayanti Gram Swarozgar Yojana
- Indira Awaas Yojana (IAY)
- Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005 (MGNREGA)

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
जेंडर एवं विकास अध्ययन विद्यापीठ

एम.डब्ल्यू.जी.-011
अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

खण्ड

6

महिलाएँ और भूमण्डलीकरण

इकाई 1

भूमण्डलीकरण और आर्थिक परिवर्तन 397

इकाई 2

श्रम का नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन 416

इकाई 3

स्त्रीकरण और हाशियाकरण के प्रश्न 442

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 1 भूमण्डलीकरण और आर्थिक परिवर्तन

संरचना — विभूति पटेल

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भूमण्डलीकरण का महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

1.3.1 निर्धनता महिलाओं की पहचान

1.3.2 भूमण्डलीकरण समृद्ध को समृद्ध करता है और गरीबों को दरिद्र बनाता है

1.3.3 जिनकी सहभागिता नहीं है वही पीड़ित हैं

1.4 वृहद वैश्विक आर्थिक ढाँचाः महिलाओं की दशा

1.5 उद्योग और सेवा क्षेत्र में महिलाएँ

1.6 औद्योगिक दुनिया में अंशकालिक श्रमिक

1.7 विकासशील दुनिया में संरचनात्मक समायोजन और महिला रोज़गार

1.8 कृषि क्षेत्र में महिलाएँ

1.9 पूर्व समाजवादी अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

1.10 सारांश

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1.12 सन्दर्भ

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

'महिलाएँ और भूमण्डलीकरण' खण्ड की यह पहली इकाई है। यहाँ, आपको महिला श्रमिकों पर भूमण्डलीकरण के विमर्शों, बहसों और प्रभाव से परिचित कराया जाएगा। पहली इकाई दुनिया के विभिन्न हिस्सों में महिला श्रमिकों पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव पर विमर्श के साथ आरम्भ होती है, उसके बाद दुनिया भर में भूमण्डलीकरण कैसे गरीब और अमीर को प्रभावित करता है, और अंत में इस बात पर चर्चा करेंगे कि स्त्रियों में गरीबी क्यों अधिक है? इस खण्ड के बाद उद्योग, सेवा और कृषि क्षेत्र और निर्यात विनिर्माण इकाइयों में महिला श्रमिकों की स्थिति का विश्लेषण करने के बाद वृहद वैश्विक आर्थिक ढाँचे में महिलाओं की चिंताजनक और कठिन स्थिति पर चर्चा की जाएगी। इस इकाई के अंत में विकासशील देशों और पूर्व समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में संरचनात्मक समायोजन के साथ-साथ महिला श्रमिकों के अंशकालिक कार्य पर प्रकाश डाला गया है। आइए अब हम इस इकाई को पढ़ने के अपने उद्देश्य पर प्रकाश डालते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप स्वयं यह आंकलन करने में सक्षम होंगे कि आप :

- विभिन्न देशों और अन्तर-क्षेत्रीय तुलना के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर भूमण्डलीकरण के प्रभावों की व्याख्या कर सकें;

- वैश्विक आर्थिक ढाँचे में महिलाओं की दशा की जाँच कर सकें और इसे अर्थव्यवस्था के औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों के मध्य स्थिति और सूक्ष्म आर्थिक वास्तविकताओं से जोड़ सकें;
- आर्थिक भूमण्डलीकरण के सन्दर्भ में उद्योग, सेवाओं और कृषि में महिलाओं की जेंडर स्थिति का विश्लेषण कर सकें;
- कामकाजी महिलाओं को प्रभावित करने वाले वैधानिक प्रावधानों और श्रम विधानों का विश्लेषण कर सकें; तथा
- बजट, नई आर्थिक नीति, स्थिरीकरण के उपाय और संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम का जेंडर दृष्टि से व्यापक परीक्षण कर सकें।

1.3 भूमण्डलीकरण का महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव

19वीं और 20वीं शताब्दी के मध्य में उपनिवेशवाद वस्तुतः भूमण्डलीकरण का ही प्रतीक था, और यही 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नव-उपनिवेशवाद का प्रतीक बनकर उभरा। वर्तमान समय के समृद्ध देशों ने अपने साम्राज्य को खड़ा करने के लिए दासों और गिरमिटिया (श्रमिकों) लोगों का प्रयोग किया। 21वीं सदी में भूमण्डलीकरण को मुक्त व्यापार, मुक्त बाज़ार, अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण एवं विश्व पूंजीवादी राष्ट्रों के रूप में वर्गीकृत किया गया था। वर्तमान समय का भूमण्डलीकरण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और अन्तर्राष्ट्रीय निगमों की स्वार्थपरता (स्वहित, लोभ, स्वार्थ) से प्रेरित है।

21वीं सदी में सभी निम्न आय वाले देशों की वृहद आर्थिक स्थिरीकरण नीतियों को 4 Ds में चिन्हित किया गया है।

- अवमूल्यन (डिवैल्युएशन)
- अविनिमयन (डिरेगुलेशन)
- अपस्फीति (डिफ्लेशन)
- विराष्ट्रीयकरण (डिनेशनलाइजेशन)

मुख्यधारा के अर्थशास्त्री इस प्रक्रिया को 'आर्थिक सुधार' कहते हैं। सामाजिक क्षेत्र के बजट आवंटन से राज्यों को मुक्त करना, खाद्य सुरक्षा के क्षरण के सन्दर्भ में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रतिकूल प्रभाव, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, रोज़गार और जीवित रहने की ज़रूरत जैसे ईंधन, चारा, पानी और आवासीय आवश्यकताओं, इसके अलावा बाज़ार की अन्धी ताकतों ने मेहनतकश महिला श्रमिकों के जनसमूह को प्रभावित किया। (मानव विकास रिपोर्ट 1995, 1997 से 2011)

भूमण्डलीकरण के कारण कृषि क्षेत्र में अस्थिरता पैदा हुई जिससे मूल्यों में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है, और इसका नतीजा यह हुआ कि महिला किसानों और खेतिहरों के बीच संकट खड़ा हो गया। इसके अलावा प्राकृतिक संसाधनों के व्यवसायीकरण के कारण पर्यावरणीय मुद्दों की वजह से गरीब और आदिवासी महिलाओं का बोझ बढ़ गया है। भूमण्डलीकरण से महिलाओं और बच्चों की तस्करी को बढ़ावा मिला है और महिलाओं के विरुद्ध विभिन्न स्तरों पर हिंसा का जन्म हुआ है। इसने अश्लील साहित्य के लिए बड़े पैमाने पर बाज़ार तैयार किया है और इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के खिलाफ़ अत्याचार और उत्पीड़न जटिल हो गया है। साथ ही महिलाओं के खिलाफ़ युद्धों के जटिल आयाम बढ़ गए हैं। (पटेल 2009)

आइए, अब हम विस्तार से इस स्थिति की समीक्षा करते हैं।

उत्पादन में भूमण्डलीकरण का अर्थ है कि अफ्रीका, अमेरिका और एशिया में वैश्विक श्रम में स्त्रियों की हिस्सेदारी बढ़ने के साथ ही महिलाओं की निर्धनता में वृद्धि भी हुई है। अब प्रश्न उठता है कि अर्थव्यवस्थाओं में बड़े पैमाने पर श्रम शक्ति के स्त्रीकरण का क्या हुआ? क्या यह महिला और बाल श्रम पर भूमण्डलीकरण की सवारी नहीं है? सम्भवतः यह कोई संयोग नहीं है कि दुनिया भर में गरीबी में रहने वाले एक अरब तीस करोड़ लोगों में सत्तर प्रतिशत महिलाएँ हैं। पिछले तीस वर्षों में महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों की दर बढ़ी है। वैश्विक उत्पादन के श्रम बल में महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी है। फिर भी, वे अब भी व्यावसायिक पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर कम-भुगतान वाली स्थितियों में खड़ी हैं। (बॉण्ड एंड स्मिथ, 1997)

दुनिया भर के उत्पादकों ने अपने लाभ को अधिकतम करने का लक्ष्य रखा है। नई और उन्नत तकनीक के माध्यम से उत्पादन के लिए आवश्यक कुशलता की ज़रूरत को खत्म किया जा रहा है। इससे नौकरी की संरचनाओं में बदलाव आ रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो **कुशलता के ध्रुवीकरण** की प्रवृत्ति आ गई है। इसका मतलब यह हुआ कि श्रमिकों के एक छोटे-से समूह को विशेषज्ञता वाली कुशलता रखने की आवश्यकता होती है जबकि श्रमिकों की बड़ी संख्या ऐसी होती है, जिन्हें मामूली प्रशिक्षण और कुशलता रखने की आवश्यकता होती है। इसकी वजह से स्वतः ही प्रगतिशील नौकरियों में बहुत कम श्रमिक होते हैं जबकि बड़ी संख्या उनकी होती है जो गतिहीन नौकरियों में होते हैं और थोड़े ही लोग ऊपर की व्यावसायिक गतिशीलता में शामिल होते हैं। (इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, 1997)

आइए, अब देखें कि इस प्रवृत्ति ने श्रम के जेंडर विभाजन को कैसे आकार दिया है?

बतौर मज़दूर महिलाओं की दर अधिक है। यदि अनुभवी कारीगरों से उद्यमियों को अधिक लाभ न हो तो भेदभाव और अन्तर में कमी की जा सकती है। निश्चित तौर पर कोई भी गतिहीन काम अधिक से अधिक कारीगरों की भागीदारी के ज़रिये नियोक्ताओं के लिए उपयोगी साबित हो सकता है और प्रारम्भिक दौर में कार्यक्षमता की अधिक से अधिक उपयोगिता ली जा सकती है, लेकिन कुछ समय बाद उसमें भी गिरावट आने लगती है। स्थायी और आकस्मिक नियुक्तियों की वजह भी शायद यही हो सकती है।

बॉक्स सं. 1.1

> भूमण्डलीकरण का प्रभाव यह रहा है कि विकासशील देशों में महिला श्रमिकों को हाशिये पर डाल दिया गया है।
>
> (कलापगम, 1994)

यदि 90 के दशक के प्रमुख विषयों को सूचीबद्ध करें तो दोनों अर्थात 'लिंग' और 'भूमण्डलीकरण' शीर्ष के विषय होंगे। वस्तुतः भूमण्लीकरण की प्रक्रिया में महिलाओं के संरचनात्मक समायोजन अथवा 'लिंग के प्रति संवेदनशीलता का प्रभाव' एक विस्तृत शोध का विषय है। फिलीपींस में एक झुग्गी बस्ती में हुई घटना से इसके समग्र सार को समझा जा सकता है जिसका जिक्र मानव विकास रिपोर्ट 1997 में किया गया है। 'गरीबी एक चीख़ती माँ है जिसकी झोंपड़ी को सरकार उन कारणों से गिरा रही है जिसे वह समझ नहीं पा रही है।' यह सरल उद्धरण निम्नलिखित पहलुओं को दिखाता है जिस पर निम्नलिखित उपभागों 1.3.1, 1.3.2 और 1.3.3 में चर्चा की गई है।

1.3.1 निर्धनता महिलाओं की पहचान

प्रति व्यक्ति सकल घरेलू आय (प्रति दिन एक अमेरिकी डॉलर से कम) के आधार पर गरीबी का अनुमान प्राप्त किया जाता है। एक अनुमान के तौर पर माना जाता है कि कुल गरीबों की संख्या में 50 प्रतिशत महिलाएँ शामिल हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। गरीबी में रहने वाले एक अरब तीस करोड़ लोगों में से सत्तर प्रतिशत महिलाएँ हैं। चूँकि ऐसा नहीं हो सकता कि सिर्फ गरीब घरों में ही लड़कियों का जन्म होता है। वास्तव में, गरीब समूहों में महिलाओं की अनुपातहीन हिस्सेदारी को पुरुषों और महिलाओं की अर्जन क्षमता में अन्तर के सन्दर्भ में समझना होगा। समान संसाधन आधार और अवसर स्थान वाले दो घरों के बीच अन्तर देखा जाए तो जिस घर में महिलाएँ अधिक हैं, वहाँ गरीबी का स्तर अधिक होने की गुंजाइश रहती है। इस तथ्य में ज़ोर देकर कहा गया है कि आधिकारिक तौर पर परिभाषित गरीब समूह में महिला समूह एक घर के भीतर महिलाओं के खिलाफ़ भेदभाव को दर्शाता है। इस प्रकार, कई बार यह होता है कि ऐसी महिलाएँ होती हैं जिन्हें गरीब के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जाता और ये महिलाएँ उन परिस्थितियों में कार्य करती हैं जो उन महिलाओं की तुलना में बद-से-बदतर हैं जो आधिकारिक तौर पर गरीबों के रूप में वर्गीकृत हैं।

जैविक रूप से, मानव प्रजाति में महिला अधिक मजबूत है और इसका परिणाम महिलाओं की उच्च जीवन प्रत्याशा और उच्च महिला/पुरुष लिंगानुपात के तौर पर देखा जा सकता है। फिर भी, ऐसे कई देश हैं जहाँ महिला/पुरुष अनुपात कम है। एक अनुमान के तौर पर दस करोड़ से अधिक महिलाएँ पृथ्वी से गायब ही हैं।

शोध से पता चलता है कि लैंगिक भेदभाव कितना गहरा है। इस शोध के मुताबिक 458 मिलियन महिलाएँ आयरन की कमी (एनीमिया) से पीड़ित हैं, जबकि 238 मिलियन पुरुष ऐसे हैं जो इस बीमारी की चपेट में हैं। 400 मिलियन पुरुषों की तुलना में 450 मिलियन महिलाएँ प्रोटीन की कमी से जूझ रही हैं। महिला–पुरुष के बीच का यह अन्तर लैंगिक भेदभव को दर्शाता है। महिलाओं में पोषण के अभाव उनके प्रजनन के वर्षों के दौरान अधिक दिखाई पड़ते हैं। यह बहुत ही चिन्ता की बात है कि कम आय वर्ग की 95 प्रतिशत वयस्क महिलाओं का वजन पचास किलोग्राम से कम है। पोषण की कमी और चिकित्सकीय सुविधा के अभाव की वजह से मृत्यु की घटनाएँ ज्यादा होती हैं। विकासशील दुनिया में हर साल लगभग पाँच लाख महिलाएँ बच्चे के जन्म के दौरान मर जाती हैं। दुनिया के 90 करोड़ निरक्षर लोगों में, महिलाओं का अनुपात पुरुषों की तुलना में दोगुना है। प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाने वाले 130 मिलियन बच्चों में लड़कियों की संख्या बहुमत वाली है। (मानव विकास रिपोर्ट 1995)।

1.3.2 भूमण्डलीकरण समृद्ध को समृद्ध और गरीबों को दरिद्र बनाता है

पूंजीवादी दुनिया हमेशा से असमान रही है, जहाँ एक छोटे-से वर्ग का संसाधनों पर नियंत्रण होता है और अधिकांश आबादी गरीबी और बदतर स्थिति में जी रही होती है। असमान दुनिया में कुछ ऐसे राष्ट्र हो सकते हैं अथवा एक राष्ट्र में कुछ ऐसे लोग हो सकते हैं, जहाँ भूमण्डलीकरण ने बाज़ारों, उत्पादन संरचना और संस्कृति को एकीकृत किया और इसकी वजह से ध्रुवीकरण यानी असमानता को बढ़ावा मिला (विश्व विकास रिपोर्ट के अनुमान के अनुसार, 1997)।

- भूमण्डलीकरण के प्रारम्भ में, सन् 1970 में, कम आय वाली अर्थव्यवस्थाओं (एलआईई) की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 200 अमेरिकी डॉलर थी, और उच्च आय वाली अर्थव्यवस्थाओं (एचआईई) की 3,040 अमेरिकी डॉलर थी। दो दशकों में दोनों के बीच का अनुपात 1:25 से बढ़कर 1:56 हो गया है।

- उच्च आय वाली अर्थव्यवस्थाओं की दुनिया की आबादी में हिस्सेदारी कम है, लेकिन दुनिया के संसाधनों के बड़े हिस्सों पर उनका कब्जा है। 1993 में ओईसीडी अर्थव्यवस्थाओं की आबादी 15 प्रतिशत थी, लेकिन दुनिया के 80 प्रतिशत संसाधनों पर उनका कब्जा था। वहीं निम्न आय वाली अर्थव्यवस्था की आबादी में 56 प्रतिशत हिस्सेदारी थी, लेकिन दुनिया की आय का उन्हें 5 प्रतिशत हिस्सा मिल पाता था। संपूर्ण उप-सहारा क्षेत्र का सकल उत्पाद टेक्सास राज्य का लगभग आधा था।

एकीकृत विश्व बाज़ार में वस्तुओं की कीमत बराबर है, लेकिन मज़दूरी में असमानता दिखती है। घरेलू अर्थव्यवस्था का डॉलरीकरण होने के परिणामस्वरूप विकासशील देशों में बड़ी आबादी की वास्तविक आय में अचानक और भारी गिरावट आ जाती है। पेरू में, राष्ट्रपति अल्बर्टो फुजीमोरी द्वारा अगस्त 1990 में लागू किए गए फूजी धक्के (शॉक) ने रातोंरात ईंधन की कीमतों में 31 गुना और ब्रेड की कीमतों में 12 गुना की वृद्धि कर दी। 1970 के मध्य में वास्तविक न्यूनतम मज़दूरी में 90% की गिरावट आई।

हालाँकि असमानताओं का सही औसत पता नहीं चल पाता है क्योंकि राष्ट्रों के भीतर व्यापक आय असमनाताएँ विद्यमान हैं। कई निम्न और मध्यम आय वाले विकासशील देशों में 70% ग्रामीण परिवारों में प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत के 10 से 20% के बीच थी (**स्रोतः** विश्व विकास रिपोर्ट, 1997)।

यह सही बात है कि आय और संसाधन असमानता के सन्दर्भ में गैर-बराबरी को उचित तरीके से नहीं समझा जा सकता है। तकनीकी अन्तर, और इसी तरह अमीर और गरीब के बीच की जीवन-शैली ने इस खाई को चौड़ा कर दिया है। जैव प्रौद्योगिकी और संचार प्रौद्योगिकी ने अमीरों के लिए पूरी तरह से प्रगति का एक नया रास्ता खोल दिया है। उदाहरण के तौर पर अभिजात्य वर्ग से आने वाला या आने वाली एक एक्जीक्यूटिव दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर संवाद स्थापित कर सकता है अथवा कर सकती है। एक इलेक्ट्रॉनिक सिग्नल के ज़रिये अरबों डॉलर दुनिया के किसी भी हिस्से में स्थानान्तरित किया जा सकता है। वहीं दूसरी तरफ लोग दोयम स्थिति में रहने को मजबूर हैं जहाँ, बिजली या सुरक्षित पेयजल, चिकित्सा सहायता, भोजन, परिवहन और सिर पर छत तक उपलब्ध नहीं है।

1.3.3 जिनकी सहभागिता नहीं है वही पीड़ित हैं

दुर्भाग्य से इस खेल में जो शामिल नहीं, उन्हें ही इसका अधिकतम खामियाजा भुगतना पड़ता है। सरकारी नीतिगत निर्णयों में उनकी कोई भागीदारी नहीं है, बाज़ारों पर कोई नियंत्रण नहीं है, या लाभ प्राप्त करने की कोई उम्मीद नहीं है और किसी भी मामले में प्रतिरोध करने की उनके पास क्षमता नहीं है। यहाँ फिलीपींस से एक और उदाहरण लेते हैं। (यह 1997 की मुद्रा संकट से पहले का है, जो पूर्वी एशिया की सफल अर्थव्यवस्थाओं के पूरे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताने-बाने को छेड़े हुए है।) उरुग्वे दौर के 1994 के कृषि समझौते के तहत, फिलीपींस ने कृषि वस्तुओं की एक विस्तृत श्रृंखला में व्यापार को उदार बनाया। निर्यात शुल्क घटाए गए जबकि आयात कोटा बढ़ाया गया। पेरू के विपरीत, फिलीपींस में अंतर्राष्ट्रीयकरण का मतलब मक्के की कीमत में 30% की गिरावट है। अमेरिका से आयातित मक्के को सस्ते में बेचा गया। अमेरिका द्वारा अपने किसानों को दी जाने वाली भारी सब्सिडी के कारण यह सम्भव हो सका। 1995 में प्रति अमेरिकी किसान को दी जाने वाली वार्षिक सब्सिडी 29,000 डॉलर के आसपास थी, यानी औसत फिलीपीनी किसान की कुल वार्षिक आय से 100 गुना, जो उस समय 300 अमेरिकी डॉलर से अधिक

नहीं थी। मक्का एक प्रमुख फसल है, जिसकी वजह से लगभग 102 मिलियन किसानों की आजीविका प्रभावित हुई। (मानव विकास रिपोर्ट, 1997)।

प्रश्न है कि गरीब किसान को किसके साथ अपना विरोध दर्ज कराना चाहिए? अमेरिकी किसानों से? अमेरिकी सरकार से, जिसने अपने किसानों को सब्सिडी मुहैया करायी? या विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) से, जिसने मुक्त और उदारवादी व्यापार जैसी एक असमान व्यवस्था खड़ी की? या फिलीपींस सरकार से, जो 1994 में कुशल नीतिगत फैसलों के लिए विश्वव्यापी प्रशंसा प्राप्त कर रही थी?

आखिरकार इससे स्पष्ट है कि **महिला और पुरुष गरीबी को अलग-अलग ढंग से महसूस करते हैं।** इस प्रकार, वैश्विक एकीकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप होने वाला नुकसान और वंचना का बोझ पुरुषों और महिलाओं को अलग तरह से प्रभावित करता है। इसे समझने के लिए मूल आधार से शुरू करना चाहिए कि पुरुष और महिला पूंजीवादी पुनरुत्पादन प्रक्रिया में अलग-अलग स्थित हैं। इस सूची में महिलाएँ सबसे निचले पायदान पर हैं। आगामी अनुभाग में आपको यह बात जानने की आवश्यकता होगी कि दुनिया भर में वृहद आर्थिक ढाँचे में महिलाओं को कैसे रखा गया।

1.4 वृहद वैश्विक आर्थिक ढाँचा: महिलाओं की दशा

दूसरे विश्व युद्ध के बाद की अवधि में, औद्योगिक पूंजीवादी देशों ने राज्य व्यय के माध्यम से माँग प्रबन्धन के कीनेसियन ढाँचे के आधार पर कल्याणकारी राज्य मॉडल विकसित किया। एक विस्तृत विधायी संरचना में रोज़गार सुरक्षा और श्रमिकों को लाभ की गारंटी दी गई थी। विकासशील देशों में से अधिकांश ने राज्य के साथ विकास कार्यक्रम को लेकर महत्वाकांक्षी औद्योगिक व्यवस्था का शुभारम्भ किया जो प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। संगठित क्षेत्र में प्रवेश करने वाला एक छोटा वर्ग औद्योगिक दुनिया से प्राप्त कानून के माध्यम से रोज़गार की सुरक्षा और लाभ हासिल कर पाया, यद्यपि इसमें अधिकांश कार्यबल कमज़ोर हुए और हाशिये पर चले गए। जबकि यह उम्मीद थी कि समय की इस अवधि में, संगठित क्षेत्र में अधिक से अधिक असंगठित कार्य बल को सुरक्षित रोज़गार के लिए तैयार कर लिया जाएगा।

युद्ध के बाद का उछाल दो दशकों से अधिक समय तक जारी रहा। यह केवल 1970 की शुरुआत में पूंजीपति की ओर था जिसमें पूंजीपतियों के आर्थिक संचय ने आर्थिक विकास में मन्दी के अलावा, ओपेक देशों द्वारा तेल उत्पादन में कमी और ब्रेटनवुड्स प्रणाली के टूटने जैसे संरचनात्मक संकट के एक नए चरण में प्रवेश किया। इसके लिए प्रणाली में एक बड़े पुनर्गठन की आवश्यकता थी। इसकी वजह से एक केंद्र में पूँजी जमा हुई जो लाभदायक निवेश का रास्ता तलाशने में असमर्थ थी। 1970 वह दशक था, जब तत्कालीन समाजवादी दुनिया एक ठहराव बिन्दु पर पहुँच गई थी और सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अंतर्विरोधों ने सतह पर आना शुरू कर दिया था। इसके चलते विकासशील देशों में औद्योगिक विकास के महत्वाकांक्षी कार्यक्रम निरस्त किए गए, जहाँ औद्योगिक दुनिया का साथ पकड़ने की उम्मीदें बँधी हुई थीं। (बोद्रोवा और रिचर्ड, 1985)।

क्षेत्रीय, भौगोलिक और तकनीकी रूप से संकट के प्रति पूँजी की प्रतिक्रिया विलुप्त होने वाली गतिविधियों से दूर जा रही थी। पूँजी संचय के पुनर्गठन का चरण, जो तब से विकसित हुआ है, उसकी तीन आधारभूत विशेषताएँ हैं:

1) राष्ट्रीय सीमाओं के पार पूँजी की गतिशीलता,

2) उत्पादक गतिविधियों से वित्त की ओर अग्रसर

3) सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति। जाहिर है, तीनों आतंरिक तौर पर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

इस प्रकार, भूमण्डलीकरण ने अर्थव्यवस्था में महिलाओं के लिए श्रम-बाज़ार के सन्दर्भ को बदल दिया है।

इकाई के पूर्ववर्ती दो अनुभागों को पढ़कर आपने जो समझा है, उसका आंकलन करने के लिए निम्नलिखित अभ्यास करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) लिखें कि कैसे

अ) महिलाएँ गरीबी की पहचान हैं?

ब) भूमण्डलीकरण का अमीर और गरीब लोगों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है?

2) भूमण्डलीकरण के 4Ds क्या हैं?

आइए, अब हम औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की स्थिति के बारे में उत्तर भूमण्डलीकरण परिदृश्य में पढ़ें।

1.5 उद्योग और सेवा क्षेत्र में महिलाएँ

वित्त व्यवस्था में बदलाव और विनिर्माण की विवशता इक्कीसवीं शताब्दी के आर्थिक भूमण्डलीकरण की विशिष्ट विशेषता रही है। महानगरीय केन्द्रों में निष्क्रिय पूँजी जो उत्पादक गतिविधियों में लाभदायक रास्ते नहीं खोज सकी थी, वो वित्तीय निवेशों में स्थानान्तरित कर दी गई। गतिशील विनिमय दर, जिसने मुद्रा सट्टा शुरू किया और जिसकी वजह से विनिमय दरों में उच्च अस्थिरता शुरू हुई, ने एक अपेक्षित मंच उपलब्ध कराया। 1980 में ऋण संकट ने कॉरपोरेट विलय, खरीद और दिवालिया होने की एक आशंका पैदा कर दी। इन हालात ने वित्तपोषकों की एक नई पीढ़ी, व्यावसायिक बैंकों, संस्थागत निवेशकों, स्टॉक ब्रोकरेज फर्मों और बड़ी बीमा कम्पनियों आदि को मजबूती प्रदान की। इन वर्षों में वित्तीय ढाँचों का आकार बहुत बड़ा हो गया और बड़े पैमान पर लोगों का ध्यान अपनी तरफ केन्द्रित किया। साथ ही कई परिष्कृत उपकरण तैयार कर लिए गए। विनिमय लेन-देन का दैनिक कारोबार एक दिन में एक ट्रिलियन डॉलर से अधिक हो गया जिनमें से अकेले 15% वास्तविक वस्तु व्यापार का हिस्सा शामिल था। संस्थागत सट्टेबाजी जो वास्तविक उद्यमशीलता की गतिविधियों से दूर हैं, वे न केवल बड़े औद्योगिक निगमों को दिवालिया होने से रोकने में सक्षम हैं, बल्कि वे केन्द्रीय बैंकों के विनिमय भण्डार को खत्म करने में सक्षम हैं और एक देश या दो देशों की अर्थव्यवस्था का पतन ही नहीं बल्कि पूरे एक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को तबाह करने का दमखम भी रखते हैं। इसके विपरीत, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादकों के लिए उपलब्ध पूँजी में भारी कमी आई है और वास्तविक अर्थव्यवस्था आय वित्त की ज़रूरतों को पूरा करने के लिहाज से कमज़ोर हो गयी। पूँजी की लूट और निर्माण क्षेत्र में गिरती लाभ दरों ने उद्यमियों को श्रम-लागत को कम करने के लिए प्रेरित किया। यह तीन रास्तों के ज़रिये किया गया।

1) प्रमुख मौजूदा क्षेत्रों से निवेश को एक नई शाखा में स्थानान्तरित करना, अर्थात् माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक्स;

2) सस्ते श्रम की तलाश में निवेश को राष्ट्रीय सीमाओं विकासशील देशों में ले जाना; और

3) श्रम बल को घटाकर, ठेका व्यवस्था लागू कर और ऐसे अन्य उपायों का सहारा लेकर मौजूदा संयन्त्रों में कार्य संगठन को बदलना शामिल है।

अधिकांश विकसित देशों में, 1980 और 1990 के दशक के दौरान माध्यमिक क्षेत्र में रोज़गार की हिस्सेदारी में भारी गिरावट आई। इसकी वजह से श्रमिक वर्ग के भीतर जो अभिजात्य वर्ग तैयार हुआ था उन श्रमिकों ने अपनी नौकरी गँवा दी। कपड़ा, इस्पात, जहाज–निर्माण और खनन जैसे क्षेत्रों से निवेश को इलेक्ट्रॉनिक्स की तरफ स्थानान्तरित कर दिया गया।

माइक्रोचिप उत्पादन और महिलाओं के रोज़गारः

माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक्स ने 1970 के दशक में उस स्थान पर कब्जा कर लिया जो उन्नीसवीं शताब्दी में कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित था। इसने विशेषकर पूर्वी एशिया में जापान और नए औद्योगिक देशों (एनआईसी) में ही नहीं बल्कि यूरोप और अमेरिका में भी संचय प्रक्रिया को गति दी। अब उन्होंने भारत की तरफ अपना रुख कर लिया है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि मशीनीकरण के बाद कपड़ा उद्योग ने आवश्यक कौशल ढाँचे को पूरी तरह से बदल दिया है और सस्ते श्रम के लिए पूंजीपतियों को महिलाओं और बच्चों की भर्ती के लिए सक्षम बनाया है; सौ वर्षों बाद भी माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक उद्योग उसी रास्ते पर चल रहा है। यह नई शाखा खनिकों और शिपयार्ड श्रमिकों का कोई उपयोग नहीं कर सकती थी, जो अपनी नौकरी पहले ही गँवा चुके थे। जिन इलेक्ट्रॉनिक कंपनियों ने चिप्स

के उत्पादन में निवेश किया, उन्हें तेजी से काम करने के लिए फुर्तीली अँगुलियों और अच्छी दृष्टि वाले श्रमिकों की आवश्यकता थी, जो निपुणता और एकाग्रता के साथ हमेशा एक तरह के दोहराव वाले कार्य कर सकते थे। इन कंपनियों के लिए सबसे उपयुक्त दसवीं पास या उससे कम पढ़ी-लिखी अविवाहित महिलाएँ थीं। इनमें वे महिलाएँ शामिल हैं जिन्हें पहली बार नौकरी मिली थी और उनमें भी उनकी संख्या अधिक थी जो ग्रामीण या उप-नगरीय क्षेत्रों से पलायन करके महानगर पहुँची थीं, वे कम वेतन पर लम्बे समय तक काम करने को तैयार थीं। इनका महिला यूनियन से कोई वास्ता भी नहीं होता है। कुछ वर्षों बाद जब वे अपने युवा दौर से गुजर जाती हैं और उनकी उत्पादकता में कमी आने लगती है, तो उन्हें हटा दिया जाता है और उनकी जगह नया श्रमबल ले लेता है। अधिकांश कंपनियाँ ठेका के आधार पर महिलाओं को नौकरी देती हैं। जब इनका ठेका समाप्त हो जाता है तो फिर ये अपने घरेलू कामों में लग जाती हैं और इन्हें बेरोज़गारों की श्रेणी में वर्गीकृत भी नहीं किया जाता है। इस स्थिति में ऐसा लगता है कि उन्होंने (महिलाओं ने) शादी के बाद नई घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने के लिए खुद को कार्यबल से अलग कर लिया है। 1970 के प्रारम्भ में जब चिप्स का उत्पादन श्रमसाध्य था, इलेक्ट्रॉनिक इकाइयों में महिला श्रमिकों का प्रतिशत कहीं भी 70% से 90% तक था, चाहे वह स्कॉटलैंड में हो या संयुक्त राज्य अमेरिका के सिलिकॉन वैली में या जापान में क्यूशू में हो। सामान को जोड़ने और सर्किट जाँच के काम में विशेष रूप से महिलाओं को ही लगाया जाता है। दूसरी ओर पर्यवेक्षी कर्मचारी के तौर पर कार्यस्थल पर लैंगिक पदानुक्रम को बनाए रखने वाले केवल पुरुष श्रमिक में शामिल होते हैं।

बाद में 1980 के दशक में यह तस्वीर बदल गई। चिप उत्पादन का काम कम वेतन वाली अर्थव्यवस्थाओं यानी जापान आदि नए औद्योगिक देशों से मलेशिया और थाईलैंड, और अमेरिका से कैरीबियाई देशों की तरफ स्थानान्तरित हो गया। विकसित देशों ने उच्च मूल्य वाले उत्पादों मसलन कम्प्यूटर और अन्य जटिल चीजों के निर्माण की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया।

दूसरा, चिप उत्पादन की प्रक्रिया स्वचालित हो गई। चिप्स के स्वचालित उत्पादन में, कारखानों की कौशल माँगों का ध्रुवीकरण हो गया। एक तरफ कारखानों को उच्च शिक्षित और कौशल शोध कर्ताओं और इंजीनियर्स की आवश्यकता थी तो दूसरी तरफ बड़े पैमाने पर अपेक्षाकृत अर्धकुशल (अकुशल) श्रमिकों की ज़रूरत थी। भारी वेतन की कौशल वाली नौकरी पुरुषों को दी गई जबकि महिलाओं को अर्धकुशल नौकरियाँ दी गईं। महिलाओं को गुणवत्ता-नियंत्रण बनाए रखने के लिए नियोजित किया जाता है। उन्हें सिंथेटिक कपड़े पहनना होता है, धूल से मुक्त कमरे में बैठना और सूक्ष्मदर्शी से जाँचना होता है कि क्या चिप के पतले 'तारों' को छोटे प्लेटों में ठीक से लगाया गया है या नहीं। इस काम को अर्ध कुशल कामों में वर्गीकृत किया जाता है। ये काम बहुत नीरस होते हैं जिसमें भारी एकाग्रता की आवश्यकता होती है, और जो आँखों पर जबरदस्त तनाव डालता है। उद्योग में महिलाओं के प्रतिशत में गिरावट आई है, लेकिन अन्य चीजें बनी हुई हैं। अविवाहित और युवा महिलाओं को अपेक्षाकृत कम मज़दूरी पर नियोजित किया जाता है। काम के घण्टे लम्बे होते हैं। क्यूशू में, एक महिला औसतन प्रति माह तीस घण्टे का ओवरटाइम काम करती है। काम से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याएँ नियोक्ता की जिम्मेदारी भी नहीं होती है। यदि कोई महिला स्वास्थ्य समस्याओं की शिकायत करती है या कामकाजी परिस्थितियों में सुधार के लिए कहती है, तो उसे तुरन्त खारिज कर दिया जाता है। और आखिरकार कह दिया जाता है कि अनुपयुक्त और बीमार श्रमिक उत्पादकता बढ़ाने में योगदान नहीं कर सकते हैं।

अन्त में, महिलाएँ कुशल रोज़गार या पर्यवेक्षी के तौर पर नौकरियों को हासिल नहीं कर सकती हैं; यहाँ तक कि, वहाँ भी जहाँ किसी शाखा में वे निचले स्तर की नौकरियाँ कर रही हैं। आरक्षित सेना के स्थायी सदस्यों के रूप में, उन्हें स्थायी रूप से कुशलता वाले रोज़गार में प्रवेश करने के विशेषाधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

निम्नलिखित भाग में आप पढ़ेंगे कि औद्योगिक दुनिया में अंशकालिक नौकरियाँ कैसे बढ़ी हैं और इनका महिला कार्यबल पर क्या प्रभाव पड़ा है।

1.6 औद्योगिक दुनिया में अंशकालिक श्रमिक

दोनों विश्व युद्धों के दौरान जब पुरुष मोर्चे पर लड़ रहे थे, उस दौरान उनकी जगह पर महिलाओं को बड़े पैमाने पर श्रमबल में शामिल किया गया। इन दोनों मौकों पर युद्धों के समाप्त होने के बाद महिलाओं को घर भेज दिया गया। लेकिन पुनर्गठित संचयन प्रक्रिया में, औद्योगिक दुनिया में महिलाओं को एक बार फिर बड़े पैमाने पर श्रमिकों के तौर पर महिलाओं की भर्ती शुरू हुई। इस बार अन्तर सिर्फ इतना था कि पुरुष युद्ध के मोर्चे पर नहीं थे बल्कि वे अक्सर घर पर होते हैं; क्योंकि औद्योगिक दुनिया में बेरोज़गारी ने अभूतपूर्व अनुपात हासिल कर लिया है, और यह वृद्धि लगातार जारी है। वैश्विक आर्थिक मन्दी के बाद चीजें और बदतर हो गई हैं। इन परिस्थितियों में, बड़ी संख्या में महिलाओं की भर्ती की व्याख्या करने की आवश्यकता है।

विनिर्माण क्षेत्र के सिकुड़ने के साथ ही सेवा क्षेत्र में रोज़गार की हिस्सेदारी पिछले दो दशकों में काफी बढ़ी है। अधिकांश देशों में, सेवाएँ अब कुल रोज़गार का 70% हैं। सेवाओं में आगे की सृजित नौकरियाँ अत्यधिक ध्रुवीकृत हैं। एक छोर पर, वित्त, बीमा और व्यवसाय की शाखाओं की ज्ञान आधारित नौकरियों का सृजन किया गया है। इन नौकरियों के लिए पेशेवरों और तकनीशियनों की आवश्यकता होती है जो उच्च शिक्षित और कुशल हैं। यहाँ न केवल उच्च स्तर के कौशल की आवश्यकता है, बल्कि नए विकास को अवशोषित करने और नए कौशल को जल्दी से हासिल करने के लिए आत्मविश्वास और क्षमता भी ज़रूरी है – सूचना उद्योग में कौशल कुछ ही हफ्तों में अप्रचलित हो जाते हैं।

दूसरे छोर पर, श्रम आधारित और कम-कुशलता वाले क्षेत्रों में बहुत सारी नौकरियाँ सृजित होती हैं। इनमें सबसे निचले पायदान पर वैज्ञानिक और पेशेवर नौकरियाँ शामिल हैं, जैसे डेटा-प्रोसेसिंग या नर्सिंग, वितरण व्यापार में सेवाएँ, व्यक्तिगत सेवाएँ, सफाई जैसे व्यवसाय, अकुशल खानपान, घरेलू सहायक इत्यादि। कम कौशल और कम वेतन के साथ इस छोर पर नौकरियाँ सृजित की जाती हैं वे अंशकालिक नौकरियाँ होती हैं। राज्य के स्वास्थ्य क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, या सामाजिक सेवा क्षेत्र में कई नौकरियों को भी पूर्णकालिक से अंशकालिक में परिवर्तित कर दिया गया है, क्योंकि वे निजी एजेंसियों के अधीन हो गए हैं।

विनिर्माण क्षेत्र में भी अंशकालिक नौकरियाँ सृजित की गई हैं। पिछले दो दशकों में औद्योगिक दुनिया में विनिर्माण क्षेत्र मौलिक रूप से बदल गया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति अन्तिम उत्पादन की संरचना में, उत्पादन प्रक्रियाओं में और कार्य संगठन में दूरगामी परिवर्तन लेकर आयी। नई तकनीक जापान से पश्चिम में उधार ली गयी जो एक नए प्रबन्धन मॉडल के लिए उत्तरदायी है। एक छोर पर उच्च-कुशल पेशेवरों और दूसरे में अर्ध कुशल उत्पादन श्रमिकों के साथ, **कौशल ध्रुवीकरण** भी विनिर्माण क्षेत्र में हुआ है। अन्य शिल्प श्रमिकों की तरह, सफेदपोश पर्यवेक्षी कर्मचारी तेजी से निरर्थक हो गए हैं। प्रबन्धन का जापानी मॉडल गुणवत्ता के हलकों पर ज़ोर देता है, जहाँ कर्मचारी सामूहिक रूप से काम की तीव्रता बढ़ाने के लिए एक-दूसरे पर दबाव डालते हैं। जबकि गुणवत्ता की

चाह रखने वाले हलकों में सूक्ष्म शोषणकारी प्रथाएँ जारी हैं, इस पद्धति को आमतौर पर आधुनिक माना जाता है और श्रमिकों के अलगाव को समाप्त किया जाता है।

जापानी प्रबन्धन मॉडल का दूसरा पहलू बहुत हद तक उत्पादन के उप-ठेकेदारों का है। यहाँ मातृ-संयंत्र को छोटा, आधुनिक और प्रबन्धनीय बनाया जाता है। उप-ठेकेदार फर्म मुख्य उत्पाद के घटकों की आपूर्ति करती हैं या मातृ कंपनी को विशेष सेवाओं की आपूर्ति करती हैं। वे कम पूँजी के साथ काम करती हैं और पूरी तरह से मातृ कम्पनी पर निर्भर होती हैं, इस प्रकार, इसके द्वारा निर्धारित शर्तों के लिए सहमत होने के अलावा उनके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है। इन छोटी इकाइयों में श्रमिकों से सम्बन्धित कानूनी बाध्यताएँ ज्यादातर यहाँ लागू नहीं होती हैं। वे श्रम लागत को कम से कम करने की कोशिश करती हैं। छोटी इकाइयाँ अंशकालिक श्रम और अनुबन्ध श्रमिकों का व्यापक उपयोग करने का प्रयास करती हैं। वे श्रमिकों को बिना भुगतान के निर्धारित समय से अधिक कई घण्टों तक काम करने को विवश करती हैं और अक्सर नोटिस या बिना मुआवजे के छँटनी का सहारा लेती हैं। इस प्रकार, नया प्रबन्धन मॉडल सबसे आधुनिक उत्पादन तकनीकों के साथ, सबसे आदिम श्रम सम्बन्धों को स्वीकार करता है।

सेवा और विनिर्माण क्षेत्र दोनों में अंशकालिक नौकरियाँ बड़े पैमाने पर इसलिए सृजित नहीं की जाती हैं कि पूर्णकालिक श्रमिक उपलब्ध नहीं होते हैं या अंशकालिक श्रमिक ही केवल विशेष काम को कर सकते हैं। अधिकांश मामलों में, श्रम लागत को न्यूनतम करने के लिए नियोक्ता अंशकालिक नौकरियाँ सृजित करने को प्राथमिकता देते हैं। नियमित नौकरियों में समान कार्यों के लिए अंशकालिक नौकरियों में दी जाने वाली प्रति घण्टा मज़दूरी बहुत कम है। कभी-कभी यह नियमित नौकरियों में मज़दूरी दर के 50% के बराबर होता है। इसके अलावा, आवश्यकता नहीं होने पर अंशकालिक श्रमिकों को तत्काल हटाया जा सकता है। जापान में अंशकालिक महिलाओं को 'इस्तेमाल कर फेंक दी जाने वाली वस्तु' के रूप में सन्दर्भित किया जाता है, जो भोजन के लिए इस्तेमाल की जाने वाली 'चॉप स्टिक' की तरह होता है। ये एक तरह से मृतप्राय नौकरियाँ हैं। इसमें नियोक्ता को कॅरियर को बढ़ावा देने की पेशकश नहीं करनी पड़ती है अथवा न ही लम्बी अवधि की नौकरी के लिए किसी प्रकार का प्रशिक्षण मुहैया कराना पड़ता है। रोज़गार से सम्बन्धित लाभ जैसे कि वैतनिक अवकाश, बीमारी के लिए छुट्टी, मातृत्व अवकाश, पेंशन या बीमा आदि अंशकालिक अनुबन्धों में दर्ज नहीं होते हैं। दूसरी तरफ अंशकालिक श्रमिक जो भी काम करते हैं, लेकिन उन्हें आकस्मिक यानी कैजुअल से ज्यादा कुछ भी नहीं कहा जाता है। जापान में, विशेष रूप से, अंशकालिक लोगों के प्रति दिन काम के घण्टे केवल नियमित नौकरियों की तुलना में मामूली कम हैं। कई अंशकालिक नौकरियों में एक दिन में साढ़े सात घण्टे काम करने पड़ते हैं। यहाँ तक कि जब कुल घण्टे कम होते हैं, तो भी समय के मामले में काम की तीव्रता अधिक होती है। चूँकि उन्हें विशिष्ट कार्य के लिए आवश्यक न्यूनतम घण्टे के लिए काम पर रखा जाता है, इसलिए उनके काम के समय में कमी की कोई सम्भावना नहीं होती है।

यह, वास्तव में, औद्योगिक दुनिया में श्रम बाज़ार में प्रवेश करने वाली महिलाओं के एक बड़े वर्ग के लिए नौकरी के अवसरों का समुचित रूप से उचित विवरण है। ऐसा नहीं है कि अंशकालिक नौकरियों में विशेष रूप से महिलाओं को लिया जाता है। दुर्भाग्य से श्रम बाज़ार में ज्यादातर महिलाओं के सामने यही स्थिति पेश आती है। ओईसीडी के कई देशों (जर्मनी, ब्रिटेन, जापान) में कुल अंशकालिक रोज़गार में महिलाओं की हिस्सेदारी 45% है। अन्य देशों में महिलाओं की हिस्सेदारी का यह आँकड़ा 35% से 45% के बीच है (वर्ल्ड एम्प्लॉयमेंट रिपोर्ट, 1998)।

अब भी, मानव सभ्यता के तथाकथित सबसे विकसित हिस्से में, केवल कुछ मुट्ठी भर महिलाएँ ही पेशेवर या अन्य करियर के उच्च सोपानों में शामिल होने के लिए आवश्यक

कौशल हासिल कर पाती हैं। यह सच है कि शीर्ष पर महिलाओं के लिए नौकरी के अवसरों का विस्तार हुआ है लेकिन लेकिन अधिकांश महिलाओं के लिए कौशल प्राप्त करना और उसके बाद नौकरी हासिल करने के लिए व्यावसायिक विकल्प सीमित हैं।

आमतौर पर, यह कहा जाता है कि अंशकालिक नौकरियाँ महिलाओं को उनकी घरेलू जिम्मेदारियों और बाहर के काम में सन्तुलन साधने के लिए सम्भावनाएँ मुहैया कराती हैं। लेकिन वास्तव में, अंशकालिक नौकरियाँ पूँजी को न्यूनतम सम्भव लागत पर सबसे लचीले श्रम का लाभ उठाने की अनुमति देती हैं। इस प्रकार, औद्योगिक देशों में पुनर्गठित पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में शोषित श्रमिकों में मध्यम आयु वर्ग की विवाहित महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी है।

'महिलाएँ और काम' विषय से इकोनॉमिस्ट (18–24 जुलाई, 1998) के एक सर्वेक्षण में कहा गया कि इतनी बड़ी संख्या में काम करने के लिए आने वाली महिलाएँ अपनी मुक्ति की दिशा में निश्चित तौर पर प्रगति पर हैं। इसमें कहा गया कि इस बार महिलाएँ वापस जाने के लिए घर से नहीं निकली हैं। लेकिन, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में, ज़रूरत पूरा होने पर श्रम के किसी भी हिस्से को घर वापस भेजा जा सकता है। हम संक्रमण के दौर से गुजरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं के रोज़गार पर विचार करते हुए इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

आपने पिछले दो अनुभागों में जो पढ़ा है, उसका आंकलन करने के लिए यहाँ यह सुझाव दिए गए हैं।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) उद्योग और सेवा क्षेत्र में महिला श्रमिकों की स्थिति के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखें।

2) औद्योगिक देशों में महिलाओं को अंशकालिक काम करने के लिए क्यों प्रेरित किया जाता है?

निम्नलिखित अनुभाग में आप विकासशील देशों में महिला श्रमिकों की स्थिति के बारे में पढ़ेंगे।

1.7 विकासशील दुनिया में संरचनात्मक समायोजन और महिला रोज़गार

राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर पूँजी की गतिशीलता को सुविधाजनक बनाने के लिए विकासशील देशों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं के संरचनात्मक समायोजन करने के लिए मजबूर किया गया था। अलग-अलग आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समन्वय के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, (आईएमएफ), विश्व बैंक, और गैट (बाद में डब्ल्यूटीओ) के द्वारा समान रूप से मानक तैयार किए गए। मामूली सहायता ने बदले में कार्यक्रमों ने बाधाओं को दूर करने में मदद की:

- पूँजी और वस्तुओं का प्रवाह और बहिर्वाह,
- विनिमय नियंत्रण और मुद्रा अवमूल्यन को हटाना,
- आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों से राज्य का बहिर्गमन,
- राजकोषीय घाटे का सख्त नियन्त्रण और निश्चित रूप से,
- श्रम सुरक्षा के लिए जो भी छोटे-मोटे कानूनी प्रावधान हैं, उन्हें खत्म कर दिया गया।

जैसा कि भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचनाएँ अलग-अलग थीं, इस एक समान नियम पतन के लिए अलग-अलग देशों के लिए अलग से चर्चा करने की आवश्यकता है। उदारीकरण-भूमण्डलीकरण-समायोजन के कुछ रुझानों की पहचान किए जाने के बावजूद विकासशील दुनिया के देशों में ये कार्यक्रम शुरू किए गए।

दो दशकों से अधिक समय से कई देश भारी मन्दी (उप-सहारा अफ्रीका में वास्तव में नकारात्मक वृद्धि दर), अति-मुद्रास्फीति, विखण्डन और अकाल (अफ्रीका में) को झेल रहे हैं। कुछ पारम्परिक अर्थों में, सफलता की कहानियाँ केवल पूर्वी एशिया में उपलब्ध थीं, जहाँ 1980 के दशक और 1990 के दशक के शुरुआती दौर में मजबूत आर्थिक विकास देखने को मिला था। बेशक, पूरे क्षेत्र ने इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के उत्तरार्ध में कमाल का काम किया, जिससे पूरी दुनिया को झटका लगा। कई सन्देह अब अपने वर्तमान स्वरूप में पूँजी संचय प्रक्रिया की निरन्तरता से उठाए जा रहे हैं। भूमण्डलीकरण-उदारीकरण के कार्यक्रमों ने निर्मित और कृषि वस्तुओं, वित्तीय और अचल सम्पत्ति और निश्चित रूप से ऋण चुकाने जैसे विभिन्न माध्यमों से विकासशील देशों से अधिशेष को सोख लिया है। इसकी वजह से उप-सहारा अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में श्रम पर गम्भीर रूप से प्रभाव पड़ा है। वास्तविक मज़दूरी गिरी, गरीबी बढ़ी, महामारी और अकाल के आँकड़ों में कोई कमी नहीं आई है।

विकासशील देशों में, नियमित मज़दूरी रोज़गार का कभी भी प्रमुख साधन नहीं थी। आबादी का एक बड़ा हिस्सा स्व-रोज़गार और आकस्मिक (कैजुअल) रोज़गार में लगा हुआ है। रोज़गार का एक बड़ा हिस्सा अपनी समय सीमा में बँधा हुआ है और गरीबी को दूर करने में सक्षम नहीं है।

कई देशों में सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों और सुस्पष्ट रक्षा और प्रशासनिक क्षेत्र के ज़रिये राज्य नियमित नौकरी मुहैया कराता है। औद्योगिक गतिविधि से राज्य के हाथ खींचने और बड़े पैमाने पर पूंजीगत व्यय में कमी करने के कारण अधिकांश देशों में गम्भीर

औद्योगिक मन्दी आई है। पूँजी के प्रवेश और निकास की बाधाओं को दूर करने की वजह से वित्त पूँजी को अधिक तरलता और सट्टा गतिविधियों को बढ़ावा मिला है। तुलनात्मक तौर पर उत्पादक गतिविधियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमित थे। इसके अलावा बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बड़े पैमाने पर ठेके पर नौकरी देना शुरू किया जबकि छोटी कंपनियों ने भी जल्दी इसे अपने यहाँ लागू करना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले से ही नियमित नौकरी जो कम थी उसमें और भी कमी आई। जिन लोगों ने नियमित नौकरियाँ गँवायी उन्होंने दूसरी नौकरियाँ हासिल करने के लिए अपने को नए सिरे से तैयार किया या अनौपचारिक क्षेत्र में अपने को समायोजित किया। परिणामस्वरूप, शहरी अनौपचारिक क्षेत्र का विस्तार हुआ। अनौपचारिक क्षेत्र में कम आय के साथ भीड़ अवशोषित हो गई और बेरोज़गारी में वृद्धि हुई।

1980 के दौरान कई विकासशील देशों में मूल्यवर्धित विनिर्माण में मज़दूरी की दर काफी गिर गई थी। मैक्सिको में 16% (34.7% से घटकर 19.61%), श्रीलंका में 12% (29.5% से 17. 2%), तुर्की में 15% (34.6% से 19.2%) तक यह हिस्सा कम हो गया था (वर्ल्ड एम्प्लॉयमेंट रिपोर्ट, 1996–97)।

निर्यात विनिर्माण और महिला श्रमिक

विकासशील देशों को विदेशी मुद्रा उत्पन्न करने के लिए निर्यात करने वाले औद्योगीकरण में धकेल दिया गया है। विदेशों में अर्जित विदेशी मुद्रा को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे के रूप में या तो विदेशों में प्रत्यावर्तित किया जाता है या ऋण चुकाने के लिए उपयोग किया जाता है, या महँगे आयात के लिए स्थानीय अभिजात वर्ग द्वारा विनियोजित किया जाता है।

विकासशील दुनिया के देश पारम्परिक तौर पर मामूली प्रसंस्करण के बाद कच्चे माल का निर्यात करते हैं, लेकिन उसकी जगह पर श्रम आधारित विनिर्माण ने उसकी जगह ले ली जिसमें ज्यादातर इलेक्ट्रॉनिक सामान और कपड़े शामिल होते हैं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इलेक्ट्रॉनिक कंपनियों ने लगातार चिप्स का उत्पादन **कम वेतन वाली अर्थव्यवस्थाओं** में स्थानान्तरित कर दिया। उदाहरण के तौर पर इसमें जापान से लेकर कोरिया गणराज्य, मलेशिया और थाईलैंड शामिल हैं। विनिर्माण इकाइयाँ सीधे विदेश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के स्वामित्व में हैं, या स्थानीय उद्यमियों के साथ उनका करार है। स्थानीय सरकारें निवेश के इस नए रूप को आकर्षित करने के लिए उत्सुक हैं। इसके लिए कर अवकाश, आयात शुल्क से छूट, अप्रतिबन्धित लाभ प्रत्यावर्तन और आवश्यक निर्यात संसाधन क्षेत्रों के साथ विदेशी कंपनियों के लिए विशेष ढाँचागत सुविधा मुहैया कराने का प्रस्ताव देती हैं। इन क्षेत्रों में यूनियनों और हड़तालों को प्रतिबन्धित करके एक अर्द्ध-श्रमबल की आपूर्ति की जाती है।

इन निर्यात इकाइयों में कर्मचारियों की संख्या काफी हद तक युवा महिलाओं की है, जिनके पास कार्य का अनुभव नहीं है। पूर्वी एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया और कैरेबियन में ज्यादातर महिलाएँ अच्छी तरह से शिक्षित नहीं हैं और कई ग्रामीण या अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों से पलायन कर महानगर पहुँची हैं (कस्टर, 2009)।

निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों में काम की स्थिति किसी भी मानकों पर खरा उतरने वाली नहीं होती है। इकाइयों में काम करने आने वाली महिलाएँ पुरुष औद्योगिक श्रम की तुलना में कम मज़दूरी दर पर काम को स्वीकार कर लेती हैं। इसके अलावा, इन इकाइयों में काम की तीव्रता बढ़ाने के लिए वेतन के ढाँचे को तैयार किया गया है। मूल वेतन तो बहुत कम होता है लेकिन उत्पादकता बढ़ने, निश्चित समय से ज्यादा काम करने और वैतनिक छुट्टियाँ आदि

नहीं लेने पर इनसे सम्बन्धित भत्ते दिए जाते हैं। भत्ते के बिना श्रमिक जीवित नहीं रह सकते। इसलिए वे केवल जीवित रहने के लिए अपने काम के घण्टे और काम की तीव्रता बढ़ाने को मजबूर होते हैं।

बिना किसी अतिरिक्त लाभ के लम्बे समय तक काम करने के अन्य उदाहरण भी हैं। मसलन, मलेशिया में एक जापानी कंपनी ने एक दिन में तीन शिफ्टों में काम करने वाले श्रमिकों के चार साथियों को चुना। रविवार एक सामान्य कार्य दिवस है। तीन सप्ताह तक अनवरत यानी बिना रुके (नॉन-स्टॉप) काम करने के बाद एक श्रमिक को दो दिन की छुट्टी मिलती है। बांग्लादेश में, एक कपड़ा इकाई में, महिलाएँ बिना छुट्टी के काम करती हैं और इसके लिए कोई भी मुआवजा प्राप्त किए बिना लम्बे समय तक ओवरटाइम लगाती हैं। बांग्लादेश में रात में काम करना कानूनी रूप से प्रतिबन्धित है, लेकिन वहाँ ओवरटाइम काम करना आम बात है।

इन कार्यस्थलों पर पुरुष मालिकों, प्रबन्धकों, सुपरवाइजर और महिला श्रमिकों को एक नए किस्म का लैंगिक पदानुक्रम देखने को मिलता है। महिलाएँ शौचालय जाने को लेकर लगी पाबन्दियों को लेकर शिकायत करती रहीं हैं। परिसर के भीतर और बाहर यौन उत्पीड़न के बहुत से मामले बार-बार सामने आते रहते हैं। काम की खराब स्थिति और लम्बे समय तक काम करने की वजह से महिलाओं को पेशेवर बीमारियों से जूझना पड़ता है और इसकी वजह से उन्हें अपनी नौकरी भी गँवानी पड़ती है। इन्हें न राज्य की तरफ से और न ही नियोक्ता की तरफ से कोई मुआवजा दिया जाता है।

महिलाओं के ऐसी परिस्थितियों में काम करने के लिए सहमत होने का कारण यह है कि उनके पास बाहर बेहतर विकल्प नहीं हैं, जबकि इकाई के भीतर वे एकजुट होकर और सामूहिक रूप से बेहतर सौदेबाजी की माँग नहीं कर सकती हैं। यदि कोई महिला यूनियन बनाना शुरू करती है तो न सिर्फ उसे मौजूदा नौकरी से निकाल बाहर कर दिया जाता है बल्कि उसे दूसरी इकाइयों में भी काली सूची में भी डाल दिया जाता है। इसके अलावा, इन सब चीजों को जारी रखने के लिए स्थितियाँ सक्रिय रहती हैं। (मोगादान, 2004)।

इन इकाइयों में कारोबार अधिक होता है क्योंकि युवा लड़कियाँ शादी करने या बच्चे पैदा करने के लिए काम छोड़ देती हैं। यहाँ रोज़गार को लेकर अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है क्योंकि कम पूँजी लगाने वाला नियोक्ता कभी भी इकाई को बन्द कर सकता है या उप-ठेकेदार का अनुबन्ध कब समाप्त हो जाएगा कहा नहीं जा सकता है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमेशा हरे चारागाहों की तरफ भागती हैं। यह तीसरी दुनिया के देशों में वह नया कार्यबल है जो राज्य या राज्य संरक्षित श्रम शक्ति को बदलने के लिए तैयार किया गया था। यह औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाओं के बाद के औद्योगीकरण के शुरुआती वर्षों में बढ़ गया था।

1.8 कृषि क्षेत्र में महिलाएँ

विकासशील देशों में महिला श्रमिकों पर कोई भी टिप्पणी कृषि में महिलाओं के सन्दर्भ के बिना अधूरी होगी। एशिया और अफ्रीका के कई देशों में कृषि और उससे सम्बद्ध गतिविधियों में उनकी दो-तिहाई से अधिक हिस्सेदारी है। भूमि-स्वामित्व का ढाँचा बेहद विषम है। बहुसंख्यक परिवार या तो भूमिहीन हैं या उनके पास ज़मीन का एक छोटा टुकड़ा है। इस खण्ड में महिलाओं की भागीदारी लगभग पुरुषों के बराबर है। इसमें वे या तो वैतनिक श्रमिक या घरेलू श्रमिक के काम कर रही हैं। इसमें पुरुषों और महिलाओं की गतिविधियों को अलग-अलग परिभाषित करने के साथ श्रम विभाजन मौजूद है। बेशक, क्षेत्रीय विविधताएँ

मौजूद हैं। उदाहरण के तौर पर बांग्लादेश में धान की खेती किए जाने के दौरान जुताई, रोपाई और कटाई परम्परागत रूप से पुरुषों की जिम्मेदारी होती थी जबकि महिलाएँ घर के काम सँभालती थीं, मसलन बीजों को सँभालना आदि। ऐसी महिलाएँ भी जो घर के कार्यों के साथ अन्य काम भी करती थीं, जिससे उन्हें अलग से आमदनी प्राप्त होती थी। अधिकांश घर निम्न उपभोग का स्तर जीवर बसर करते थे और सन्तुलन बनाए हुए थे।

लेकिन भूमण्डलीकरण ने इन परिवारों के मौजूदा सन्तुलन को बाधित किया। विकसित देश तीसरी दुनिया को सब्सिडी वाला को अनाज अपने सस्ते निर्यात में रुचि रखते हैं। बदले में वे ऊष्णकटिबंधीय देशों से विदेशी फल, फूल और अन्य नकदी फसलों को अपनी कृषि प्रसंस्करण इकाइयों के लिए चाहते हैं।

जीएटीटी (गैट) के उरुग्वे दौर ने विकासशील देशों को अनाज के आयात पर प्रतिबन्धों को हटाने को मजबूर किया। गैट से समझौते के सन्दर्भ में बीजों का पेटेंटिंग एक और उपाय है, जिसने कृषि कार्यों को बुरी तरह प्रभावित किया। ग्रामीण बुनियादी ढाँचे पर राज्य के खर्च में भारी कटौती कमज़ोर वर्गों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है। दूसरी ओर, कृषि–प्रसंस्करण की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सीधे ज़मीन हासिल कर रही हैं या किसानों को उप-निवेश कर उनके लिए माल तैयार कर रही हैं।

भूमि उपयोग और भूमि स्वामित्व के ढाँचे पहले से ही कुछ देशों में बदल गए हैं और दूसरों में काफी तेजी से बदल रहे हैं। जबकि मध्यम और बड़े खेतों को मशीनीकृत किया जा रहा है और विश्व बाज़ार और विश्व उत्पादन में एकीकृत किया जा रहा है, जिससे कमज़ोर वर्गों को उनकी मौजूदा गतिविधियों से दूर कर दिया गया है। छोटे और सीमान्त किसान अपनी भूमि को समर्पित कर रहे हैं क्योंकि उनके अपने संसाधनों के माध्यम से जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव नहीं रह गया है। इससे भूमिहीनता बढ़ती जा रही है।

पहले जो महिलाएँ घरेलू काम करती थीं उन्हें वैतनिक श्रम के लिए मजबूर होना पड़ा है। उदाहरण के लिए, बांग्लादेश में ग्रामीण महिलाएँ पारंपरिक तौर घर के कामों में खुद को व्यस्त रखती थीं उन्हें 1974 में अकाल के दौरान भोजन पाने की योजना के लिए एकान्त और पर्दा के नियमों को दरकिनार कर बड़ी संख्या में बाहर निकलना पड़ा। उन्होंने जल निकासी और सिंचाई, सड़कों के निर्माण और बाढ़ तटबन्ध के लिए नहरों की खुदाई और खुदाई जैसे कठिन शारीरिक श्रम की आवश्यकता वाली नौकरियों को स्वीकार किया। अन्य महिलाएँ धान के उत्पादन कार्यों में शामिल हो गईं। जबकि पुरुषों और महिलाओं के काम के बीच की सीमाएँ बदल रही हैं, महिलाओं को भुगतान की जाने वाली मज़दूरी अक्सर पुरुषों के लिए भुगतान की गई राशि से आधी होती है (कलापागम, 1994)।

संयोग से, अधिकांश स्थानों पर महिलाओं को श्रमिक के रूप में पुरुषों से अधिक पसन्द किया जाता है क्योंकि उनकी मज़दूरी कम होती है, और इसलिए भी कि मशीनीकरण ने महिलाओं की तुलना में पुरुषों की नौकरियों को अधिक खत्म किया है। तब भी पुरुषों और महिलाओं दोनों के बीच मज़दूरी का अधिशेष है क्योंकि भारी पूँजी निवेश की वजह से कृषि में रोज़गार की सम्भावनाएँ बहुत कम हुई हैं। मैक्सिको में, दस मिलियन पुरुष और महिलाएँ काम की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह जाते हैंः उन्हें गटकने वाली ब्रिगेड कहा जाता है।

अन्य मामलों में देखा जाए तो जिन किसानों ने अपनी भूमि और मवेशियों को समर्पित नहीं किया उन्हें कृषि मज़दूर के तौर पर काम की तलाश में समृद्ध क्षेत्रों में जाना पड़ा या गैर कृषि कार्यों के लिए घर से निकलना पड़ा। जबकि महिलाओं को गैर व्यवहार्य खेतों को सँभालने के लिए छोड़ दिया गया जो पुरुषों की तुलना में महिलाओं के लिए कठिन काम था। वे अपनी ज़मीन का प्रबन्धन नहीं देखती हैं। वे स्वतन्त्र रूप से फैसला लेने के लिए

आजाद नहीं हैं। उन्हें कर्ज और अन्य चीजें हासिल करने के लिए अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

बॉक्स सं. 1.2

तीसरी दुनिया की कृषि में बदलाव के परिणामस्वरूप, पर्याप्त रूप से आय में वृद्धि के बिना महिलाओं पर काम का बोझ बढ़ा है और संसाधनों पर उनके नियन्त्रण में बढ़ोतरी भी नही हुई है। लेकिन एक बार फिर महिलाओं का विशिष्ट रूप से कृषि कार्यबल के खराब हुई।

आइए, हम पूर्वी यूरोपीय खण्ड में महिला श्रमिकों की स्थिति की समीक्षा करें।

1.9 पूर्व समाजवादी अर्थव्यवस्था में महिलाएँ

दुनिया का वह हिस्सा जो पहले समाजवादी था, उसके उलट सब जगह सामान्य प्रवृत्ति के मुताबिक महिलाओं की स्थिति बदली है। निजी पूँजी और बाज़ार के प्रवेश ने महिलाओं को सामाजिक उत्पादन क्षेत्र में लाने या मौजूदा महिला कार्य बल के उपयोग करने के बजाय उत्पादक गतिविधियों से महिलाओं की बड़े पैमाने पर छँटनी की है।

श्रमिकों की भर्ती और छँटनी दोनों में महिलाओं से भेदभाव हुआ। उन क्षेत्रों में रोज़गार, जहाँ बड़ी संख्या में महिलाओं ने काम किया है – जैसे सार्वजनिक क्षेत्र, वस्त्र और कृषि – सब ढह गए हैं। अब कैटरिंग, रिटेलिंग और बैंकिंग के निचले छोर जैसे सेवा उद्योगों में नए अवसर खुल गए। श्रम बाज़ार में निश्चित रूप से महिलाएँ हाशिये पर चली गई हैं। लेकिन घरेलू जीवन और उनकी प्रजनन भूमिकाओं के लिए महिलाओं के प्राथमिक लगाव की बढ़ती बयानबाजी और महिलाओं के लिए उपयुक्त और अनुचित व्यवसायों के बारे में वाद विवाद भी बढ़ा है।

तत्कालीन समाजवादी दुनिया में आज की प्रवृत्ति को समझाने के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था और समाज में उत्पादन और प्रजनन के क्षेत्र में महिलाओं को जिस तरीके से एकीकृत किया गया था, उस पर ध्यान देना आवश्यक है।

बाक्स सं. 1.3

यूएसएसआर और पूर्वी यूरोप के देशों में आर्थिक रूप से सक्रिय आबादी में महिलाओं की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। महिलाओं की श्रम में भागीदारी दर 70 से 90% तक बढ़ गई थी। महिला रोज़गार और प्रजनन क्षमता पर एक आईएलओ अध्ययन (बोड्रोवा, वेलेंटीना और एंकर, रिचर्ड) में कहा गया है कि खनन और परिवहन को छोड़कर महिलाएँ व्यवसाय और उद्योग के लगभग सभी क्षेत्रों में मौजूद थीं। कार्यस्थल के भीतर श्रम का लैंगिक विभाजन बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में बहुत अधिक बराबर था।

उद्योग में महिलाओं का एक बड़ा प्रतिशत इंजीनियरिंग क्षेत्र में सक्रिय था। यूएसएसआर में 40% औद्योगिक इंजीनियर और 43% इंजीनियर और आर्किटेक्ट निर्माण में महिलाएँ थीं। लगभग 30% कृषि विज्ञानी, पशुपालन में 55% विशेषज्ञ, और राज्य के खेतों में काम करने वाले पशु चिकित्सकों के 37.5% महिलाएँ थीं।

समाजवादी देशों में महिलाओं को माताओं और श्रमिकों के रूप में उनकी भूमिकाओं के बीच संघर्ष को कम करने के लिए विशेष लाभ दिए गए थे। समाजवादी दुनिया में मातृत्व अवकाश यूएसएसआर में दो महीने से लेकर चेकोस्लोवाकिया में छह महीने तक और

जीडीआर में एक वर्ष तक था। जब बच्चा छोटा होता था तब माताओं को अवैतनिक बाल देखभाल अवकाश बढ़ाने की अनुमति दी गई थी। जबकि उनके रोज़गार की स्थिति और सभी सामाजिक बीमा अधिकार निर्बाध रहे। इसके अलावा राज्य ने प्री-नर्सरी बच्चों के लिए क्रेच की सुविधा मुहैया कराई थी और स्कूल के बाद बच्चों की देखभाल मामूली भुगतान पर केयर टेकर भी उपलब्ध होते थे। स्कूलों या दिन में बच्चों की देखभाल करने वाले केन्द्रों में बच्चों और श्रमिकों को अपने कार्यस्थल पर भोजन उपलब्ध कराया जाता था (बोद्रोवा और असेकर, 1985)।

ऐसा नहीं है कि समाजवादी देशों में लिंग सम्बन्धी समस्याएँ नहीं थीं। लैंगिक पक्षपात और असमानताएँ मौजूद थीं। शैक्षिक ट्रैकिंग, प्रशिक्षण तक पहुँच, व्यावसायिक संरचना में स्थान और आय स्तर में असमानताएँ विद्यमान थीं। यह सच है कि महिलाएँ शायद ही कभी प्रबन्धन प्राधिकरण और निर्णय लेने के उच्चतम स्तर तक पहुँची हों। इस तथ्य के बावजूद कि व्यावसायिक वितरण में अन्तर था, महिलाओं ने कम भुगतान वाली नौकरियों पर ध्यान केंद्रित किया। लिंग आधारित भेदभाव के भी उदाहरण थे। यह भी सच है कि गृहकार्य का समाजीकरण पर्याप्त नहीं था, और समाजवादी दुनिया में महिलाओं ने दोहरे बोझ की शिकायत की थी। हालाँकि, यदि कोई व्यक्ति सापेक्ष मूल्यांकन समाजवादी दुनिया में महिलाओं की तुलना में विकसित पूंजीवादी दुनिया में काम करने वाली महिलाओं से करता है, तो यह स्पष्ट है कि समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में उपलब्ध फायदे और लाभों ने महिलाओं की स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। अर्थव्यवस्था और समाज में योगदान के रूप में श्रम के पुनरुत्पादन को स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई थी। राज्य में बच्चों के पालन-पोषण और वृद्धों की देखभाल के लिए राज्य का पर्याप्त योगदान होता था।

समाजवादी दुनिया में महिलाओं को सस्ते श्रम का स्रोत नहीं बनाया गया। जाहिर है कि मातृत्व और अन्य पारिवारिक लाभों के साथ महिलाओं का श्रम महँगा पड़ता था।

संक्रमण की स्थिति में होने के बावजूद राज्य महिलाओं के विशेष अधिकारों को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर पाया है। निजी पूँजी, स्वाभाविक रूप से, उन महिला श्रमिकों में दिलचस्पी नहीं रखती है, जिन्हें विशेष रियायतें और लाभ दिए जाने हैं। इस लिहाज से पुरुषों को बिना झिझक के पसन्द किया जाता है। बेशक, महिला श्रमिकों को दी जाने वाली विशेष सुविधाओं को धीरे-धीरे वापस लेने की दिशा में यह एक कदम है। ज्यादातर देशों में पहले ही क्रेच जैसी सुविधा बहुत महँगी हो चुकी है। जब तक बाज़ार अर्थव्यवस्था में पूरी तरह से परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक महिलाओं को अपनी नौकरी और साथ ही श्रमिकों और माताओं के रूप में अपनी विशेष स्थिति खोनी पड़ेगी।

1.10 सारांश

औद्योगिक और विकासशील दुनिया में महिलाओं को श्रमिक के रूप में भर्ती करना और पूर्व-समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में उनका हाशिएकरण एक ही प्रक्रिया का हिस्सा है : कुल उत्पादन में श्रम की हिस्सेदारी को कम करना ही पूंजीवादी व्यवस्था का प्रयास होता है।

दुर्भाग्य से पूंजीवादी व्यवस्था के लिए 1970 के दशक में सामने आए संकट के प्रबन्धन के लिए पुनर्गठन ने संकट को और गहरा कर दिया। धन संचय की प्रक्रिया ने मानव सभ्यता के निर्वाह के लिए गम्भीर पर्यावरणीय चुनौतियों को जन्म दिया है। इससे बेरोज़गारी में इजाफा हुआ है। धन के केंद्रीकरण से नागरिक समाज में भ्रष्टाचार, अपराध, नासमझ वाली जातीय हिंसा और धार्मिक संघर्ष बढ़ा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हाल के दिनों में वित्तीय गतिशीलता ने जो कुछ और किया है वह एक अराजक स्थिति में पहुँच गया है। 1930 की तुलना में विश्व वित्तीय संरचना और उत्पादन संरचना को जितनी बारीकी से बुना गया है, उसके टूटने का खतरा और भी बड़ा है।

अब तक की उत्पादन प्रक्रिया का नारीवादी होना, या अन्य भागों में महिलाओं का हाशिये पर जाना, महिलाओं को साथ लाता है और उनके आन्दोलनों को मजबूत करता है, यह उन्हें इस अन्यायपूर्ण प्रणाली को पूरी तरह से खारिज करने में योगदान करने में सक्षम बनाता है।

1.11 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) विभिन्न देशों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव का वर्णन करें।

2) संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम और आर्थिक सुधारों के वृहद वैश्विक आर्थिक ढाँचे में महिलाओं की दशा की व्याख्या करें।

3) उद्योग और सेवा क्षेत्र में महिलाओं पर आर्थिक भूमण्डलीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है? उदाहरणों की सहायता से चर्चा करें।

1.12 संदर्भ

Baud, Isa and Smyth, Ines (Eds). (1997). *Searching for Security: Women's Responses to Economic Transformation,* Routledge Studies in Development and Society.

Bodrova, Valentina and Asker, Richard (Eds)(1985). *Working Women in Socialist Countries: The Fertility Connection*, ILO, Geneva.

Chousodovsky, Michael (1997). *Globalisation of Poverty,* Goa, India: Other India Press.

Custers, Peter(2009). *Capital Accumulation and Women's Labour in Asian Economies,* New Delhi: Vistar Publications.

Human Development Report 1995, 1997 to 2011 (UNDP).

Indian Journal of Labour Economics, (1997). Vol. 40, No. 3.

Kalapagam, U (1994).*Labour and Gender Survival in Urban India, New Delhi:* Sage Publications.

Moghadan, Valentine M.(ed). (2004). *Patriarchy and Economic Development,* Oxford: Clarendon Press.

Patel, Vibhuti (Ed.)(2009). *Discourse on Women and Empowerment*,Delhi: The Women Press.

The Economist, (1998). 'Women and Work.' A Survey, July 18-24.

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Patel, Vibhuti (Ed.)(2009). *Discourse on Women and Empowerment*,Delhi: The Women Press.

Moghadan, Valentine M.(ed). (2004). *Patriarchy and Economic Development,* Oxford: Clarendon Press.

Patel, Vibhuti (2004). Feminisation of Urban Poverty, Infochange, Issue 28 www.indochangeindia.org(accessed on November 9, 2014).

इकाई 2 श्रम का नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन

संरचना विभूति पटेल

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वाशिंगटन सहमति
2.4 वैश्विक उत्पादन
2.5 बहिःस्रोतन (ऑउटसोर्सिंग)
2.6 श्रम का नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन
2.7 निर्धनता और श्रमबल का स्त्रीकरण
2.8 सहस्राब्दी विकास लक्ष्य
2.9 सारांश
2.10 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न
2.11 सन्दर्भ
2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों में, विश्व में उत्पादन के तौर-तरीके में आया परिवर्तन व्यापार के उदारीकरण, तकनीकी परिवर्तन और श्रम के नए अंतर्राष्ट्रीय विभाजन द्वारा संचालित आर्थिक सुधारों से प्रेरित है। तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त कहता है कि देशों के बीच अन्तर इस बात का होता है कि वे क्या उत्पादित कर रहे हैं; बहुत से कुशल श्रमिक मिलकर कौशल-आधारित उत्पादों का उत्पादन करते हैं। नया व्यापार सिद्धान्त वस्तुओं के बीच भेद और अर्थव्यवस्थाओं की जगह देशों के बीच अन्तर को कम करने पर ज़ोर देता है : भूमण्डलीकरण देशों को लम्बे समय तक कम लागत में उत्पादन करने और विभिन्न किस्मों का विशेषज्ञ (जर्मनी में निर्मित बीएमडब्ल्यू, स्वीडन की वॉल्वो) बनाता है; व्यापार उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक चुनाव करने का विकल्प प्रदान करता है। भूमण्डलीकरण का अर्थ यह भी है कि श्रम का एक नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन सामने आया है। आर्थिक भूमण्डलीकरण, देशों में गहराई से आर्थिक पुनर्गठन और नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों ने उत्पादन की अनौपचारिक और विकेन्द्रीकृत प्रक्रियाओं को जन्म दिया है, जिसने औद्योगिक बाज़ारों और विकासशील देशों में श्रम बाज़ारों और काम की दुनिया को बदल दिया है। वहीं इस प्रक्रिया में श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा और वैधानिक सुरक्षा समाप्त कर दी गई है। आर्थिक भूमण्डलीकरण ने देशों में अर्थव्यवस्था की गहरी पुनर्संरचना की है और नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों ने उत्पादन को अनौपचारिक और ध्रुवीकृत किया है जिसकी वजह से श्रम बाज़ार में परिवर्तन आया है। इससे औद्योगिक और विकासशील देशों में काम की दुनिया बदली है। इस प्रक्रिया में श्रमिकों की सामाजिक और वैधानिक सुरक्षा समाप्त कर दी गई है।

जेंडर भेदभाव (gender discrimination) के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रभावों अर्थात् तुलनात्मक लाभ (व्यापार) और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रवाह के साथ जेंडर असमानता के सम्बन्धों को सावधानी से जाँचने की ज़रूरत है। यह इकाई विभिन्न रूपों और देशों में जेंडर भेदभाव की

सीमा पर चर्चा करती है। साथ ही उनके अन्तर्सम्बन्ध (लिंकेज) के अनुभवजन्य परीक्षणों के परिणामों को भी प्रस्तुत करती है। ये परिणाम बताते हैं कि अकुशल–श्रम–गहन वस्तुओं में तुलनात्मक लाभ के साथ लिंग असमानता सकारात्मक रूप से जुड़ी हुई है। मतलब उन वस्तुओं के उत्पादन पर भी जेंडर पूर्वाग्रह के प्रभाव को गहराई से महसूस किया जा सकता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आपः

- श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन के सन्दर्भ में महिलाओं के श्रम की आर्थिक वास्तविकता को जाँचने के लिए सैद्धान्तिक समझ और विश्लेषणात्मक उपकरण उपलब्ध करा सकें;
- वाशिंगटन सहमति, वैश्विक उत्पादन, आउटसोर्सिंग और सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (एमडीजी) जैसे मुद्दों को विशेष रूप से स्पष्ट कर सकें;
- समकालीन वैश्विक आर्थिक विमर्श में प्रयुक्त अवधारणाओं, शब्दावली और संकेतकों पर चर्चा कर सकें; और
- सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक संरक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकें।

सहस्राब्दी विकास लक्ष्य का पारस्परिक विरोध वाशिंगटन के शब्दों में है, जो सिर्फ राजकोषीय विवेक और बाज़ार के बारे में बात करता है, न कि सामाजिक क्षेत्र के स्वास्थ्य के बारे में। महत्वपूर्ण यह है कि विकसित देशों को बताया जाए कि विश्व की आबादी में विकासशील देश की हिस्सेदारी अधिक है और वे खैरात पाने के लिए किसी कतार में नहीं खड़े हैं। वर्तमान में विश्व की आबादी में युवाओं की हिस्सेदारी अधिक है। इसलिए ये निवेश उनके और उनके भविष्य के लिए हैं। सहस्राब्दी विकास लक्ष्य बार-बार दोहराता रहा है कि शान्ति और सुरक्षा के लिए एकमात्र रास्ता यही है कि लोगों के विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। इक्कीसवीं सदी का पूंजीवाद महिलाओं को अपना अन्तिम उपनिवेश मानता है जिसमें बाज़ारवाद का परिणाम है कि वे हाशिये पर चली गई हैं। मानव दुख, अफ्रीका में भुखमरी, विकासशील देशों में निर्धनता, यह विभाजन न सिर्फ उत्तर और दक्षिण बल्कि उत्तर के दक्षिण (विकासशील देशों में अति समृद्ध) और दक्षिण (औद्योगिक दुनिया में गरीब समूहः श्रमिक, घरों की महिला मुखिया, नस्लीय अल्पसंख्यक, वरिष्ठ नागरिक) उत्तर में श्रम के नए अंतर्राष्ट्रीय विभाजन (एनआईडीएल) को विशिष्ट रूप से चिन्हित किया गया है।

श्वेत महिलाओं का गृहिणीकरण और निर्धन देशों की अश्वेत महिलाओं और कामकाजी लड़कियों का भारी शोषण, उत्पादन में अनौपचारिक व्यवस्था, श्रम मानकों का उल्लंघन, व्यावसायिक सुरक्षा की कमी, आउटसोर्सिंग, मज़दूरी की कम दर, गृह-आधारित कार्य, उदासीनता, गैर-अदृश्य कार्य को पुरस्कृत करना और सामूहिक सौदेबाजी का अभाव सहित एनआईडीएल ने इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है। विभिन्न स्तरों वैश्विक, सीमापारीय, अन्तर्राज्यीय, अन्तर-जिला, ग्रामीण-शहरी पर महिलाओं का पलायन हो रहा हैः इसका परिणाम यह हुआ है कि कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प और कृषि कार्य में पारम्परिक रूप से कुशल महिलाएँ नई व्यवस्था में अकुशल साबित हो रही हैं। वर्ल्ड सोशल फोरम, सामाजिक आन्दोलनों, जन संघर्षों, पर्यावरण नारीवादियों और मानव अधिकार संगठनों की ओर से जन विरोधी नीतियों को प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है।

वाशिंगटन सहमति (1992) के प्रभाव को डैमेज कण्ट्रोल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने इसकी प्रतिक्रिया में आठ सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों के ज़रिये विश्व के नेताओं को वर्ष 2000 में एक मंच पर आमन्त्रित किया। आठ सहस्राब्दी विकास लक्ष्य निम्नलिखित हैं–

1) गरीबी और भूख का उन्मूलन
2) सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धि
3) जेंडर समानता और सशक्तीकरण
4) बाल मृत्युदर में कमी
5) मातृ स्वास्थ्य में सुधार
6) एचआईवी/एड्स, मलेरिया व टीबी से लड़ाई
7) पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना
8) उन्नति के लिए वैश्विक साझेदारी शुरू करना

2.3 वाशिंगटन सहमति

वाशिंगटन सहमति (सन्धि) मजबूती से बाज़ार-आधारित दृष्टिकोण की तरफ सामान्य अभिविन्यास का संकेत करती है (कभी-कभी ये आमतौर पर बाज़ारवाद और नव-उदारवाद के रूप में भी)। वाशिंगटन सहमति जैसी सन्धि का इस्तेमाल ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ लेखकों के सुझाव और नीति आदेशों को सन्दर्भित करता है जो विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। विलियमसन ने अपने दस मूल, संकीर्ण रूप से परिभाषित तरीकों को मातृत्व और पूर्ण व्यवस्था के दर्जे को व्यापक तौर से अधिगृहीत कर लिया है, लेकिन वास्तव में व्यापक नव-उदारवाद घोषणापत्र कभी भी वाशिंगटन सहमति को अपनाता हुआ नहीं दिखा और आप इस तरह से कह सकते हैं अब यह मृतप्राय है।

वाशिंगटन सहमति लम्बे समय से विवाद से जुड़ा हुआ है। यह समझौते में आंशिक रूप से कमी को दर्शाता है। व्यापकता और संकीर्णता के बीच परिभाषा में अन्तर दिखता है। लेकिन गुण के आधार पर विभिन्न नीतियों में ठोस अन्तर नज़र आता है (इसे लेकर काफी बहसें हुईं मगर कोई नतीजा नहीं निकला)। यह साफ़ नहीं हो पाता है कि विभिन्न देशों ने परिभाषित आम सिफ़ारिशों को अपनाया या उसे खारिज कर दिया। इस लेख में कुछ चर्चित आलोचकों ने इस मुद्दे को उठाया। उदाहरण के लिए, विकासशील देशों को वैश्विक बाज़ारों के लिए खोलने पर सहमति के साथ, या जो वे घरेलू बाज़ार की शक्तियों के प्रभाव को मजबूत करने पर अत्यधिक ध्यान देने के रूप में देखते हैं, यक़ीनन यह राज्य के प्रमुख कार्यों के खर्च को बढ़ाता है। आम सहमति में जो बिन्दु छूट गए थे, उन्हें शामिल करने के लिए इसकी समीक्षा की गई। इनमें कमज़ोर वर्गों के लिए अवसर बढ़ाने और उनके संस्थान और भवन-निर्माण की नीतियाँ जोड़ने जाने की बात कही गई। इन विवादों के बावजूद कई बड़े लेखक और विकास संस्थान सामान्य हिस्सेदारी के बजाय 'सभी के लिए एक ख़ाका' के फार्मूले को स्वीकार करेंगे? कुल मिलाकर कहा जाए तो रणनीतियों को अलग-अलग देशों की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए।

अधिकतर आलोचनाएँ व्यापार के उदारीकरण और सब्सिडी खत्म करने पर केन्द्रित रही हैं। ख़ासतौर पर सबसे कठोर आलोचना कृषि-क्षेत्र का दायरा सिकुड़ने की हुई। हालाँकि प्राकृतिक संसाधनों वाले देशों में इन संसाधनों का दोहन करने वाले उद्योगों के निजीकरण पर ध्यान केन्द्रित किए जाने की आलोचनाएँ की गईं।

मूल रूप से नीतियों की कल्पना मोटे तौर पर लैटिन अमेरिका में संकट की प्रतिक्रिया के रूप में की गई थी, लेकिन 2010 तक लैटिन अमेरिका के कई देशों का नेतृत्व समाजवादी कर रहे थे या वामपन्थी सरकारें मौजूद थीं। अर्जेंटीना और वेनेजुएला जैसे देशों ने

वाशिंगटन की सहमति को कुछ हद तक अपनाया। इन देशों ने वाशिंगटन सहमति नीतियों के खिलाफ़ अभियान चलाया। लैटिन अमेरिका के ब्राजील, चिली और पेरू जैसे देशों की वामपन्थी सरकारें रहीं। इन सभी देशों ने व्यावहारिक रूप से विलियमसन की सूची समेत बड़ी संख्या में इन नीतियों को अपनाया। लेकिन ये साथ-साथ बाज़ारवाद की आलोचना भी करते रहे। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की नीतियाँ अमेरिकी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने वाली थीं। इसी तरह जोसेफ स्टिग्लिट्ज और डेनी रोडरिक ने आईएमएफ की नीतियों को चुनौती देकर उसका वर्णन किया है। अमेरिकी कोष के लिए स्टिग्लिट्ज कहते हैं कि एकल अर्थव्यवस्थाओं के प्रबन्ध को लेकर 'एक ख़ाका में सभी में फिट' बैठता है। स्टिग्लिट्ज़ के अनुसार आईएमएफ द्वारा सुझाया गया उपचार बहुत सरल हैः बिना साइड-इफेक्ट या बिना प्राथमिकता का ख्याल रखे एक खुराक, और तेजी से स्थिर करना, उदारीकृत करना और फिर निजीकरण करना है।

सुधार उस तरह से नहीं हुए जैसा कि उन्होंने अपेक्षा की, जबकि लैटिन अमेरिका के विकास में पूर्ण रूप से सुधार हुआ जैसा कि वास्तव में सुधारकों ने उम्मीद की थी। 1990 के दशक में उप-सहारा अफ्रीका में सफलता की कहानियाँ बहुत कम थीं। बाज़ारोन्मुख सुधारों ने बढ़ते सार्वजनिक स्वास्थ्य, आपातकाल से निपटने के लिए कोई फार्मूला नहीं दिया, जिसके चलते यह महाद्वीप अलग-थलग पड़ गया। इस बीच आलोचकों का तर्क रहा कि निराशाजनक परिणामों ने मानक एजेंडे की अनुपयुक्तता को लेकर चिन्तित कर दिया है। विश्व बैंक ने पुरज़ोर ढंग से विनम्रता, नीतिगत विविधता, चयनात्मक, सामान्य सुधारों और प्रयोगों की ज़रूरत पर बल दिया।

विश्व बैंक की वर्ष 1990 की आर्थिक विकास रिपोर्टः 1990 में कुछ घटनाक्रमों से सीख मिली। कुछ देशों के उत्पादन में गहरी और लम्बी गिरावट देखी गई। उनकी आर्थिक व्यवस्था साम्यवाद से बाज़ारवाद में परिवर्तित हुई। इस परिवर्तन में एक दशक से भी अधिक, कुछ पूर्व साम्यवादी देशों ख़ासकर पूर्व सोवियत संघ के कुछ हिस्से 1990 के उत्पादन स्तर तक नहीं पहुँच पाए। वर्ष 1990 के दौरान कई उप-सहारा अफ्रीकी अर्थव्यवस्थाएँ उड़ान भरने में नाकाम रही थीं। इसके बावजूद नीति सुधार के लिए कोशिशें की गईं। इस दौरान राजनीतिक और बाहरी वातावरण में परिवर्तन और विदेशी मदद जारी रही। युगांडा, तंजानिया और मोज़ाम्बिक जैसे देश उन देशों में से थे जिन्होंने कुछ सफलता पाई लेकिन वे ज्यादा देर तक मजबूती के साथ इन चीजों को कायम नहीं रख सके। लैटिन अमेरिका, पूर्वी एशिया, रूस और तुर्की में वित्तीय संकट के हालात लगातार बने रहे। वर्ष 1990 की पहली छमाही में संकट के बाद भी लैटिन अमेरिका उस दशक में सही हालात में आने से वंचित रहा। उस अवधि में हुए युद्ध और वर्ष 1950–80 के बीच शुरू हुई विश्व अर्थव्यवस्था के मुकाबले लैटिन अमेरिका में प्रति व्यक्ति जीडीपी में वृद्धि कम हुई थी। लैटिन अमेरिका की आर्थिक क्रान्ति में अर्जेंटीना को पोस्टबॉय के रूप में जाना गया, लेकिन साल 2002 में वहाँ भी संकट के हालात पैदा हो गए।

हाल के वैश्विक वित्तीय संकट के अन्य परिणामों के बीच कार्यसम्बन्धी दृष्टिकोण की तुलना में स्थानीय मॉडल में भरोसे की मजबूती पैदा करना ज़रूरी है। बीजिंग सन्धि में विचार के इस स्कूल के कुछ तत्वों को संक्षेपित किया गया जिसमें कि वे देश विकास और सुधार के रास्ते खुद ही तलाशें।

भूमण्डलीकरण विरोधी आन्दोलन

व्यापार उदारीकरण के कई आलोचकों जैसे कि नोम चोम्स्की, तारिक अली, सुसन जॉर्ज और नाओमी लीन वाशिंगटन सन्धि को अविकसित अर्थव्यवस्थाओं के श्रम बाज़ार को ज्यादा विकसित अर्थव्यवस्था की कम्पनियों के शोषण के रूप में देखते थे। बाजारू ताकतों के

मुताबिक प्रशुल्क (टैरिफ) और अन्य व्यापार में निर्धारित बाधाओं को कम करके सीमा के पार वस्तुओं की मुक्त आवाजाही की अनुमति देती है, लेकिन श्रमिक को वीजा या काम के ज़रूरत के लिए मुक्त रूप से आवाजाही की अनुमति नहीं थी। बढ़े मूल्यों पर आलोचक तर्क देते हैं कि अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में एक ऐसे आर्थिक वातावरण का निर्माण हुआ जो वस्तुओं के उत्पादन में सस्ते श्रम का इस्तेमाल करता है और फिर उसे विश्व की अमीर अर्थव्यवस्थाओं को बिक्री के लिए निर्यात कर दिया जाता है। इसके साथ ही मूल्य बढ़ाने के सन्तुलन को बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए लाभ माना गया है। इसकी आलोचना यह है कि तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था में श्रमिक गरीब ही हैं। मुद्रास्फीति की कमी पूरी होने पर कहा जाता है कि वे श्रमिक गरीब ही रह जाते हैं जो व्यापार उदारीकरण से पहले रोज़गार में थे। यही कारण है कि पहली दुनिया में श्रमिक बेरोज़गार हो जाते हैं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के धनी मालिक और भी अमीर होते जाते हैं।

भूमण्डलीकरण विरोधी आलोचकों का दावा है कि प्रथम विश्व के देशों ने विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे संगठनों के जरिए राजनीतिक दबाव और रिश्वतख़ोरी में आर्थिक रूप से कमज़ोर देशों की सन्धि के नव-उदारवाद की नीतियों का वर्णन किया है। वे तर्क देते हैं कि वाशिंगटन सन्धि वास्तव में लैटिन अमेरिका में किसी भी आर्थिक उछाल का कारण नहीं बनी है, बल्कि गम्भीर आर्थिक संकटों के कारण और बाह्य ऋण संगठनों को लाचार बनाने वाले समूह योजनाबद्ध रूप से देश को प्रथम विश्व के सामने पेश करते हैं।

तीसरी दुनिया में छोटे, धनी अभिजात वर्ग के विकास को सुनिश्चित करने के लिए नीतियों के कई नुस्खों की आलोचना होती है, जो राजनीतिक शक्ति को बढ़ाएँगे और श्रम-शोषण की स्थिति बनाए रखने का स्वार्थ भी रखते हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णित है कि आलोचकों के कुछ विशिष्ट तथ्यात्मक परिसरों (विशेष रूप से समष्टि-आर्थिक पक्ष) को प्रतिवादियों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो वाशिंगटन सन्धि के सारे आलोचकों में से किसी ने भी इसे स्वीकार नहीं किया है। कुछ उदाहरणों के तौर पर कई विकासशील देशों में मुद्रास्फीति कई दशकों तक निचले स्तर पर रही। विदेशी निवेश से निर्मित कारखानों में श्रमिकों को उच्च मज़दूरी और बेहतर काम करने का माहौल मिला जो देश के घरेलू स्वामित्व वाले कार्य स्थलों से बेहतर था। पिछले कुछ वर्षों से लैटिन अमेरिका की आर्थिक वृद्धि दर ऐतिहासिक रूप से ऊँची रही है और कई साल पहले की तुलना में इन अर्थव्यवस्थाओं के आकार के सापेक्ष ऋण का स्तर औसतन काफी कम है।

इस व्यापक आर्थिक प्रगति के बावजूद लैटिन अमेरिका में गरीबी और असमानता का स्तर उच्च बना हुआ है। कुल एक करोड़ पैंसठ लाख लोगों में करीब तीन में से एक व्यक्ति जीवित रहने के लिए रोज़ाना कम से कम दो डॉलर कमा पाता है। मोटे तौर पर एक तिहाई आबादी के पास बिजली या बुनियादी स्वच्छता तक की पहुँच नहीं है, और अनुमानतः एक करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। हालाँकि ये समस्याएँ नई नहीं हैं। साल 1950 में लैटिन अमेरिका दुनिया में सबसे अधिक आर्थिक रूप से असमान क्षेत्र था, तब से राज्य-निर्देशित आयात-प्रतिस्थापन और बाद में बाज़ारोन्मुख उदारीकरण के चलते यह जारी रहा है।

लैटिन अमेरिका में कुछ सामाजिक राजनीतिक नेता मुखर रहे हैं और वे वाशिंगटन सन्धि के आलोचक के तौर पर भी जाने गए हैं। उनमें वेनेजुएला के राष्ट्रपति ह्यूगो शावेज, क्यूबा के पूर्व राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो, बोलेवियन राष्ट्रपति इवो मोरालेस और इक्वेडोर के राष्ट्रपति राफेल कोरेया शामिल हैं। अर्जेंटीना में पेरोनिस्ट पार्टी की सरकार के नेस्टरो कर्चनर ने नीतिगत उपाए किए जो कम से कम सन्धि की नीतियों के प्रतिनिधित्व का खण्डन करते हैं।

अन्य लैटिन अमेरिकी वामपन्थियों ने अलग तरीका अपनाया। चिली में सोशलिस्ट पार्टी, पेरू में ऐलन ग्रेसिया, उरुग्वे में टाबारे वाकेज और ब्राजील में लुला ने सरकारों का नेतृत्व किया। इन देशों ने वाशिंगटन सन्धि के तहत आर्थिक नीतियों का वर्णन किया। साथ ही अभ्यास की निरन्तरता के स्तर को उच्च बनाए रखा। लेकिन इस तरह की सरकारों ने एक साथ उत्पादकता बढ़ाने और गरीबों की मदद करने के लिए सीधे तौर पर लक्षित उपायों से इन नीतियों के पूरक की माँग की है, जैसे कि शिक्षा में सुधार और बच्चों के स्कूल में रहने पर ही उनके परिवारों को सब्सिडी दी जाए।

नव–कीनेसियाई आलोचनाएँ

इस सन्धि के नव–कीनेसिएन और पोस्ट कीनेसिएन आलोचकों ने नीतियों को अन्तर्निहित करते हुए तर्क दिया कि ये गलत तरीके से निर्धारित हैं और सफल होने के लिए बेहद कठोर हैं। उदाहरण के लिए, माना गया कि लचीले श्रम कानून नए रोज़गार पैदा करने वाले थे, लेकिन लैटिन अमेरिका से मिले आर्थिक प्रमाण के ये बिन्दु अनिर्णायक थे। इसके साथ ही कुछ तर्क जोड़े गए कि नीतियों में इन पैकेज में देशों के बीच आर्थिक और सांस्कृतिक अन्तर को ध्यान में नहीं रखा गया। कुछ आलोचकों ने तर्क दिया कि तीव्र आर्थिक विकास की अवधि और आर्थिक संकट के दौरान किसी भी तरह से नीतियों के इस समुच्चय को लागू करना चाहिए था।

2.4 वैश्विक उत्पादन

भूमण्डलीकरण ने तेज वृद्धि दर के परिणामस्वरूप अपनी ओर तेजी से ध्यान खींचा। पूरे ग्रह पर आमजन, वाणिज्य, ज्ञान और संस्कृति के प्रसार व एकीकरण की सभ्यता शुरू से ही उन्नत है। हाल की पीढ़ी माइक्रोचिप प्रौद्योगिकी के चमत्कार और कण्टेनर शिपिंग से प्रेरित है, लेकिन ये सिर्फ भूमण्डलीकरण की तीव्रता के विवादास्पद परिणाम हैं। उच्च और मध्यम आय वाले देशों की गति स्पष्ट है। ज्यादातर घरेलू सामान और कपड़े एक ही देश चीन से आयात किए जाते हैं : बैंकिंग और बीमा को लेकर साधारण पूछताछ में भारत में एक कॉल सेंटर हो सकता है; दुनियाभर में भ्रमण करने वाला एक कार्यकारी सोशल मीडिया के ज़रिये पारिवारिक घनिष्ठता को बनाए रख सकता है।

इण्टरनेट तकनीक ने ज्ञान और बातचीत के लिए हमारी क्षमता में क्रान्ति ला दी है, ऐसी अवस्था में दक्षिण एशिया और अफ्रीका के क्षेत्रों में कम्प्यूटर चलाने के लिए बिजली उपलब्ध नहीं करवाई गई है। जबकि हमारी सुपर-मार्केट कल्चर की वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाएँ दुनिया भर में 900 मिलियन से ज्यादा भूख से पीड़ितों को खाद्य उत्पादों की आपूर्ति करती हैं। इसलिए समकालीन भूमण्डलीकरण व्यापक वैश्विक असमानता से जुड़ा हुआ है। भूमण्डलीकरण के असफल लोगों के लिए जारी प्रभावी विकास मॉडल औपनिवेशिक खोज के विजेताओं की चिन्ता को दर्शाता है। इस छोटे से वक्त में दुनिया के प्रमुख निगमों के साथ प्रस्तुत किया गया कि वे और क्या चाहते हैं – बाज़ार के आकार में बड़ी वृद्धि? इसलिए ही वैश्विक अर्थव्यवस्था का एकीकरण भूमण्डलीकरण की प्रेरक शक्ति बन गया। कई औद्योगिक एवं वित्तीय निगम विकासशील देशों की तुलना में तेजी से बड़ी संस्थाएँ बन गईं जिनमें वे शामिल थे।

भूमण्डलीकरण से बहिष्कृत

श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन का वाशिंगटन सन्धि में वर्चस्व था क्योंकि वर्ष 1980 में विश्व बैंक और आईएमएफ की शर्तों के साथ उसे सबसे गरीब देशों पर लागू कर दिया गया। लेकिन विकास के लिए आर्थिक ख़ाके के रूप में यह सन्धि आपदा साबित हुई। सरकार ने

स्वास्थ्य और शिक्षा के खर्चों पर रोक लगा दी, कृषि और नवजात उद्योगों के लिए राज्य सहायता का समन्वय करने वाली संस्थाओं को समाप्त कर दिया गया और गरीब ग्राहकों की ज़रूरतों को ध्यान में रखे बिना ही उनका निजीकरण कर दिया गया। नयी सहस्राब्दी में ये परिणाम स्पष्ट थे। जब-जब विकसित अर्थव्यवस्थाएँ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश में तेजी से बढ़ीं, वैश्विक गरीबी एक समानान्तर विस्तार वाली दुनिया में और बढ़ गई। अफ्रीका में आर्थिक विकास अपेक्षाकृत मजबूत रहा, लेकिन उसका रुझान सभ्रान्त शहरी बनने की तरफ ही बढ़ा, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग साधारण ही रहे। भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था में भागीदारी के तौर पर बेहद सफल रहा, उसके बाद भी विश्व की एक तिहाई गरीबी इस देश में बनी हुई है। वर्ष 1990–2005 के बीच चीन द्वारा गरीबी दर में कमी लाने की सफलता को अगर वैश्विक आँकड़ों से हटा दिया जाए तो रोज़ाना 1.25 डॉलर की अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है, जो भूमण्डलीकरण के लिए अशुभ सन्देश है।

जो हमारी दुनिया को एक वैश्विक गाँव के रूप में वर्णित करते हैं, उसमें हम अपनी बढ़ती सामान्य-सी जीवन शैली में एक-दूसरे को समझते और समर्थन करते हैं और भूमण्डलीकरण के अवसरों से कई देशों के बहिष्कृत करने को नज़रअन्दाज़ भी कर सकते हैं।

परस्पर दुनिया में एक सटीक प्रतिनिधित्व और क्रियाएँ हैं। ख़ासकर उपभोक्ता संस्कृति ज़रूरत से ज्यादा लोगों पर अनुचित प्रभाव डालती है, जो इसके प्रतिफल का आनन्द लेने में असमर्थ है। तीन प्रमुख समकालीन संकटों की व्याख्या वैश्विक मन्दी, खाद्य असुरक्षा और जलवायु परिवर्तन के रूप में की जा सकती है।

2.5 बहिःस्रोतन (आउटसोर्सिंग)

फ्रांस में वर्तमान में चेक एम्प्लॉई–सर्विस यूनिवर्स पॉलिसी लागू है, जिसमें यह देश घरों द्वारा भुगतान वाली घरेलू सेवाओं के लिए सब्सिडी देता है। चेक एम्पलोई सर्विस और टाइटर एम्पलोई सर्विस योजना का मूल्यांकन और इसके अग्रदूत यूरोपीय संघ के स्तर पर बेहद सकारात्मक रहे हैं। सवाल करने की ज़रूरत है कि महिलाओं के अवैतनिक घरेलू श्रम को राज्य के समर्थित आउटसोर्सिंग ने किस सीमा तक उसे कम करने– जीवन संघर्ष और समय के अभाव का सामना करने में मदद की है। यह प्रदर्शित करता है कि इन योजनाओं का प्रभाव लाभान्वित परिवारों की सीमा के अनुसार सीमान्त और घरेलू सेवाओं की खरीद करने वाली महिलाओं से प्राप्त की गई राशि के सन्दर्भ में है। दरअसल, इस तरह की योजनाओं को घरेलू श्रम के असमान लैंगिक विभाजन की समस्या को बढ़ाने के लिए लागू किया जाता है। ऐसा इसलिए कि वे घरेलू काम को अच्छी तरह से बन्द करके, कम से कम महिलाओं के लिए स्थानान्तरित करके आस-पास की जेंडर रूढ़िबद्धता को मजबूत कर सकें। इसके परिणामस्वरूप पुरुषों एवं महिलाओं के बीच घरेलू कार्यों के पुनर्वितरण का प्रश्न एक तरफ़ रह जाता है।

हम जानते हैं कि भारत के सुदूरवर्ती गाँवों में रहने वाले गरीब लोगों द्वारा अनुभव की जाने वाली हताश परिस्थितियों, शिक्षा और भोजन की कमी हो रही है। लेकिन महिलाओं के बारे में क्या, जो भारत के भीतर आउटसोर्सिंग इण्डस्ट्री में सॉफ्टवेयर, कॉल और अरबों डॉलर के लेन-देन की प्रक्रियाओं में शामिल हैं।

द हैकेट समूह के मुताबिक संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ ने पिछले दो सालों (2010–12) में 1.1 मिलियन नौकरियाँ खो दी हैं। कुछ नौकरियाँ खराब अर्थशास्त्र या

नवाचार के चलते पूरी तरह से लुप्त हो गई जबकि अधिकांश आउटसोर्स किए गए थे। हैकेट का मानना है कि 2014 तक 1.3 मिलियन अतिरिक्त नौकरियाँ समाप्त होंगी। इन नौकरियों को कम वेतन वाले बाज़ारों में स्थानान्तरित करना बैलेंस शीट पर अच्छा तो लगता है, लेकिन अब वक्त यह पूछने का है कि क्या हमने यौन उत्पीड़न को भी आउटसोर्स किया है।

अठ्ठासी प्रतिशत (88%) उत्पीड़न से पीड़ित हैं

उत्पीड़न की प्रभावित दर 88 प्रतिशत है। नवंबर, 2010 में नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर ट्रॉन्सफोर्मिंग की रिपोर्ट में बताया गया भारत में आउटसोर्सिंग समुदाय के भीतर 88 प्रतिशत महिलाओं ने नौकरियों के दौरान उत्पीड़न महसूस किया। 83 प्रतिशत से ज्यादा महिलाओं ने इसकी सूचना तक नहीं दी। भारत के आईटी समुदाय में यौन उत्पीड़न कोई नई समस्या नहीं है, जो काफी सीमा तक भारतीय आउटसोर्स करने वालों और कुछ पश्चिमी फर्मों से बना है। साल 2008 में एम.जे. सोनिया ने अपने दो वरिष्ठ अधिकारियों के यौन उत्पीड़न से तंग आकर आत्महत्या कर ली थी।

अपने बॉस की शिकायत करना मुश्किल है

अपने बॉस के बारे में शिकायत करना सामाजिक रूप से अस्वीकार्य है। सेंटर फॉर ट्रांसफोर्मिंग के भारत में संकलित आँकड़ों के मुताबिक यौन उत्पीड़न की 91 प्रतिशत से ज्यादा पीड़ित महिलाएँ इसकी शिकायत तक नहीं करती हैं। इसलिए कि उन्हें और भी पीड़ित होने डर होता है। जब महिलाएँ उस बॉस के बारे में शिकायत करने के बारे में सोचना छोड़ देती हैं जो पहले से ही 72 प्रतिशत यौन उत्पीड़न का अपराधी है।

भारत में प्रवेश के दौरान नोकिया और सीमेंस ने खूब काम किया; वे अपने साथ मानव संसाधन प्रथाओं को भी ले आईं, साथ ही एक संरचना को स्थापित किया लेकिन वो सांस्कृतिक अवरोधकों के चलते असफल रहीं। इन आदर्श संरचनागत सिद्धान्तों में था कि महिलाएँ अपने उत्पीड़न की शिकायत करेंगी, लेकिन भारतीय ढाँचे में यह मुमकिन नहीं हो सका। महिलाएँ अपनी समस्याओं और संगठनों के बारे में शिकायत करने से डरती हैं। हालाँकि गलती से भी इन समस्याओं और संगठन की रिपोर्टिंग से महिलाओं को डर लगता है। इस बाधा को भी दूर करने का काम उनके लिए मुश्किल भरा होता है।

भारत में काम करने के लिए नोकिया और सीमेंस जैसी कंपनियाँ देख रही हैं कि श्रेष्ठ प्रथाओं को समझना उनके लिए चुनौतीपूर्ण होगा। जब यौन उत्पीड़न के चलते आत्महत्या की घटनाएँ सामने आ रही थीं उसी दौरान भारत की सबसे बड़ी आउटसोर्स करने वाली कंपनी इंफोसिस ने यौन उत्पीड़न विरोधी पहल (एएसएचआई) की। कंपनी ने ये नियम कर्मचारियों को अपनी शिकायत दर्ज कराने के लिए तैयार किए थे। इंफोसिस यौन उत्पीड़न के मामलों को अच्छी तरह समझती थीः साल 2003 में इंफोसिस बोर्ड के सदस्य रहते हुए फणीश मूर्ति ने अपनी सहायक का यौन उत्पीड़न किया था। कैलीफोर्निया में मूर्ति के खिलाफ़ दायर मुकदमे के बाद उन्हें 3 मिलियन डॉलर का भुगतान करना पड़ा था।

स्वस्ति मिटर ने विकासशील देशों में सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महिलाओं के रोज़गार और गुणवत्ता को लेकर उनके अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्वास के प्रभावों की तलाश की। उनकी बात आईटी सेवाओं पर केन्द्रित होती जैसे डाटा एंट्री, चिकित्सा प्रतिलिपि और कॉल सेंटर में ग्राहक सेवा। यह वैश्विक कंपनियों द्वारा उच्च वेतन वाले देशों से कम वेतन वाले देश के लोगों को सेवा क्षेत्र की नौकरियों के हस्तान्तरण में तेजी लाने के सन्दर्भ में यह कदम उठाया गया था। स्वस्ति ने उन चुनौतियों और अवसरों का आंकलन किया जिसके कारण

भारत, घाना और फिलीपींस जैसे देशों में लाखों नौकरियाँ महिलाओं और पुरुषों के लिए आ गयीं। उन्होंने नीति निर्माताओं और एजेंसियों को हस्तक्षेप के क्षेत्रों का सुझाव दिया ताकि इण्टरनेट अर्थव्यवस्था में ऐसे अवसर बनाए जाएँ जो लैंगिक रूप से स्थायी व समान रूप से वितरित हों। हस्तक्षेप के मानस के साथ उन्होंने गतिविधियों और व्यवसायों का जिक्र किया, जहाँ कुशलता पर्याप्त साबित नहीं हो रही थी। इस तरह कुशलता के लिए प्रशिक्षण अपेक्षाकृत अभी तक सस्ते हैं, ऐसे में सुविधाओं से वंचित महिलाओं के लिए इन्हें राष्ट्रीय सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के सहयोग से आसान बनाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने निजी क्षेत्र को इस रणनीतिक हस्तक्षेप को हिस्सा बनाने का जिम्मेदार ठहराया है।

भारत में सूचना का प्रमुख व्यवसाय रहा है। सूचना संसाधन की नौकरियाँ प्राप्त करने और विकसित देशों से लेकर विकासशील लोगों तक काम आउटसोर्स करने में भारत अब तक सफल रहा है। स्वस्ति ने अपने हाल के सर्वे में पाया कि भारतीय कंपनियों में महिलाओं की भूमिका विदेशी ग्राहकों को सेवाएँ उपलब्ध करवाना होता है। जैसा कि उनका कहना है कि बड़ी संख्या में जो महिलाएँ बेरोज़गार रह जाती हैं या कम आकर्षक पेशे के लिए भी बच जाती थीं उनके लिए नए रोज़गार के अवसरों ने आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण को एक अभूतपूर्व पैमाने पर बढ़ावा दिया है। स्वस्ति ने अपने अवलोकन और प्रलेखन से निकले निष्कर्ष में एशिया या अफ्रीका में भारत की सफलता को फिर से दोहराने की सम्भावनाओं पर चर्चा की है।

भारत के बहुत से युवाओं को एक ही तरह के कार्य से शोषित किया जा रहा है, जहाँ वादा कुछ और किया जाता है और वास्तव में उन्हें दिया कुछ और जाता है। वास्तव में एक अच्छी वेतन वाली आउटसोर्सिंग नौकरी के पीछे विभिन्न शिफ्टों में बहुत सा काम, महत्वाकांक्षी लक्ष्य, तंग समय सीमा, लगातार फोन की घण्टियाँ, असभ्य लोगों के फोन कॉल्स से निपटना शामिल है।

प्रगतिशील भारत के 7 मिलियन से अधिक आउटसोर्सिंग श्रमिकों में से बहुत के लिए यह एक ज्वलन्त घटना है। यह औद्योगिक बॉस (बीओएसएस) कहलाती है यानी बर्न आउट स्ट्रेस सिण्ड्रोम। चिकित्सकों के मुताबिक बीओएसएस कॉल सेंटर के एक तिहाई श्रमिकों को शारीरिक रूप से प्रभावित करती है। इससे उनमें थकान, अनिद्रा, बायोरिदम्स में परिवर्तन, भूख न लगना, जठरान्त्र समेत अन्य समस्याएँ आने लगती हैं। यहाँ पीठ और कन्धे दर्द जैसी समस्याएँ सामान्य हैं। साथ ही कम्प्यूटर, हेडफोन व अन्य उपकरणों के सम्पर्क में आने से आँख और कान सम्बन्धित बीमारियाँ भी हो जाती हैं।

आगे बढ़ने से पहले अभी तक आपने जो अध्ययन किया उसका आंकलन करें।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) निम्नलिखित से क्या समझते हैं?

   अ) वाशिंगटन सन्धि

ब) आउटसोर्सिंग

2) वैश्विक उत्पादन का महिला श्रमिकों पर क्या प्रभाव पड़ा?

इस अनुभाग में आप भूमण्डलीकरण के परिणाम यानी श्रम के नए अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के बारे में पढ़ेंगे।

2.6 श्रम का नया अंतर्राष्ट्रीय विभाजन

बहुराष्ट्रीय निगमों ने लम्बे समय बाद महसूस किया है कि वेतन बिल को कम करने और मुनाफे को बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीका उत्पादन प्रक्रियाओं के कुछ हिस्सों को भारत, श्रीलंका, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, फिलीपींस, थाईलैंड जैसे देशों में स्थानान्तरित कर देना है। एशियाई महिलाओं के सस्ते श्रम से मुनाफा बढ़ाने को सबसे अच्छा तरीका माना जाता है। विकासशील देशों में महिलाएँ लचीली श्रम शक्ति हैं। निर्यात उद्योगों जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स, वस्त्र, खाद्य प्रसंस्करण, खिलौने, कृषि उद्योग महिलाओं के सस्ते श्रम पर निर्भर हैं। उन महिलाओं को किसी भी आबंटित काम को बिना सोचे समझे करने के मजबूर किया जाता है। उन महिलाओं को शारीरिक नुकसान पहुँचने, श्रमसाध्य व सुस्त पड़ने पर भी सीमित भुगतान किया जाता है। समाज के संकीर्ण दायरे में रहते हुए गरीब महिलाओं की एक बड़ी संख्या काम की तलाश में है, जो श्रम के नए अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के लिए आदर्श श्रमिक बन गई हैं। अर्थव्यवस्था के मुनाफे में भूमण्डलीकरण लाखों गरीब महिलाओं और बाल श्रम पर सवार है।

संगठित और असंगठित क्षेत्र के बीच एक अजीब-सा रिश्ता है। संगठित क्षेत्र का पूँजी और बाज़ार पर नियन्त्रण होता है और असंगठित क्षेत्र उसके सहायक के तौर पर काम करता है। भारत में 90 प्रतिशत महिलाएँ असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं, जिसमें श्रम की अधिकता और पुराने ढंग का स्तर ऊँचा है। इन महिलाओं का अपने काम पर ज्यादा नियन्त्रण नहीं होता है। काम की प्रकृति अस्थायी और दोहराव होने के कारण उनके लिए प्रगति के मौके नहीं होते।

एक स्थिर/सगंठित श्रम से एक लचीली श्रमिक संख्या में बदले जाने का मतलब महिलाओं को अंशकालिक काम पर रखना होता है, जो सस्ते महिला श्रम से बेहतर भुगतान वाले पुरुष श्रम का प्रतिस्थापन है। नई आर्थिक नीतियाँ कॉरपोरेट घरानों को उनकी बड़ी शहरी इकाइयों को बन्द करने में और उनकी सहायक कंपनियों को राज्य की मदद पहुँचाता है ताकि वे महिलाओं और लड़कियों को एक दर के आधार पर रोज़गार दे सकें। समुदाय में अपराध, दंगों, विस्थापन और पुनर्वास में वृद्धि से असुरक्षा के सन्दर्भ में महिलाओं और युवतियों के लिए घर आधारित काम वैध और आदर्श हो गए हैं। इसे दक्षता और उत्पादकता में वृद्धि कहा जा रहा है।

विनिर्माण उद्योग में शहरी कामकाजी वर्ग की महिलाओं के लिए आकस्मिक रोज़गार ने उन हजारों महिलाओं के समानांतर खड़ा कर दिया है जो छोटे व्यापार से निर्वाह करने के लिए मजबूर हैं।

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (एसएपी) ने कामकाजी महिलाओं को असंगठित क्षेत्र में जाने के लिए मजबूर किया है। साथ ही उन्हें उनके अधिकारों से वंचित भी कर दिया है। ये महिलाएँ मातृत्व लाभ अधिनियम (1961), कर्मचारी राज्य बीमा योजना, फैक्ट्री अधिनियम (1948), समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976), बॉम्बे शॉप्स एण्ड एस्टैब्लिशमेण्ट एक्ट (1984), पौधारोपण श्रम अधिनियम और बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम जैसे सुरक्षात्मक कानूनों से बाहर हैं।

सरकार के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के स्थायी कर्मचारियों को खारिज करना या हटाना मुश्किल होता है क्योंकि वे संगठित और मुखर होते हैं। महिलाओं के लिए अंशकालिक काम के मुद्दे पर बहस लैंगिक (जेंडर के) आधार पर मज़दूरों के विभाजन के औचित्य को बताती है। इन लोगों का तर्क है कि कामकाजी महिलाओं पर घरेलू कर्तव्यों के साथ-साथ पारिश्रमिक या कार्यालयों में भी काम का बोझ होता है, इसलिए उनके कामों के घण्टों में थोड़ी राहत दी जाए। असंगठित क्षेत्र महिलाओं को पदोन्नति और जिम्मेदारी से वंचित रखता है और न्यूनतम पूरक श्रमजीवी के तौर पर उनके साथ भेदभाव भी करता है।

परिवार में महिलाओं के लिए अंशकालिक श्रम तर्क के पक्ष में लिंग आधारित श्रम विभाजन पर सवाल नहीं उठाया जाता है। महिलाओं पर बच्चों की देखभाल और घरेलू कार्यों का बोझ डाला जाता है। पारिवारिक कार्यों में शामिल महिलाओं के लिए राज्य से सहायता की माँग लम्बे समय से चली आ रही है। भारत में महिलाओं के आन्दोलन की माँग है कि किफायती दर पर भोजन की सुविधा, बच्चों की देखभाल के लिए सेण्टर, बच्चों के लिए विकासात्मक निवेश और बेहतर परिवहन की सुविधा मिलने से उनके दोहरे बोझ को कम किया जा सकता है।

अध्ययनों से पता चलता है कि गरीबी का बोझ पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर ज्यादा पड़ता है। इसमें महिलाओं और पुरुषों के बीच आय और उपभोग के स्तर में असमानता को भी प्रलेखित किया गया है। भारत में महिलाओं की कमाई का परिवारों को समर्थन 11 प्रतिशत से कम है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वे महिलाएँ ही प्रधान गृहस्थ हैं जो विधवा हैं, एकल और तलाकशुदा जीवन जी रही हैं।

महिला प्रधान गृहस्थी आमतौर पर गरीबों में भी सबसे गरीब हैं। नई आर्थिक नीतियाँ इनके परिवारों के संयुक्त रूप से प्रभावित करती हैं, जिसमें सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पीडीएस) कोटे के कम होने, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं में कमी और शैक्षणिक सुविधाओं का चरमराना शामिल है। महिला–प्रधान गृहस्थी वाले बच्चे पोषण की कमी से, प्राकृतिक चिकित्सा

सुविधाओं की अपर्याप्त से और शिक्षा के खर्च में कटौती से ज्यादा प्रभावित हैं। वर्ष 1988–2000 के बीच महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना पर सरकार ने महिला प्रधान गृहस्थी को राज्य के समर्थन में महिला समूहों की माँगों पर बेहद सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। लेकिन संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम एनपीपी के उद्देश्यों के खिलाफ़ काम करता है।

अनिश्चित वेतन के लिए असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारत में मुक्त व्यापार क्षेत्र, विशेष आर्थिक क्षेत्र और निर्यात प्रसंस्करण में कार्यरत राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय निगम उत्पादन इकाइयों में लड़कियों को नियुक्त करते हैं या घर-आधारित कामों के लिए कम वेतन दर पर रखते हैं। वहीं ज्यादा लाभ कमाने के लिए बालिका मजूदरों का इस्तेमाल उनके लिए सबसे सस्ता तरीका है।

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम की मुद्रास्फीति के प्रभाव और काम के बदले में भुगतान की कमी से एक परिवार की क्रय शक्ति कम हो जाती है, जो बदले में महिलाओं के अवैतनिक श्रम को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए, सस्ते खाद्य पदार्थों, सब्जियाँ खरीदकर उसकी सफाई व उसे तैयार करने में ज्यादा समय की ज़रूरत होती है। एसएपी भोजन के साथ, सफाई, देखभाल और काम करने वाली महिलाओं के अवैतनिक श्रम को अनुकूल मानता है।

आइए, देखें कि वैश्विक कंपनियों का संगठनात्मक ढाँचा कैसे बदलता है? संचार लागत में कमी से उत्पादन प्रक्रिया का विखण्डन होता है। सामान्य उद्योग गरीब देशों में भी शुरू किए जा सकते हैं जबकि अधिक जटिल प्रकृति के उद्योग केवल समृद्ध देशों में ही सम्भव हैं। उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने वाले देशों में क्षेत्रीय विशेषज्ञता के स्थान पर कार्यात्मक विशेषज्ञता देखने को मिलती है। जो साहित्य इस विखण्डन का उल्लेख करते हैं, उसने देशों के भीतर होने वाली स्थानिकता केन्द्रित गतिविधियों को अनदेखा किया है। कंपनियों को अमीर गरीब देशों को साधारण विकल्प का सामना नहीं करना पड़ा परन्तु उनके देशों में स्थित शहरी और गैर शहरी स्थान के विकल्प पर ज़रूर विचार करना पड़ता है। भूमण्डलीकरण किस प्रकार कंपनी जहाँ स्थित होती है, उसे प्रभावित करता है, इसे बदलना सम्भव है। संचार लागत में कमी कंपनी को कम मज़दूरी वाले देशों में अपतटीय सामान्य गतिविधियों को जारी रखने को प्रेरित करती हैं। इसके द्वारा कंपनी को अमीर देश के शहरी क्षेत्रों में जारी जटिल गतिविधियों से होने वाले लाभ के खोने का भी खतरा नहीं है।

तथ्य यह है कि स्थानिकता केन्द्रित गतिविधि में व्यापार द्वारा होने वाले लाभ का वितरण निहितार्थ है। निश्चित रूप से, मज़दूरी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने वाले साहित्य ने इस तथ्य की उपेक्षा की कि किसी भी देश के भीतर व्यापार द्वारा उद्योगों पर पड़ने वाला प्रभाव अक्सर स्थानीय केन्द्रित होता है। इस एकाग्रता के परिणामस्वरूप स्थानीय प्रभाव बड़े स्तर पर महसूस किए जा सकते हैं, जबकि समग्र राष्ट्रीय प्रभाव छोटा होता है। स्थानीय केन्द्रीयकरण की विकासशील देशों में व्यापार उदारीकरण के प्रभाव के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बड़े राष्ट्रीय उद्योग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक से अधिक एक दूसरे से जुड़ रहे हैं। उत्पादन चरणों (आउटसोर्सिंग) के स्थानान्तरण की प्रवृत्ति छोटे और मझोले उद्योगों में लम्बे समय से अस्तित्व में है। देश–विदेश में 1970 के दशक से ही इस प्रवृत्ति में वृद्धि की शुरुआत हुई।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम का विभाजन तब तेज हो गया जब कपड़ा और इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों में उत्पादन की उच्च श्रम-प्रधान अवस्थाओं को उत्तर के औद्योगिक राष्ट्रों से दक्षिणी यूरोप,

उत्तरी अफ्रीका, पूर्वी एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों में ले जाया गया। उसी समय औद्योगिकता सम्पन्न राष्ट्रों में श्रम लागत एवं आकस्मिक श्रम लागत में कमी आई। इससे महिला रोज़गार की लागत बढ़ी, क्योंकि श्रम आधारित उत्पादन मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता है। महिला कामगार कम मज़दूरी वाले देशों में काम करती हैं। नियोक्ता भी किसी प्रकार की आकस्मिक श्रम-लागत या कर-भुगतान से बचा रहता है। महिलाएँ स्वेच्छा से मेहनत से काम करती हैं क्योंकि उनमें से कुछ कामगार ही व्यापार संघ के रूप में संगठित हैं। दक्षिण–पूर्व एशिया के नए औद्योगिकता सम्पन्न राष्ट्रों ने विकास की उच्चतम दर को प्राप्त किया है। इसे ऐसी महिलाओं के लिए आर्थिक चमत्कार समझा जाता है, जिन्हें वैश्विक स्थानापन्नता प्रक्रिया के अन्तर्गत अंतर्राष्ट्रीय विनिर्माण संयन्त्रों में पहले तो शोषण के लिए लाया जाता है, बाद में उन्हें उद्योगों से बाहर निकाल कर दोबारा उन्हें बेरोज़गार कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में विशेष रूप से नवयुवतियों को नियुक्त किया जाता है। कुछ साल बाद युवतियों के विवाह करने और अपना परिवार बढ़ाने की स्थिति में उन्हें नौकरी से निकाल दिया जाता है। 1970 से अब तक अकेले दक्षिणी–पूर्वी एशिया में महिला रोज़गार की दर 25% से 44% तक हो गई है। बांग्लादेश में 20 वर्षों में 700000 नौकरियाँ उत्पन्न हुई हैं।

पिछले कुछ दशकों में अंतर्राष्ट्रीय निगमों की वृद्धि ने श्रम को इतना सस्ता किया है जो पहले कभी नहीं था। साथ ही उद्योगों को बड़े पैमाने पर होने वाले लाभ ने निगम गतिशीलता को बढ़ावा दिया। यह इतिहास में होने वाली अभूतपूर्व घटना है। जब से दक्षिण–पूर्वी एशिया के नव-औद्योगीकृत देशों में मज़दूरी बढ़ रही है (महिलाओं के लिए भी) अमेरिकी और यूरोपीय देश अपने सस्ते प्रतिद्वन्द्वियों इसका जिम्मेदार मानते हैं। हांगकांग के कपड़ा-निर्माताओं द्वारा वियतनाम और चीन में बैठे उनके उप-ठेकेदारों के लिए जारी उनका आदेश इसका उदाहरण है। उत्पादन संयन्त्रों में तीव्र गति से पैदा की गई कार्य करने की परिस्थितियाँ काफी बोझिल और भेदभावपूर्ण हैं। बिना किसी व्यापार संघ के औद्योगिक नीतियों के विरुद्ध प्रतिरोधियों को एकजुट करना अत्यधिक कठिन है। श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के नए चरण का उत्पादन के स्थानान्तरण की बढ़ती गति एवं उत्पादन की व्यक्तिगत अवस्था के विखण्डन से स्वयं ही पता चलता है कि प्रमाणित उद्योगों के अन्तर्राष्ट्रीय समूह निर्माण क्षेत्र की अपनी गतिविधियों को लम्बे समय तक सीमित नहीं रख सकता। होटलों, बैंकों, बीमा कम्पनियों का संचालन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है। वित्तीय क्षेत्र के उदारीकरण के साथ-साथ सूचना प्रौद्योगिकी और संचार प्रौद्योगिकी क्षेत्र ने भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित होने के लिए अपने दरवाजे खोल दिए हैं। प्रमाणित कंपनियों ने विशेषज्ञता, बहीखाता प्रबन्धन, बाज़ार शोध, प्रबन्धन परामर्श, कानूनी परामर्श यहाँ तक कि डाटा प्रोसेसिंग आदि क्षेत्रों के प्रस्ताव देने शुरू किए हैं। इसके लिए किसी महिला को रोज़गार के लिए घर से बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है। आजकल घर बैठे ही प्रति घण्टे के हिसाब से अतिरिक्त कमाई की जा सकती है। इससे सार्वजनिक परिवहन प्रणाली के निर्माण पर, बच्चों के उत्थान और देखभाल के लिए संचालित शिक्षण संस्थाओं के रखरखाव पर एवं असहाय एवं बुजुर्गों के संरक्षण एवं कल्याण हेतु संचालित संस्थाओं पर होने वाले खर्च की बचत होती है। 'ग्लोबल कन्वेयर बेल्ट' के दूसरे पहलू पर गौर करें तो हम देखते हैं कि 1970 से 1995 के बीच टेक्सटाइल एवं वस्त्र निर्माण क्षेत्र की लगभग 900000 नौकरियाँ समाप्त हो चुकी हैं। इससे मुख्यतः महिलाएँ प्रभावित हुई हैं। रोज़गार का यह उन्मूलन पूर्व के जी.डी.आर.(GDR) से भी अधिक तेजी से बढ़ा है। कपड़ा उद्योग में 3,20,000 नौकरियों में से केवल 26500 बची हैं। टेक्सटाइल एवं वस्त्र उद्योग विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। लगभग 93 वर्ष पूर्व अत्यधिक महत्वपूर्ण श्रम विवाद हुआ जिसके कारण इस उद्योग का ऐतिहासिक रूप से पतन हो गया। यह सब क्रिम्मिट्स्चू के टेक्सटाइल कर्मियों द्वारा की गई हड़ताल के कारण हुआ। यह हड़ताल काम के 10 घण्टे, उच्च मज़दूरी

और काम करने के लिए अच्छा माहौल उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में हुई थी। वर्तमान में वहाँ टेक्सटाइल इण्डस्ट्री लगभग पूरी तरह नष्ट हो चुकी है, और महिला रोज़गार मुख्य रूप से समाप्त हो चुका है। उस क्षेत्र में अन्य नौकरियों में महिलाओं के लिए अवसर नहीं हैं। बडी हड़तालों के रूप में प्रतिरोध का अभाव, पुरुष व्यापार संघ का समर्थन न होने से, महिलाओं द्वारा नौकरी बचाने के लिए संघर्ष करने के स्थान पर परिवार को महत्व देने के कारण उनका रोज़गार समाप्त हुआ। हालाँकि यह भी सत्य है कि जब संयन्त्रों के बन्द होने से पुरुषों की नौकरियों पर खतरा बना तो प्रभावित लोगों ने महिलाओं की एकजुटता पर ही भरोसा किया।

2.7 निर्धनता और श्रमबल का स्त्रीकरण

यह मशहूर कहावत है कि 'भूमण्डलीकरण' अमेरिकी प्रबन्धन स्कूलों का एक आविष्कार है। यह बताता है कि सिर्फ वे कम्पनियाँ जो बाज़ारों और स्थानों के लिए नई वैश्विक प्रतिस्पर्धा में फौरन और बेरहमी से समायोजन करती हैं, वे बची रहने में सक्षम हैं। सिर्फ ऐसी ही वैश्विक कंपनियाँ बनती हैं और अपनी व्यावसायिक गतिविधियों को दुनिया भर में विस्तार देती हैं। घरेलू बाज़ारों के संरक्षण के लिए खुद को सीमित करने की बजाय, अभी भी खुद को बनाये रखने का मौका है।

विश्व की पुरानी आर्थिक नीति के लिए भूमण्डलीकरण एक नया शब्द है। अतीत की तुलना में, यद्यपि नई विकसित कम्प्यूटर प्रणाली ने स्थानीय दूरियों को कम करने में मदद की है। विश्व व्यापार का लगभग 60 प्रतिशत कीमतों के सन्दर्भ में "नये औपनिवेशक आकाओं" द्वारा केन्द्रीय योजनाबद्ध और नियंत्रित है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार अर्थव्यवस्था की इस प्रक्रिया को 'पूँजी के उपयोग का भूमण्डलीकरण' कहा जाता है।

लिंग-विशेष (gender specific) पहलू भूमण्डलीकरण का विषय है और ट्रेड यूनियन श्रम नीति के लिए एक चुनौती है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में, महिलाएँ नहीं हैं, जैसे कि पुरुष नहीं हैं। महिलाएँ, सिर्फ पुरुषों की तरह ही पीड़ित नहीं हैं, वे सक्रिय भागीदार भी हैं। विश्व अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में वे भी हैं जो लाभ कमाते हैं, जो हानि उठाते हैं, यहाँ तक कि पीड़ित भी हैं और खत्म किए गए वातावरण को बचाने के लिए सफाई-दस्तों के साथ-साथ सक्रिय भागीदार जो कि प्रतिरोध करते हैं। स्पष्ट रूप से, भूमण्डलीकरण वास्तव में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को अलग तरह से प्रभावित करता है। तथापि वे एक समूह के रूप में नहीं बल्कि व्यक्तिगत रूप में प्रभावित होती हैं। औद्योगिक देशों में, पुरुषों की तुलना में अधिकांश महिलाएँ सीमान्त श्रमिकों के समूह से सम्बन्धित हैं, और महिलाओं की तुलना में अधिकांश पुरुष मुख्य श्रमिकों के समूह से जुड़े हैं। उन लोगों में जो अब काम ढूंढने की प्रक्रिया में बिल्कुल भी हिस्सा नहीं लेते हैं उनमें मुख्यतः महिलाएँ हैं। यह तथ्य है कि दुनिया भर में गरीबी बढ़ रही है, यह दर्शाता है कि एक तरफ भुखमरी और दूसरी तरफ विश्व बाज़ार में उत्पादन के बीच सम्बन्ध है। और यह तथ्य है कि महिलाएँ भूखे रहने के पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं– गरीबों का 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं, दुनिया भर में उनकी पीड़ा दर्शाता है। 1980 के दशक की शुरुआत में निर्धनता के स्त्रीकरण की एक मानक अवधारणा बन गई।

विश्व समुदाय पर भूमण्डलीकरण के लिंग विशेष प्रभाव का विश्लेषण और लैंगिक (जेंडर) पहलू इसलिए आर्थिक, पारिस्थितिक और राजनीतिक प्रभावों को जानने के लिए महत्वपूर्ण है।

रोज़गार का स्त्रीकरण

पिछले एक दशक में वैश्विक रोज़गार बाज़ार में दो विशिष्ट रुझान देखने को मिलते हैं जो इस विकास की विशेषता भी हैं।

पहला : दुनिया भर में ज्यादा से ज्यादा महिलाएँ रोज़गार बाज़ार में 'भीड़' का हिस्सा बन रही हैं। वे अब घर के चूल्हे पर वापस नहीं लौटना चाहती हैं, यहाँ तक कि उन देशों में भी नहीं, जहाँ पूरी तरह से माइक्रोवेव–ओवन का इस्तेमाल किया जाता है। औद्योगिक देशों में 41 प्रतिशत महिलाएँ काम करती हैं। यह विश्वव्यापी आधार पर 34 प्रतिशत है (विक्टेरिच, वही 1997)। यह प्रवृत्ति बढ़ रही है, हालाँकि मध्य और पूर्वी यूरोप और दक्षिण अफ्रीका के सहारा में महिलाएँ रोज़गार बाज़ार से गायब हो रही हैं।

दूसरा : विशेष रूप से महिलाओं के लिए रोज़गार सम्बन्ध अधिक से अधिक लचीले और अनिश्चित होते जा रहे हैं। इसलिए वैश्विक रोज़गार बाज़ार में महिलाएँ नाममात्र की विजेता हैं। यदि कोई रोज़गार सम्बन्धों की जाँच करता है, तो वह पाता है कि सुरक्षा के साथ आजीवन पूर्णकालिक नौकरी इसका अपवाद है। बच्चे के पालन-पोषण की अवधि और बुजुर्ग या बीमार की देखभाल करना, किसी एक पेशे से बहिष्कार, किसी एक पेशे में फिर से कम या ज्यादा सफल एकीकरण, कभी-कभार रोज़गार, गौण रोज़गार और अवैतनिक 'स्वैच्छिक' रोज़गार के कारण बाधाओं के साथ एक पेंचीदा करियर है।

संयुक्त राष्ट्र ने चौथे विश्व महिला सम्मेलन (विचरिच, 1997) के अवसर पर इन दो अलग-अलग रुझानों को 'रोज़गार का स्त्रीकरण' का नाम दिया। ऐसा इसलिए है क्योंकि दुनिया भर में रोज़गार के ढाँचे को 'महिला रोज़गार का पैटर्न' माना जाता है। वे भी तेजी से पुरुषों पर अपनी छाप छोड़ रही हैं। काम के इस नए संगठन में महिलाएँ अग्रणी हैं।

क्या हम फिर भी रोज़गार बाज़ार की बात कर सकते हैं?

वैश्विक रोज़गार बाज़ार पिछले कुछ दशकों में विभिन्न खंडों में विभाजित हो गया है। कई रोज़गार सम्बन्धों की अनिश्चित स्थिति को देखते हुए, कोई अब रोज़गार बाज़ार की बात नहीं कर सकता है : वेतन के सन्दर्भ में सुरक्षित नौकरी के साथ पहला रोज़गार बाज़ार ज्यादा से ज्यादा प्रतिबंधित होता जा रहा है, और इसके बाद वेतनमान से कम भुगतान के साथ दूसरा रोज़गार बाज़ार है; इसके बाद तीसरा रोज़गार बाज़ार है, जिसमें राज्य द्वारा सब्सिडी दी जाती है। इसके बाद चौथे रोज़गार बाज़ार में नौकरियों में राज्य द्वारा सब्सिडी दी जाती है; और कल्याणकारी सहायता पाने वालों और दीर्घकालिक बेरोज़गारों के लिए काम की ज़रूरत के साथ एक चौथा रोज़गार बाज़ार है।

महिलाओं के काम के सम्बन्ध में, बँटवारे की इस प्रक्रिया को अभी भी विस्तारित करने की आवश्यकता हैः पाँचवें रोज़गार बाज़ार में गैर-कानूनी काम होता है जिसमें मुख्य रूप से प्रवासी मज़दूर पाए जाते हैं। विश्वव्यापी आधार पर, छठे रोज़गार बाज़ार में पद उपलब्ध हैं, इस बाज़ार में सामाजिक सेवाओं और स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्रों में बिना वेतन के स्वैच्छिक काम की सम्भावनाएँ हैं। सातवें रोज़गार बाज़ार में एक परिवार में घरेलू काम और घर सँभालना शामिल है।

आधुनिक आर्थिक नीति-निर्माताओं की आकांक्षा के अनुसार, सभी रोज़गार बाज़ारों को एक दूसरे से और राज्य सहायता (जहाँ हम रहते हैं वह कल्याणकारी है) से काफी दूर माना जाता है जो विश्वव्यापी आधार पर अधिक से अधिक प्रतिबन्धित होता जा रहा है। महिलाओं के लिए कोटा व्यवस्था के बिना पहले रोज़गार बाज़ार तक पहुँच काफी मुश्किल होती जा रही है। हालाँकि, स्वतन्त्र नौकरी की सुरक्षा विशेष रूप से वहाँ मिल सकती है। मुख्यरूप

से महिलाओं के लिए अनिश्चित स्थिति फिर से तीन प्रवृत्तियों द्वारा तीव्र हैः श्रम का अंतर्राष्ट्रीयकरण, नई प्रबन्धन अवधारणाएँ, मशीनीकरण की आगे की प्रगति।

ट्रिमिंग डाउन–स्लिमिंग डाइट और एनोरेक्सिया?

कम उत्पादन और प्रबन्धन की मदद से कम्पनियाँ, कार्यालय और संगठन मुख्यकर्मियों को जितना हो सके उतना कम कर रही हैं। इस प्रक्रिया में लागत को कम करने के लिए औपचारिक क्षेत्र में या सस्ते मज़दूरी वाले देशों में व्यक्तिगत रोज़गार को **'अनुबन्ध कार्य'** में स्थानान्तरित किया जा रहा है। प्रत्येक संगठन के लिए **'छँटाई करना'** एक आदर्श है। मनुष्य के लिए बेहतर तर्कसंगत उत्पादों और श्रमिक संगठनों के बारे में चर्चा उन कम्पनियों के लिए एकमात्र लक्ष्य है जिसे बचाना है। यदि कम उत्पादन के लिए एक कम्पनी में उपकरण, प्रबन्धन और कर्मचारियों को कम से कम रखना माना जाता था ताकि श्रमिक प्रेरित और रचनात्मक, अभिनव और प्रभावी तरीके से कम्पनी को आगे बढ़ाएँगे। ऐसा लगता है कि इसका परिणाम यह हुआ कि कई कर्मचारी और श्रमिक कमज़ोर हो गए और कठिनाई के साथ अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं। पुरुषों को मुख्य श्रमिकों के रूप में वरीयता दी जाती है। महिलाएँ सीमित रोज़गार के साथ अनिश्चितकालीन परिस्थितियों में, बिना सुरक्षा के अंशकालिक नौकरियों में, सामान्य रूप से अनौपचारिक क्षेत्र में तथाकथित– 'खराब नौकरियों' में या स्वरोज़गार के रूप में काम करती हैं। विशेष रूप से अकुशल और अर्धकुशल महिलाएँ वस्तुओं के उत्पादन में पुरुषों के मुकाबले जल्दी गायब हो जाती है, जबकि पुरुष सेवा उद्योग (व्यापार, बैंकिंग आदि) में महिलाओं के कार्यक्षेत्र में घुस जाते हैं। लेकिन मुख्य श्रमिकों के लिए सबकुछ अच्छा-अच्छा नहीं होता है। अधिक से अधिक बेहतर तकनीक के माध्यम से काम से अलगाव बढ़ रहा है, काम की तीव्रता में वृद्धि ने तनाव बढ़ा दिया, कम दबाव और धमकी है। अक्सर कड़ी प्रतिस्पर्धा का अनुभव होता है और एकजुटता का नुकसान होता है।

महिलाओं के काम पर भूमण्डलीकरण का असर

संबद्ध कम्पनियों के अंतर्राष्ट्रीय समूह दावा करते हैं कि घरेलू कम्पनियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से और निर्यात रणनीतियों की वजह से उप-ठेकेदारों के माध्यम से परोक्ष रूप से महिलाओं के लिए लगभग 12 करोड़ नए रोज़गार निर्मित किए गए हैं। इस लिहाज से महिलाएँ भूमण्डलीकरण में विजेता रही थीं। यदि हम इन रोज़गारों की गुणवत्ता पर नज़र डालें तो यह कह सकते हैं कि महिलाएँ ज्यादा से ज्यादा सिर्फ मात्रात्मक विजेता ही रहीं।

सस्ते महिला रोज़गार को **'विश्व बाज़ार में उछाल लेने वाले ज़मीन'** की तरह माना जाता है। दक्षिण और साथ ही साथ पूर्व में निर्यातों की तरफ अभिमुखता का अर्थ है महिलाओं की ओर अभिमुखता। यह बात हल्के विनिर्माण, सेवा उद्योग क्षेत्र और कृषि, वानिकी और मछली पालन क्षेत्र के लिए भी सच है। कृषि और अन्य निर्वाह कार्य जो सीधे-सीधे आत्मनिर्भर रूप से कार्य करते हैं उनका 80 प्रतिशत कार्य अफ्रीका में महिलाओं द्वारा किया जा रहा है, वहीं पुरुषों को निर्यात और बाज़ार-सम्बन्धित क्षेत्रों में कार्यों के लिए वरीयता दी जाती है। इसके साथ ही एशिया और लैटिन अमेरिका में भोजन के प्रत्यक्ष उत्पादन में महिलाओं के कार्य की भागीदारी काफी अधिक है।

यह महज कम वेतन, या **'फुर्तीली अंगुलियों'** या श्रमिक एकता संगठन की कमी की बात नहीं है। यह सब का मिला-जुला रूप है और इससे भी ज्यादा यह महिलाओं के श्रम को बहुत लोकप्रिय बनाता है। इसमें यह तथ्य भी विचारणीय है कि बच्चे को जन्म देने, छोटे बच्चों की देखभाल करने, उन्हें बड़ा करने, अपने माता पिता और ससुराल वालों और अन्य व्यक्तियों की देखभाल करने के लिए अधिकतर महिलाओं को रोज़गार छोड़ना पड़ता है।

यह लचीलापन इन कारोबारों की ज़रूरतों और एकल परिवार में श्रम के विभाजन को स्थिर करने की इच्छा के साथ भी बराबर बैठता है। पूरी दुनिया में महिलाओं की अस्थायी या अंशकालिक गृहिणियों या 'अतिरिक्त उपार्जकों' या 'सह-उपार्जकों' के रूप में जो अवधारणा है वो महिलाओं की कीमत पर शैक्षिक खर्च में कमी को न्यायसंगत ठहराती है; यह अवधारणा उनके कम मेहनताने, उनकी अनिश्चित काम करने की स्थितियों और पुरुषों द्वारा अपनी जगह पर घर और बच्चों की देखभाल करने से लगातार इनकार करने को भी न्यायोचित ठहराती है। इसके अलावा जिन महिलाओं को अतिरिक्त उपार्जकों के तौर पर देखा जाता है उन्हें खराब काम की स्थिति या उत्पादन स्थानान्तरण की वजह से बिनी ज्यादा दिक्कत के आसानी से नौकरी से निकाला जा सकता है। पुरुष आखिरकार 'रोटी कमाकर लाने वाले' जो हैं और परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी को उठाते हैं। 'अतिरिक्त उपार्जकों' के ठप्पे के जरिए पैदा होने वाला महिलाओं के लिए अत्यधिक नुकसान गर्भवती होने से पहले ही शुरू हो जाता है और उसके काफी बाद तक जारी रहता है और उन महिलाओं पर भी असर डालता है जो कभी माँ नहीं बनीं या कभी बनना भी नहीं चाहती थीं।

बीजिंग में 1995 में हुए पिछले विश्व महिला सम्मेलन के संयोजन में, महिलाओं को निम्न-सम्मानित वेतन क्षेत्र में शामिल करने की बात पर रोष से चर्चा की गई। एक तरफ रोज़गार के मात्रात्मक लाभ को दरकिनार नहीं किया जा सकता वहीं दूसरी तरफ इसकी भी एक कीमत है। विश्व भर में व्यापार का जो उदारीकरण हो रहा है वो उन वित्तीय स्रोतों की कीमत पर हो रहा है जिन्हें मूल रूप से महिलाओं द्वारा खोला गया था। सस्ते आयातों के मुकाबले अब घरेलू उद्योगों में हाथ से बने सामान और उत्पाद प्रतिस्पर्धी नहीं हैं। स्थानीय व्यापार और शिल्प कौशल की संस्कृति खो गई है। जिन उत्पादों को बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है (जैसे, भारत से कपास और धागा) उन्हें ढूँढ़ना मुश्किल हो गया है और स्थानीय बाज़ारों पर वे ज्यादा खर्चीले साबित होते हैं क्योंकि घरेलू विनिर्माताओं के लिए इनकी उत्पादन लागत बहुत अधिक बढ़ गई है। वहीं दूसरी तरफ, यहाँ तक कि तथाकथित 'विकसित देशों' में भी विदेश से सस्ते सामान की बाढ़ आ रही है (द्वितीय दर्जे के कपड़ों से कृषि उत्पादों तक)। इसका मतलब यह है कि विकासात्मक सहायता और घरेलू उत्पादों के विपणन की मदद से आय बढ़ाने के उपायों की छूट प्राप्त योजना और विकास में मजबूत तरीके से रुकावट पैदा की जा रही है।

महिलाएँ नौकरानियों के तौर पर, अनौपचारिक क्षेत्र में, स्वरोज़गार प्राप्त कामगारों के तौर पर, परिवारों में सहायक सदस्यों के तौर पर या फिर वेश्याओं के रूप में जिन व्यावसायिक विकल्पों का सामना करती हैं उनकी तुलना में निर्यात उद्योग में उनके लिए काम करने की स्थितियाँ और कमाई काफी बेहतर है। विकास क्षेत्र के विशेषज्ञ बताते हैं कि महिलाएँ अकसर एकल परिवार और पितृसत्ता के नियन्त्रण के परे नए सामाजिक क्षेत्रों में अपनी पकड़ बनाती हैं और अपने बीच में ही एक नई कार्य संस्कृति और नई तरह की एकता निर्मित करती हैं।

निःसन्देह ही, पूंजीवादी पितृसत्तात्मक परिस्थितियों में वेतनयुक्त रोज़गार न तो दक्षिण के देशों में या कहीं और, स्वतः ही ज्यादा अधिकारों या ज्यादा आर्थिक स्वतन्त्रता का वाहन नहीं बन जाता है। इसके अलावा ज्यादातर निर्यात आधारित देशों में पुरुष और महिला के मेहनताने में अन्तर बढ़ गया है। यहाँ तक कि यूरोप में भी महिलाएँ जहाँ वेतन और आय प्राप्त करती हैं वहाँ औसतन वे पुरुषों के मुकाबले तकरीबन तीस प्रतिशत कम कमाई करती हैं। वे बावजूद इसके कम कमाई कर पाती हैं कि वे पुरुषों के बराबर घण्टों, समान पदों और उसी क्षेत्र में ही काम कर रही होती हैं। इसके अतिरिक्त ये प्रवृत्ति हमेशा तब उभरनी शुरू हो जाती है जब श्रम-प्रधान उद्योग पुनर्गठित और मशीनीकृत होते हैं और पुरुष उन

क्षेत्रों का नियन्त्रण सँभाल लेते हैं जो पहले महिलाओं के पास थे। अफ्रीका और भारत की ही तरह यूरोप में भी **जेंडर के आधार** पर विभाजन बढ़ रहा है। पुरुष मशीनें चलाते हैं और महिलाएँ सिलाई मशीनों पर सिलाई करती हैं। पुरुष प्रोग्रामिंग से जुड़ा काम करते हैं और महिलाएँ डाटा की प्रक्रिया पूरी करती हैं। स्वचालित मशीनों के कारण खत्म होने वाली नौकरियों में महिलाओं की नौकरियाँ सबसे पहले होती हैं। यही बात आधुनिकीकरण की उस भारी लहर के सम्बन्ध में सही साबित होगी जो सेवा उद्योग क्षेत्र में आ रही है।

महिला विकास सम्बन्धी विशेषज्ञ भय जताते हैं कि पूँजी-गहन उत्पादन की ओर परिवर्तन में महिलाओं की मात्रात्मक प्रगति इस पूरे रोज़गार परिदृश्य में कहीं खो जाएगी। बीजिंग में विश्व महिला सम्मेलन के अवसर पर औद्योगिक देशों ने जो निष्कर्ष निकाले वो यह थे कि निश्चित तौर पर आशावाद के लिए कोई मौका नहीं है। महिलाएँ 'अर्थव्यवस्था की तलछट' ही बनी हुई हैं। भले ही उनके पास स्कूल में अच्छे अंक हों और शैक्षिक डिग्री हों, या उन्होंने किसी अन्य तरीके से योग्यताएँ हासिल की हों, महिलाएँ अधिकतर तो निचले स्तर पर ही बनी रहती हैं। पुरुष समाज प्रतिरोधी है और महिलाओं को कुछ ख़ास पदों से दूर रखने और ऐसे पदों के ऊँचे रसूख और प्रभाव से परे रखने के लिए उनके यहाँ खुले तौर पर बाधाएँ हैं और 'गोपनीय समिति प्रक्रियाएँ' मौजूद हैं।

श्रम का जेंडर–विशिष्ट विभाजन : मजबूती से स्थापित

बड़ी संख्या में रोज़गार प्राप्त व्यक्तियों ने कहीं पर भी पुरुषों और महिलाओं के बीच काम के विभाजन को भंग नहीं किया है। ज्यादातर महिलाएँ दफ्तर और प्रशासनिक कार्य के प्रारम्भिक क्षेत्रों में, सेवा क्षेत्रों में लोगों से व्यवहार करते हुए, उद्योग के कम मेहनताने वाले क्षेत्रों में और साथ ही साथ सरकारी क्षेत्र में सामाजिक, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा से जुड़े ओहदों में काम करती हैं। अमेरिका में दो-तिहाई से भी ज्यादा महिलाएँ सेवा क्षेत्र में काम कर रही हैं। 'असुरक्षित रोज़गारों' में महिलाओं को बिना निजी सुरक्षा के भी काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। ये ऐसे रोज़गार सम्बन्ध हैं जो केन्द्रीय श्रमिकों के मुकाबले सीमान्त श्रमिकों के लिए ज्यादा प्रतीकात्मक हैं। चाहे अनुबन्ध की लम्बाई हो, काम के घण्टे हों, नौकरी की सुरक्षा हो या फिर विशेष लाभ हों, ये ऐसे रोज़गार पद हैं जो 'आमतौर पर' सामान्य कार्य सम्बन्धों से केन्द्रीय रूप से हटते हैं। आज इंग्लैंड में हमें फिर से दिहाड़ी मज़दूर देखने को मिलते हैं। इन मज़दूरों के पास आजादी है कि वे अगर नहीं 'चाहते हों' तो काम न करें और वे किसी श्रम अनुबन्ध से नहीं बँधे हुए हैं।

अंशकालिक रोज़गार के लिए पदों की संख्या भी बढ़ गई है। अंशकालिक नौकरियाँ सामाजिक बीमा योगदान के अधीन नहीं हैं। 'ठेठ महिलाओं की नौकरियों' वाले कई क्षेत्रों में अंशकालिक रोज़गार भी अब एक आम बात हो गई है। मिसाल के तौर पर साफ़-सफाई की 90 प्रतिशत नौकरियाँ और घरेलू कार्यों वाली 90 प्रतिशत नौकरियाँ। चूँकि श्रम बाज़ार उन सभी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता जो भुगतानदेय रोज़गार चाह रहे हैं, कम से कम जब तक काम का वितरण अलग तरह से न हो, राजनेता सर्वसम्मति से बेरोज़गारी के लिए जो इलाज सुझाते हैं वह यह है कि लोग स्व-रोज़गार प्राप्त कर लें।

जर्मनी में 'नए स्व-रोज़गार प्राप्त' लोगों में महिलाओं की संख्या तीस से चालीस प्रतिशत है और अमेरिका में यह आँकड़ा तीन-चौथाई तक है। इनमें से चंद ही हैं जो अपने 'सूक्ष्म व्यवसायों' से स्वतन्त्र होकर रह सकती हैं। महिलाओं के कारोबारों में पूँजी की कमी है। रोज़गार का प्रभाव बहुत कम है। आमतौर पर, आधे से भी ज्यादा कारोबारों में सिर्फ संस्थापक ही शामिल होते हैं। ये आवश्यकता और नवाचार होते हैं जो उनको कारोबार शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। अधिकतर महिलाएँ एकदम शुरू में मोटी कमाई करने

की उम्मीद भी नहीं करतीं। वो महिलाएँ जो प्रतिस्पर्धा के युद्धों में जीत नहीं सकतीं और जो अपने उत्पादों की मार्केटिंग करने में सक्षम नहीं हैं, वे अक्सर वेश्यावृत्ति और तस्करी के सामान के लेन-देन जैसी आपराधिक गतिविधियों जैसे विभिन्न कारणों से पीछे हट जाती हैं। हर छोटे विक्रेता को एक कारोबारी के तौर पर श्रेणीबद्ध करने वाले श्रम बाज़ार के आँकड़ा-निर्माताओं को खुशी है कि बेरोज़गारों की संख्या में कमी आई है और इसके लिए वो महिलाओं को श्रेय देते हैं क्योंकि वे जोखिम लेने को तैयार हैं और अभिनव एवं उत्साही हैं।

बड़े विज्ञापन अभियान के जरिए ऐसी महिलाओं की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए जो सेवा संस्थानों, चर्चों, महिला संघों या कहीं और स्वैच्छिक आधार पर लोगों की सेवा और देखभाल करती हैं। इसका वास्ता उन लोगों से है जो स्वयं की मदद नहीं कर सकते, या अब अपना खयाल नहीं रख सकते हैं या अस्थायी रूप से अपनी देखभाल नहीं कर सकते हैं। औद्योगिक राष्ट्रों में सामाजिक कार्यक्रमों में कटौती के आज के इस दौर में स्वैच्छिक काम का वैचारिक रूप से पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है और इसे 'स्थानापन्न कार्य' के रूप में महिलाओं को पेश किया जा रहा है। 'स्वयंसेवकों' से अपेक्षित है कि वे परिवारों, समुदायों और अंतर्राष्ट्रीय संघों में एकता को प्रोत्साहित करें और सामाजिक जिम्मेदारी का काम देखें।

महिला प्रवासी श्रमिकः रोज़गार बाज़ार में गतिशील समूह

प्रवासी श्रम का एक बहु-आयामी बहाव वैश्विक रोज़गार की गतिकी में योगदान दे रहा है। महिलाओं का हिस्सा उन उच्च-योग्यताओं वाले कामगारों में बढ़ रहा है जो ऐसे देशों की ओर बड़ी संख्या में कूच कर रहे हैं जहाँ उनके काम को बेहतर मेहनताना मिलता है। वे उन बिना कौशल वाले कामगारों के प्रवासन में भी शामिल हैं जो मुख्यतः अवकाश को समृद्ध करने वाले (leisure industry) कर्मचारियों, नर्सिंग कर्मियों या घरेलू नौकरों के तौर पर काम करते हैं। लाखों प्रवासी महिला कामगारों को गतिशील समूहों के तौर पर गिना जाता है।

जैसे कि हम जानते हैं, 'एक समुदाय के तौर पर कामगारों' का निर्यात सीमाओं के पार और कानून के दायरे से बाहर व्यापारियों और उनके द्वारा आयोजित किया जाता है जो लोगों को देश में गैर-कानूनी तौर पर लाते हैं। महिला प्रवासी कामगार, जिनके पास अकसर कोई कानूनी दस्तावेज नहीं होते, उन्हें अपना काम बेहद बद्तर परिस्थितियों में बेचने को मजबूर होना पड़ता है। वे अकसर यौन हिंसा की शिकार होती हैं और उन्हें आसान खेल माना जाता है। इसके अलावा जहाँ वे काम और आजीविका की तलाश कर रही होती हैं उन देशों के अधिकतर हिस्से में उन्हें बढ़ते हुए नस्लवाद का सामना करना पड़ता है। वे दुनिया के धनी देशों में अधिकतर असुरक्षित कार्य सम्बन्धों में या व्यक्तिगत निर्भरता वाले रिश्तों में काम करती हैं।

इसमें असली हारने वाले

भूमण्डलीकरण के दौर में स्पष्ट रूप से हारने वाले कोई हैं तो वो बहुत सी महिलाएँ हैं जो पूर्व की समाजवादी आर्थिक व्यवस्थाओं से हैं जिन्हें राज्य द्वारा चलाया जाता था। अधिकतर वे बहुत अच्छे से प्रशिक्षित हैं और पूर्णकालिक आधार पर काम करने का उनके पास जिन्दगी भर का लम्बा इतिहास है। जिसे अब सामाजिक कहकर नहीं सम्बोधित किया जा सकता। उस सामाजिक बाज़ार अर्थव्यवस्था में परिवर्तन ने उन महिलाओं को उत्पादन प्रक्रिया से बाहर निकाल दिया है। उन्हें खुश होना चाहिए कि उनको अब इस दोहरे भार से मुक्ति मिल गई और अब वे खुद को पूरी तरह अपने अपने परिवारों के प्रति समर्पित कर सकती हैं। मध्य और पूर्वी यूरोप में आज कुल बेरोज़गारों में महिलाओं की संख्या का औसत

सत्तर प्रतिशत है। दीर्घकालिक आधार पर देखा जाए तो पुरुष बेरोज़गार होंगे और महिलाएँ गृहिणियाँ होंगी। अच्छे से पढ़ी लिखी महिलाओं को तथाकथित 'पुरुषों के व्यवसायों' से बाहर निकलवाया जाना है और उन्हें 'ठेठ महिलाओं की नौकरियों' पर ही केन्द्रित होना है।

जिम्मेदारी का स्त्रीकरण

यहीं से 'जिम्मेदारी का भूमण्डलीकरण' शुरू होता है। बहुत से देशों में नौकरियों में नाटकीय कटौती, सामाजिक योजनाओं में कमी और अनुदानों को समाप्त करने जैसी बातें इस तथ्य में योगदान देती हैं कि अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के साथ-साथ विश्व भर में सामाजिक असमानता बढ़ती है। 'सामाजिक मामलों' के लिए महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। अपने और अपने बच्चों के लिए मेज़ पर भोजन ला पाने के लिए बहुत सी महिलाओं को ज्यादा फसलें उगाने और अपने खुद के इस्तेमाल के लिए वस्तुओं का उत्पादन करने पर निर्भर रहना पड़ता है। इसका अर्थ है – जीवन निर्वाह का अर्थशास्त्र। इस वजह से यह अवैतनिक काम बढ़ जाता है। जीवन निर्वाह अर्थशास्त्र और स्वयं सहायता सिर्फ तभी सम्भव है जब ज़मीन या आम उपकरण या मशीनें किसी के पास उपलब्ध हों। अकसर इनकी कमी होती है। ठीक उसी समय महिलाओं को अधिक से अधिक धन की आवश्यकता होती है ताकि वे अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी कर सकें। विशुद्ध रूप से इसी वजह से हर चीज का उत्पादन आत्मनिर्भरता से नहीं हो सकता है। बेहतर आय कमा पाने के लिए बाज़ार के साथ समन्वय नितान्त आवश्यक है। दुनिया भर में यह जो काम का भारी बोझ है इसे परिवार के अन्दर श्रम के किसी दूसरे विभाग द्वारा कदाचित ही समायोजित किया जाता है। इससे भी अधिक यह होता है कि एक आर्थिक संकट अकसर पारंपरिक पारिवारिक एकता को भी नष्ट कर देता है। लैटिन अमेरिका, कैरेबियन और अफ्रीका के कई क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा चलाए जा रहे घरों की संख्या बढ़ रही है। विश्व भर के आधार पर ये महिलाएँ ही हैं जो ज्यादा से ज्यादा भोजन की व्यवस्था, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी सँभाल रही हैं।

ये मुख्य रूप से महिलाएँ ही हैं जो सफाई और मरम्मत के काम को करती हैं। ये महिलाएँ ही हैं जो विश्व भर में 'श्रमजीवी दुनिया' में रद्दी, मलबे और कचरे के ढेर को ठिकाने लगाती हैं और बड़े पैमाने पर होने वाले विनाश की मरम्मत करती हैं। ये महिलाएँ ही हैं जो क्षेत्रीय राजनीति और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में अपने ज्यादा प्रभाव की माँग करती हैं और सामाजिक योजनाओं में से और अधिक बाहर रखे जाने के खिलाफ़ लड़ती हैं। मुख्य रूप से ये महिलाएँ ही होती हैं जो वैश्विक रूप से आयोजित मुनाफे को अधिकतम करने के खिलाफ़ क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था और आत्म-निर्भरता के पक्ष में खड़ी होती हैं। इसी तरह ये महिलाएँ ही हैं जो उन समेकित खाद्य कम्पनियों के खिलाफ़ लड़ती हैं जिनका मूलभूत उत्पादन जैव प्रौद्योगिकी और जीन-प्रौद्योगिकी पर आधारित है। इसी कारण से पूरी दुनिया में महिलाओं ने नवम्बर 1996 में रोम में हुए विश्व खाद्य सम्मेलन के अवसर पर नव खाद्य अध्यादेश का विरोध किया था। और बीजिंग में हुए विश्व महिला सम्मेलन के मौके पर दक्षिण की महिलाओं द्वारा भूमण्डलीकरण नीति को बहुत स्पष्ट तरीके से अस्वीकार किया था और इन महिलाओं में बहुत सी ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ भी शामिल थीं। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें ऐसे उत्पादन और उपभोग का भार उठाना पड़ रहा है जिसमें खर्चीले औद्योगिक देशों में उपभोक्ताओं के लिए विलासिता उत्पादों को बनाया गया जिनके लिए उन्हें लगातार लम्बे और लम्बे समय तक काम करना पड़ा ताकि वे अपनी आजीविका अर्जित कर सकें। विकासात्मक नीति से सम्बन्धित संगठनों के लिए महिलाएँ कुछ समय से उम्मीद की मशाल उठाने वाली बन गई हैं, वे 'गरीबी की अनथक योद्धा' बन गई हैं जो भरोसेमन्द रूप से, आरम्भिक तौर पर और रचनात्मक तरीके से समाज के गन्दे काम व घर के काम करती हैं और अस्तित्व से जुड़ी चीजों का प्रबन्ध करती हैं।

व्यापार संघ नीति का भविष्य

निकट भविष्य के लिए हम ऐसी नई नौकरियों के सृजन की उम्मीद नहीं कर सकते जो हमारे अस्तित्व को सुरक्षित कर सकें। और महिलाओं के लिए तो कतई नहीं। बल्कि इसके विपरीत हमें और अधिक अस्थिरता का सामना करना है जो पहले से ही विद्यमान है। और हमें उस निरंतर बने हुए 'सामाजिक ध्रुवीकरण' को भी देखना है जो सामाजिक निष्कासन, आपराधिकता, गरीबी, एक आदिम स्थिति में फिर लौटने और लगातार बढ़ती बर्बरता का परिणाम है। आज सामाजिक ध्रुवीकरण से, यहाँ तक कि कुछ व्यापार संघों के सदस्यों द्वारा भी, प्राकृतिक न्याय की तरह व्यवहार किया जाता है जैसे कि इसके खिलाफ़ कुछ नहीं किया जा सकता है।

वह अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी समझौता भी ख़त्म कर दिए जाने लायक है जिसने वैश्विक अर्थव्यवस्था को विकास के उन स्तम्भों पर स्थित कर दिया जो पर्यावरण का विनाश कर रहे हैं, यह भुगतान वाली नौकरियों के साथ पूर्ण रोज़गार और श्रम के जेंडरवादी विभाजन पर आधारित है। हमें पूर्ण रोज़गार को नए सिरे से परिभाषित करना पड़ेगा। इसका यह मतलब भी है कि वो 'निम्न-आय स्व-रोज़गार' वाले, जिनके पास न तो उत्पादन के साधन है और न ही उनके पास काम करने वाले कोई व्यक्ति हैं, उन्हें लोगों को भूमिगत या वैकल्पिक अर्थव्यवस्थाओं से, अनौपचारिक क्षेत्र व स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं से, और घरेलू अर्थव्यवस्थाओं व बेरोज़गारों में से समन्वित करना होगा। उन्हें अपनी रणनीतियों को न सिर्फ रोज़गार सृजन की दिशा में बल्कि मानवीय व लोकतांत्रिक पहलुओं की ओर, साथ ही साथ उत्पादों की उपयोगिता और विषय वस्तु की तरफ लक्ष्य करना होगा। इसका मतलब है काम के सभी क्षेत्रों में सामाजिक रूप से ज़रूरी, तार्किक और संभवतः स्वावलम्बी नौकरियाँ।

आखिरकार, इसमें विरोध और प्रतिरोध का भूमण्डलीकरण और अंतर्राष्ट्रीयकरण भी शामिल है। क्रिस्टा विक्टरलिच सही हैं जब वे लिखती हैं कि वैश्विक बाज़ार में अंतर्राष्ट्रीय महिलाओं की एकता को नए रास्तों और तौर-तरीकों की ज़रूरत है। क्रिस्टा कंबोडिया और अन्य जगह विरोध प्रदर्शन करने वाली महिला कपड़ा कामगारों पर रिपोर्ट करती हैं और बताती हैं कि जब उत्पादन और फैक्ट्रियों को दूसरे देशों में स्थानान्तरित किया जाता है तो प्रदर्शनों को हमेशा महिला कामगारों की तरफ मोड़ दिया जाता है ताकि कम प्रतिरोध का सामना करना पड़े। वे निष्कर्ष निकालती हैं कि वैश्विक बाज़ार में प्रतिरोध और सुरक्षात्मक तौर-तरीकों को भी भूमण्डलीकृत किया जाना होगा। न्यूनतम सामाजिक मानक अपरिहार्य प्रतीत होते हैं क्योंकि संगठनात्मक स्वतंत्रता, बंधुआ मज़दूरी और बाल श्रम पर रोक के सन्दर्भ में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) द्वारा उनकी माँग की जाती है। बीजिंग में हुए चौथे विश्व महिला सम्मेलन में सभी देशों से महिला व्यापार संघ सदस्यों ने हिस्सा लिया। इसने यह दिखाया कि पूरी दुनिया में महिलाएँ राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज में अपने अधिकारों और प्रभाव के लिए लड़ती हैं। दक्षिण की महिलाओं के साथ कई महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों से भी थीं। इनके द्वारा भूमण्डलीकरण को स्पष्ट अस्वीकृति दी गई। उन्होंने माना कि उन्हें खुद ऐसे उत्पादन और उपभोग का भार उठाना पड़ रहा है जिसमें महँगे औद्योगिक देशों में उपभोक्ताओं के लिए विलासिता उत्पादों को बनाया जाता है जिसके लिए उन्हें लगातार लम्बे और लम्बे समय तक काम करना पड़ता है ताकि अपनी रोज़ी-रोटी कमा सकें। उन्होंने क्षेत्रीय चक्रों को मजबूत करने और वैश्विक आधार पर कम संगठित लाभ के अधिकतमीकरण की माँग की। उन्होंने इस बात की पहचान की कि जब तक राष्ट्र-राज्य और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्थाएँ मौजूद हैं तब तक सामाजिक रूप से आयोजित रोज़गार में हिस्सा लेने की ज़रूरत है जिसके लिए कोई इंसान उचित मूल्य की माँग करता है। रोम

में 1996 में हुए विश्व खाद्य सम्मेलन के अवसर पर पूरी दुनिया की महिलाओं ने नव खाद्य अध्यादेश का विरोध किया और इस तरह समेकित खाद्य कंपनियों के खिलाफ़ लड़ी जिनका मूलभूत उत्पादन जैव प्रौद्योगिकी और जीन प्रौद्योगिकी पर आधारित है। रसायन (केमिकल) से मुक्त कपड़े जो व्यापार संघ सदस्यों द्वारा भी पहने जाते हैं, उनके लिए अभियान दिखाता है कि महिला उपभोक्ताओं द्वारा विरोध प्रदर्शन सफल हो सकते हैं।

वैयक्तिक देशों में व्यापार संघों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) और मुक्त व्यापार संगठनों के अंतर्राष्ट्रीय महासंघ (आईसीएफटीयू) के साथ सहयोग में श्रम बाज़ार के विभाजन और जेंडर-विशिष्ट विभाजन आदि पर विस्तृत जानकारी को उपलब्ध करवाना चाहिए। इसके अलावा व्यापार संघों को आक्रामक रणनीति बनानी होगी जो विभिन्न रोज़गार सम्बन्धों के फायदों और नुकसान दोनों पर विचार करे। ऐसा करते हुए इसे भी रोका जाना चाहिए कि पारंपरिक व्यापार संघों और वैकल्पिक महिला संगठनों को एक दूसरे के खिलाफ़ न भिड़ा दिया जाए।

व्यापार संघ कार्य नीति खुद को सिर्फ इतने तक ही सीमित नहीं कर सकती कि श्रम बाज़ार में महिलाओं की भागीदारी का सम्मान किया जाए। भविष्य में जेंडर राजनीति को सिर्फ महिलाओं की मात्रात्मक हिस्सेदारी के आधार पर ही नहीं किया जा सकता है। इसका अर्थ है समझदार, सामाजिक रूप से उपयोगी काम जो सिर्फ किसी भी प्रकार का भुगतान वाला काम नहीं है बल्कि निजी सुरक्षा भी प्रदान करता है। यह पर्याप्त नहीं है कि विश्व भर में और क्षेत्रीय तौर पर महिलाएँ फफूँद लगे हुए आधे केक और टाइटैनिक जहाज में खिड़की के पास वाली आधी सीटों की माँग करे। भूमण्डलीकरण कोई विचारधारा नहीं है जो अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के दिमागों में विकसित हुई, और यह कोई प्राकृतिक आपदा भी नहीं हैं। इसे लोगों द्वारा बनाया गया है और लोगों से माँग की गई है कि अगर यह काम और रहने की स्थितियों को बदतर बनाने में योगदान देता है तो 'भूमण्डलीकरण की सीमाएँ' तय की जाएँ। काम करने और रहने की स्थितियों का अर्थ हमेशा भुगतानदेय और बिना भुगतान के श्रम से होता है। भूमण्डलीकरण को सीमित करने का मतलब महिलाओं के शोषण को भी सीमित करना है।

अन्ततः इसका मतलब काम के घण्टों को काफी छोटा करने और सीमित उपलब्ध भुगतानदेय श्रम और असीमित उपलब्ध भुगतानहीन श्रम का समान वितरण दोनों जेंडरों में करने से है ताकि पुरुषों और महिलाओं के लिए ये सम्भव हो कि वे साफ-सफाई के काम, नर्सिंग और समुदाय की तरफ उन्मुख काम को ले सकें। हमें सामाजिक जिम्मेदारी के समान वितरण, सामाजिक सम्पत्ति के पुनर्वितरण और विश्व के समृद्ध क्षेत्रों को गरीब क्षेत्रों के सामाजिक स्थानान्तरण की ज़रूरत है। वैश्विक गरीब के लिए एक विकल्प विदेश में काम ढूँढ़ना है। भूमण्डलीकरण ने श्रम के पलायन का वस्तुकरण कर दिया है, ख़ासकर कई मध्य पूर्वी देशों में। वो देश राष्ट्रवादियों द्वारा नकार दिए गए 'गन्दे, खतरनाक और मुश्किल' रोज़गारों को करवाने के लिए पूरी तरह एशियाई प्रवासियों पर निर्भर हैं। हालाँकि धनी देशों द्वारा वस्तुओं और पूँजी की स्वतन्त्र आवाजाही के लिए जिस वैचारिक जुनून का गुणगान किया जाता है वो लोगों तक नहीं पहुँचाया जाता। ज्यादातर धनी देश श्रम प्रवासन पर सख्त नियम लादते हैं। अंतर्राष्ट्रीय पलायन या प्रवासन का एक अस्वीकार्य हिस्सा मानव तस्करी है। यह सम्भवतः आर्थिक भूमण्डलीकरण के ही परिणामस्वरूप इसके समानांतर ही बढ़ता गया है। चूँकि अत्यन्त गरीबी और सीमापार गतिशीलता ही यौन तस्करी और अन्य बँधुआ मज़दूरी के उत्प्रेरक हैं, ऐसे में कारण और प्रभाव का सुझाव अपरिहार्य है।

आगे पढ़ने से पहले निम्नलिखित अभ्यास करें –

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) इनसे क्या तात्पर्य है–

क) जिम्मेदारी का स्त्रीकरण

ख) छंटनी

ग) रोज़गार का स्त्रीकरण

घ) एफएचएच

आगामी अनुभाग में आपको सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (एमडीजी) से परिचित करवाया जाएगा और इससे भी कि कैसे वे पूरी दुनिया में काम करने वाली महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं।

2.8 सहस्राब्दी विकास लक्ष्य

सहस्राब्दी विकास लक्ष्य दरअसल सितम्बर 2000 की सहस्राब्दी घोषणा के ही यौगिक हैं जो निम्नलिखित मूल्यों को बताते हैं:

- स्वतन्त्रता
- समानता
- एकता
- सहिष्णुता
- प्रकृति के लिए सम्मान, और
- साझा जिम्मेदारी।

यह 189 देशों की सरकारों का अपने नागरिकों की ओर से एक आह्वान था कि हमारे साथी पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को अत्यन्त गरीबी की अधम और अमानवीय परिस्थितियों से आजाद करना जिसकी चपेट में फिलहाल 100 करोड़ से ज्यादा लोग आए हुए हैं। यह एक प्रतिबद्धता है कि विकास का अधिकार हर किसी के लिए एक हकीकत बनाया जाए और पूरी मानव नस्ल को अभावों से मुक्त किया जाए। इन उपायों को सामूहिक रूप से **सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों** (एमडीजी) के रूप में जाना जाता है। ये उपाय पूरी दुनिया में

विकास कार्यों के लिए केन्द्रीय आकर्षण बन गए हैं, एक ऐसा स्वर्ण मानक जिसे पाने की आकांक्षा योजनाएँ करती हैं और जिसके पैमाने से अपने कार्य को आँकती हैं।

जैसा कि सहस्राब्दी घोषणा में बताया गया, सहस्राब्दी विकास लक्ष्य दरअसल स्वतन्त्रता, समानता, मानव अधिकार, शान्ति और सुरक्षा जैसे आधारभूत मूल्यों पर आधारित विकास प्रगति के मानक हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है अगर राष्ट्र राज्यों के प्रमुख, नागरिक समाज संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वित्त संस्थान, वैश्विक व्यापार संस्थाएँ और संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था जैसे सभी कर्ता साथ में मिलकर अपने-अपने हिस्से का काम करें। गरीब देशों ने प्रतिज्ञा ली है कि वे बेहतरी से शासन चलाएँगे, और स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा के माध्यम से अपने लोगों में निवेश करेंगे। धनी देशों ने गरीब देशों को सहायता, कर्ज में राहत और निष्पक्ष व न्याय भरे व्यापार के जरिए समर्थन देने की जो प्रतिज्ञा ली थी, उस पर टिके रहना होगा। इन वादों को पूरा करने के लिए गरीब देशों के साथ साथ धनी देशों की ओर से भी प्रतिबद्धता दिखाई जाए तो एमडीजी को ज़रूर हासिल किया जा सकता है।

एमडीजी में जेंडर सम्बन्धी चिन्ताएँ:

इन सभी लक्ष्यों से उम्मीद है कि वे जेंडर को मुख्यधारा में लाएँगे और एमडीजी 3 में विशेष ध्यान जेंडर और महिलाओं के खिलाफ़ भेदभाव को चुनौती देने पर इस प्रकार दिया गया है कि–

- विद्यालयी (स्कूल) शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करना, यह सुनिश्चित करना कि ज्यादा महिलाएँ साक्षर बनें,
- सार्वजनिक नीति और निर्णय लेने वाली राजनीतिक भागीदारी में उनकी ज्यादा आवाज और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो,
- बेहतर रोज़गार की सम्भावनाएँ प्रदान करना – 36 प्रतिशत डब्ल्यूपीआर
- जेंडर समानता और महिलाओं का सशक्तीकरण,
- खाद्य एवं पोषण सुरक्षा
- जीवन–निर्वाह करने वाली महिला किसान,
- प्राकृतिक संसाधनों के उपयोगकर्ताओं, प्रबन्धकों और भण्डारकों के तौर पर महिलाएँ,
- जलवायु परिवर्तन।

एक समाज में महिलाओं और पुरुषों की उचित भूमिकाओं और गतिविधियों को लेकर कुछ तय धारणाएँ होती हैं और इन्हीं धारणाओं में से लोगों के व्यवहार निकलते हैं। एमडीजी स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि जेंडर का विकास पर एक प्रमुख असर हो सकता है, कुछ मामलों में इसे प्रोत्साहित करते हुए और कुछ में इसे गम्भीरतापूर्णक धीमा करते हुए। एमडीजी संख्या 3 (8 में से) विशेष तौर पर जेंडर के बारे में है जिसमें शिक्षा के सभी स्तरों पर लड़कियों और लड़कों के बीच असमानताओं को खत्म करने के लिए कहा गया है। एक आम सहमति है कि विकास के लिए शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है और यह सुनिश्चित करने से कि स्कूल की पढ़ाई में लड़कियों और लड़कों को सम्पूर्ण अवसर सुनिश्चित करवाने से असंख्य तरीकों से जिन्दगियाँ बेहतर करने में मदद मिलेगी। फिर भी, यहाँ समाप्त करना गलत होगा जो एमडीजी का कोई असावधान पाठक शायद कर ले। इसमें फिर आश्चर्य नहीं कि वो नियम जो पुरुषों के मूल्यों और व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं कि विकास में जेंडर की प्रासंगिकता सिर्फ शैक्षिक दायरे तक ही सीमित है। पुरुष और महिलाएँ दोनों पूरी दुनिया में समुदायों में जीवन के हर पहलू में हिस्सा लेते हैं और किसी तय समाज – जो कि, उनकी जेंडर व्यवस्था है – में महिलाओं के अन्दर जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने की ताकत मौजूद है। इसीलिए चाहे सिर्फ एक एमडीजी ही विशेष तौर पर जेंडर के बारे में है लेकिन जेंडर को सम्बोधित करना हर एमडीजी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

2.9 सारांश

एसएपी और स्थिरीकरण नीतियों को लागू की वजह से राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर महिलाओं के आन्दोलनों ने नव-उदारवादी विकास प्रतिमान को चुनौती दी है। महिला आन्दोलनों के केन्द्रीय मुद्दों में श्रम, व्यावसायिक और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने वाले सार्वभौमिक श्रम मानक शामिल किए जाने चाहिए।

2.10 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) वाशिंगटन की सहमति पर आलोचनात्मक विमर्श करें।

2) महिलाओं के लिए आउटसोर्सिंग के निहितार्थ बताएँ।

3) श्रम का अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन के लैंगिक (जेंडर) निहितार्थ का वर्णन करें।

2.11 संदर्भ

Anker. Richard, I. Chernyshev, P. Egger, F. Mehran, and J. Ritter. (2002). 'Measuring Decent Work with Statistical Indicators.' Policy Integration Paper No. 1. Geneva: ILO.

Charmes J. (2000). 'Informal Sector, Poverty and Gender: A Review of Empirical Evidence.' Background Paper for the World Development Report 2001. Washington, D.C. World Bank.

Cheston, S. and Kuhn L. (2002). 'Empowering Women Through Microfinance.' New York: UNIFEM.

Commission on Human Rights (2003). Preliminary Study on the impact of international economic and financial issues on the enjoyment of human rights submitted to working group on the right to development, February 3-14, Geneva.

Gisela, Notz (2000). 'Gender in Trade Union Work' The Globalisation or Feminisation of Work, Germany: Friedrich Ebert Stiftung.

Jhabwala, Renana and Subramanya R.K.(Ed.s) (2000). The Unorganised Sector: Work, Social Security and Social Protection, New Delhi: Sage Publications.

Mies Maria, (1996). *Patriarchy and accumulation on a world scale: Women in the international division of labour, P*algrave Macmillan.

Report of the National Commission on Enterprises in the Unorganized Sector (NCEUS), 2006 available at www.nceus.com/reports/socialsecurity2006 accessed on November 20, 2012.

Swasti Mitter (2000). '*Asian Women in the Digital Economy*' UNDP, Malayasia.

Vibhuti Patel (2006). *Women's Challenges of the New Millennium*, Gyan Publications, Delhi.

Vibhuti Patel and Manisha Karne (2006). *Macro Economic Policies and the Millennium Development Goals*, Gyan Publications, New Delhi.

Vibhuti Patel (Ed.) (2009) *Discourse on Women and Empowerment*, The Women Press, Delhi.

Women Empowerment Policy, (2001). Government of India.

Wichterich, Christa (1997). Globalisierung und Frauen. Report presented at the LAG Women's Seminar of the Green Party in Lower Saxony. Hannover February 28.

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Vibhuti Patel (2006). *Women's Challenges of the New Millennium*, Gyan Publications, Delhi.3-14, 2003, Geneva.

Charmes J. (2000). 'Informal Sector, Poverty and Gender: A Review of Empirical Evidence.' Background Paper for the World Development Report 2001. Washington, D.C. World Bank.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 स्त्रीकरण और हाशियाकरण के प्रश्न

संरचना **तृप्ति शाह**

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 श्रमबल का स्त्रीकरण

- 3.3.1 स्त्रीकरण का तात्पर्य
- 3.3.2 सन्दर्भ : भूमण्डलीकरण

3.4 स्त्रीकरण की प्रक्रिया

- 3.4.1 विकसित देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया
- 3.4.2 विकासशील देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया

3.5 सैद्धान्तिक रूपरेखाएँ (फ्रेमवर्क्स)

- 3.5.1 आधुनिकीकरण का सिद्धान्त
- 3.5.2 विकासवाद : विकास में महिलाएँ
- 3.5.3 माँग पक्ष का सिद्धान्त : आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की चुनौतियाँ
- 3.5.4 शोषण का सिद्धान्त
- 3.5.5 निर्भरता का सिद्धान्त
- 3.5.6 वैश्विक प्रणाली का सिद्धान्त
- 3.5.7 अर्थव्यवस्था और महिलाओं पर प्रभाव
- 3.5.8 विभिन्न सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन

3.6 हाशियाकरण और शोषण

3.7 सारांश

3.8 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

3.9 सन्दर्भ

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

1970 के दशक के बाद से पूरे विश्व में श्रमबल की भागीदारी में परिवर्तन आया है। पिछले दो दशक औद्योगिक देशों के साथ-साथ विकासशील देशों में श्रमबल के स्त्रीकरण के साक्षी बने हैं। ज्यादातर देशों में महिलाओं के बीच रोज़गार की दर बढ़ी है, उधर दूसरी ओर पुरुषों में रोज़गार दर गतिहीन हुई है या उनमें गिरावट आई है। कुछ विद्वान और सामाजिक कार्यकर्ता इस प्रगति को महिला-सशक्तीकरण और दासत्व से मुक्ति के तौर पर देखते हैं। कई अन्य यह भी कहते हैं कि महिलाएँ ज्यादातर कम कुशल क्षेत्रों में नौकरियाँ करती हैं, कुछ ख़ास क्षेत्रों में, और वहाँ पर भी वह खराब माहौल में काम करती हैं, जबकि उन्हें पुरुषों के मुकाबले बहुत ही कम वेतन मिलता है।

महिला कर्मियों के लिए कार्यस्थल पर समान अधिकारों का संघर्ष मुख्य एजेंडा होना चाहिए, लेकिन कोई भी संघर्ष भूमण्डलीकरण और श्रम क्षेत्र में स्त्रीकरण के बीच सम्बन्ध की सैद्धान्तिक समझ के बिना सफल नहीं हो सकता है।

यह अध्याय श्रम के स्त्रीकरण की प्रक्रिया की जटिलता को सामने लाता है और कुछ ऐसे ठोस सबूत पेश करता है जो दिखाते हैं कि परिवार में अधीनता और कार्यस्थल पर उनका सहायक स्तर, दोनों की जड़ें निर्बाध संचयन को सुनिश्चित करने के लिए अधिकतम लाभ के पूँजी के प्राथमिक उद्देश्य में निहित हैं।

3.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो जाएँगे कि आप :

- श्रमबल के स्त्रीकरण का अर्थ बता सकें;
- स्त्रीकरण की प्रक्रिया की समीक्षा कर सकें;
- विभिन्न सैद्धान्तिक रूपरेखाओं पर चर्चा कर सकें; और
- पूंजीवादी संचय की प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण और महिलाओं के बीच के सम्बन्धों का विश्लेषण कर सकें।

3.3 श्रमबल का स्त्रीकरण

श्रमबल में महिलाओं की हिस्सेदारी को समझने से पहले हमारे लिए स्त्रीकरण का अर्थ समझ लेना ज़रूरी है :

3.3.1 स्त्रीकरण का तात्पर्य

पूरी दुनिया में, अधिक से अधिक महिलाएँ अब श्रमबल में हिस्सा लेने लगी हैं। 'श्रमबल का स्त्रीकरण' या 'कार्य का स्त्रीकरण' जैसी उक्ति का प्रयोग सबसे पहले **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन** के **गाई स्टैंडिंग** (स्टैंडिंग 1989) द्वारा किया गया था। उन्होंने अपने पत्र में इस तथ्य का अवलोकन किया कि पूरे विश्व में महिला श्रमबल की हिस्सेदारी में बढ़ोत्तरी हुई है और, यदि पूर्ण नहीं तो प्रासंगिक रूप से ही, पुरुषों के रोज़गार में गिरावट आई है। साथ ही पुरुषों द्वारा की जा रही कई नौकरियों का भी स्त्रीकरण हो गया है।

अतः स्त्रीकरण शब्द का प्रयोग निम्नलिखित प्रक्रियाओं का वर्णन करने के लिए किया जाता है :

1) पूरी दुनिया में श्रमबल में महिलाओं की हिस्सेदारी में बढ़ोत्तरी अर्थात् औद्योगिक रूप से विकसित देशों में और विकासशील देशों में भी यह बढ़ोत्तरी हुई है।

2) पुरुषों के रोज़गार में सापेक्षिक गिरावट।

3) परम्परागत रूप से पुरुषों द्वारा की जाने वाली कुछ नौकरियों में महिलाओं द्वारा पुरुषों को प्रतिस्थापित करना।

4) श्रम को लचीला बनाना, जहाँ महिलाओं से अनौपचारिक, अंशकालिक, संविदा पर या घर पर ही किए जाने वाले काम की अपेक्षा की जाती है। यह काम के उस रूप को सन्दर्भित करता है जिसमें कर्मचारी आमतौर पर दिन में आठ घण्टे या सप्ताह में चालीस घण्टे (या सुबह नौ बजे से शाम पाँच बजे तक की नौकरी) नहीं करता, बल्कि नियोक्ता की ज़रूरत के अनुसार, लचीले शेड्यूल से काम करता है। इस प्रकार का रोज़गार ओवरटाइम के साथ या बिना ओवरटाइम के पूर्णकालिक या अंशकालिक हो सकता है और इसमें काम की शिफ्ट चौबीस घण्टे के अनुसार आयोजित की जाती है।

5) महिला और पुरुष, दोनों के लिए काम करने की परिस्थितियों का स्त्रीकरण। शुरू में तो अनौपचारिक, लचीला और संविदात्मक रोज़गार महिलाओं के लिए आरक्षित रखा जाता था। जबकि पुरुष स्थिर, पूर्णकालिक रोज़गार करते थे। कभी-कभी उनको इसके अतिरिक्त फायदे भी मिलते थे। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में कई पुरुष कर्मी भी महिलाओं के काम करने की स्थितियों से घुलने-मिलने लगे।

हम निम्नलिखित अनुभागों में एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करेंगे:

श्रमबल का स्त्रीकरण क्या महिलाओं की समानता की लड़ाई के लिए सकारात्मक सूचक है या नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें महिलाओं के काम करने की जटिलता और वैश्विक अर्थव्यवस्था के वर्तमान सन्दर्भ में विकास की प्रक्रिया से इसके सम्बन्धों को समझना होगा।

3.3.2 सन्दर्भ : भूमण्डलीकरण

वैश्विक अर्थव्यवस्था में भूमण्डलीकरण के सन्दर्भ में स्त्रीकरण लगातार अपने पैर पसार रहा है। जैसा कि पिछले अनुभागों में आपने पढ़ा, भूमण्डलीकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

क) राष्ट्रीय आय में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का बढ़ना और ज्यादातर देशों में हो रहे कुल निवेश में विदेशी निवेश का हिस्सा बढ़ना।

ख) अर्थव्यवस्थाओं में निवेश और व्यापार बढ़ रहा है, लेकिन श्रम लागत अपेक्षाकृत निम्न है।

ग) श्रम बाज़ार में वैधानिक नियमन की बजाय बाज़ार के विनियमन की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण श्रमिक नियमन के सुरक्षात्मक उपायों का ह्रास, वेतन निर्धारण का विकेन्द्रीकरण, रोज़गार सुरक्षा का ह्रास हो रहा है।

घ) माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक्स पर आधारित 'तकनीकी क्रान्ति' ने कार्य प्रबन्धन में तकनीकी प्रबन्धकीय विकल्पों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रस्तुत की है।

ङ) औद्योगिक देशों की कल्याणकारी प्रणालियों के औचित्य धूमिल होने लगे हैं।

च) सामाजिक संरक्षण का निजीकरण और सामाजिक सुरक्षा का व्यक्तिगत होना बढ़ रहा है।

इन सभी का असर न केवल महिलाओं पर पड़ रहा है, बल्कि विकसित और विकासशील देशों में महिला और पुरुष दोनों कामगारों के काम की प्रकृति पर भी पड़ रहा है।

3.4 स्त्रीकरण की प्रक्रिया

पिछले अनुभाग में आपने श्रम के स्त्रीकरण के बारे में पढ़ा। इस अनुभाग में आपको पूरी दुनिया में श्रम के स्त्रीकरण की प्रक्रिया के बारे में जानने को मिलेगा।

विकसित और विकासशील देशों में स्त्रीकरण स्पष्ट है। लेकिन दोनों में प्रक्रिया अलग-अलग है। आइए, विकासशील और विकसित देशों में इस स्त्रीकरण की प्रक्रिया के बारे में जानें:

3.4.1 विकसित देशो में स्त्रीकरण की प्रक्रिया

जैसा कि पिछले अनुभाग में आपने पढ़ा, भूमण्डलीकरण ने नए अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन का रास्ता खोल दिया है। इस नए श्रम विभाजन में विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने

अपने गहन श्रम की माँग करने वाली उत्पादन प्रक्रियाओं को विकासशील देशों में स्थानान्तरित कर दिया है यानी कि उच्च वेतन क्षेत्र से निम्न वेतन क्षेत्र की ओर। विकसित देशों में स्थित इनकी इकाई अधिक कुशल और पूँजी की माँग करने वाले सामान की है, जबकि विकसित देशों में स्थापित इकाई गहन श्रम की माँग करती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका पहला देश था जिसने सबसे पहले कपड़ा, जूता और इलेक्ट्रॉनिक्स सामान बनाने वाली कई श्रम-आधारित इकाइयों को कैरेबियाई देशों, पूर्वी एशिया और लैटिन अमेरिका में स्थानान्तरित किया था, जहाँ पर वेतन कम होता है। जापान की फर्मों ने गहन श्रम की माँग करने वाली इकाइयों को दक्षिण पूर्व एशिया में स्थानान्तरित कर दिया और फिर यह सिलसिला पूरे विश्व में चल पड़ा। कई विकसित देशों ने यही रास्ता अपनाया। इसके परिणामस्वरूप विकसित अर्थव्यवस्थाओं में पूर्णकालिक, स्थायी विनिर्माण की नौकरियों में कमी आई, और विकसित देशों में दो प्रक्रियाओं ने स्त्रीकरण का रास्ता सुझाया।

एक तरफ तो पुरुष कर्मियों के लिए विनिर्माण के क्षेत्र में नौकरियों में कमी आई। इसके साथ ही, कल्याणकारी राज्य के लाभ में कमी आई जिससे परिवारों के लिए आय को लेकर असुरक्षा की भावना बढ़ी। अतः आय की असुरक्षा के कारण अधिक महिलाएँ श्रम बाज़ार में आईं और जम गईं।

दूसरी ओर, सेवा क्षेत्र विकास कर रहा है और महिला कामगारों के लिए नौकरी का बड़ा क्षेत्र बन रहा है। अब ज्यादातर विकासशील देशों में, सेवा क्षेत्र सकल राष्ट्रीय उत्पाद में लगभग 70% तक का योगदान दे रहा है। हालाँकि सेवा क्षेत्र में विकास, जेंडर-आधारित नौकरियों के आबंटन द्वारा चिन्हित होता है।

जैसा कि जया मेहता (1999) ने बताया है, 'सेवा क्षेत्र के उच्च स्तर पर, पुरुषों के लिए वित्त, बीमा और व्यापार के क्षेत्रों में सूचना व ज्ञान आधारित उच्च वेतन की नौकरियाँ पैदा हुई हैं। दूसरी ओर कम वेतन वाली उच्च स्त्रीकृत नौकरियाँ गहन श्रम और कम कुशलता वाले क्षेत्रों में पैदा हुई हैं। इनमें डाटा प्रसंस्करण या नर्सिंग, व्यापार वितरण सेवाएँ, निजी सेवाएँ और सफाई, अकुशल कैटरिंग, गृह सहयोगी जैसी नौकरियाँ शामिल हैं।'

कई बार ये नौकरियाँ अंशकालिक नौकरियों के तौर पर सृजित की जाती हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र, शिक्षा या सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी कई नौकरियाँ पूर्णकालिक से अंशकालिक बन गई हैं और उन्हें ठेके पर निजी एजेंसियों को दे दिया गया है। अंशकालिक नौकरियाँ इसलिए नहीं बनाई जा रही हैं क्योंकि पूर्णकालिक कामगार उपलब्ध नहीं हैं। बल्कि इसलिए बनाई जा रही हैं क्योंकि कार्य विशेष केवल अंशकालिक नौकरी के तौर पर ही लाभदायक होते हैं। ज्यादातर मामलों में नियोक्ता अंशकालिक नौकरियाँ पैदा करना चाहते हैं क्योंकि अंशकालिक में घण्टों के हिसाब से दिया जाने वाला वेतन नियमित नौकरी में दिए जाने वाले छोटे से काम के वेतन से भी काफी कम होता है। कई बार तो यह नियमित नौकरी में दिए जाने वाले वेतन के पचास प्रतिशत तक होता है। इससे भी अधिक, जब अंशकालिक कर्मचारी की ज़रूरत नहीं होती है, तो उन्हें वेतन नहीं देना पड़ता।

अंशकालिक कर्मचारी के लिए नियोक्ता को न तो लम्बे समय के लिए करियर प्रमोशन ऑफर देना होता है और न ही प्रशिक्षण की सुविधा देनी होती है। नौकरी से जुड़े तमाम लाभ जैसे कि बीमारी की छुट्टियाँ, वैतनिक अवकाश, मातृत्व अवकाश, पेंशन या बीमा वगैरह नहीं देने होते हैं। दुर्भाग्य से अधिकतर महिलाओं को श्रम बाज़ार काफी कम सुविधा देता है। कई ओईसीडी देशों में (जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम, जापान) में महिलाओं के कुल

रोज़गार का लगभग 45% अंशकालिक रोज़गार है। अन्य देशों में, यह महिलाओं में नौकरी का 35% से 45% तक है (विश्व रोज़गार रिपोर्ट 1998)। ऐसा नहीं है कि ये अंशकालिक नौकरियाँ सिर्फ महिलाओं के लिए रखी गई हैं। अंशकालिक नौकरियों के साथ, अब गृह कार्य भी काफी फैशनेबल बनता जा रहा है। जर्मनी और स्वीडन में 90 प्रतिशत कम्पनियाँ अब लचीले काम की इजाजत दे रही हैं।

3.4.2 विकासशील देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के तहत विकासशील देशों को विदेशी मुद्रा कमाने के लिए निर्यात-आधारित औद्योगीकरण में तब्दील कर दिया गया है। विकासशील दुनिया के पारम्परिक निर्यात में थोड़े-से प्रसंस्करण के साथ कच्चा माल शामिल था। इसका स्थान अब विकसित देशों को किए जाने वाले ऐसे निर्यात ने ले लिया है जिसमें गहन श्रम आधारित विनिर्माण शामिल है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लगातार अपना उत्पादन कम वेतन वाली अर्थव्यवस्थाओं की ओर स्थानान्तरित कर रही हैं। औद्योगिक होते ये देश निर्यात–प्रसंस्करण जोन (ईपीजेड) बनाकर अपने यहाँ विदेशी पूँजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आकर्षित कर रहे हैं। ईपीजेड किसी देश में वह क्षेत्र होता है जहाँ पर कर, कामगार संघ और पर्यावरण नियमों से छूट प्राप्त होती है। इसलिए इन क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों के लिए अपने संयन्त्र स्थापित करना लाभदायक होता है और साथ ही यहाँ पर सस्ता श्रमबल भी उपलब्ध होता है। इन ईपीजेड में कपड़ा, इलेक्ट्रॉनिक्स या फार्मास्युटिकल जैसे क्षेत्रों में 70 से 90% तक महिलाएँ काम करती हैं।

संयन्त्र प्रबन्धक और मालिक भी महिलाओं का श्रमबल चाहते हैं क्योंकि महिलाएँ अपने पुरुष सहकर्मियों की बात मानने के लिए सामाजिक रूप से तैयार होती हैं और अधिक परिश्रमी होती हैं। पितृसत्तात्मक संस्कृति भी प्रबन्धकों को पुरुष कर्मियों की तुलना में महिला कर्मियों को कम वेतन देने के लिए प्रोत्साहित करती है। इन निर्यात इकाइयों में अधिकतर कामगार युवा महिलाएँ होती हैं जिनकी अभी तक शादी नहीं हुई है और उन्हें पहले कभी काम करने का अनुभव भी नहीं रहा है। इनमें से कई ग्रामीण या अर्ध-शहरी क्षेत्रों से आयी होती हैं।

इन निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों में काम करने की स्थितियाँ किसी भी मानक के अनुसार बेहद खराब होती हैं। इन इकाइयों में काम करने के लिए आने वाली महिलाएँ औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले पुरुष श्रमबल के मुकाबले में बेहद कम वेतन पाती हैं। इसके अलावा, इन इकाइयों में वेतन का ढाँचा अधिकतम काम करवाने के लिए डिजाइन किया जाता है। मूल वेतन बेहद कम होता है जिस पर कर्मचारी को उत्पादन, ओवरटाइम, वैतनिक अवकाश के समर्पण वगैरह से जुड़े भत्ते मिलते हैं। बिना इन भत्तों के, कर्मचारियों के लिए जीवन दुर्लभ हो जाता है, इसलिए उन्हें अपने काम के घण्टे और काम की गहनता बढ़ाने के लिए मजबूर किया जाता है।

जेंडर असमानता कार्यस्थल पर पुरुष मालिकों, प्रबन्धकों व सुपरवाइजरों और महिला कर्मियों के बीच देखने को मिलती है। महिलाएँ अक्सर इस बात की शिकायत करती हैं कि उन्हें टॉयलेट जाने के लिए तमाम प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता है। कार्य परिसर के अन्दर और बाहर यौन उत्पीड़न के कई मामलों की शिकायतें आए दिन होती हैं। काम करने की गन्दी परिस्थितियाँ और काम के लम्बे घण्टों की वजह से पेशेवर बीमारियाँ भी हो जाती हैं, जिसका अर्थ इन महिलाओं की नौकरियाँ जाना होता है। ऐसे हालात में इन्हें न तो सरकार की ओर से और न ही नियोक्ता की ओर से कोई मुआवजा मिलता है। ये न तो यूनियन बना सकती हैं और न ही अच्छे हालात और वेतन की माँग कर सकती हैं। यदि एक महिला अपने कार्यस्थल पर यूनियन से जुड़ी गतिविधि शुरू करना चाहती है, तो उसे

न सिर्फ नौकरी से निकाल दिया जाता है, बल्कि अन्य इकाइयों के लिए भी काली सूची में डाल दिया जाता है। महिलाएँ इस तरह की बुरी परिस्थितियों में काम करने के लिए इसलिए राजी हो जाती हैं क्योंकि उनके पास बाहर काम करने के और अच्छे विकल्प मौजूद नहीं हैं।

इन इकाइयों में कर्मियों का आना-जाना ज्यादा होता है क्योंकि यहाँ पर कम उम्र की जवान लड़कियाँ काम छोड़ देती हैं या शादी और बच्चों के बाद उनसे काम छुड़वा दिया जाता है। नौकरी में कोई निश्चितता नहीं होती क्योंकि नियोक्ता ने बहुत ही कम पूँजी का निवेश किया होता है और वह इस इकाई को कभी भी बन्द कर सकता है या उप-ठेकेदार का अनुबन्ध रद्द कर दिया जाता है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ज्यादा लाभ वाली जगह चली जाती हैं।

कृषि क्षेत्र में, व्यापारिक उदारीकरण ने हाल ही में उन कृषि नीतियों को बढ़ावा दिया है जिनमें विविधता है, जो गैर-परम्परागत हैं और जिनका निर्यात मूल्य बहुत ऊँचा है। बागवानी उत्पाद और केन्या व जिम्बाब्वे के फूलों की कटाई, मोजाम्बिक में तम्बाकू और यूगांडा में वनिला की खेती अफ्रीका के कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

गैर-पारम्परिक बागवानी निर्यातों में, महिलाओं के लिए कम वेतन वाले मौसमी रोज़गार का दौर बहुत ही मुश्किल होता है। इस दौरान निर्यात वगैरह के लिए नकदी फसल, फल और सब्जियों का उत्पादन बढ़ता है। विकासशील देशों में इसका असर न सिर्फ रोज़गार पर नज़र आता है, बल्कि महिलाओं की खाद्य सुरक्षा पर भी इसका प्रभाव नज़र आता है।

बॉक्स सं. 3.1

फिलीपीन्स का कपड़ा उद्योग

ग्रामीण क्षेत्रों में कपड़ा उद्योग की स्थापना ने कई शिक्षित युवा पुरुषों और महिलाओं के लिए रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए। हालाँकि, नियोक्ता युवा महिलाओं को काम देना ज्यादा पसन्द करते हैं। ऐसा प्रायः इस जेंडरीकृत धारणा के कारण होता है कि महिलाओं का स्वाभाव विनम्र होता है, वे फुर्तीली होती हैं और उनमें लचीलापन भी होता है। नई नौकरियाँ कुछ कीमतों पर आती हैं। इस विदेशी निवेश को राज्य ने कई क्षेत्रों में आकर्षित किया था जैसे कि कर में छूट, सस्ता श्रमबल और श्रम आयोजन से सुरक्षा। जबकि यह सत्य है कि औद्योगिक सम्पदाओं या निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों के अधिक से अधिक कारखानों में बाहर की तुलना में कम वेतन दिया जाता है, वेतन को कम ही रखा जाता है।

इसके अलावा, नौकरी की सुरक्षा नहीं होती और महिलाएँ जब गर्भवती हो जाती हैं, तो उनकी नौकरी चली जाती है। नौकरी के दौरान महिलाओं पर विदेशी नियोक्ता की ओर से यौन उत्पीड़न का खतरा लगातार मँडराता रहता था क्योंकि नियोक्ता को लगता था कि स्थानीय महिलाओं का यौन उत्पीड़न आसान है या उन्हें नौकरी की इतनी ज़रूरत है कि वे उन्हें मना नहीं कर सकती हैं।

बॉक्स सं. 3.2

श्रीलंका में निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड)

पिछले तीन दशकों में, श्रीलंका की युवा अविवाहित महिलाओं ने अर्थव्यवस्था को निर्यातोन्मुख औद्योगिक देश बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। निर्यातोन्मुख उत्पादों में पश्चिमी देशों के लिए मुख्य रूप से कपड़े और स्पोर्ट्स शूज का निर्माण

किया जाता है। ईपीजेड में औपचारिक रोज़गार में श्रीलंकाई महिलाओं के हो रहे शोषण के कारण महिलाओं को कार्यस्थल पर, समाज के स्तर पर और यहाँ तक कि जेंडर पराधीनता के रूप में भी बेहद मुश्किल वक्त का सामना करना पड़ रहा है। कपड़ा क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं का जीवन स्तर बेहद निम्न स्तर का होता है और उन्हें 'जुकी' लड़कियाँ कहा जाता है। यह अपमानजनक नाम है जिसे सिलाई मशीन के एक लोकप्रिय ब्रांड से लिया गया है। कई महिलाएँ काम करने के लिए अपने घर से दूर जीवन व्यतीत कर रही हैं और भीड़भाड़ वाले बोर्डिंग घरों में रहने के लिए मजबूर हैं। उनमें पोषण का स्तर खराब होता है और विश्वसनीय परिवहन की कमी से जूझना पड़ता है। ईपीजेड क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं का यौन उत्पीड़न काफी समस्याएँ पैदा करता है, लेकिन शायद ही कभी उनकी शिकायत की जाती हो। श्रम की कम अनुकूल परिस्थितियाँ इस मुश्किल को और बढ़ा देती हैं। उच्च बेरोज़गारी की दर और नागरिक अशान्ति की वजह से कई युवा महिलाएँ ही अपने घर की रोज़ी-रोटी चलाती हैं। वर्ष 2000 तक श्रीलंका के विनिर्माण क्षेत्र में श्रमबल की संख्या 408000 तक हो गई और 2004 तक कपड़ा क्षेत्र में महिला कर्मियों की संख्या 80 प्रतिशत थी।

स्रोतः निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड), भूमंडलीकरण, डॉक्टर पीटर हैनकॉक, शेरॉन मिडलटन और जेमी मूर द्वारा लिखित महिलाओं का श्रम बाज़ार और काम करने की परिस्थितियाँ।

आगे पढ़ने से पहले निम्नलिखित अभ्यास को पूरा करें :

अपनी प्रगति की जाँच कीजिए

1) श्रम का स्त्रीकरण क्या है?

2) भूमण्डलीकरण की विशेषताएँ लिखें।

आइए, अब श्रमबल के स्त्रीकरण को समझने के लिए इसके सैद्धान्तिक पक्ष को देखें :

3.5 सैद्धान्तिक रूपरेखाएँ (फ्रेमवर्क्स)

इस अनुभाग में हम 'श्रमबल के स्त्रीकरण' के प्रश्न के विश्लेषण के लिए सैद्धान्तिक रूपरेखाओं की चर्चा करेंगे।

इन मुद्दों के विश्लेषण के लिए कई सैद्धान्तिक रूपरेखाएँ मौजूद हैं। कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं–

1) आधुनिकीकरण का सिद्धान्त
2) विकासवादी सिद्धान्त (विकास में महिलाएँ)
3) शोषण का सिद्धान्त
4) निर्भरता का सिद्धान्त
5) वैश्विक प्रणाली का सिद्धान्त

आधुनिकीकरण का सिद्धान्त और विकासवादी सिद्धान्त 'आपूर्ति पक्ष के कारकों' की ओर से कार्यस्थल पर महिलाओं के स्तर की बात करते हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार, जिस तरह का काम और स्तर महिलाओं को श्रम बाज़ार में मिलता है, वह महिलाओं के श्रम की प्रकृति पर तय होता है। इसके विपरीत, शोषण का सिद्धान्त, निर्भरता का सिद्धान्त और वैश्विक प्रणाली का सिद्धान्त श्रम बाज़ार में महिलाओं की प्रस्थिति की व्याख्या 'माँग पक्ष के कारकों' के साथ करता है। ये समाज के मार्क्सवादी विश्लेषण पर आधारित हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में महिलाओं के श्रम की माँग की प्रकृति अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी और स्तर को सीमित कर देती है।

यहाँ हम आपूर्ति पक्ष के सिद्धान्तों और माँग पक्ष के सिद्धान्तों, दोनों पर चर्चा करेंगे।

3.5.1 आधुनिकीकरण का सिद्धान्त

आधुनिकीकरण का सिद्धान्त इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि विकास का अर्थ अमेरिका या यूरोप जैसे विकसित समाजों के नक्शेकदम पर चलते हुए विकास के पथ को प्राप्त करके आधुनिक बनना है। आधुनिकीकरण शहरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा में प्रगति आदि से जुड़ा है। आधुनिकीकरण के सिद्धान्त के अनुसार, आधुनिक समाज अधिक उत्पादन करने वाले होते हैं, बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलती है और अधिक कल्याणकारी काम होते हैं।

अविकसित समाज वह रूढ़िवादी समाज होते हैं जो परिवार, जनजाति और वंश से घिरे होते हैं और जहाँ पर सभी की भूमिकाएँ तय होती हैं (यानी कि लोग इसमें ही पैदा होते हैं), न कि कोई व्यक्ति अपने निजी प्रयासों से कुछ प्राप्त कर सकता है। इसमें उत्पादन अधिकतर कृषि क्षेत्रों में ही सिमटा होता है।

आधुनिकीकरण के आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार, तीसरी दुनिया के आधुनिकीकरण के लिए सम्भव समाधान के तौर पर इन देशों को पूँजी, तकनीकी और उत्पादक निवेश बढ़ाने के लिए विशेषज्ञों की सहायता के द्वारा औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है। आधुनिक समाज और शहरी जीवन, जीने के बेहतर माहौल, उच्च वेतन, शिक्षा, पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएँ जैसे आधुनिकीकरण के लाभ महिलाओं सहित समाज के सभी तबकों को लाभ पहुँचाएँगे। इसलिए आधुनिकीकरण का बुनियादी तर्क दिया जाता है कि औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में रोज़गार के नए अवसर देकर आधुनिकीकरण रूढ़िवादी आधिपत्य की भूमिका से महिलाओं को मुक्ति दिलाएगा (गूडे, 1963)। आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की एक प्रमुख अवधारणा यह है कि सामाजिक-आर्थिक विकास महिलाओं को समानता, आजादी और भौतिक कल्याण की ओर ले जाता है।

पूंजीवादी विकास के साथ एक बड़ा संस्थात्मक बदलाव घर और कार्यस्थल का अलग होना है। गृहस्थी अब अधिक उत्पादनकारी नहीं रह गई है, लेकिन आधुनिक परिकल्पना के

अनुसार, यह अब पुनरुत्पादन और उपभोग की इकाई बन गई है। लिंग-आधारित आर्थिक विभाजन को फिर से सूत्रबद्ध किया गया है और अब इसे घर और कार्यस्थल में बाँट दिया गया है। पति घर में रोज़ी-रोटी लाने या कमाने वाला बन गया है जो बाहर से कमाकर लाए गए धन से परिवार को सँभालता है। उधर पत्नी की भूमिका उस कमाए गए पैसे से परिवार का प्रबन्ध करने की है। आधुनिक जोड़ों (कपल्स) में अपने परिवार से अलग रहकर पत्नी की आजादी को बढ़ाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यद्यपि आज भी घर को महिलाओं के प्राथमिक क्षेत्र के रूप में माना जाता है, लेकिन आधुनिकीकरण के सिद्धान्त के अनुसार, यह विकास घर से बाहर जाकर नौकरी करने के महिलाओं के अवसरों को सीमित नहीं करता है। सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़े कई बदलावों के बारे में माना जाता है कि उन्होंने महिला श्रम में हिस्सेदारी के लिए महिलाओं को कई विकल्प दिए हैं।

उच्च स्तर के श्रम बाज़ारों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम होने का कारण आपूर्ति पक्ष के कारकों में देखा जा सकता है। महिलाएँ कम शिक्षित होती हैं। वे बाहर के कामों को पर्याप्त समय या काम अथवा नए कौशल सीखने के प्रति कटिबद्धता नहीं दिखा पातीं क्योंकि वे स्वयं भी अपने घर के कामों को अपनी प्राथमिक जिम्मेदारी मानती हैं। आधुनिकीकरण के सिद्धान्त के अनुसार, जैसे-जैसे विकास होता जाता है, लोग अधिक सम्पन्न होते जाते हैं और रोज़ी-रोटी कमाने वाला पुरुष इतना पर्याप्त कमाने लगता है कि वह परिवार को सँभाल सके। तब महिलाओं के लिए काम करने की कोई मजबूरी नहीं रह जाती।

अलग-अलग देशों में महिलाओं के अनुभव अलग थे। यह निष्कर्ष कई विकासवादियों द्वारा तमाम विकासशील देशों के प्रयोगसिद्ध डेटाबेस से निकाला गया है।

3.5.2 विकासवादः विकास में महिलाएँ

महिलाओं पर विकास के प्रभाव के बारे में चर्चा इस्थर बॉसरप के बेहद महत्वपूर्ण कार्य 'आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका' के साथ शुरू हुई।

बॉसरप (1970) के कार्य में उन बदलावों का विश्लेषण किया गया है जो आधुनिक होते समाज के कारण कृषि-कार्यों में आए। बॉसरप ने पुरुषों और महिलाओं के कार्यों पर इन बदलावों के पड़ने वाले अलग-अलग प्रभावों की जाँच की। उन्होंने पाया कि यह आर्थिक प्रक्रिया आधुनिक क्षेत्र में पुरुषों को कमाने के लाभ पहुँचा रही हैं, तो वहीं महिलाओं की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है, बल्कि यह तब और बिगड़ी है जब प्रगति कर रहे आधुनिक क्षेत्रों में से महिलाओं द्वारा चलाए जा रहे परम्परागत व्यापारों को बाहर कर दिया गया। उनके अवलोकन के अनुसार, विकासशील देशों के कृषि क्षेत्रों में महिलाओं के स्तर में गिरावट के लिए यूरोपियन आबादी, औपनिवेशिक प्रशासन और तकनीकी सलाहकार काफी हद तक जिम्मेदार हैं। यही वे लोग थे जिन्होंने उस समय कृषि क्षेत्र में महिला श्रमबल को नज़रअंदाज किया, जब वे पूरी दुनिया को आधुनिक वाणिज्यिक कृषि से परिचित करा रहे थे और पुरुष श्रम की उत्पादकता को बढ़ावा दे रहे थे।

यही वह पहली शख्सियत थीं जिन्होंने अपने विकास के विश्लेषण में लिंग शब्द का स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग में किया था। कई अध्ययनों में आधुनिकीकरण का महिला और पुरुषों पर अलग-अलग प्रभाव सामने आया, साथ ही महिलाओं को विकास में शामिल करने की बहस भी शुरू हुई और इसे डब्ल्यूआईडी दृष्टिकोण के रूप में पहचान मिली। यद्यपि लिंग-आधारित साहित्य उस आधुनिकीकरण के सिद्धान्त से सहमत नहीं होते हैं, जिस पर बॉसरप (1970), इलियट (1977) और अन्य लोगों ने बहस की। डब्ल्यूआईडी, विकास के अलग-अलग प्रभाव के कारणों के विश्लेषण के बिना विकास में महिलाओं को जोड़ने के बारे में बात करता है।

विकासवादियों ने व्याख्या की कि परम्परागत क्षेत्रों में से महिलाओं की भूमिका के खत्म होने की वजह से, उन्हें अनौपचारिक क्षेत्र में नौकरी, छोटे-मोटे व्यापार, घरेलू काम आदि करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसके अलावा घर में उनकी घरेलू जिम्मेदारियाँ उन पर काम का दोहरा बोझ डालती हैं। महिलाओं पर बच्चों के पालन-पोषण, और घर के प्रबन्धन के लिए डाली जाने वाली जिम्मेदारी होती है जबकि पुरुषों को परिवार का वित्तीय सहयोग करना होता है। महिलाओं पर डाली जाने वाली इस जिम्मेदारी की वजह से शिक्षा और प्रशिक्षण उनके लिए सीमित हो जाता है, उनके रोज़गार की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं, अतिरिक्त घरेलू कामों के लिए उनकी ऊर्जा और समय में कमी होती है और तकनीक व क्रेडिट तक उनकी पहुँच कम होती है। इसके परिणामस्वरूप, श्रम बाज़ार में महिलाएँ रोज़गार के अवसरों के लिए पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने में अक्षम होती हैं।

विकासवाद के केन्द्र में तर्क यही है कि आधुनिकीकरण लाभों के साथ-साथ लागतों पर भी ज़ोर देता है तथा सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रभाव समाज के विभिन्न क्षेत्रकों के मध्य असमान रूप से वितरित हुए हैं। महिलाएँ, अल्पसंख्यक और गरीब जैसे कुछ वंचित समूहों को सामाजिक-आर्थिक विकास में असमान वितरण का खामियाजा भुगतना पड़ता है। इस प्रकार, उन्हें आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की इस मान्यता को स्वीकार करना पड़ता है कि औद्योगीकरण, शहरीकरण और संरचनात्मक विभेदीकरण 'आधुनिक' विनिर्माण और सेवा क्षेत्र में योग्य लोगों के लिए अवसरों का विस्तार कर रहे हैं। श्रमबल में महिलाओं की तुलनात्मक रूप से कम सहभागिता दर और कुछ ख़ास तरह के कामों में उनके संकेन्द्रण के कारण आमतौर पर ये माने जाते हैं कि महिलाओं के पास टकराव भरी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होती हैं, उनकी प्रेरणा और उनका प्रशिक्षण अपर्याप्त होता है, सांस्कृतिक स्टीरियोटाइप्स होते हैं जो महिलाओं को उनकी 'स्त्रियोचित' भूमिकाओं तक सीमित कर दिया करते हैं तथा कुछ अन्य कारण जो श्रम बाज़ार में महिलाओं को प्रतिस्पर्धा में हानिप्रद स्थान पर धकेल दिया करते हैं।

लिहाजा विकासवादियों ने यह इस वास्तविकता का अन्वेषण ही नहीं किया कि सवेतन रोज़गार की तलाश कर रहे पुरुषों और योग्य महिलाओं की बड़ी संख्या को समायोजित करने के लिए पूंजीवादी विकास मॉडल में अवसरों की पर्याप्त संख्या है या नहीं। इन सिद्धान्तों में महिला श्रम के लिए माँग की प्रकृति को पूरी तरह से नज़रअंदाज कर दिया गया।

3.5.3 माँग पक्ष सिद्धान्त : आधुनिकीकरण के सिद्धान्त की चुनौतियाँ

शोषण के सिद्धान्त, निर्भरता के सिद्धान्त और विश्व प्रणाली के सिद्धान्त ने आधुनिकीकरण सिद्धान्त की मौलिक धारणा को चुनौती दी। उन्होंने भूमण्डलीकृत विश्व अर्थव्यवस्था में महिला कामगारों के स्तर की व्याख्या करने के लिए महिला श्रम के माँग पक्ष की प्रकृति पर ध्यान दिया। सबसे पहले हम इन सिद्धान्तों की मूल अवधारणा को समझेंगे और उसके बाद अगले उप-अनुभाग में महिलाओं के कार्यों का विश्लेषण करेंगे।

3.5.4 शोषण का सिद्धान्त

शोषण का सिद्धान्त समाज और सामाजिक परिवर्तन की मार्क्सवादी अवधारणा से जुड़ा हुआ है। इस सिद्धान्त के अनुसार, 'लाभ' नियोक्ता द्वारा उनके वैतनिक कर्मचारियों के शोषण का परिणाम है। यह 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' पर टिका हुआ है। मूल्य के श्रम सिद्धान्त के अनुसार, मूल्य एक उत्पाद में आन्तरिक होता है। यह श्रम की मात्रा के अनुसार होता है जो कि उत्पाद के उत्पादन में लगता है। लिहाजा, कामगारों द्वारा बनाए गए उत्पाद का मूल्य,

उत्पादन में लगे श्रम के मूल्य और अन्य कारकों से अधिक होता है। वास्तविक मूल्य में हुआ यह जुड़ाव कामगारों द्वारा बनाए गए उत्पाद का अधिशेष मूल्य होता है। तब इस अन्तिम कीमत से प्राप्त आय को श्रम (वेतन), पूँजी (लाभ) और कच्चे माल पर हुए खर्चे में बाँटा जाता है। कामगारों द्वारा प्राप्त किया गया वेतन उनके श्रम के पूर्ण मूल्य को प्रतिबिम्बित नहीं करता क्योंकि उस मूल्य का कुछ हिस्सा (अधिशेष मूल्य का हिस्सा) नियोक्ता द्वारा लाभ के रूप में ले लिया जाता है। इसलिए 'लाभ कमाने' का अर्थ कामगारों के श्रम के मूल्य को उनसे छीनना है। इसे पूंजीवादी शोषण कहा जाता है।

3.5.5 निर्भरता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के मुख्य प्रस्तावक **आंद्रे गुंडर फ्रैंक** (1967) के अनुसार, निर्भरता के सिद्धान्त की प्रमुख अवधारणा यह है कि दुनिया 'केन्द्रीय राष्ट्रों' और 'परिधीय राष्ट्रों' में विभाजित है। दुनिया के समृद्ध (केन्द्रीय) राष्ट्रों को अमीर बने रहने के लिए परिधि पर स्थित निर्धन देशों की आवश्यकता है। निर्भरता का सिद्धान्त कहता है कि परिधीय राष्ट्रों में गरीबी इसलिए नहीं है कि वे वैश्विक प्रणाली का हिस्सा नहीं बन पाए हैं बल्कि जिस तरह से उन्हें वैश्विक प्रणाली में शामिल किया गया है, उसकी वजह से वे गरीब हैं।

अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया बाहरी परिधि के देशों (गरीब, अविकसित, पिछड़े, विकासशील और आश्रित देश) से संसाधनों को दूर कर देती है और 'केन्द्रीय (मुख्य)' राष्ट्रों (समृद्ध, विकसित देशों) को लाभ पहुँचाती है। निर्भरता के सिद्धान्त की केन्द्रीय स्थिति यह है कि गरीब (पिछड़े) देश और गरीब होते जाते हैं और समृद्ध (विकसित) देश और समृद्ध होते जाते हैं और जाहिर है कि वैश्विक आर्थिक प्रणाली में एकीकृत हो जाते हैं। उनका तर्क है कि दक्षिण की गरीबी, राजनीतिक अस्थिरता और पिछड़ापन उत्तरी देशों द्वारा स्थापित ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परिणाम है और इसके परिणामस्वरूप विकासशील देशों की आर्थिक निर्भरता बढ़ी है।

जबकि आधुनिकीकरण सिद्धान्त का अर्थ है कि विकास तब होता है जब एक विशेष समाज के साथ अलग आधुनिक क्षेत्र स्थापित किया जाता है और धीरे-धीरे पारम्परिक क्षेत्र को इसमें एकीकृत किया जाता है, निर्भरता सिद्धान्त का तर्क है कि एकीकरण शोषण और निर्भरता की ओर जाता है।

3.5.6 वैश्विक प्रणाली का सिद्धान्त

इमैनुअल वालरस्टीन द्वारा प्रस्तावित विश्व प्रणाली सिद्धान्त उपरोक्त तर्क को और आगे ले जाता है। वे संस्थागत परिवर्तन की व्याख्या कर रहे हैं जो एकल समाजों की बजाय पूरी अन्तर-सामाजिक प्रणाली पर केंद्रित है। वालरस्टीन प्रस्तावित करते हुए कहते हैं कि राष्ट्र-राज्य एक व्यापक राजनीतिक, आर्थिक और कानूनी ढाँचे के भीतर मौजूद हैं, जिसे वह 'विश्व प्रणाली' कहते हैं। विश्व प्रणाली सिद्धान्त के अनुसार श्रम का वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय विभाजन दुनिया को मुख्य देशों, अर्ध-परिधि वाले देशों और परिधि वाले देशों में विभाजित करता है। अर्ध-परिधि, तीसरी दुनिया के बड़े और शक्तिशाली राज्यों से मिलकर बनी है। उदाहरण के लिए, मैक्सिको, ब्राज़ील, भारत और दक्षिण अफ्रीका जिनका आर्थिक विकास मध्यवर्ती स्तर का है। जबकि मुख्य देशों का समूह संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन जैसे वर्चस्वशाली राज्यों से मिलकर बना है। मुख्य देशों में प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक क्षेत्र के साथ एकीकृत अर्थव्यवस्थाएँ हैं। जबकि परिधि वाले देशों की सूची में वे देश शामिल हैं जो बिना विनिर्माण क्षेत्र के कच्चे माल का उत्पादन करते हैं। उदाहरण के लिए, बुरुंडी, जाम्बिया, नामीबिया और तीसरी दुनिया के अधिकांश देश। विश्व प्रणाली मुख्य रूप से

पूंजीवादी संचय और भू-राजनीति द्वारा संचालित होती है जिसमें व्यापारिक संस्थान सत्ता और धन के लिए लड़ते है। जब पूंजीवादी व्यवस्था विकासशील देशों में प्रविष्ट होती है, तो पूंजीवादी शोषण भी फैलता है।

3.5.7 अर्थव्यवस्था और महिलाओं पर प्रभाव

समाज की मार्क्सवादी समझ पर आधारित इन सिद्धान्तों के अनुसार महिलाओं की आर्थिक भूमिका एवं स्थिति बाज़ार-आधारित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण खराब हुई है। वर्गों के अस्तित्व से पूर्व वाले समाज में महिला एवं पुरुष सामाजिक रूप से उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन की जिम्मेदारियों को साझा करते थे। घर केवल खपत का स्थान नहीं था बल्कि उत्पादन स्थल भी था। परन्तु कार्यस्थल का बँटवारा होते ही घरेलू महिला के कार्य गैर-उत्पादक बन गए। घरेलू कार्य जिसकी बाज़ार में कोई कीमत नहीं। वास्तव में यह घरेलू कार्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है। घरेलू कार्य के बिना कामगार या कामगारों की भावी पीढ़ी नहीं मिल सकती, जिनका उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग करके उनका शोषण किया जाता है।

घरेलू क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उन्हें किसी भी तरह के धनार्जन करने वाले रोज़गार में जाने से से नहीं रोकती, हालाँकि श्रम बाज़ार (लेबर मार्केट) में महिलाओं को मिलने वाले कार्य की प्रकृति को अवश्य सीमित करती है। सांस्कृतिक रूप से निर्धारित परिभाषाओं के आधार पर श्रम बाज़ार में महिलाओं और पुरुषों के कार्यों में अन्तर होता है, जो अच्छे वेतन और उच्च प्रस्थिति वाले व्यवसायों तक महिलाओं की पहुँच को रोकता है। महिलाएँ व्यक्तिगत सेवा, वस्त्र निर्माण, खाद्य प्रसंस्करण या इस प्रकार के अन्य क्षेत्रों में कार्यरत दिखाई पड़ती हैं जो कि उनके घरेलू कार्यों का ही विस्तारित रूप है।

एक विशेष प्रकार के श्रमिकों की आरक्षित फौज के रूप में महिला कामगार पूंजीवादी प्रणाली के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। श्रम उत्पादकता के रूप में तेजी से बढ़ रही वास्तविक मज़दूरी को रोकने के लिए इस श्रमिक आरक्षित सेना की भूमिका महत्वपूर्ण है। अन्य श्रमिक पूंजीपतियों को मुनाफा दिलाने वाले उत्पादन करने में अत्यधिक समय लेंगे। मार्क्सवादी विचारधारा इसे श्रम के लिए गिरती हुई हिस्सेदारी या शोषण की बढ़ती हुई दर बताती है। महिला मज़दूरों की ऐसी आरक्षित खेप उपलब्ध है जो कभी आवश्यकता पड़ने पर श्रम बाज़ार में लाई जा सकती है। साथ ही व्यवसाय में मन्दी के दौर में उन्हें आसानी से बिना किसी सामाजिक बाधा के वापस घर भी भेजा जा सकता है। आरक्षित सेना का मुख्य कार्य तीसरी दुनिया या वैश्विक पूँजीवादी प्रणाली की परिधि अर्थव्यवस्थाओं में महिला श्रमिकों के हाशियाकरण को और अधिक बढ़ाना है। विकासरत बुनियादी ढाँचे और पूँजी की कमी के कारण विकासशील देशों की निर्भरता एक दूसरे पर बढ़ी है और उन्हें ईपीजेड (निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र) की ओर रुख करने पर विवश होना पड़ा है जिससे अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में इन देशों की स्थिति काफी कमज़ोर हुई है। तीसरी दुनिया के देशों में महिला रोज़गार के विकल्प प्रतिबन्धित हैं, जहाँ जनसांख्यिकीय और आर्थिक परिस्थितियाँ काम की तलाश में जुटे महिला एवं पुरुषों की संख्या के सापेक्ष अर्थव्यवस्था में कामगारों की माँग को सीमित करती हैं।

3.5.8 विभिन्न सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन

आइए, देखें उपर्युक्त सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों के द्वारा प्रदत्त व्याख्याओं की तुलना करके क्या निष्कर्ष निकला।

आधुनिकता सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार परम्परागत सामाजिक जीवन महिलाओं की संसाधनों तक पहुँच, निर्णय लेने की शक्ति और कार्य-भूमिका के विकल्पों को सीमित करता है। उनका दावा है कि आधुनिकता में व्यावसायिक पसन्द की छूट एवं मूल्यों के संरक्षण ने महिलाओं की स्थिति को सुधारा है। मार्क्सवादी नारीवादी सिद्धान्त के समर्थकों के मतानुसार वर्ग आधारित, पूंजीवादी समाज के आगमन से महिलाओं की अच्छाइयों का ह्रास हुआ है। आधुनिकीकरण सिद्धान्त काफी हद तक व्यक्तिगत विकल्प और वरीयता की तरह आपूर्ति पक्ष के कारकों के मामले में महिला श्रमबल की भागीदारी का उल्लेख करता है। यह पारिश्रमिक-आधारित रोज़गार में महिलाओं के प्रवेश और उसमें बने रहने की अक्षमता के कारकों को विशेष रूप से दर्शाता है, जो कि योग्य एवं इच्छुक महिला कामगारों की आपूर्ति को सीमित करता है। मार्क्सवादी नारीवादी सिद्धान्त महिलाओं के न्यूनतम नियन्त्रण के स्थान पर ढाँचागत कारकों पर अधिक ज़ोर देता है। यह सिद्धान्त पूंजीवादी प्रणाली में महिला कामगारों की माँग को प्रतिबन्धित करने वाली परिस्थितियों को महत्व देता है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण द्वारा प्रदत्त स्पष्टीकरण विकासशील देशों में महिलाओं की स्थिति के लिहाज से ज्यादा सटीक है परन्तु यह भी पर्याप्त नहीं है। हमें मार्क्सवादी सिद्धान्त द्वारा ढाँचागत परिस्थितियों एवं माँग पक्ष के कारक की व्याख्या और विकासवादियों द्वारा महिला श्रम की जटिल वास्तविकता को समझने के लिए विकसित महिला श्रम की आपूर्ति प्रभावित करने वाले सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों की सोच को जोड़ने की ज़रूरत है।

3.6 हाशियाकरण और शोषण

वैश्वीकरण के लैंगिक (जेंडर) आयामों, विकासशील देशों में उदारीकरण और एक बढ़ते साहित्य द्वारा इस मुद्दे के दोनों पक्षों, अवधारणा एवं अनुभवजन्य आयामों, को प्रमुखता देने से अब व्यापक स्तर पर इसे मान्यता मिल रही है। **बेरिक, रोज़र्स एवं वेग्लिक** (2004) द्वारा ताइवान और कोरिया पर किए गए अध्ययन के अनुसार यह ठीक है कि व्यापार में उदारीकरण से महिलाओं के लिए रोज़गार के अवसर बढ़ते हैं, लेकिन एक श्रमिक के रूप में उनके 'प्रतिस्पर्धी लाभ', कम वेतन और बदतर कार्य परिस्थितियों में ही निहित बने रहते हैं। व्यापार और निवेश में उदारीकरण अच्छा लाभ उपलब्ध कराता है। जिससे महिलाओं की सापेक्ष मज़दूरी कम रखी जा सके ताकि देश प्रतिस्पर्धी बनें और विदेशी निवेश को आकर्षित करना सुनिश्चित हो सके। इसी प्रकार, सुले ऑजलर (1999) ने अपने अध्ययन में निर्यात-आधारित औद्योगीकरण पर प्रभाव का जिक्र किया है जो तुर्की में हुआ था।

एलियट (2002) इसे 'शोषण का नया रूप' बताते हुए कुछ ऐसी परिभाषा देती हैं– विकास ने कुछ क्षेत्रों में महिलाओं के लिए आर्थिक अवसर पैदा किए हैं, विशेष रूप से निर्यात-विनिर्माण क्षेत्र में। हालाँकि इन अवसरों ने महिलाओं के शोषण की नई सम्भावनाओं को भी जन्म दिया है, जो कम वेतन, संगठित न होने के अधिकार, प्रतिबन्धित या निर्धनतायुक्त जीवन से पैदा होती हैं। इन अवसरों को प्राप्त करने के लिए या तो गाँव से शहर की ओर जाना अनिवार्य होता है या अपनों से दूर रहना पड़ता है। इस प्रकार दूर जाने से एक तो गाँव की सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ता है, दूसरा परिवार का साथ न होने से आय अधिक होने के बावजूद व्यक्ति और अधिक सुभेद्य होता जाता है। निश्चित रूप से भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने रोज़गार के इन अवसरों को पैदा किया है लेकिन इसने यौन-पर्यटन (सेक्स टूरिज्म) और विदेशी घरेलू सेवा का रोज़गार भी खूब बढ़ाया है जो अधिक शोषण करने वाला है। कुछ मामलों में तो सरकार ने सरकारी और निजी आय बढ़ाने के उद्देश्य से इस प्रकार के अधिक शोषण करने वाले रोज़गारों को खूब बढ़ावा दिया है। उन्होंने राष्ट्रीय सरकारों द्वारा महिलाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों से दूर रखने से उन पर

पड़ने वाले प्रभाव का भी उल्लेख किया है। महिलाएँ अपने परिवार की जिम्मेदारियों के निर्वहन में अधिक समय और धन खर्च करती हैं; साथ ही सामुदायिक जिम्मेदारियों, घरेलू कार्यों, अपशिष्ट निस्तारण और जल स्रोत के रखरखाव में उन्हें समय खर्च करना पड़ता है।

मारिया एस फ्लोरो एवं मोक म्यूर्स (2009) ने सभ्य कार्यों तक महिलाओं की पहुँच में कमी पर ज़ोर दिया है। महिलाओं की परिस्थिति प्रजनन और भुगतान-आधारित कार्य के संयोजन से विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। तनाव सभ्य कार्यों की परम्परागत अवधारणाओं के लिए जिम्मेदार नहीं होता जो कि भुगतान-आधारित कार्य पर केन्द्रित होता है। साथ ही प्रजनन श्रम सम्बन्धी बदलावों का परीक्षण नहीं करता। वे तर्क देती हैं कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश श्रमशक्ति का स्त्रीकरण करने में मदद कर सकता है। इस तरह की स्त्रीकरण की प्रवृत्ति बदली भी जा सकती है। लैटिन अमेरिका और अफ्रीका जैसे देशों के कुछ मामलों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि वहाँ अल्प अवधि के रोज़गार मिलते हैं जिनका सकारात्मक प्रभाव नहीं होता।

फसलों के नकदी निर्यात के कारण अक्सर महिलाओं के जीवन निर्वाह में समस्या खड़ी होती है, इस निर्यात से महिलाओं के रोज़गार समाप्त हो जाते हैं; यदि रोज़गार मिलते भी हैं तो आकस्मिक और मौसमी रोज़गार ही मिलते हैं जो जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त मज़दूरी भी नहीं देते। इस प्रकार महिला कामगारों को उनकी वास्तविक आय से भी कम मज़दूरी पर काम करने को विवश होना पड़ता है। जिन स्थानीय उद्योगों को सरकार की ओर से व्यापार समायोजन सहायता या समर्थन प्राप्त नहीं होता (यदि होता भी है तो अल्प मात्रा में), वहाँ पर काम करने वाली महिलाओं एवं पुरुषों दोनों को निर्यात के इस अनियन्त्रित प्रवाह से सदैव जीविकोपार्जन का खतरा बना रहता है।

स्थानीय उत्पादक, विशेष रूप से स्वरोज़गार करने वाले महिला एवं पुरुष अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सस्ते निर्यात के कारण बाज़ार में अपनी हिस्सेदारी खो चुके हैं। इस प्रकार जो प्रश्न मस्तिष्क में चलता है, वह यह है कि क्या श्रमशक्ति का स्त्रीकरण स्त्री समानता के लिए जारी संघर्ष के लिए एक सकारात्मक संकेत है या नहीं। इसका जवाब बिना किसी संदिग्धता के दिया जा सकता है, क्योंकि इसमें केवल महिला कामगार ही नहीं, बल्कि पूरा कार्यशील जनसमूह शामिल है। इसे वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो इस स्त्रीकरण से केवल महिला कामगार ही नहीं, बल्कि पूरा श्रमिक वर्ग प्रभावित है।

स्टैडिंग (1999) के मतानुसार, विश्व में महिलाओं के लिए नियमित रूप से मज़दूरी में एकीकरण के लिए कई बार आन्दोलन हुए जिससे कि समाज में समानता लाई जा सके। वर्तमान में अधिक से अधिक महिलाएँ कार्य की दुनिया में एकीकृत हुई हैं परन्तु लचीले रोज़गार में अधिक से अधिक पुरुष यहाँ तक कि महिलाओं को अनिश्चित रोज़गार के अन्धकार मे धकेल दिया जाता है।

वैश्विक पूंजीवादी प्रणाली में विकास को विश्व स्तर पर एक धन संचय की प्रक्रिया बताया गया है जो पूंजीवादी विकास की आत्मा है। भूमण्डलीकरण की इस प्रक्रिया में उत्पादन और राजनीतिक नियन्त्रण से महिलाओं को अलग-थलग कर दिया गया है। इस प्रकार के विकास ने आमतौर पर महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक हाशियाकरण को बढ़ाया है। यह प्रक्रिया भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से विकासशील देशों को एकीकृत करते हुए उन विकासशील देशों को विकसित देशों के रूप में नहीं बदलेगी, बल्कि बहुसंख्यक कार्यशील लोगों को निर्भरता और शोषण की तरफ ले जाएगी।

स्त्रीकरण और कार्यशक्ति में लचीलापन केवल महिला मज़दूरों को ही प्रभावित नहीं कर रहा है, बल्कि सम्पूर्ण कार्यरत जनसमूह को प्रभावित कर रहा है जिसमें महिलाएँ एवं पुरुष दोनों

शामिल हैं। श्रम का स्त्रीकरण केवल महिला कामगारों के विरुद्ध भेदभाव करना नहीं है, बल्कि यह पूरे श्रमिक वर्ग के लिए उपलब्ध आर्थिक स्थान को कम करने के इरादे से निर्देशित है। महिला कामगारों का एजेंडा आवश्यक रूप से विस्तृत होना चाहिए जिससे कि पूंजीपतियों के उत्पादन सम्बन्धों को अस्वीकृत किया जा सके और साथ ही पूंजीपतियों के जवाब में एक परियोजना की भी खोज की जा सके।

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने श्रम के स्त्रीकरण का अर्थ और प्रक्रिया समझी। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि विकसित देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया कल्याणकारी योजनाओं के निरस्तीकरण, अकुशल सेवा क्षेत्र की नौकरियों, अंशकालिक नौकरियों (पार्ट-टाइम जॉब्स), व्यावसायिक पृथक्करण एवं महिलाओं के लिए मज़दूरी में असमानता के साथ-साथ घटित हुई है। विकासशील देशों में यह निर्यात-विनिर्माण के साथ जुड़ चुका है, परम्परागत क्षेत्र आधुनिक क्षेत्र में बदल रहा है एवं महिलाओं को सरल से दिखने वाले अनिश्चित रोज़गार की ओर धकेला जा रहा है जिससे कि कम से कम मज़दूरी पर उनका जीवन निर्वाह हो, और कई प्रकार से पितृसत्तात्मक शोषण हो रहा है जिसमें शारीरिक शोषण भी शामिल है।

3.8 इकाई के अंत में कुछ प्रश्न

1) श्रमशक्ति के स्त्रीकरण से हम क्या समझते हैं? इसकी विभिन्न अर्थों में व्याख्या कीजिए।

2) विकसित देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

3) विकासशील देशों में स्त्रीकरण की प्रक्रिया निर्यात के ग्रॉथ मॉडल से प्रभावित हुई है। चर्चा कीजिए।

4) विकासवादी सिद्धान्त में महिलाओं द्वारा दी गई व्याख्या का वर्णन कीजिए। बताइए कि यह आधुनिकतावादी सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न है।

5) माँग पक्ष सिद्धान्त क्या हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

6) विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना कीजिए। कौन-सा सिद्धान्त विकासशील देशों में महिला कामगारों की अच्छे तरीके से व्याख्या करता है।

7) क्या स्त्रीकरण द्वारा केवल महिला श्रमिक प्रभावित हुई हैं? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

3.9 संदर्भ

Berik, G., and Cagatay, N. (1990) Transition to export led growth in Turkey: Is there a feminization of employment? *Review of Radical Political Economics*.

Berik, Gunseli, Yana vander Meulen Rodgers, and Joseph E. Zveglich, Jr. (2004). 'International Trade and Wage Discrimination: Evidence from East Asia,' World Bank Policy Research Working Paper No. 3111, Washington: World Bank.

Boserup, E. (1970) *Women's Role in Economic Development*. New York: St Martin's press.

Elliott C. (2002), in Democratic Global Governance – Gender Equality: A Women in Development Case Study-, Encyclopaedia of Life Support Systems.

Elson D and Pearson R. (1981) Nimble fingers make Cheap Workers: An Analysis of Women's Employment in Third World Export Manufacturing, *Feminist Review*, vol 7.

Elson, D. (1999) 'Labor markets as gendered institutions: Equality, efficiency and empowerment issues', in *World Development*.

Floro M. S. and Meurs M.(2009) Global Trends in Women's Access to 'Decent Work' *Friedrich-Ebert-Stiftung.*

Frank, André Gunder (1967), 'Capitalism and Underdevelopment in Latin America: Historical Studies of Brazil and Chile,' New York: Monthly Review

Goode, W.J. (1963) *World Revolution and Family Patterns,* New York Free press of Glencoe.

Illo, J. (2001) Earning a Living: Globalization, Gender and Rural Livelihoods. Paper presented at the Experts Group Meeting on the Situation of Rural Women in the Context of Globalization, Mongolia, June.

International Center for Research on women (1980), 'Keeping Women Out: A Structural Analysis of Women's Employment in Developing Countries.' Prepared for the office of Women in Development, U.S. Agency for International Development.

Mehta J. (1999) Women and Globalisation, Revolutionary Democracy, Vol. V, No. 2, September 1999.

Ozler, S. (1999) Globalization, Employment and Gender. *Background paper prepared for the UNDP Human Development Report*.

Standing G. (1999), Global Feminization Through Flexible Labour: A Theme Revisited, World Development Vol. 27, No. 3, pp. 583±602, International Labour Organisation, Geneva, Switzerland.

Tiano S. (1981), The Separation Of Women's Remunerated And Household Work : Theoretical Perspectives On 'Women In Development' By Susan Working Paper, Michigan State University December 1981.

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Boserup, E. (1970) *Women's Role in Economic Development*. New York: St Martin's press.

Standing G. (1999), Global Feminization Through Flexible Labour: A Theme Revisited, World Development Vol. 27, No. 3, pp. 583±602, International Labour Organisation, Geneva, Switzerland.